नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

भाग १

आगम ४०

"आवश्यक" मूलं एवं वृत्तिः [४]

मूल संशोधक :- पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

अभिनव-संकलनकर्ता :- आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

पूज्य शासनप्रभावक आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से
'वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था' पालिताणा

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

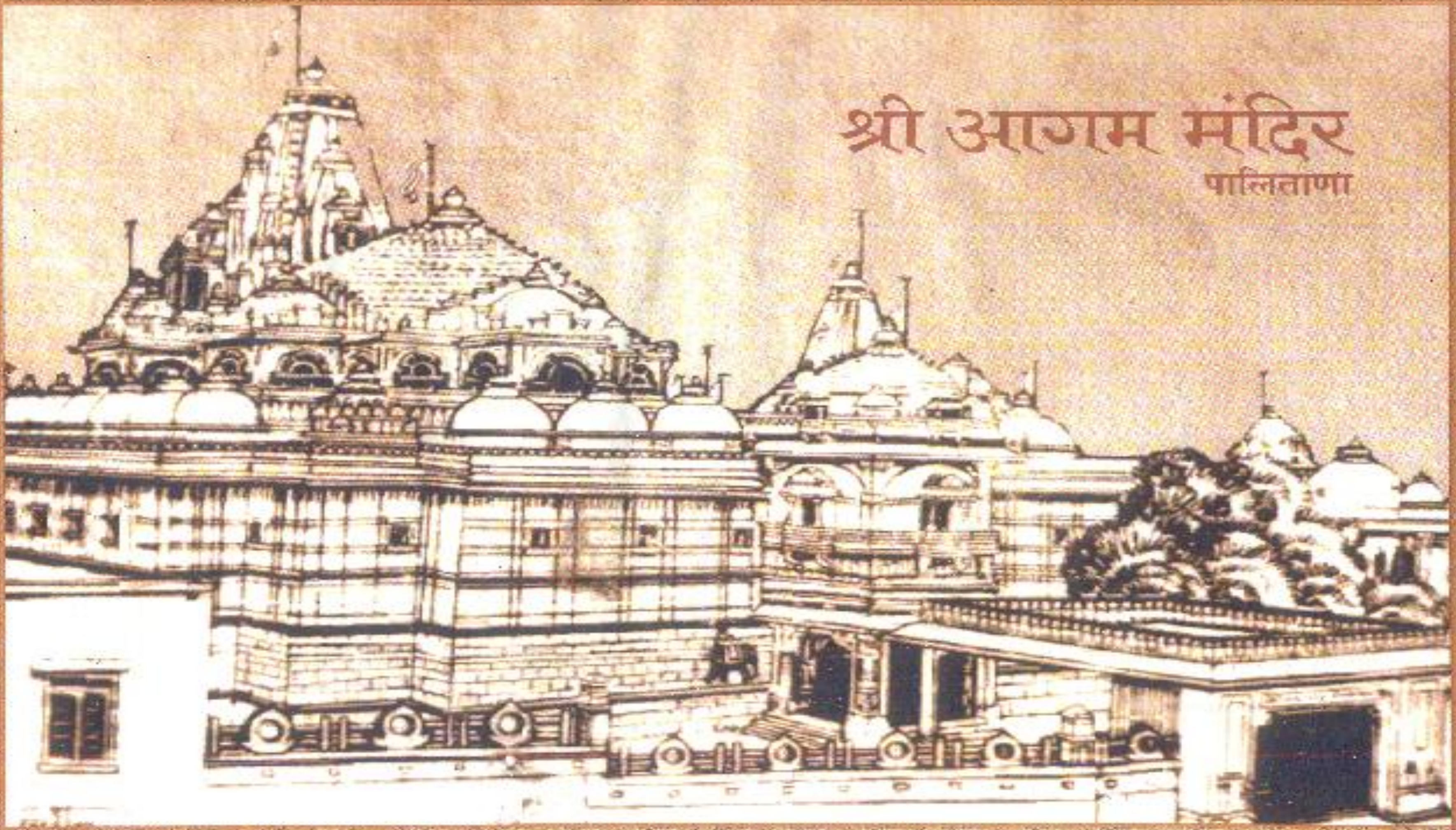

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक

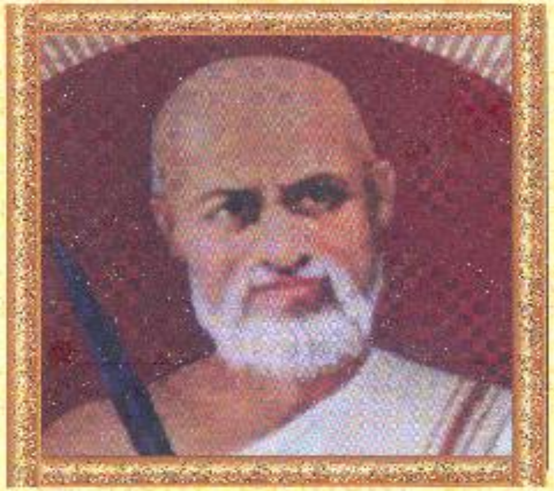

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता

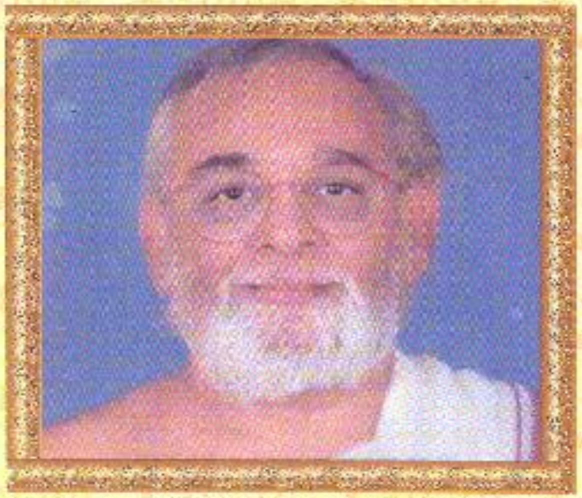

आगम दिवाकर **मुनिश्री दीपरत्नसागरजी**

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका

मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

[भाग-३१] श्री आवश्यक सूत्रम् (मूलसूत्रम्-१/४)

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

"आवश्यक" मूलं एवं वृत्ति:

[मूलं + भद्रबाहुस्वामी कृत् निर्युक्ति; + भाष्यं + हरिभद्रसूरि रचिता-वृत्ति:]

भाग-३०, निर्युक्ति:- (१२७३.अपूर्ण से १६२३) + (अध्ययन ४.अपूर्ण से ६ पूर्ण)

[आद्य संपादकश्री]

पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म. सा.

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुन: संकलनकर्ता→ मुनि दीपरत्नसागर (M.Com., M.Ed., Ph.D. श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५ 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग-३१

श्री आगमोद्धारक-वाचना-शताब्दी-वर्ष-निमित्त 'आगम-वृत्ति-मुद्रण-प्रोजेक्ट'

सामाचारी-संरक्षक, ज्ञानधनी, आगम-संशोधक, तीव्र-मेधावी, समाधिमृत्यु-प्राप्त, बहुमुखीप्रतिभाधारक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

◆ जिन्होने शुद्ध-श्रद्धा, सम्यक्-श्रुत आराधना, यथाख्यातचारित्र के प्रति गति और अंत समय देह-ममत्व के त्याग के द्वारा कायोत्सर्ग नामक अभ्यंतर-तप कि मिशाल कायम कि है ऐसे बहुश्रुत आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराज का परिचय कराना मेरे लिए नामुमकिन है, फ़िर भी गुरुभक्ति बुद्धि से श्रद्धांजली स्वरुप एक मामुली सी झलक पैस करने का यह प्रयास मात्र है |

◆ चारित्र-ग्रहण के बाद अल्प कालमे जो अपने गुरुदेव की छत्रछाया से दूर हो गये, तो भी गुरुदेव के स्वर्ग-गमन को सिर्फ़ कर्मो का प्रभाव मानकर अपने संयम के लक्ष्य प्रति स्थिर रहते हुए अकेले ज्ञान-मार्ग कि साधना के पथ पर चले | पढाई के लिए ही कितने महिनो तक रोज एकासणा तप के साथ बारह किल्लोमिटर पैदल विहार भी किया | लेकिन अपने मंझिल पे डटे रहे, और परिणाम स्वरुप संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का, प्राचीन लिपिओ का, व्याकरण-न्याय-साहित्य आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया | जैन आगमशास्त्रो के समुद्र को भी पार कर गए|

◆ एक अकेला आदमी भी क्या नहीं कर शकता? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस महापुरुष के जीवन और कवन से मिल गया, जब वे चल पड़े देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्थापित पथ पर. बिना किसी सहाय लिए हुए सिर्फ अकेले ही "जैन-आगम-शास्त्रो" को दीर्घजीवी बनाने के लिए अनेक हस्तप्रतो से शुद्ध-पाठ तैयार किये | दो वैकल्पिक आगम, कल्पसूत्र और निर्युक्तिओ को जोड़कर ४५ आगम-शास्त्रो को संशोधित कर के संपादित किया | फिर पालीताणामें आगम मंदिर बनवाकर आरस-पत्थर के ऊपर ये सभी आगम-साहित्य को कंडारा, सूरतमें ताम्रपत्र पर भी अंकित करवाए और "आगम मंजूषा" नाम से मुद्रण भी करवा के बड़ी बड़ी पेटीमें रखवा के गाँव गाँव भेज दिए | वर्तमानकालमे सर्व प्रथमबार ऐसा कार्य हुआ |

◆ सिर्फ मूल आगम के कार्य से ही उन के कदम रुके नही थे, उन्होंने आगमो की वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति, अवचूरी, संस्कृत-छाया आदि का भी संशोधन-सम्पादन किया | उपयोगी विषयो के लिए उन्होंने एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत नए ग्रंथो की रचना भी की | कितने ही ग्रंथो की प्रस्तावना भी लिखी | ये सम्यक्-श्रुत मुद्रित करवाने के लिए आगमोदय समिति, देवचंद लालभाई इत्यादि विभिन्न संस्था की स्थापना भी की |

◆ ज्ञानमार्ग के अलावा सम्मेतशिखर, अंतरीक्षजी, केशरियाजी आदि तीर्थरक्षा कर के सम्यक-दर्शन-आराधना का परिचय भी दिया | राजाओं को प्रतिबोध कर के और वाचनाओ द्वारा अपनी प्रवचन-प्रभावकता भी उजागर करवाई | बालदिक्षा, देवद्रव्य-संरक्षण, तिथि-प्रश्न इत्यादि विषयोमे सत्य-पक्षमें अंत तक दृढ़ रहे | जैनशासन के लिए जब जरुरत पड़ी तब अदालती कारवाईंओ का सामना भी बड़ी निडरता से किया था |

◆ सागरानंदजी के नाम से मशहूर हो चुके पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजीने अपने परिवार स्वरुप ८७० साधू-साध्वीजी भी शासन को भेट किये |

...ये थे हमारे गुरुदेव "सागरजी"... ***......मुनि दीपरत्नसागर...***

संयमैकलक्षी, उपधान-तप-प्रेरक, चारित्र-मार्ग-रागी, प्रवचन-पटु, सुपरिवार-युक्त

पूज्य गच्छाधिपतिआचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

*** परमपूज्य आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी के पाट-परंपरामे हुए तिसरे गच्छाधिपति थे पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी, जो एक पून्यवान् आत्मा थे, दीक्षा ग्रहण के बाद अल्पकालमे ही एक शिष्य के गुरु बन गये | फ़िर क्या ! शिष्यो कि संख्या बढती चली, बढ़ते हुए पुन्य के साथ-साथ वे आखिर 'गच्छाधिपति' पद पे आरूढ़ हो गए | इस महात्मा का पुन्य सिर्फ शिष्यों तक सिमित नही था, वे जहा कहीं भी 'उपधान-तप' की प्रेरणा करते थे, तुरंत ही वहां 'उपधान' हो जाते थे | प्रवचनपटुता एवं पर्षदापुन्य के कारण उन के उपदेश-प्राप्त बहोत आत्माओने संयम-मार्ग का स्वीकार किया | खुद भी संयमैकलक्षी होने के कारण चारित्रमार्ग के रागी तो थे ही, साथसाथ ज्ञानमार्ग का स्पर्श भी उन का निरंतर रहेता था | आप कभी भी दुपहर को चले जाइए, वे खुद अकेले या शिष्य-परिवार के साथ कोई भी ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापनमें रत दिखाई देंगे |

*** ये तो हमने उनके जीवन के दो-तीन पहेलु दिखाए | एक और भी अनुसरणीय बात उन के जीवनमें देखने को मिली थी- 'आराधना-प्रेम'. कैसी भी शारीरिक स्थिति हो, मगर उन्होंने दोनों शाश्वती ओलीजी, [पोष}दशमी, शुक्ल पंचमी, त्रिकाल देववंदन, पर्व या पर्वतिथि के देववंदन आदि आराधना कभी नहीं छोड़ी | आखरी सालोमें जब उन को एहसास हो गया की अब 'अंतिम-आराधना' का अवसर नजदीक है, तब उन के मुहमें एक ही रटण बारबार चालु हो गया- *"अरिहंतनुं शरण, सिद्धनुं शरण, साधुनुं शरण, केवली भगवंते भाखेला धर्मनुं शरण"* इसी चार शरणो के रटण के साथ ही वे समाधि-मृत्यु-रूप सम्यक् निद्रा को प्राप्त हुए थे | ऐसे महान् सूरिवर को भावबरी वंदना | *** मुनि दीपरत्नसागर...

◆◆◆ श्री वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था, पालिताणा ◆◆◆

पूज्यपाद आनंदसागर-सूरीश्वरजी की बौद्धिक-प्रतिभा का मूर्तिमंत स्वरुप ऐसी इस संस्था की स्थापना विक्रम-संवत १९९९ मे महा-वद ५ को हुइ| *पूज्य आचार्य हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से* जिन की तरफ़ से इस *सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि* के लिए संपूर्ण द्रव्य-सहाय की प्राप्ति हुइ |

शिल्प-स्थापत्य, शिलोत्कीर्ण आगम और समवसरण स्थित नयनरम्य ४५ चौमुख जिन-प्रतिमाजी से सुशोभित ऐसा ये 'आगममंदिर' है, जो शत्रुंजय-गिरिराज कि तलेटीमे स्थित है | वर्तमान २४ जिनवर, २० विहरमान जिनवर और १ शाश्वत मिलाकर ४५ चौमुखजी यहा बिराजमान है | जहां ४० समवसरण की रचना मेरु पर्वत के तिनो काण्ड के वर्णो के अनुसार चार अलग-अलग रंगो के आरस-पत्थर से बना है, देवो द्वारा रचित समवसरण के शास्त्र वर्णन-अनुसार आगम-मंदिर कि समवसरण का स्थापत्य है | ऐसी अनेक विशेषता से युक्त ये आगममंदिर है |

****** मुनि दीपरत्नसागर...***

'सागर-समुदाय-एकता-संरक्षक, तीर्थ-उद्धार-कार्य-प्रवृत्त, गुणानुरागी'

इस "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग १ से ४० के संपूर्ण अनुदान के प्रेरणादाता

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी महाराज साहेब

पूज्यपाद स्व॰ गच्छाधिपति देवेन्द्रसागर-सूरीश्वरजी के विनयी शिष्य एवं दो गच्छाधिपतिओ के मुख्य सहायक के रुपमे 'सागर समुदाय' के सुचारु संचालक पूज्य हर्षसागरसूरिजी, जिन की प्रेरणा से ये "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि" के मुद्रण के लिए संपूर्ण द्रव्यराशि प्राप्त हुई, उनका अत्यल्प परिचय यहां करेंगे| समुदाय-एकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हुए ये महात्मा *समुदाय के साधु-साध्वीजी* की आवश्यकताओकी पूर्ती के लिए भी प्रवृत्त रहेते है, प्राचीन-अर्वाचीन तीर्थो के जीर्णोद्धार एवं विकाश के लिए भी उत्साहित रहेते है, ज्ञान-क्षेत्र अछूता न रहे इसीलिए अनुमोदना, अनुदान एवं समय मिलने पर शास्त्र-वांचनमें भी रूचि रखते है | समुदाय के जरूरतमंद साध्वीजी भगवंतो के आवास का विषय हो या साध्वीजी के विहारमें मजदूर का वेतन चुकाना हो, ऐसे छोटे-छोटे कार्यो के प्रति भी उन का लक्ष्य रहेता है | दर्शन-शुद्धि के लिए जब उन्होंने समग्र भारतवर्ष के १०० साल तक के पुराने जिनालयो में १८ अभिषेक की प्रेरणा की, उस वक्त लगभग सभी अभिषेक-सामग्री की द्रव्य-शुद्धि का ख़याल रखते हुए अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया था, साथमे अनुकंपा भाव से पुजारी या विधि करानेवाले को यत्किंचित् बहुमान प्रगट करते हुए कुछ धन-राशि प्रदान करवाई |

ऐसे बहुगुण-संपन्न महात्मा पूज्य आचार्यश्री हर्षसागर-सूरिजी को हम भावभरी वंदना करते हुए इस श्रुतकार्य का प्रारंभ करने जा रहे है |

****** मुनि दीपरत्नसागर***

[कात्रज]पूना, कपडवंज, प्रभासपाटण आदि स्थानोमे आगममंदिर के प्रेरक, कर्मग्रंथ अभ्यासु, निस्पृह महात्मा

पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य श्री दौलतसागर-सूरीश्वरजी महाराज साहेब

(एवं) अजातशत्रु, स्वाध्याय-रसिक, प्रशांतमूर्ती और अपने गुरु के प्रीतिपात्र

परम पूज्य आचार्य श्री नंदीवर्धनसागर-सूरिजी महाराज साहेब

इस पवित्र श्रुत-कार्यमे दोनो सूरिवरो का स्मरण करते हुए कोटि कोटि वंदना के साथ

.......मुनि दीपरत्नसागर

मूलाङ्का: ५०+२१ — **आवश्यक मूल-सूत्रस्य विषयानुक्रम** — दीप-अनुक्रमा: ९२

मूलांक:	अध्ययनं	पृष्ठांक	मूलांक:	अध्ययनं	पृष्ठांक:	मूलांक:	अध्ययनं	पृष्ठांक:
०१-०२	१-सामायिकं		०३-०९	२-चतुर्विंशतिस्तव:		१०- --	३-वंदनकं	
११-३६	४-प्रतिक्रमणं	००७	३७-६२	५-कायोत्सर्गं	२१३	६३-९२	६-प्रत्याख्यानं	---

आवश्यक सटीकं (संक्षिप्त) विषयानुक्रम

निर्युक्ति / भाष्य	पीठिका ➔➔➔		नि./भा.	अध्ययनं-१- सामायिकं		मूलांक	अध्ययनं-४- प्रतिक्रमणं	
			८९०	नमस्कार-व्याख्या		०११	नमस्कार व सामायिक-सूत्रं	
---	--मंगलं		९१९	अर्हत्, सिद्धादे: निर्युक्ति:		०१३	चत्वार: लोकोतम-मङ्गल एवं	
००१	--ज्ञानस्य पञ्चप्रकारा:		९६०	सिद्धशिला वर्णनं		०१४	--------------शरणभूत पदार्था:	
०१३	--उपक्रम-आदि:		९९३	आचार्य-आदीनाम निक्षेपा:		०१६	संक्षिप्त व ईर्यापथ प्रतिक्रमण	
०८०	--उपोद्घात-निर्युक्ति:		अ०१,मू.१	सामायिक- व्याख्या, स्वरुपम्		०१७	शयन संबंधी प्रतिक्रमणं	
०८१	--वीरआदिजिनवक्तव्यता			उद्देश-वाचना-अनुज्ञा आदि:		०१८	भिक्षाचर्याया: प्रतिक्रमणं	
३४३	--भरतचक्री-कथानकं			सूत्र स्पर्श भङ्गा:		०१९	स्वाध्याय, उपकरणप्रतिलेखन	
भा.०३९	--बलदेव-वासुदेव कथानकं			सामायिक-उपसंहार:		०२०	असंयम आदि ३३-आशातना	०११
५४३	--समवसरण वक्तव्यता		अ० २	अध्ययनं-२- चतुर्विंशतिस्तव:		०३०	सूत्रोच्चारणे मिथ्यादुष्कृतम्	२०९
५८८	--गणधर वक्तव्यता		मूलं-३	सूत्रपाठ:, कीर्तनं, प्रतिज्ञा,		०३५	प्रवचनस्तुति, वंदना, क्षमापना	२१५
६६६	--दशधा सामाचारी		नि०१०७६	--अर्हत: विशेषणं,		---	अध्ययनं-५- कायोत्सर्ग:	२१६
७५४	--निक्षेप, नय, प्रमाणादि		मूलं ४-६	--ऋषभादि नामानि, प्रार्थनादि		०३७	सूत्रपाठ:, कायोत्सर्गस्थापना	२४५
७७८	--निह्नव वक्तव्यता		अ० ३	अध्ययनं-३- वन्दनं		०४८	श्रुतस्तव, सिद्धस्तवादि पाठ:	२६४
७८९	--सामायिकस्वरुपम्		मूलं-१०	--गुरुवन्दन सूत्रपाठ:		---	अध्ययनं-५- प्रत्याख्यानं	२९३
८१२	--गति आदि द्वाराणि			--मितावग्रह प्रवेशयाचना		०६३	सम्यक्त्व व श्रावकव्रतप्रतिज्ञा	३१०
				--क्षमापना, प्रतिक्रमण-आदि:		०८२	विविध प्रत्याख्यानादि:	३८७

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

[आवश्यक- मूलं एवं वृत्ति:] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले "आवश्यक सूत्र" के नामसे सन १९१६ (विक्रम संवत १९७२) में आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब |

इसी प्रत को फिर अपने नामसे 'जिनशासन आराधना ट्रस्ट' की तरफ से आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजीने छपवाई, जिसमे उन्होंने खुदने तो कुछ नहीं किया, मगर इसी प्रत को ऑफसेट करवा के, ऊपर अपना नाम एवं अपनी प्रकाशन संस्था का नाम छाप दिया. यह स्पष्ट रूपसे एक प्रकारसे अदत्तादान ही है, ऐसी अनेक प्रतो के अगले दो पेज पलटकर या नए डालकर उन्होंने अपने नामसे छपवाइ है, इस तरह वो अपने आपको बड़ा आगम संरक्षक साबित करनेकी अनुचित चेष्टा कर चुके है |

इसी आवश्यक-सूत्र की प्रत को ऑफसेट की मदद से दुसरोने भी भी प्रकाशित करवाई है, किसीने पूज्यश्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराजश्री का नाम बड़ी इज्जत के साथ अपनी जगह पे ही रखा है, और खुदका नाम पुन: संपादक रूप से पेश किया है तो किसीने अपना नाम आगे कर दिया है और पूज्य सागरानंदसूरीश्वरजीका नाम गौण कर दिया है या उड़ा दिया है |

✤ हमारा ये प्रयास क्यों?✤ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले, ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है, किन्तु लोगो की पूज्यश्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरुप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया, जिसमे बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर शीर्षस्थानमे आगम का नाम, फिर अध्ययन--मूलसूत्र-निर्युक्ति-भाष्य आदि के नंबर लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा अध्ययन, सूत्र, निर्युक्ति, भाष्य आदि चल रहे है उसका सरलतासे ज्ञान हो शके | बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है, उसके साथ वहाँ 'दीप अनुक्रम' भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके | हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए है, मगर प्रत में गाथा और सूत्रों के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए है और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची या 'गाथा' शब्द लिखा है| हर पृष्ठ के नीचे विशिष्ठ फूटनोट दी है |

शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म०सा० की प्रेरणासे और श्री वर्धमान जैन आगममंदिर, पालिताणा की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' भाग-३१ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते है |

.......मुनि दीपरत्नसागर.

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२६]

त्रिंशद्भिर्मोहनीयस्थानैः, क्रिया पूर्ववत्, सामान्येनैकप्रकृतिकर्म मोहनीयमुच्यते, उक्तं च–'[1]अट्ठविहंपि य कम्मं भणियं मोहोत्ति जं समासेण'मित्यादि, विशेषेण चतुर्थी प्रकृतिर्मोहनीयं तस्य स्थानानि–निमित्तानि भेदाः पर्याया मोहनीयस्थानानि, तान्यभिधित्सुराह सङ्ग्रहणिकारः

'वारिमज्झेवगाहित्ता, तसे पाणे विहिंसई। छाएउ मुहं हत्थेणं, अंतोनायं गलेरवं ॥ १ ॥ सीसावेढेण वेढित्ता, संकिलेसेण मारए। सीसंमि जे य आहंतुं, दुहमारेण हिंसई ॥ २ ॥ बहुजणस्स नेयारं, दीवं ताणं च पाणिणं। साहारणे गिलाणंमि, पहू किच्चं न कुव्वई ॥ ३ ॥ साहू अकम्म धम्माउ, जे भंसेइ उवट्ठिए। णेयाउयस्स मग्गस्स, अवगारंमि वट्टई ॥ ४ ॥ जिणाणं णंतणाणीणं, अवण्णं जो उ भासई। आयरियउवज्झाए, खिंसई मंदबुद्धीए ॥ ५ ॥ तेसिमेव य णाणीणं, संमं नो पडितप्पई। पुणो पुणो अहिगरणं, उप्पाए तित्थभेयए ॥ ६ ॥ जाणं आहंमिए जोए, पउंजइ पुणो पुणो। कामे वमित्ता पत्थेइ, इहऽन्नभविए ईयं ॥ ७ ॥ भिक्खूणं बहुसुएऽहंति, जो भासइऽबहुस्सुए। तहा य अतवस्सी उ, जो तवस्सित्तिऽहं वए ॥ ८ ॥ जायतेएण बहुजणं, अंतोधूमेण हिंसई। अकिच्चमप्पणा काउं, कयमेएण भासई ॥ ९ ॥ नियडुवहिपणिहीए, पलिउंचे साइजोगजुत्ते य। बेई सव्वं मुसं वेयसि, अक्खीणझंझए सया ॥ १० ॥ अद्धाणंमि पवेसित्ता जो, धणं हरइ पाणिणं। वीसंभित्ता उवाएणं, दारे तस्सेव लुब्भई ॥ ११ ॥ अभिक्खमकुमारेहिं, कुमारेऽहंति पासई। एवं अबंभयारीवि, बंभयारित्तिऽहं वए ॥ १२ ॥ जेणेविस्सरियं णीए, वित्ते तस्सेव लुब्भई। तप्पभावुट्ठिए वावि, अंतरायं करेइ से ॥ १३ ॥ सेणावइं पसत्थारं, भत्तारं वावि हिंसई। रट्ठस्स वावि निगमस्स, नायगं सेट्ठिमेव वा ॥ १४ ॥ अपस्समाणो पस्सामि, अहं देवेत्ति वा वए। अवण्णेणं च देवाणं, महामोहं पकुव्वइ ॥ १५ ॥

---

१ अष्टविधमपि च कर्म भणितं मोह इति यत् समासेन।

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

मोहनियस्थानानां ३० भेदानां सविस्तर वर्णनं

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया

॥६६१॥

गाथाः पञ्चदश, आसां व्याख्या—'वारिमज्झे' पाणियमज्झे 'अवगाहित्त'त्ति तिव्वेण मणसा पाएण अक्कमित्ता तसे पाणे-इत्थिमाई विहिंसइ, 'से' तस्स महामोहमुप्पाएमाणे संकिलिट्ठचित्तत्तणओ य भवसयदुहवेयणिज्जं अप्पणो महामोहं पकुव्वइ, एवं सर्वत्र क्रिया वाच्या १, तथा 'छाएउ' ढंकिउं मुहं 'हत्थेणं'ति उवलक्खणमिदमन्नाणि य कप्पाईणि 'अंतोनदं'ति हिदए सदुक्खमारसंतं 'गलेरवं' गलएण अच्चंतं रडति हिंसति २, 'सीसावेढेण' अल्लचंमाइणा कएणाभिक्खणं वेढेत्ता 'संकिलेसेण' तिव्वासुहपरिणामेण 'मारए' हिंसइ जीवंति ३, सीसंमि जे य आहंतुं–मोग्गराइणा विभिंदिय सीसं 'दुहमारेण' महामोहजणगेण हिंसइत्ति ४, बहुजणस्स नेयारंति–पहुं सामित्ति भणियं होइ, दीवं समुद्दमिव वुज्झमाणाणं संसारे आसासथाणभूयं ताणं च–अण्णपाणाइणा ताणकारिणं 'पाणिणं' जीवाणं तं च हिंसइ, से तं विहिंसंते बहुजणसंमोहकारणेण महामोहं पकुव्वइ ५, साहारणे–सामण्णे गिलाणंमि पहू–समत्थो उवएसेण सइकरणेण वा तप्पिउं तहवि 'किच्चं' ओसहजायणाइ महाघोरपरिणामो न कुव्वइ सेऽवि महामोहं पकुव्वइ, सव्वसामण्णो य गिलाणो भवइ, तथाजिनोपदेशाद्, उक्तं च—'[1]किं भंते ! जो गिलाणं पडियरइ से धण्णे उदाहु जे तुमं दंसणेण पडिवज्जइ ?, गोयमा ! जे गिलाणं पडियरइ, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?, गोयमा ! जे गिलाणं पडियरइ से मं दंसणेणं पडिवज्जइ

४ प्रतिक्रमणाध्य० त्रिंशन्मोहनीयस्थानानि

॥६६१॥

---

१ किं भदन्त ! यो ग्लानं प्रतिचरति स धन्य उताहो यो युष्मान् दर्शनेन प्रतिपद्यते ?, गौतम ! यो ग्लानं प्रतिचरति, तत् केनार्थेन भदन्तैव मुच्यते ?, गौतम ! यो ग्लानं प्रतिचरति स मां दर्शनेन प्रतिपद्यते, यो मां दर्शनेन प्रतिपद्यते

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२६]

जे मं दंसणेण पडिवज्जइ से गिलाणं पडियरइत्ति,आणाकरणसारं खु अरहंताणं दंसणं,से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–जे गिलाणं पडियरइ से मं पडिवज्जइ, जे मं पडिवज्जइ से गिलाणं पडिवज्जईत्यादि ६, तहा 'साहुं' तवस्सिं अकम्म–बलात्कारेण धम्माओ–सुयचरित्तभेयाओ जे महामोहपरिणामे भंसेतित्ति–विनिवारेइ उवद्वियं–सामीप्येन स्थितं ७, नेयाउयस्स–नयनशीलस्य मग्गस्स–णाणादिलक्खणस्स दूसणपगारेण अप्पाणं परं च विपरिणामंतो अवगारंमि वट्टइ, णाणे–'काया वया य तेच्चिय' एवमाइणा, दंसणे 'एते जीवाणंता कहमसंखेज्जपएसियंमि लोयंमि ठाएज्जा ?, एवमाइणा, चारित्ते 'जीवबहुत्ताउ कहमहिंसगत्तंति चरणाभाव' इत्यादिना ८, तथा जिणाणं–तित्थगराणं अणंतणाणीणं–केवलीणं अवन्नं–निंदं जो महाघोरपरिणामो 'पभासइ' भणति, कथं ?, ज्ञेयाऽनन्तत्वात्सर्वार्थज्ञानस्याभाव एव, तथा च–'अज्जवि धावति णाणं अज्जवि लोओ अणंतओ होइ । अज्जवि न तुहं कोई पावइ सव्वण्णुयं जीवो ॥ १ ॥' एवमाइ पभासइ, न पुणज्जाणति जहा—'खीणावरणो जुगवं लोगमलोगं जिणो पगासेइ । ववगयघणपडलो इव परिमिययं देसमाइच्चो ॥ १ ॥' ९, आयरियउवज्झाए

---

१ स ग्लानं प्रतिचरतीति, आज्ञाकरणसारमेवार्हतां दर्शनं, तदेतेनार्थेन गौतमैवमुच्यते–यो ग्लानं प्रतिचरति स मां प्रतिपद्यते यो मां प्रतिपद्यते स ग्लानं प्रतिपद्यते (प्रतिचरति) २। काया व्रतानि च तान्येव । ३ एते जीवा अनन्ताः कथमसंख्येयप्रदेशिके लोके तिष्ठेयुः ? । ४ जीवबहुत्वात् कथमहिंसकत्वमिति चरणाभावः ५ अद्यापि धावति ज्ञानमद्यापि लोकोऽनन्तको भवति । अद्यापि न तव कोऽपि प्राप्नोति सर्वज्ञतां जीवः ॥ १ ॥ ६क्षीणावरणो युगपत् लोकमलोकं जिनः प्रकाशयति । व्यपगतघनपटल इव परिमितं देशमादित्यः ॥ १ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥६६२॥

४ प्रतिक्रम-णाध्य० त्रिंशन्मोह-नीयस्था-नानि

पसिद्धे 'खिंसइ' निंदइ जच्चाईहिं, अबहुस्सुया वा एए तहावि अम्हेवि एएसिं तु सगासे किंपि कहंचि अवहारियंति 'मंदबुद्धीए' बालेत्ति भणियं होइ १०,'तेसिमेव'य आयरिओवज्झायाणं परमबंधूणं परमोवगारीणं'णाणीण'न्ति गुणोवलक्खणं गुणेहिं पभाविए पुणो तेसिं चेव कज्जे समुप्पण्णे 'संमं न पडितप्पइ' आहारोवगरणाईहिं णोवजुज्जेइ ११, 'पुणो पुणो'त्ति असइं 'अहिगरणं' जो तिस्साइ 'उप्पाए' कहेइ निवजत्ताइ 'तित्थभेयए' णाणाइमग्गविराहणत्थंति भणियं होइ १२, जाणं आहंमिए जोए–वसीकरणाइलक्खणे पउंजइ 'पुणो पुणो' असइत्ति१३, 'कामे' इच्छामयणभेयभिण्णे 'वमेत्ता' चइऊण, पव्वज्जमब्भुवगम्म 'पत्थेइ' अभिलसइ इहभविए–माणुस्से चेव अण्णभविए–दिवे १४, 'अभिक्खणं २' पुणो २ बहुस्सुएऽहंति जो भासए, बहुस्सुए (बहुस्सुएण) अण्णेण वा पुट्ठो स तुमं बहुस्सुओ ?, आमंति भणइ तुण्हिक्को वा अच्छइ, साहवो चेव बहुस्सुएत्ति भणति १५, अतवस्सी तवस्सित्ति विभासा १६, 'जायतेएण' अग्गिणा बहुजणं घरे छोढुं 'अंतो धूमेण' अब्भिंतरे धूमं काऊण हिंसइ १७, 'अकिच्चं' पाणाइवायाइ अप्पणा काउं कयमेएण भासइ–अण्णस्स उत्थोभं देइ १८, 'नियडुवहिपणिहीए पलिउंचइ' नियडी–अण्णहाकरणलक्खणा माया उवही तं करेइ जेण तं पच्छाइज्जइ अण्णहाकयं पणिही एवंभूत एव (च) रइ, अनेन प्रकारेण 'पलिउंचइ' वंचेइत्ति भणियं होइ १९, साइजोगजुत्ते य–अशुभमनोयोगयुक्तश्च २०, 'बेति' भणइ सबं मुसं वयइ सभाए २१, 'अक्खीणझंझए सया' अक्षीणकलह इत्यर्थः, झंझा–कलहो २२, 'अद्धाणंमि' पंथे 'पवेसेत्ता' नेऊण विस्संभेण जो धणंसुवण्णाई हरइ पाणिणं–अच्छिदइ २३, जीवाणं, विसंभेत्ता–उवाएण केणइ अतुलं पीइं काऊण पुणो दारे—कलत्ते 'तस्सेव' जेण समं पीई कया तत्थ लुब्भइ २४, 'अभिक्खणं' पुणो २ अकुमारे संते कुमारेऽहंति भासइ २५, एवमबं-

॥ ६६२ ॥

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२६]

भयारिंमि विभासा २६, जेणेविस्सरियं नीए–ऐश्वर्यं प्रापित इत्यर्थः, 'वित्ते' धणे तस्सेव संतिए लुब्भइ २७, तप्पभावुट्ठिए वावि–लोगसंमयत्तणं पत्ते तस्सेव केणइ पगारेण अंतरायं करेइ २८ सेणावइं रायाणुन्नायं वा चाउरंतसामिं पसत्थारं—लेहारियमाइ भत्तारं वा विहिंसइ रट्ठस्स वावि निगमस्स जहासंखं नायगं सेट्ठिमेव वा, निगमो–वणिसंघाओ २९, अप्पस्समाणो माइट्ठाणेण पासामि अहं देवत्ति वा वए ३०, 'अवन्नेणं च देवाणं' जह किं तेहिं कामगद्दहेहिं जे अम्हं न उवकरेंति, महामोहं पकुव्वइ कलुसियचित्तत्तणओ ३१, अयमधिकृतगाथानामर्थः। एकत्रिंशद्भिः सिद्धादिगुणैः, क्रिया पूर्ववत्, सितं ध्मातमस्येति सिद्धः आदौ गुणा आदिगुणाः सिद्धस्यादिगुणाः सिद्धादिगुणाः, युगपद्भाविनो न क्रमभाविन इत्यर्थः, तानेवोपदर्शयन्नाह सङ्ग्रहणिकारः—

पडिसेहेण संठाणवण्णगंधरसफासवेए य। पणपणदुपणट्ठतिहा इगतीसमकायसंगरुहा ॥ १ ॥

अस्या व्याख्या—प्रतिषेधेन संस्थानवर्णगन्धरसस्पर्शवेदानां, कियद्भेदानां ?–पञ्चपञ्चद्विपञ्चाष्टत्रिभेदानामिति, किम् ?–एगत्रिंशत्सिद्धादिगुणा भवन्ति, 'अकायसंगरुह'त्ति अकायः–अशरीरः असङ्गः–सङ्गवर्जितः अरुहः–अजन्मा, एभिः सहैकत्रिंशद्भवन्ति, तथा चोक्तं–"से ण दीहे ण हस्से ण वट्टे न तंसे न चउरंसे न परिमंडले ५ न किण्हे न नीले न लोहिए न हालिद्दे न सुक्किले ५ न सुब्भिगंधे न दुब्भिगंधे २ न तित्ते न कडुए न कसाए न अंबिले न महुरे ५ न कक्खडे न मउए

१ स न दीर्घः न ह्रस्वो न वृत्तो न त्र्यस्रो न चतुरस्रो न परिमण्डलो न कृष्णो न नीलो न लोहितो न हारिद्रो न शुक्लो न सुरभिर्न दुर्गन्धो न तिक्तो न कटुको न कषायो नाम्लो न मधुरो न कर्कशो न मृदुर्न.

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

सिद्धादिनां ३१ भेदानां वर्णनं

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥६६२॥

न गरुए न लहुए न सीए न उण्हे न निद्धे न लुक्खे न काए ण संगे न रुहे न इत्थी न पुरिसे न नपुंसए," प्रकारान्तरेण सिद्धादिगुणान् प्रदर्शयन्नाह—

अहवा कंमे णव दरिसणंमि चत्तारि आउए पंच । आइम अंते सेसे दोदो खीणभिलावेण इगतीसं ॥ १ ॥

व्याख्या—'अथवे'ति व्याख्यान्तरप्रदर्शनार्थः, 'कर्मणि' कर्मविषया क्षीणाभिलापेनैकत्रिंशद्गुणा भवन्ति, तत्र नव दर्शनावरणीये, नवभेदा इति–क्षीणचक्षुर्दर्शनावरणः ४ क्षीणनिद्रः ५, चत्वार आयुष्के–क्षीणनरकायुष्कः ४ 'पंच आइमे'त्ति आद्ये ज्ञानावरणीयाख्ये कर्मणि पञ्च–क्षीणाभिनिबोधिकज्ञानावरणः ५ 'अंते'त्ति अन्त्ये–अन्तराये कर्मणि पञ्चैव क्षीणदानान्तरायः ५ शेषकर्मणि–वेदनीयमोहनीयनामगोत्रलक्षणे द्वौ द्वौ भेदौ भवतः, क्षीणसातावेदनीयः क्षीणासातावेदनीयः क्षीणदर्शनमोहनीयः क्षीणचारित्रमोहनीयः क्षीणाशुभनाम क्षीणशुभनाम क्षीणनीचैर्गोत्रः क्षीणोच्चैर्गोत्र इति गाथार्थः ॥

द्वात्रिंशद्भिर्योगसङ्ग्रहैः, क्रिया पूर्ववत्, इह युज्यन्त इति योगाः–मनोवाक्कायव्यापाराः, ते चाशुभप्रतिक्रमणाधिकारात्प्रशस्ता एव गृह्यन्ते, तेषां शिष्याचार्यगतानामालोचनानिरपलापादिना प्रकारेण सङ्ग्रहणानि योगसङ्ग्रहाः प्रशस्तयोगसङ्ग्रहनिमित्तत्वादालोचनादय एव तथोच्यन्ते, ते च द्वात्रिंशद्भवन्ति, तदुपदर्शनायाह निर्युक्तिकारः—

आलोयणा निरवेलावे, आवईसु दढधम्मया । अणिस्सिओवहाणे यँ, सिक्खा णिप्पडिकम्मयाँ ॥ १२७४ ॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० ३१ सिद्धादिगुणाः ॥६६३॥

१ गुरुर्न लघुर्न शीतो नोष्णो न स्निग्धो न रूक्षो न कायवान् न सङ्गवान् न रुहो न स्त्री न पुरुषो न नपुंसकं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

योगसंग्रहानां ३२ भेदानां विस्तृत-वर्णनं कथानक-सहितं

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२६]

अण्णायँया अलोहे य, तितिक्खा अज्जवे सुई । सम्मदिट्ठी समाही य, आयारे विणओवए ॥ १२७५ ॥
धिई मई य संवेगे, पणिही सुविहि संवरे । अत्तदोसोवसंहारो, सव्वकामविरत्तिया ॥ १२७६ ॥
पच्चक्खाणो विउस्सग्गे, अप्पमाए लवालवे । झाणसंवरजोगे य, उदए मारणंतिए ॥ १२७७ ॥
संगाणं च परिण्णा, पायच्छित्तकरणे इय । आराहणा य मरणंते, बत्तीसं जोगसंगहा ॥ १२७८ ॥

आसां व्याख्या—‘आलोयण’त्ति प्रशस्तमोक्षसाधकयोगसङ्ग्रहाय शिष्येणाऽऽचार्याय सम्यगालोचना दातव्या१,‘निरवलावे’त्ति आचार्योऽपि प्रशस्तमोक्षसाधकयोगसङ्ग्रहायैव दत्तायामालोचनायां निरपलापः स्यात्, नान्यस्मै कथयेदित्यर्थः, एकारान्तश्च प्राकृते प्रथमान्तो भवतीत्यसकृदावेदितं यथा–‘कयरे आगच्छइ दित्तरूवे’इत्यादि २,‘आवतीसु दढधम्मत’त्ति तथा योगसङ्ग्रहायैव सर्वेण साधुनाऽऽपत्सु द्रव्यादिभेदासु दृढधर्मता कार्या,आपत्सु सुतरां दृढधर्मेण भवितव्यमित्यर्थः,३, ‘अणिस्सिओवहाणे’त्ति प्रशस्तयोगसङ्ग्रहायैवानिश्रितोपधानं च कार्यम्, अथवाऽनिश्रित उपधाने च यत्नः कार्यः, उपदधातीत्युपधानं–तपः न निश्रितमनिश्रितम्–ऐहिकामुष्मिकापेक्षाविकलमित्यर्थः, अनिश्रितं च तदुपधानं चेति समासः ४, ‘सिक्ख’त्ति प्रशस्तयोगसङ्ग्रहायैव शिक्षाऽऽसेवितव्या, सा च द्विप्रकारा भवति–ग्रहणशिक्षाऽऽसेवनाशिक्षा च ५, ‘निप्पडिकम्मय’त्ति प्रशस्तयोगसङ्ग्रहायैव निष्प्रतिकर्मशरीरता सेवनीया, न पुनर्नागदत्तवदन्यथा वर्तितव्यमिति ६ प्रथमगाथासमासार्थः ॥ ‘अन्नायय’त्ति तपस्यज्ञातता कार्या, यथाऽन्यो न जानाति तथा तपः कार्यं, प्रशस्तयोगाः सङ्गृहीता भवन्तीत्यतत् सर्वत्र योज्यं ७,‘अलोहे’त्ति अलोभश्च कार्यः, अथवाऽलोभे यत्नः कार्यः ८, ‘तितिक्ख’त्ति तितिक्षा कार्या, परीषहादि-

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥६६४॥

जय इत्यर्थः ९,'अज्जवे'त्ति ऋजुभावः–आर्जवं तच्च कर्तव्यं १०,'सुइ'त्ति शुचिना भवितव्यं, संयमवतेत्यर्थः ११, 'सम्मद्दिट्ठि'त्ति सम्यग्–अविपरीता दृष्टिः कार्या, सम्यग्दर्शनशुद्धेरित्यर्थः १२, समाधिश्च कार्यः, समाधानं समाधिः–चेतसः स्वास्थ्यं १३, 'आचारे विणओवए'त्ति द्वारद्वयम्, आचारोपगः स्यात्, न मायां कुर्यादित्यर्थः १४, तथा विनयोपगः स्यात्, न मानं कुर्यादित्यर्थः १५, द्वितीयगाथासमासार्थः ॥ 'धिई मई य'त्ति धृतिर्मतिश्च कार्या,धृतिप्रधाना मतिरित्यर्थः १६,'संवेगे'त्ति संवेगः कार्यः १७,'पणिहि'त्ति प्रणिधिस्त्याज्या, माया न कार्येत्यर्थः १८,'सुविहि'त्ति सुविधिः कार्यः १९, 'संवरे'त्ति संवरः कार्यः, न तु न कार्य इति व्यतिरेकोदाहरणमत्र भावि २०,'अत्तदोसोवसंहारे'त्ति आत्मदोषोपसंहारः कार्यः २१, 'सव्वकामविरत्तय'त्ति सर्वकामविरक्तता भावनीया २२, इति तृतीयगाथासमासार्थः ॥ 'पच्चक्खाणे'त्ति मूलगुणउत्तरगुणविषयं प्रत्याख्यानं कार्यमिति द्वारद्वयं २३-२४,'विउस्सग्गे'त्ति विविध उत्सर्गो व्युत्सर्गः स च कार्य इति द्रव्यभावभेदभिन्नः, २५'अप्पमाए'त्ति न प्रमादोऽप्रमादः, अप्रमादः कार्यः २६, 'लवालवे'त्ति कालोपलक्षणं क्षणे २ सामाचार्यनुष्ठानं कार्यं २७, 'झाणसंवरजोगे'त्ति ध्यानसंवरयोगश्च कार्यः, ध्यानमेव संवरयोगः, २८,'उदये मारणंतिए'त्ति वेदनोदये मारणान्तिकेऽपि न क्षोभः कार्य इति २९ चतुर्थगाथासमासार्थः ॥ 'संगाणं च परिण्ण'त्ति सङ्गानां च ज्ञपरिज्ञाप्रत्याख्यानपरिज्ञाभावेन परिज्ञा कार्या ३०, 'पायच्छित्तकरणे इय' प्रायश्चित्तकरणं च कार्यं ३१ 'आराहणा य मरणंति'त्ति आराधना च मरणान्ते कार्या, मरणकाल इत्यर्थः, ३२ एते द्वात्रिंशद् योगसङ्ग्रहा इति पञ्चमगाथासमासार्थः ॥ ॥ आद्यद्वाराभिधित्सयाऽऽह—

उज्जेणि अट्टणे खलु सीहगिरिसोपारए य पुहइवई । मच्छियमल्ले दूरल्लकूविए फलिहमल्ले य ॥ १२७९ ॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० द्वात्रिंशद्योगसंग्रहाः

॥६६४॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

उज्जेणित्ति णयरी, तीए जियसत्तूरण्णो अट्टणो मल्लो अतीव बलवं, सोपारए पट्टणे पुहइवई राया सिंहगिरी नाम मल्लवल्लहो, पतिवरिसमट्टणजओहामिएण अणेण मच्छियमल्ले कए जिएण अट्टणेण भरुगच्छाहरणीए दूरुल्लकूवियाए गामे फलिहमल्ले कएत्ति । एवमक्षरगमनिकाऽन्यासामपि स्वबुद्ध्या कार्या, कथानकान्येव कथयिष्यामः, अधिकृतगाथाप्रतिबद्धकथानकमपि विनेयजनहितायोच्यते–उज्जेणीणयरीए जियसत्तू राया, तस्स अट्टणो मल्लो सव्वरज्जेसु अजेओ, इओ य समुद्दतीरे सोपारयं णयरं, तत्थ सीहगिरी राया, सो य मल्लाणं जो जिणइ तस्स बहुं दव्वं देइ, सो य अट्टणो तत्थ गंतूण वरिसे २ पडायं गिण्हइ, राया चिंतेइ–एस अन्नाओ रज्जाओ आगंतूण पडायं हरइ, एस मम ओहावणत्ति पडिमल्लं मग्गइ, तेण एगो मच्छिओ दिट्ठो वसं पिबंतो, बलं च से विन्नासियं, नाऊण पोसिओ, पुणरवि अट्टणो आगओ, सो य किर मल्लो होहितित्ति अणागयं चेव सयाओ णयराओ अप्पणो पत्थयणस्स अवलं भरिऊण अव्वाबाहेणं एइ,

१ उज्जयिनी नगरी, तस्यां जितशत्रुराज्ञोऽट्टणो मल्लोऽतीव बलवान्, सोपारके पत्तने पृथ्वीपती राजा सिंहगिरिर्नाम मल्लवल्लभः, प्रतिवर्षमट्टनजयापभ्राजितेनानेन मात्स्यिकमल्ले कृते जितेनाट्टनेन भृगुकच्छहरण्यां दूरीयकूपिकाग्रामे कार्पासिकमल्लः कृत इति । उज्जयिनीनगर्यां जितशत्रू राजा, तस्याट्टनो मल्लः सर्वराज्येषु अजेयः, इतश्च समुद्रतीरे सोपारकं नगरं, तत्र सिंहगिरी राजा, स च मल्लानां यो जयति तस्मै बहुद्रव्यं ददाति, स चाट्टनस्तत्र गत्वा वर्षे २ पताकां हरति (गृह्णाति), राजा चिन्तयति–एषोऽन्यस्माद् राज्यादागत्य पताकां हरति, एषा ममापभ्राजनेति प्रतिमल्लं मार्गयति, तेनैको मात्स्यिको दृष्टो वसां पिबन्, बलं च तस्य परीक्षितं, ज्ञात्वा पोषितः, पुनरप्यट्टन आगतः, स च किल मल्लो भविष्यतीति अनागत एव स्वस्मात् नगरात् आत्मनः पथ्यदनस्य गोणीं भृत्वाऽव्याबाधेनायाति,

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥६६५॥

संपत्तो य सोपारयं, जुद्धे पराजिओ मच्छियमल्लेणं, गओ य सयं आवासं चिंतेइ, एयस्स वुड्ढी तरुणयस्स मम हाणी, अण्णं मल्लं मग्गइ, सुणइ य–सुरट्ठाए अत्थित्ति, एएण भरुयच्छाहरणीए गामे दूरुल्लकूवियाए करिसगो दिट्ठो–एगेण हत्थेण हलं वाहेइ एगेण फलहिओ उप्पाडेइ, तं च दट्ठूण ठिओ पेच्छामि से आहारंति, आवल्ला मुक्का, भज्जा य से भत्तं गहाय आगया, पत्थिया, कूरस्स उज्झमज्जीए घडओ पेच्छइ, जिमिओ सण्णाभूमि गओ, तत्थवि पेच्छइ सवं वत्तियं, वेगालिओ वसहिं तस्स य घरे मग्गइ, दिन्ना, ठिओ, संकहाए पुच्छइ,–का जीविया ?, तेण कहिए भणइ–अहं अट्टणो तुमं ईसरं करेमित्ति, तीसे भज्जाए से कप्पासमोल्लं दिन्नं, अवल्ला य, सा सवलद्धा उज्जेणिं गया,[1] वमणविरेयणाणि कयाणि पोसिओ निजुद्धं च सिक्खाविओ, पुणरवि महिमाकाले तेणेव विहिणा आगओ, पढमदिवसे फलहियमल्लो मच्छियमल्लो य जुद्धे एगोवि न पराजिओ, राया बिइयदिवसे होहितित्ति अइगओ, इमेवि सए सए आलए गया,

४ प्रतिक्रमणाध्य० १ आलोचायोग०अट्टनमल्लोदा० ॥६६५॥

---

१ संप्राप्तश्च सोपारकं, युद्धे पराजितो मात्स्यिकमल्लेन, गतश्च स्वकमावासं चिन्तयति, एतस्य वृद्धिस्तरुणस्य मम हानिः, अन्यं मल्लं मार्गयति, शृणोति च–सुराष्ट्रायामस्तीति, एतेन भृगुकच्छहरिण्यां ग्रामे दूरीयकूपिकायां कर्षको दृष्टः–एकेन हस्तेन हलं वाहयति एकेन कर्पासमुत्पाटयति, तं च दृष्ट्वा स्थितः पश्यामि अस्याहारमिति बलीवर्दौ मुक्तौ, भार्या च तस्य भक्तं गृहीत्वाऽऽगता, प्रस्थिता, उद्घाटने कूरस्य घटं प्रेक्षते, जिमितः संज्ञाभूमिं गतः, तत्रापिः प्रेक्षते सर्वं वर्त्तितं, वैकालिको वसतिं तस्यैव गृहे मार्गयति, दत्ता, स्थितः, संकथायां पृच्छति–का जीविका ?, तेन कथिते भणति–अहमट्टनस्वामीश्वरं करोमीति, तस्य भार्यायै तेन कर्पासमूल्यं दत्तं बलीवर्दौ च, सा सबलीवर्दोज्जयिनीं गता (साऽऽश्वस्ता, तौ उज्जयिनीं गतौ), वमनविरेचनानि कृतानि, पोषितो नियुद्धं च शिक्षितः, पुनरपि महिमकाले तेनैव विधिनाऽऽगतः, प्रथमदिवसे कर्पासमल्लो मात्स्यिकमल्लश्च युद्धे एकोऽपि न पराजितः, द्वितीयदिवसे भविष्यतीति राजाऽतिगतः, इमावपि स्वक आलये गतौ,

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

अट्टणेण फलहियमल्लो भणिओ–कहेहि पुत्ता ! जं ते दुक्खावियं, तेण कहियं, मक्खित्ताऽक्खेवेणं पुणण्णवीकयं, मच्छियस्सवि रण्णा संमद्दगा पेसिया, भणइ–अहं तस्स पिउपि ण बिभेमि, को सो वराओ ?, बितियदिवसे समजुज्झा, ततियदिवसे अंबियपहारो वइसाहं ठिओ मच्छिओ, अट्टणेण भणिओ फलिहित्ति, तेण फलहिग्गाहेण गहिओ सीसे, तं कुंडियनालगंपिव एगंते पडियं, सक्कारिओ गओ उज्जेणिं, पंचलक्खणाण भोगाण आभागी जाओ, इयरो मओ, एवं जहा पडागा तहा आराहणपडागा, जहा अट्टणो तहा आयरिओ, जहा मल्लो तहा साहू, पहारा अवराहा, जो ते गुरुणो आलोएइ सो निस्सल्लो निव्वाणपडागं तेलोक्करंगमज्झे हरइ, एवं आलोयणं प्रति योगसङ्ग्रहो भवति । एए सीस गुणा, निरवलावस्स जो अन्नस्स न कहेइ एरिसमेतेण पडिसेवियंति, एत्थ उदाहरणगाहा—

दंतपुरदन्तचक्के सच्चवदी दोहले य वणयरए । धणमित्त धणसिरी य पउमसिरी चेव दढमित्तो ॥ १२८० ॥

---

१ अट्टनेन कर्पासमल्लो भणितः–कथय पुत्र ! यत्ते दुःखितं, तेन कथितं, म्रक्षित्वा अक्षेपेण पुनर्नवीकृतं, मात्स्यिकायापि राज्ञा संमर्दकाः प्रेषिताः, भणति–अहं तस्य पितुरपि न बिभेमि, कः स वराकः, द्वितीयदिवसे समयुद्धौ तृतीयदिवसे प्रहारार्त्तो वैशाखं स्थितो मात्स्यिकः, अट्टनेन भणितः–फलिहीति, तेन फलहिग्राहेण गृहीतः शीर्षे, तत् कुण्डिकानालमिवैकान्ते पतितं, सत्कारितो गत उज्जयिनीं, पञ्चलक्षणानां भोगानामाभागीजातः, इतरो मृतः, एवं यथा पताका तथाऽऽराधनापताका, यथाऽट्टनस्तथा आचार्यः, यथा मल्लस्तथा साधुः, प्रहारा अपराधाः, यतस्तान् गुरूणामालोचयति स निश्शल्यो निर्वाणपताकां त्रैलोक्यरङ्गमध्ये हरति, एवमालोचनां प्रति योगसंग्रहो भवति । एते शिष्यगुणाः, निरपलापस्य–योऽन्यस्मै न कथयति–ईदृशमेतेन प्रतिसेवितमिति, अत्रोदाहरणगाथा ।

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥६६६॥

अस्या व्याख्या—कथानकादवसेया, तच्चेदं–दंतपुरे णयरे दंतचक्को राया, सच्चवई देवी, तीसे दोहलो–कहं दंतमए पासाए अभिरमिज्जइ ?, रायाए पुच्छियं, दंतनिमित्तं घोसावियं रण्णा जहा–उचियं मोल्लं देमि, जो न देइ तस्स राया सरीरनिग्गहं करेइ, तत्थेव णयरे धणमित्तो वाणियओ, तस्स दो भारियाओ, धणसिरी महंती पउमसिरी तु डहरिया पीययरी यत्ति, अण्णया सवत्तीणं भंडणं, धणसिरी भणइ–किं तुमं एवं गव्विया ? किं तुज्झ महाओ अहियं, जहा सच्चवईए तहा ते किं पासाओ कीरेज्जा ?, सा भणइ–जइ न कीरइ तो अहं नेवत्ति उवगरए (वरए) बारं बंधित्ता ठिया, वाणियओ आगओ पुच्छइ–कहिं पउमसिरी ?, दासीहिं कहियं, तत्थेव अइयओ, पसाएइ, न पसीयइत्ति, जइ नत्थि न जीवामि, तस्स मित्तो दढमित्तो नाम, सो आगओ, तेण पुच्छियं, सव्वं कहेइ, भणइ–कीरउ, मा इमाए मरंतीए तुमंपि मरिज्जासि, तुमंमि मरंते अहं, रायाए य घोसावियं, तो पच्छन्नं कायव्वं ताहे सो दढमित्तो पुलिंदगपाउग्गाणि

४ प्रतिक्रमणाध्य० २निरपलापयोग० दृढमित्रोदा०

---

१ दन्तपुरे नगरे दन्तचक्रो राजा, सत्यवती देवी, तस्या दौहृदः कथं दन्तमये प्रासादेऽभिरमे, राज्ञा पृष्टं, दन्तनिमित्तं घोषितं राज्ञा यथा उचितं मूल्यं ददामि, यो न दास्यति तस्य राजा शरीरनिग्रहं करोति, तत्रैव नगरे धनमित्रो वणिक्, तस्य द्वे भार्ये, धनश्रीर्महती पद्मश्रीस्तु लघ्वी प्रियतरा चेति, अन्यदा सपत्न्योर्भण्डनं, धनश्रीर्भणति–किं त्वमेवं गर्विता ? किं तव मत् अधिकं?, यथा सत्यवत्यास्तव किं प्रासादः क्रियते ?, सा भणति–यदि न क्रियते तदाऽहं नैवेत्यपवरके द्वारं बद्ध्वा स्थिता, वणिगागतः पृच्छति–क्व पद्मश्रीः ?, दासीभिः कथितं, तत्रैवाभिगतः, प्रसादयति, न प्रसीदतीति, यदि नास्ति न जीवामि, तस्य मित्रं दृढमित्रो नाम, स आगतः, तेन पृष्टं, सर्वं कथयति, भणति–क्रियतां, माऽस्यां म्रियमाणायां त्वमपि मृथाः, त्वयि म्रियमाणेऽहं, राज्ञा च घोषितं, ततः प्रच्छन्नं कर्त्तव्यं, तदा स दृढमित्रः पुलिन्द्रप्रायोग्याणि

॥६६६॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२६]

मणीयमलत्तगं कंकणं च गहाय अडविं गओ, दंता लद्धा पुंजो कओ, तेण तणपिंडिगाण मज्झे बंधित्ता सगडं भरेत्ता आणीया, णयरे पवेसिज्जंतेसु वसहेण तणपिंडगा कड्डिया, तओ खडत्ति दंतो पडिओ, नगरगोत्तिएहिं दिट्ठो गहिओ रायाए उवणीओ, बज्झो णीणिज्जइ, धणमित्तो सोऊण आगओ, रायाए पायवडिओ विन्नवेइ, जहा एए मए आणाविया, सो पुच्छिओ भणइ–अहमेयं न याणामि कोत्ति, एवं ते अवरोप्परं भणंति, रायाए सवहसाविया पुच्छिया, अभओ दिण्णो, परिकहियं, पूएत्ता विसज्जिया, एवं निरवलावेण होयवं आयरिएणं। बितिओ–एगेण एगस्स हत्थे भाणं वा किंचि पणामियं, अंतरा पडियं, तत्थ भाणियवं–मम दोसो इयरेणावि ममंति। निरवलावेत्ति गयं २। इयाणिं आवईसु दढधम्मत्तणं कायवं, एवं जोगा संगहिया भवंति, ताओ य आवइओ चत्तारि, तं०–दवावई ४, उदाहरणगाहा—

उज्जेणीए धणवसु अणगारे धम्मघोस चंपाए। अडवीए सत्थविब्भम वोसिरणं सिज्झणा चेव ॥ १२८१ ॥

---

१ मणिका अलक्तकं कङ्कणानि च गृहीत्वाऽटवीं गतः, दन्ता लब्धाः पुञ्जः कृतः, तेन तृणपिण्डीनां मध्ये बद्ध्वा शकटं भृत्वाऽऽनीताः, नगरे प्रविश्यमानेषु वृषभेण तृणपिण्ड्यः कृष्टाः, ततः खटदिति दन्तः पतितः, नगरगुप्तिकैर्दृष्टो गृहीतश्च, राज्ञ उपनीतः, वध्यो निष्काश्यते, धनमित्रः श्रुत्वाऽऽगतः, राज्ञः पादयोः पतितो विज्ञपयति–यथा मयैते आनायिताः, स पृष्टो भणति–अहमेनं न जानामि क इति, एवं तौ परस्परं भणतः, राज्ञा शपथशप्तौ पृष्टौ, अभयं दत्तं, परिकथितं, पूजयित्वा विसृष्टौ। एवं निरपलापेन भवितव्यं आचार्येण। द्वितीयः–एकेनैकस्य हस्ते भाजनं वा किञ्चिद्दत्तं, अन्तरा पतितं, तत्र भणितव्यं–मम दोषः, इतरेणापि ममेति। निरपलापमिति गतम् २। इदानीमापत्सु दृढधर्मता कर्त्तव्या, एवं योगाः संगृहीता भवन्ति, ताश्चापदश्चतस्रः, तद्यथा–द्रव्यापद् ४,
२ उदाहरणगाथा–

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥६६७॥

अस्या व्याख्या कथानकादवसेया, तच्चेदं–उज्जेणी णयरी, तत्थ वसू वाणियओ, सो चंपं जातुकामो उग्घोसणं कारेइ जह [नाए] धन्नो, एयं अणुन्नवेइ धम्मघोसो नामणगारो, तेसु दूरं अडविमइगएसु पुलिंदेहिं विलोलिओ सत्थो इओ तइओ नट्ठो, सो अणगारो अण्णेण लोएण समं अडविं पविट्ठो, ते मूलाणि खायंति पाणियं च पियंति, सो निमंतिज्जइ, नेच्छइ आहारज्जाए, एगत्थ सिलायले भत्तं पच्चक्खायं, अदीणस्स अहियासेमाणस्स केवलणाणमुप्पण्णं सिद्धो, दढधम्मयाए जोगा संगहिया, एसा दव्वावई, खेत्तावई खेत्ताणं असईए कालावई ओमोदरियाइ, भावावईए उदाहरणगाहा—

महुराए जउण राया जउणावंकेण दंडमणगारे । वहणं च कालकरणं सक्कागमणं च पव्वज्जा ॥ १२८२ ॥

व्याख्या कथानकादवसेया, तच्चेदं–महुराए णयरीए जउणो राया, जउणावंकं उज्जाणं अवरेण, तत्थ जउणाए कोप्परो दिण्णो, तत्थ दंडो अणगारो आयावेइ, सो रायाए निंतेण दिट्ठो, तेण रोसेण असिणा सीसं छिन्नं, अन्ने भणंति–फलेण आहओ, सव्वेहिंवि मणुस्सेहिं पत्थररासी कओ, कोवोदयं पइ तस्स आवई, कालगओ सिद्धो, देवागमणं महिमाकरणं

१ उज्जयिनी नगरी, तत्र वसुर्वणिक्, स चम्पां यातुकाम उद्घोषणां कारयति, यथा धन्यः, एतमनुज्ञापयति धर्मघोषो नामानगारः, तेषु दूरमटवीमतिगतेषु पुलिन्द्रैर्विलोलितः सार्थः इतस्ततो नष्टः, सोऽनगारोऽन्येन लोकेन सममटवीं प्रविष्टः, ते मूलानि खादन्ति पानीयं च पिबन्ति, स निमन्त्र्यते, नेच्छति आहारजातं, एकत्र शिलातले भक्तं प्रत्याख्यातं, अदीनस्याध्यासीनस्य केवलज्ञानमुत्पन्नं सिद्धः, दृढधर्मतया योगाः संगृहीताः, एषा द्रव्यापद्, क्षेत्रापत् क्षेत्राणामसति कालापत् अवमोदरिकादि भावापद्युदाहरणगाथा । २ मथुरायां नगर्यां यमुनो राजा यमुनावक्रमुद्यानमपरस्यां, तत्र यमुनायां स्कन्धावारो दत्त, तत्र दण्डोऽनगार आतापयति, स राज्ञा निर्गच्छता दृष्टः, तेन रोषेणासिना शीर्षं छिन्नं, अन्ये भणन्ति–बीजपूरेणाहतः, सर्वैरपि मनुष्यैः प्रस्तरराशिः कृतः, कोपोदयं प्रति तस्य आपत्, कालगतः सिद्धः, देवागमनं महिमकरणं

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० ३ आपत्सु दृढधर्मतायां धर्मघो० षदण्डो दा.

॥६६७॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२६]

संक्कागमणं पालएणं विमाणेण, तस्सवि य रण्णो अधिती जाया, वज्जेण भेसिओ सक्केण–जइ पव्वइसितो मुच्चसि, पव्वइओ, थेराण अंतिए अभिग्गहं गेण्हइ–जइ भिक्खागओ संभरामि ण जेमेमि, जइ दरजिमिओ ता सेसगं विगिंचामि, एवं तेण किर भगवया एगमवि दिवसं नाऽऽहारियं, तस्सवि दव्वावई, दंडस्स भावावई, आवईसु दढधम्मतत्ति गयं ३ । इयाणिं अणिस्सिओवहाणेत्ति, न निश्रितमनिश्रितं, द्रव्योपधानं उपधानकमेव भावोपधानं तपः, सो किर अणिस्सिओ कायव्वो इह परत्थ य, जहा केण कओ ?, एत्थोदाहरणगाहा—

पाडलिपुत्त महागिरि अज्जसुहत्थी य सेट्ठि वसुभूती । वइदिस उज्जेणीए जियपडिमा एलकच्छं च ॥ १२८३ ॥

ईमीए वक्खाणं–अज्जथूलभद्दस्स दो सीसा–अज्जमहागिरी अज्जसुहत्थी य, महागिरी अज्जसुहत्थिस्स उवज्झाया, महागिरी गणं सुहत्थिस्स दाऊण वोच्छिण्णो जिणकप्पोत्ति, तहवि अपडिबद्धया होउत्ति गच्छपडिबद्धा जिणकप्पपरिकम्मं

१ शक्रागमनं पालकेन विमानेन, तस्यापि च राज्ञोऽधृतिर्जाता, वज्रेण भापितः शक्रेण–यदि प्रव्रजसि तर्हि मुच्यसे, प्रव्रजितः, स्थविराणामन्तिकेऽभिग्रहं गृह्णाति–यदि भिक्षागतः स्मरामि न जेमामि, यदि अर्धजिमितस्तदा शेषं त्यजामि, एवं तेन किल भगवतैकस्मिन्नपि दिवसे नाहृतं, तस्यापि द्रव्यापत्, दण्डस्य भावापत्, आपत्सु दृढधर्मेतेति गतं ३ । इदानीमनिश्रितोपधानमिति, तत् किलानिश्रितं कर्त्तव्यं इह परत्र च, यथा केन कृतं ?, अत्रोदाहरणगाथा–
२ अस्या व्याख्यानं–आर्यस्थूलभद्रस्य द्वौ शिष्यौ–आर्यमहागिरिरार्यसुहस्ती च, महागिरिरार्यसुहस्तिन उपाध्यायः, महागिरिर्गणं सुहस्तिने दत्वा व्युच्छिन्नो जिनकल्प इति, तथाप्यप्रतिबद्धता भवत्विति गच्छप्रतिबद्धाः जिनकल्पपरिकर्मणां

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥६६८॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० ४अनिश्रितपसिआर्यमहागिर्युदा ॥६६८॥

करेंति, ते विहरंता पाडलिपुत्तं गया, तत्थ वसुभूती सेट्ठी, तेसिं अंतियं धम्मं सोच्चा सावगो जाओ, सो अण्णया भणइ अज्जसुहत्थिं–भयवं! मज्झ दिन्नो संसारनित्थरणोवाओ, मए सयणस्स परिकहियं तं न तहा लग्गई, तुब्भेवि ता अणभिजोएणं गंतूणं कहेहित्ति, सो गंतूण पकहिओ, तत्थ य महागिरी पविट्ठो, ते दट्ठूण सहसा उट्ठिओ, वसुभूती भणइ–तुब्भवि अन्ने आयरिया?, ताहे सुहत्थी तेसिं गुणसंथवं करेइ, जहा–जिणकप्पो अतीतो तहावि एए एवं परिकम्मं करेंति, एवं तेसिं चिरं कहित्ता अणुव्वयाणि य दाऊण गओ सुहत्थी, तेण वसुभूइणा जेमित्ता ते भणिया–जइ एरिसो साहू एज्ज तो से तुब्भे उज्झंतगाणि एवं करेज्ज, एवं दिण्णे महाफलं भविस्सइ, बीयदिवसे महागिरी भिक्खस्स पविट्ठा, तं अपुव्वकरणं दट्ठूण चिंतेइ–दव्वओ ४, णायं जहा णाओ अहंति तहेव अब्भमिते नियत्ता भणंति–अज्जो! अणेसणा कया, केणं? तुमे जेणसि कल्लं अब्भुट्ठिओ, दोवि जणा वतिदिसं गया, तत्थ जियपडिमं वंदित्ता अज्जमहागिरी एलकच्छं गया

१ कुर्वन्ति, ते (सुहस्तिनः) विहरन्तः पाटलीपुत्रं गताः, तत्र वसुभूतिः श्रेष्ठी, तेषामन्तिके धर्मं श्रुत्वा श्रावको जातः, सोऽन्यदा भणति आर्यसुहस्तिनं–भगवन्! मह्यं दत्तः संसारनिस्तरणोपायः, मया स्वजनाय परिकथितं तन्न तथा लगति, यूयमपि तत् अनभियोगेन गत्वा कथयतेति, स गत्वा प्रकथितः, तत्र च महागिरिः प्रविष्टः, तान् दृष्ट्वा सहसोत्थितः, वसुभूतिर्भणति–युष्माकमप्यन्ये आचार्याः?, तदा सुहस्तिनस्तेषां गुणसंस्तवं कुर्वन्ति, यथा जिनकल्पोऽतीतस्तथाप्येते एवं परिकर्म कुर्वन्ति, एवं तेभ्यश्चिरं कथयित्वाऽनुव्रतानि च दत्त्वा गतः सुहस्ती, तेन वसुभूतिना जिमित्वा ते भणिताः–यद्येतादृशः साधुरायायात् तदा तस्मै यूयमुज्झितकान्येवं कुर्यात्, एवं दत्ते महाफलं भविष्यति, द्वितीयदिवसे महागिरिर्भिक्षायै प्रविष्टः, तदपूर्वकरणं दृष्ट्वा चिन्तयति–द्रव्यतः ४, ज्ञातं यथा ज्ञातोऽहमिति तथैवाभ्रान्ता निर्गता भणन्ति–आर्य! अनेषणा कृता, कथं?, एवं येनासि कल्येऽभ्युत्थितः, द्वावपि जनौ विदेशं गतौ, तत्र जीवप्रतिमां वन्दित्वा आर्यमहागिरय एडकाक्षं गता

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

गयग्गपदगं वंदया, तस्स कहं एलगच्छं नामं ?, तं पुव्वं दसण्णपुरं नगरमासी, तत्थ साविया एगस्स मिच्छदिट्ठिस्स दिण्णा, वेयालियं आवस्सयं करेति पच्चक्खाइ य, सो भणइ–किं रत्तिं उट्ठित्ता कोइ जेमेइ ?, एवं उवहसइ, अण्णया सो भणइ–अहंपि पच्चक्खामि, सा भणइ–भंजिहिसि, सो भणइ–किं अण्णयावि अहं रत्तिं उट्ठेत्ता जेमेमि ?, दिन्नं, देवया चिंतेइ–सावियं उवासेइ अज्ज णं उवालभामि, तस्स भगिणी तत्थेव वसइ, तीसे रूवेण रत्तिं पहेणयं गहाय आगया, पच्चक्खइओ, सावियाए वारिओ भणइ–तुब्भच्चएहिं आलपालेहिं किं ?, देवयाए पहारो दिण्णो, दोवि अच्छिगोलगा भूमीए पडिया, सा मम अयसो होहित्ति काउस्सग्गं ठिया, अड्ढरत्ते देवया आगया भणइ–किं साविए !, सा भणइ–मम एस अजसोत्ति ताहे अण्णस्स एलगस्स अच्छीणि सप्पएसाणि तक्खणमारियस्स आणेत्ता लाइयाणि, तओ से सयणो भणइ–तुब्भं अच्छीणि एलगस्स जारिसाणित्ति, तेण सव्वं कहियं, सड्ढो जाओ, जणो कोउहल्लेण एति पेच्छगो, सव्वरज्जे फुडं भण्णइ–

---

१ गजाग्रपदकवन्दकाः, तस्य कथमेडकाक्षं नाम ?, तत् पूर्वं दशार्णपुरं नगरमासीत्, तत्र श्राविका एकस्मै मिथ्यादृष्टये दत्ता, विकाले आवश्यकं करोति प्रत्याख्याति च, स भणति–किं रात्रावुत्थाय कोऽपि जेमति ?, एवमुपहसति, अन्यदा स भणति–अहमपि प्रत्याख्यामि, सा भणति–भङ्क्ष्यसि, स भणति–किमन्यदाऽप्यहं रात्रावुत्थाय जेमामि, दत्तं, देवता चिन्तयति–श्राविकामुद्भ्राजते अद्यैनमुपालभे, तस्य भगिनी तत्रैव वसति, तस्या रूपेण रात्रौ प्रहेणकं गृहीत्वाऽऽगता, प्रत्याख्यायकः श्राविकया वारितो भणति–त्वदीयैः प्रलापैः किं ?, देवतया प्रहारो दत्तः, द्वावप्यक्षिगोलकौ भूमौ पतितौ, सा ममायशो भविष्यतीति कायोत्सर्गे स्थिता, अर्धरात्रे देवताऽऽगता भणति–किं श्राविके ?, सा भणति–ममैतदयश इति, तदाऽन्यस्यैडकस्याक्षिणी सप्रदेशे तत्क्षणमारितस्यानीय योजितानि, ततस्तस्य स्वजनो भणति–तवाक्षिणी एडकस्य यादृशे इति, तेन सर्वं कथितं, श्राद्धो जातः, जनः कुतूहलेनायाति प्रेक्षकः, सर्वराज्ये फुटं भण्यते—

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥६६९॥

केओ एसि ?, जत्थ सो एलकच्छओ, अण्णे भणंति–सो चेव राया, ताहे दसण्णपुरस्स एलकच्छं नामं जायं, तत्थ गयग्गपयओ पव्वओ, तस्स उप्पत्ती, तत्थेव दसण्णपुरे दसण्णभद्दो राया, तस्स पंचसयाणि देवीणोरोहो, एवं सो जोव्वणेण रूवेण य पडिबद्धो एरिसं अण्णस्स नत्थित्ति, तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवओ महावीरस्स दसण्णकूडे समोसरणं, ताहे सो चिंतेइ–तहा कल्ले वंदामि जहा केणइ न अण्णेण वंदियपुव्वो, तं च अज्झत्थियं सक्को णाऊण एइ, इमोवि महया इड्ढीए निग्गओ वंदिओ य सव्विड्ढीए, सक्कोवि एरावणं विलग्गो, तत्थ अट्ठ दंते विउव्वेइ, एक्केक्के दंते अट्ठट्ठ वावीओ एक्केकाए वावीए अट्ठट्ठ पउमाइं एक्केकं पउमं अट्ठपत्तं पत्ते य २ बत्तीसइबद्धनाडगं, एवं सो सव्विड्ढीए एरावणविलग्गो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, ताहे तस्स हत्थिस्स दसण्णकूडे पव्वए य पयाणि देवप्पहावेण उट्ठियाणि, तेण णामं कयं गयग्गपदग्गोत्ति, ताहे सो दसन्नभद्दो तं पेच्छिऊण एरिसा कओ अम्हारिसाणमिड्ढी ?, अहो कएल्लओऽणेण धम्मो, अहमवि करेमि, ताहे सो पव्वयइ,

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० अनिश्रिततपसि आर्यमहागिर्युदा०

॥६६९॥

१ कुत आयासि ?, यत्र स एडकाक्षः, अन्ये भणन्ति–स एव राजा, तदा दशार्णपुरस्यैडकाक्षं नाम जातं, तत्र गजाग्रपदः पर्वतः, तस्योत्पत्तिः–दशार्णपुरे दशार्णभद्रो राजा, तस्य पञ्चशतानि देवीनामवरोधः, एवं स यौवनेन रूपेण च प्रतिबद्धोऽन्यस्येदृशं नास्तीति, तस्मिन् काले तस्मिन् समये भगवतो महावीरस्य दशार्णकूटे समवसरणं, तदा स चिन्तयति–तथा कल्ये वन्दिताहे यथा केनचिन्नान्येन वन्दितपूर्वः, तदध्यवसितं च शक्रो ज्ञात्वाऽऽयाति, अयमपि महत्या ऋद्ध्या निर्गतो वन्दितश्च सर्वर्ध्या, शक्रोऽप्यैरावणं विलग्नः, तत्राष्ट दन्तान् विकुर्वति, एकैकस्मिन् दन्ते अष्टाष्ट वापीः एकैकस्यां वाप्यामष्टाष्ट पद्मानि एकैकं पद्ममष्टपत्रं पत्रे पत्रे च द्वात्रिंशद्बद्धं नाटकं, एवं स सर्वर्ध्या ऐरावणविलग्न आदक्षिणं प्रदक्षिणं करोति, तदा तस्य हस्तिनो दशार्णकूटे पर्वते च पादा देवताप्रभावेनोत्थिताः, तेन नाम कृतं गजाग्रपदक (दाग्र) इति, तदा स दशार्णभद्रस्तां प्रेक्ष्य ईदृशी कुतोऽस्माकमृद्धिः ?, अहो कृतोऽनेन धर्मः, अहमपि करोमि, तदा स प्रव्रजति,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२६]

एसा गयग्गपयस्स उप्पत्ती, तत्थ महागिरीहिं भत्तं पच्चक्खायं देवत्तं गया, सुहत्थीवि उज्जेणिं जियपडिमं वंदया गया' उज्जाणे ठिया, भणिया य साहुणो–वसहिं मग्गहत्ति, तत्थ एगो संघाडगो सुभद्दाए सिट्ठिभज्जाए घरं भिक्खस्स अइगओ' पुच्छिया ताए–कओ भगवंतो ?, तेहिं भणियं–सुहत्थिस्स, वसहिं मग्गामो, जाणसालाउ दरिसियाउ, तत्थ ठिया, अन्नया पओसकाले आयरिया नलिणिगुम्मं अज्झयणं परियट्टंति, तीसे पुत्तो अवंतिसुकुमालो सत्ततले पासाए बत्तीसाहिं भज्जाहिं समं उवललइ, तेण सुत्तविबुद्धेण सुयं, न एयं नाडगंति भूमीओ भूमीयं सुणंतो २ उदिण्णो, बाहिं निग्गओ, कत्थ एरिसंति जाई सरिया, तेसि मूलं गओ, साहइ–अहं अवंतिसुकुमालोत्ति नलिणिगुम्मे देवो आसि, तस्स उस्सुग्गो पव्वयामि, असमत्थो य अहं सामन्नपरियागं पालेउं, इंगिणिं साहेमि, तेवि मोयावित्ता, तेणं पुच्छियत्ति, नेच्छति, सयमेव लोयं करेति, मा सयंगिहीयलिंगो हवउत्ति लिंगं दिण्णं, मसाणे कंथरे कुंडगं, तत्थ भत्तं पच्चक्खायं, सुकुमालएहिं

---

१ एषा गजाग्रपदकस्य उत्पत्तिः, तत्र महागिरिभिर्भक्तं प्रत्याख्यातं देवत्वं गताः, सुहस्तिनोऽपि उज्जयिनीं जीवत्प्रतिमावन्दका गताः, उद्याने स्थिताः भणितश्च साधवः वसतिं मार्गयतेति, तत्रैकः संघाटकः सुभद्रायाः श्रेष्ठिभार्याया गृहं भिक्षायातिगतः, पृष्टास्तया–कुतो भगवन्तः ?, तैर्भणितं–सुहस्तिनः, वसतिं मार्गयामः, यानशाला दर्शिताः, तत्र स्थिताः, अन्यदा प्रदोषकाले आचार्या नलिनीगुल्ममध्ययनं परिवर्त्तयन्ति, तस्याः, पुत्रोऽवन्तीसुकुमालः सप्ततले प्रासादे द्वात्रिंशता भार्याभिः सममुपललति, तेन सुप्तावबुद्धेन श्रुतं, नैतन्नाटकमिति भूमेर्भूमिमुत्तीर्णः शृण्वन्, बहिर्निर्गतः, क्वेदृशमिति जातिः स्मृता, तेषां मूलं गतः, कथयति–अहं अवन्तिसुकुमाल इति नलिनीगुल्मे देवोऽभवं, तस्मादुत्सुकः प्रव्रजामि, असमर्थश्चाहं श्रामण्यं पालयितुं इङ्गिनीं करोमि, तेऽपि (भणन्ति–) मातुर्मोचयित्वा, तेन पृष्टेति, नेच्छति, स्वयमेव लोचं करोति, मा स्वयंगृहीतलिङ्गो भूदिति लिङ्गं दत्तं, श्मशाने कंथेरकुडङ्गं, तत्र भक्तं प्रत्याख्यातं, सुकुमालयोः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥६७०॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० ५ शिक्षायां वज्रस्वाम्युदा०

पाएहिं लोहियगंधेण सिवाए सपेल्लियाए आगमणं, सिवा एगं पायं खायइ, एगं चिल्लगाणि, पढमे जामे जण्णुयाणि बीए ऊरू तइए पोट्टं कालगओ, गंधोदगपुप्फवासं, आयरियाणं आलोयणा, भज्जाणं परंपरं पुच्छा, आयरिएहिं कहियं, सब्बिड्डीए सुण्हाहिं समं गया मसाणं, पव्वइयाओ य, एगा गुव्विणी नियत्ता, तेसिं पुत्तो तत्थ देवकुलं करेइ, तं इयाणिं महाकालं जायं, लोएण परिग्गहियं, उत्तरचूलियाए भणियं पाडलिपुत्तेति, समत्तं अणिस्सियतवो महागिरीणं ४। इयाणिं सिक्खत्ति पयं, सा दुविहा–गहणसिक्खा आसेवणासिक्खा य, तत्थ—

खितिवणउसभकुसग्गं रायगिहं चंपपाडलीपुत्तं। नंदे सगडाले थूलभद्दसिरिए वररुची य ॥ १२८४ ॥

एईए वक्खाणं–अतीतअद्धाए खिइपइट्ठियं णयरं, जियसत्तू राया, तस्स णयरस्स वत्थूणि उस्सण्णाणि, अण्णं णयरट्ठाणं वत्थुपाढएहिं मग्गावेइ, तेहिं एगं चणयक्खेत्तं अतीव पुप्फेहिं फलेहि य उववेयं दट्ठुं, चणयणयरं निवेसियं,

---

१ पादयोः रुधिरगन्धेन शिवायाः सशिशुकाया आगमनं, एकं पादं शिवा खादति, एकं शिशवः, प्रथमे यामे जानुनी द्वितीये ऊरुणी तृतीये उदरं कालगतः, गन्धोदकपुष्पवर्षं, आचार्येभ्य आलोचना, भार्याणां परम्परकेण पृच्छा, आचार्यैः कथितं, सर्वर्ध्या स्नुषाभिः समं गता श्मशानं, प्रव्रजिताश्च, एका गर्भिणी निवृत्ता, तेषां पुत्रस्तत्र देवकुलं करोति, तदिदानीं महाकालं जातं, लोकेन परिगृहीतं, उत्तरचूलिकायां भणितं पाटलिपुत्रमिति, समाप्तं अनिश्रितोपधानं महागिरीणां ४। इदानीं शिक्षेति पदं, सा द्विविधा–ग्रहणशिक्षाआसेवनाशिक्षा च, तत्र–अस्या व्याख्यानं–अतीताद्धायां क्षितिप्रतिष्ठितं नगरं, जितशत्रू राजा, तस्य नगरस्य वस्तून्युत्सन्नानि, अन्यन्नगरस्थानं वास्तुपाठकैर्मार्गयति, तैरेकं चणकक्षेत्रं अतीव पुष्पैः फलैश्चोपपेतं दृष्ट्वा चणकनगरं निवेशितं,

॥६७०॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

[१]कालेण तस्स वत्थूणि खीणाणि, पुणोवि वत्थुं मग्गिज्जइ, तत्थ एगो वसहो अण्णेहिं पारद्धो एगंमि रण्णे अच्छइ, न तीरइ अन्नेहिं वसहेहिं पराजिणिउं, तत्थ उसभपुरं निवेसियं, पुणरवि कालेण उच्छन्नं, पुणोवि मग्गंति, कुसथंबो दिट्ठो अतीवपमाणाकितिविसिट्ठो, तत्थ कुसग्गपुरं जायं, तंमि य काले पसेणई राया, तं च णयरं पुणो २ अग्गिणा डज्झइ, ताहे लोगभयजणणनिमित्तं घोसावेइ–जस्स घरे अग्गी उट्ठेइ सो णगराओ निच्छुब्भइ, तत्थ महाणसियाणं पमाएण रण्णो चेव घराओ अग्गी उट्ठिओ, ते सच्चपइण्णा रायाणो–जइ अप्पगं ण सासयामि तो कहं अन्नंति निग्गओ णयराओ, तस्स गाउयमित्ते ठिओ, ताहे दंडभडभोइया वाणियगा य तत्थ वच्चंति भणंति–कहिं वच्चह?, आह–रायगिहंति, कओ एह? रायगिहाओ, एवं णयरं रायगिहं जायं, जया य राइणो गिहे अग्गी उट्ठिओ तओ कुमारा जं जस्स पियं आसो हत्थी वा तं तेण णीणिए सेणिएण भंभा णीणिया, राया पुच्छइ–केण किं णीणियंति ?, अण्णो भणइ–मए हत्थी आसो एवमाइ,

---

१ कालेन तस्य वस्तूनि क्षीणानि, पुनरपि वास्तु मार्गयति, तत्रैको वृषभोऽन्यैः प्रारब्ध एकस्मिन्नरण्ये तिष्ठति, न शक्यतेऽन्यैर्वृषभैः पराजेतुं, तत्र वृषभपुरं निवेशितं, पुनरपि कालेनोच्छिन्नं, पुनरपि मार्गयन्ति, कुशस्तम्बो दृष्टोऽतीवप्रमाणाकृतिविशिष्टः, तत्र कुशाग्रपुरं जातं, तस्मिंश्च काले प्रसेनजित् राजा, तच्च नगरं पुनः २ अग्निना दह्यते, तदा लोकभयजननिमित्तं घोषयति–यस्य गृहेऽग्निरुत्तिष्ठति स नगरात् निष्काश्यते, तत्र महानसिकानां प्रमादेन राज्ञ एव गृहात् अग्निरुत्थितः, ते सत्यप्रतिज्ञा राजानः–यद्यात्मानं न शास्मि तदा कथमन्यमिति निर्गतो नगरात्, तस्मात् गव्यूतमात्रे स्थितः, तदा दण्डिकभटभोजिका वणिजश्च तत्र व्रजन्तः भणन्ति–क्व व्रजथ ?, आह राजगृहमिति, कुत आयाथ ?, राजगृहात्, एवं नगरं राजगृहं जातं, यदा च राज्ञो गृहेऽग्निरुत्थितस्ततः कुमारा यद्यस्य प्रियमश्वो हस्ती वा तत्तेन निष्काशिते श्रेणिकेन ढक्का नीता, राजा पृच्छति–केन किं नीतमिति ?, अन्यो भणति–मया हस्ती अश्वः एवमादिः,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥६७१॥

४ प्रतिक्र-मणाध्य० संयोग०शि-क्षायां वज्र-स्वाम्युदः ॥६७१॥

[1]सेणिओ पुच्छिओ–भंभा, ताहे राया भणइ सेणियं–एस ते तत्थ सारो भंभित्ति ?, सेणिओ भणइ–आमं, सो य रण्णो अच्चंतपिओ, तेण से णामं कयं–भंभिसारोत्ति, सो रण्णो पिओ लक्खणजुत्तोत्ति, मा अण्णेहिं मारिज्जिहित्ति न किंचिवि देइ, सेसा कुमारा भडचडगरेण निंति, सेणिओ ते दट्ठूण अधितिं करेति, सो तओ निप्फिडिओ बेण्णायडं गओ, जहा नमोक्कारे–अचियत्त भोगऽदाणं निग्गम बिण्णायडे य कासवए। लाभ घरनयण नत्तुग धूया सुस्सूसिया दिण्णा॥१॥ पेसण आपुच्छणया पंडरकुड्डुत्ति गमणमभिसेओ। दोहल णाम णिरुत्ती कहं पिया मेत्ति रायगिहे ॥ २ ॥ आगमणऽमच्चमग्गण खुड्डुग छगणे य कस्स तं ? तुज्झं। कहणं माऊआणण विभूसणा वारणा माऊ ॥ ३ ॥ तं च सेणियं उज्जेणिओ पज्जोओ रोहओ जाइ, सो य उइण्णो, सेणिओ बीहेइ, अभओ भणइ–मा संकह, नासेमि से वायंति, तेण खंधावारणिवेसजाणएण भूमीगया दिणारा लोहसंघाडएसु निक्खाया दंडवासत्थाणेसु, सो आगओ रोहइ, जुज्झिया कईवि दिवसे,

१ श्रेणिकः पृष्टः–भम्भा, तदा राजा भणति श्रेणिकं–एष ते सारो भम्भेति ?, श्रेणिको भणति–ओम्, स च राज्ञोऽत्यन्तप्रियः, तेन तस्य नाम कृतं–भम्भसार इति, स राज्ञः प्रियो लक्षणयुक्त इति, मा अन्यैर्मारीति न किञ्चिदपि ददाति, शेषाः कुमारा भटसमूहेन निर्गच्छन्ति, श्रेणिकस्तान् दृष्ट्वाऽधृतिं करोति, स ततः निर्गतो बेन्नातटं गतः, यथा नमस्कारे–अप्रीतिर्भोगादानं निर्गमो बेन्नातटे च लेखहारः। लाभो गृहनयनं नप्ता दुहिता शुश्रूषिका दत्ता ॥ १ ॥ प्रेषणं आपृच्छा पाण्डुरकुड्या इति गमनमभिषेकः। दौहदः नाम निरुक्तिः क्व पिता मे इति राजगृहे ॥ २ ॥ आगमनं अमात्यमार्गणं मुद्रिका गोमयं च कस्य त्वं ? तव। कथनं मातुरानयनं विभूषणं वारणं मातुः ॥ ३ ॥ तं च श्रेणिकं उज्जयिनीतः प्रद्योतो रोधक आयाति, स चोदितः, श्रेणिको बिभेति, अभयो भणति–मा शङ्कध्वं, नाशयामि तस्य वादमिति, तेन स्कन्धावारनिवेशज्ञायकेन भूमिगता दीनारा लोहशृङ्गाटकेषु निखाता दण्डावासस्थानेषु, स आगतो रुणद्धि, योधिताः कतिचिद्दिवसान्,

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

पच्छा अभओ लोहं देइ, जहा तव दंडिया सव्वे सेणिएण भिण्णा णास माऽप्पिहिसि, अहव ण पच्चओ अमुगस्स दंडस्स अमुगं पएसं खणह, तेण खयं, दिट्ठो, नट्ठो य, पच्छा सेणिएण बलं विलोलियं, ते य रायाणो सव्वे पकहिंति–न एयस्स कारी अम्हे, अभएण एसा माया कया, तेण पत्तीयं। अण्णया सो अत्थाणीए भणइ–सो मम नत्थि ? जो तं आणेज्ज, अण्णया एगा गणिया भणइ–अहं आणेमि, नवरं मम बितिज्जिगा दिज्जंतु, दिण्णाओ से सत्त बितिज्जिगाओ जाओ से रुच्चंति मज्झिमवयाओ, मणुस्सावि थेरा, तेहिं समं पवहणेसु बहुएण य भत्तपाणेण य पुव्वं व संजइमूले कवडसड्ढत्तणं गहेऊण गयाओ, अन्नेसु य गामणयरेसु जत्थ संजया सड्ढा य तहिं २ अइंतिओ सुट्ठुयरं बहुसुयाओ जायाओ, रायगिहं गयाओ, बाहिं उज्जाणे ठियाउ चेइयाणि वंदंतीउ घरचेइयपरिवाडीए अभयघरमइगयाओ निसीहियत्ति, अभओ दट्ठूणं उम्मुक्कभूसणाउ उट्ठिओ सागयं निसीहियाएत्ति?, चेइयाणि दरिसियाणि वंदियाणि य, अभयं वंदिऊण निविट्ठाओ,

१ पश्चादभयो लेखं ददाति, यथा तव दण्डिकाः सर्वे श्रेणिकेन भेदिता नश्य माऽर्प्येथाः, अथ च न प्रत्ययोऽमुकस्य दण्डिकस्यामुकं प्रदेशं खन, तेन खातं, दृष्टो, नष्टश्च, पश्चाच्छ्रेणिकेन बलं विलोलितं, ते च राजानः सर्वे प्रकथयन्ति–नैतस्य कर्त्तारो वयं, अभयेनैषा माया कृता, तेन प्रत्ययितं। अन्यदा स आस्थान्यां भणति–स मम नास्ति? यस्तमानयेत्, अन्यदैका गणिका भणति–अहमानयामि, नवरं मम साहाय्यिका दीयन्तां, दत्तास्तस्याः सप्त द्वैतीयिका यास्तस्यै रोचन्ते मध्यवयसः, मनुष्या अपि स्थविराः, तैः समं प्रवहणेषु च बहुकेन भक्तपानेन च पूर्वमेव संयतीमूले कपटश्राद्धत्वं गृहीत्वा गताः, अन्येषु च ग्रामनगरेषु यत्र संयताः श्राद्धाश्च तत्रातिगच्छन्त्यः सुष्ठुतरं बहुश्रुता जाताः, राजगृहं गताः, बहिरुद्याने स्थिताश्चैत्यानि वन्दमाना गृहचैत्यपरिपाट्याऽभयगृहमतिगता नैषेधिकीति (भणितवन्त्यः), अभयो दृष्ट्वोन्मुक्तभूषणा उत्थितः स्वागतं नैषेधिकीनामिति, चैत्यानि दर्शितानि वन्दितानि च, अभयं वन्दित्वा निविष्टाः,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

जम्मभूमीउ णिक्खमणणाणणिव्वाणभूमीओ वंदावेति, पुच्छइ–कओ ?, ताओ कहेंति–उज्जेणीए अमुगो वाणियपुत्तो तस्स य भज्जा, सो कालगओ, तस्स भज्जाओ अम्हे पव्वइउंकामाओ, न तीरंति पव्वइएहिं चेइयाहिं वंदिउं पट्ठियव्वए, भणियाओ पाहुणियाउ होइ, भणंति–अब्भत्तट्ठियाओ अम्हे, सुचिरं अच्छित्ता गयाओ, बितियदिवसे अभओ एक्कगो आसेणं पगे पगओ, एह मम घरे पारेधत्ति, भणंति–इमं पारगं तुब्भे पारेह, चिंतेइ–मा मम घरं न जाहिंति भणइ–एवं होउ, पजिमिओ, संजोइउं महुं पाइओ सुत्तो, ताहे आसरहेण पलाविओ, अंतरा अण्णेवि रहा पुव्वट्ठिया, एवं परंपरेण उज्जेणिं पाविओ, उवणीओ पज्जोयस्स, भणिओ–कहिं ते पंडिच्चं ?, धम्मच्छलेण वंचिओ, बद्धो, पुव्वाणीया से भज्जा सा उवणीया, तीसे का उप्पत्ती–सेणियस्स विज्जाहरो मित्तो तेण मित्तया थिरा होउत्ति सेणिएण से सेणा नाम भगिणी दिन्ना निब्बंधे कए, साविय विज्जाहरस्स इट्ठा, एसा धरणिगोयरा अम्हं पवहाएत्ति विज्जाहरिहिं मारिया, तीसे धूया सा तेण मा एसावि

---

१ जन्मभूमीर्निष्क्रमणज्ञाननिर्वाणभूमीर्वन्दयति, पृच्छति–कुतः ?, ताः कथयन्ति–उज्जयिन्याममुको वणिक्पुत्रः तस्य च भार्याः, स कालगतः, तस्य भार्या वयं प्रव्रजितुकामाः, न शक्यते प्रव्रजिताभिश्चैत्यानि वन्दितुं प्रस्थातुं, भणिताः–प्राघूर्णिका भवत, भणन्ति–अभक्तार्थिन्यो वयं, सुचिरं स्थित्वा गताः, द्वितीयदिवसे अभयः एकाकी अश्वेन प्रभाते प्रगतः, आयात मम गृहे पारयतेति, भणन्ति–इदं पारणकं यूयं पारयत, चिन्तयति–मा मम गृहं नायासिष्ट, भणति–एवं भवतु, प्रजिमितः, सांयोगिकं मधु पाययित्वा स्वपितः, तदाऽश्वरथेन परिप्रापितः, अन्तरा अन्येऽपि रथाः पूर्वस्थापिताः, एवं परम्परकेणोज्जयिनीं प्रापितः, प्रद्योतायोपनीतः, भणितः–क ते पाण्डित्यं ?, धर्मच्छलेन वञ्चितो, बद्धः, पूर्वानीता तस्य भार्या सोपनीता, तस्याः कोत्पत्तिः ?, श्रेणिकस्य विद्याधरो मित्रं, ततो मैत्री स्थिरा भवत्विति श्रेणिकेन तस्मै सेनानाम्नी भगिनी दत्ता निर्बन्धं कृत्वा, सापिच विद्याधरस्येष्टा, एषा धरणीगोचराऽस्माकं प्रवधायेति विद्याधरीभिर्मारिता, तस्या दुहिता सा तेन मैषाऽपि

॥६७२॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

[1]मारिज्जिहितित्ति सेणियस्स उवणीया खिज्जिओ (उज्झिया) य, सा जोव्वणत्था अभयस्स दिण्णा, सा विज्जाहरी अभयस्स इट्ठा, सेसाहिं महिलाहिं मायंगी उलग्गिया, ताहिं विज्जाहिं जहा नमोक्कारे चक्खिदियउदाहरणे जाव पच्चंतेहिं उज्झिया तावसेहिं दिट्ठा पुच्छिया कओसित्ति?, तीए कहियं, ते य सेणियस्स पव्वया तावसा, तेहिं अम्ह नत्तुगित्ति सारविया, अन्नया पट्ठविया सिवाए उज्जेणीं नेऊण दिण्णा, एवं तीए समं अभओ वसइ, तस्स पज्जोयस्स चत्तारि रयणाणि— लोहजंघो लेहारओ अग्गिभीरुरहोऽनलगिरी हत्थि सिवा देवित्ति, अन्नया सो लोहजंघो भरुयच्छं विसज्जिओ, ते लोका य चिंतेन्ति–एस एगदिवसेण एइ पंचवीसजोयणाणि, पुणो २ सद्दाविज्जामो, एयं मारेमो, जो अण्णो होहिति सो गणिएहिं दिवसेहिं एहिति, एच्चिरंपि कालं सुहिया होमो, तस्स संबलं पदिण्णं, सो नेच्छइ, ताहे विहीए से दवावियं, तत्थवि से विससंजोइया मोयगा दिण्णा, सेसगं संबलं हरियं, सो कइवि जोयणाणि गंतुं नदीतीरे खामित्ति जाव सउणो वारेइ,

---

१ मार्यतामिति श्रेणिकायोपनीता, रुष्टश्च (अवरोधाय), सा यौवनस्थाऽभयाय दत्ता, सा विद्याधर्यभयस्येष्टा, शेषाभिर्महेलाभिर्मातङ्गी अवलगिता, ताभिर्विद्याभिर्यथा नमस्कारे चक्षुरिन्द्रियोदाहरणे यावत् प्रत्यन्तैरुज्झिता तापसैर्दृष्टा पृष्टा–कुतोऽसीति ?, तया कथितं, ते च श्रेणिकस्य पर्वगास्तापसाः, तैरस्माकं नप्त्रीति संरक्षिता, अन्यदा प्रस्थापिता उज्जयिनीं नीत्वा शिवायै दत्ता, एवं तया सममभयो वसति, तस्य प्रद्योतस्य चत्वारि रत्नानि–लोहजङ्घो लेखहारकोऽग्निभीरू रथोऽनलगिरिर्हस्ती शिवा देवीति, अन्यदा स लोहजङ्घो भृगुकच्छं प्रति विसृष्टः, ते लोकाश्च चिन्तयन्ति–एष एकदिवसेनायाति पञ्चविंशतियोजनानि, पुनः पुनः शब्दापयिष्यामहे, एनं मारयामः, योऽन्यो भविष्यति स बहुभिर्दिनैरायास्यति, इयच्चिरं कालं सुखिनो भविष्यामः, तस्मै शम्बलं प्रदत्तं, स नेच्छति, तदा विधिना (वीथ्यां) तस्मै दापितं, तत्रापि विषसंयुक्ता मोदकास्तस्मै दत्ताः, शेषं शम्बलं हृतं, स कतिचिद्योजनानि गत्वा नदीतीरे खादामीति यावच्छकुनो वारयति,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥६७३॥

उट्ठेत्ता पहाविओ, पुणो दूरं गंतुं पक्खाइओ, तत्थवि वारिओ तइयंपि वारिओ, तेण चिंतियं–भवियव्वं कारणेणंति पज्जोयस्स मूलं गओ, निवेइयं रायकज्जं, तं च से परिकहियं, अभओ वियक्खणोत्ति सद्दाविओ, तं च से परिकहियं, अभओ तं अग्घाइउं संबलं भणइ–एत्थ दव्वसंजोएण दिट्ठीविसो सप्पो सम्मुच्छिमो जाओ, जइ उग्घाडियं होंतं तो दिट्ठीविसेण सप्पेण खाइओ होइ(न्तो), तो किं कज्जउ ?, वणनिउंजे मुएज्जह, परंमुहो मुक्को, वणाणि दड्ढाणि, सो अन्तोमुहुत्तेण मओ, तुट्ठो राया, भणिओ–बंधणविमोक्खवज्जं वरं वरेहित्ति, भणइ–तुब्भं चेव हत्थे अच्छउ, अण्णयाऽनलगिरी वियट्टो न तीरइ घेत्तुं, अभओ पुच्छिओ, भणइ–उदायणो गायउत्ति, तो उदायणो कहं बद्धोत्ति–तस्स य पज्जोयस्स धूया वासवदत्ता नाम, सा बहुयाउ कलाउ सिक्खाविया, गंधव्वेण उदयणो पहाणो सो घेप्पउत्ति, केण उवाएणंति ?, सो किर जं हत्थिं पेच्छइ तत्थ गायइ जाव बंधंपि न याणइ, एवं कालो वच्चइ, इमेण जंतमओ हत्थी काराविओ, तं सिक्खावेइ, तस्स विसयए

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० ५ शिक्षायां वज्रस्वाम्यु० अभयोदन्तः

१ उत्थाय प्रधावितः, पुनर्दूरं गत्वा प्रस्खादितस्तत्रापि वारितः तृतीयमपि वारितः, तेन चिन्तितं–भवितव्यं कारणेनेति प्रद्योतस्य मूले गतो, निवेदितं राज्यकार्यं, तच्च तस्मै परिकथितं, अभयो विचक्षण इति शब्दितः, तच्च तस्मै परिकथितं, अभयस्तत् आघ्राय शम्बलं भणति–अत्र द्रव्यसंयोगेन दृष्टिविषः सर्पः संमूर्च्छिमो जातः, यद्युद्घाटितमभविष्यत्तदा दृष्टिविषेण सर्पेण खादितोऽभविष्यत्, तत् किं क्रियतां ?, वननिकुञ्जे मुञ्चत, पराङ्मुखो मुक्तः, वनानि दग्धानि, सोऽन्तर्मुहूर्त्तेन मृतः, तुष्टो राजा, भणितः–बन्धनविमोक्षवर्जं वरं वृणुष्वेति, भणति–युष्माकमेव हस्ते तिष्ठतु, अन्यदाऽनलगिरिर्विकलो न शक्यते ग्रहीतुं, अभयः पृष्टः, भणति–उदायनो गायत्विति, तत् उदायनः कथं बद्ध इति, तस्य च प्रद्योतस्य दुहिता वासवदत्ता नाम्नी, सा बह्वीः कलाः शिक्षिता, गान्धर्वेणोदायनः प्रधानः स गृह्यतामिति, केनोपायेनेति, स किल यं हस्तिनं प्रेक्षते तत्र गायति यावद् बन्ध (वध) मपि न जानाति, एवं कालो व्रजति, अनेन यन्त्रमयो हस्ती कारितः तं शिक्षयति, तस्य विषये

॥६७३॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

चारिज्जइ, तस्स वणचरेण कहियं, सो गओ तत्थ, खंधावारो पेरंतेहिं अच्छइ, सो गायइ हत्थी ठिओ ढुक्को गहिओ य आणिओ य, भणिओ–मम धूया काणा तं सिक्खावेहि मा तं पेच्छसु मा सा तुमं दट्ठूण लज्जिहिति, तीसेवि कहियं— उवज्झाओ कोढिउत्ति मा दच्छिहिसित्ति, सो य जवणियंतरिओ तं सिक्खावेइ, सा तस्स सरेण हीरइ कोढिओत्ति न जोएति, अण्णया चिंतेइ–जइ पेच्छामि, तं चिंतेन्ती अण्णहा पढइ, तेण रुट्ठेण भणिया–किं काणे! विणासेहि ?, सा भणइ–कोढिया! न याणसि अप्पाणयं, तेण चिंतियं जारिसो अहं कोढिओ तारिसा एसावि काणत्ति, जवणिया फालिया, दिट्ठा, अवरोप्परं संजोगो जाओ, नवरं कंचणमाला दासी जाणइ अम्मधाई य सा चेव, अण्णया आलाणखंभाओऽनलगिरी फिडिओ, रायाए अभओ पुच्छिओ–उदायणो गिगायउत्ति, ताहे उदायणो भणिओ, सो भणइ–भद्दवतिं हत्थिणिं आरुहिऊणं अहं दारिगा य गायामो, जवणियंतरियाणि गाणिं गीयंति, हत्थी गेएण अक्खित्तो गहिओ, इमाणिवि पलायाणि,

---

१ चार्यते, तस्मै वनचरैः कथितं, स गतस्तत्र, स्कन्धावारः पर्यन्तेषु तिष्ठति, स गायति हस्ती स्थितः आसन्नीभूतो गृहीतश्चानीतश्च, भणितो–मम दुहिता काणा तां शिक्षय मा तं द्राक्षीः मा सा त्वां दृष्ट्वाऽलज्जीदिति, तस्यापि कथितं–उपाध्यायः कुष्ठीति मा द्राक्षीरिति, स च यवनिकान्तरितस्तां शिक्षयति, सा तस्य स्वरेणायत्तीभूता कुष्ठीति न पश्यति, अन्यदा चिन्तयति–यदि पश्यामि, तच्चिन्तयन्ती अन्यथा पठति, तेन रुष्टेन भणिता–किं काणे! विनाशयसि ?, सा भणति–कुष्ठिन्! न जानास्यात्मानं, तेन चिन्तितं–यादृशोऽहं कुष्ठी तादृशी एषापि काणेति, यवनिका पाटिता दृष्टा, परस्परं संयोगो जातः, नवरं काञ्चनमाला दासी जानाति, अम्बधात्री च सैव, अन्यदाऽऽलानस्तम्भादनलगिरिश्छुटितः, राज्ञाऽभयः पृष्टः–उदायनो निगीयतामिति, तदोदायनो भणितः, स भणति–भद्रवर्ती हस्तिनीमारुह्याहं दारिका च गायावः, यवनिकान्तरिते गानं गायतः, हस्ती गेयेनाक्षिप्तो गृहीतः, इमे अपि पलायिते,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥६७४॥

ऍस बीओ वरो, अभएण भणियं–एसोवि तुब्भं चेव पासे अच्छउ, अण्णे भणंति–उज्जाणियागओ पज्जोओ इमा दारिया णिम्माया तत्थ गाविज्जिहित्ति, तस्स य जोगंधरायाणो अमच्चो, सो उम्मत्तगवेसेण पढइ–यदि तां चैव तां चैव, तां चैवाऽऽयतलोचनाम् । न हरामि नृपस्यार्थे, नाहं योगंधरायणः ॥ १ ॥ सो य पज्जोएण दिट्ठो, ठिओ काइयं पवोसरिउं, णायरो य कओ पिसाउत्ति, सा य कंचणमाला विभिन्नरहस्सा, वसंतमेंठेणवि चत्तारि मुत्तघडियाओ विलइयाओ घोसवती वीणा, कच्छाए वज्झंतीए सक्कुरओ नाम मंतीए अंधलो भणइ–कक्षायां वध्यमानायां, यथा रसति हस्तिनी । योजनानां शतं गत्वा, प्राणत्यागं करिष्यति ॥ १ ॥ ताहे सव्वजणसमुदओ, मज्झे उदयणो, भणइ—एष प्रयाति सार्थः काञ्चनमाला वसन्तकश्चैव । भद्रवती घोषवती वासवदत्ता उदयनश्च ॥१॥ पहाविया हत्थिणी, अनलगिरी जाव संनज्झइ ताव पणवीसं जोयणाणि गयाणि संनट्ठो, मग्गलग्गो, अदूरागए घडिया भग्गा, जाव तं उस्सिंघइ ताव अण्णाणिवि पंचवीसं, एवं तिण्णिवि,

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० ५ शिक्षायां वज्रस्वाम्यु० अभयोदन्तः

१ एष द्वितीयो वरः, अभयेन भणितं–एषोऽपि युष्माकमेव पार्श्वे तिष्ठतु, अन्ये भणन्ति–उद्यानिकागतः प्रद्योत इयं च दारिका निष्णाता तत्र गास्यतीति, तस्य च योगन्धरायणोऽमात्यः, स उन्मत्तकवेषेण पठति–स च प्रद्योतेन दृष्टः, स्थितः कायिकीं प्रव्युत्स्रष्टुं, नागरश्च कृतः पिशाच इति, सा च काञ्चनमाला विभिन्नरहस्या, वसन्तमेण्ठेनापि चतस्रो मूत्रघटिका विलगिताः, घोषवती वीणा, कक्षायां बध्यमानायां सत्कुरतो नाम मन्त्री (सत्कोरको रवो नाम), मन्त्रिणाऽन्धो भण्यते,–तदा सर्वजनसमुदयो, मध्ये उदायनो वर्त्तते, भणति–प्रधाविता हस्तिनी अनलगिरिर्यावत् संनह्यते तावत् पञ्चविंशतिं योजनानां गतः नष्टः, मार्गलग्नः, अदूरागते घटिका भग्ना, यावत्तामुज्जिघ्रति तावदन्यान्यपि पञ्चविंशतिं, एवं त्रीन् वारान्,

॥६७४॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

नगरं च अइगओ। अण्णया उज्जेणीए अग्गी उट्ठिओ, णयरं डज्झइ, अभओ पुच्छिओ, सो भणइ–विषस्य विषमौषधं अग्नेरग्निरेव, ताहे अग्गीउ अण्णो अग्गी कओ, ताहे ठिओ, तइओ वरो, एसवि अच्छउ। अण्णया उज्जेणीए असिवं उट्ठियं, अभओ पुच्छिओ भणइ–अब्भिंतरियाए अत्थाणीए देवीओ विहूसियाओ एज्जंतु, जा तुब्भे रायालंकारविभूसिए जिणइ तं मम कहेज्जह, तहेव कयं, राया पलोएति, सव्वा हेट्ठाहुत्ती ठायंति, सिवाए राया जिओ, कहियं तव चुल्लमाउगाए, भणइ–रत्तिं अवसण्णा कुंभवलिए अच्चणियं करेउ, जं भूयं उट्ठेइ तस्स मुहे कूरं छुब्भइ, तहेव कयंति, तियचउक्के अट्टालए य जाहे सा देवया सिवारूवेणं वासइ ताहे कूरं छुब्भइ, भणइ य–अहं सिवा गोपालगमायत्ति, एवं सव्वाणिवि निज्जियाणि, संती जाया, तत्थ चउत्थो वरो। ताहे अभओ चिंतेइ–केच्चिरं अच्छामो?, जामोत्ति, भणइ–भट्टारगा! वरा दिज्जंतु, वरेहि पुत्ता!, भणइ–नलगिरिंमि हत्थिंमि तुब्भेहिं मिण्ठेहिं सिवाए उच्छंगे निवन्नो (अग्गिंसाहंमि) अग्गिभीरुस्स रहस्स

१ नगरं चातिगतः। अन्यदोज्जयिन्यामग्निरुत्थितः, नगरं दह्यते, अभयः पृष्टः, स भणति–तदाऽग्नेरन्योऽग्निः कृतस्तदा स्थितः, तृतीयो वरः, एषोऽपि तिष्ठतु। अन्यदोज्जयिन्यामशिवमुत्थितं, अभयः पृष्टो भणति–अभ्यन्तरिकायामास्थान्यां देव्यो विभूषिता आयान्तु, या युष्मान् राजालङ्कारविभूषितान् जयति तां मह्यं कथयत, तथैव कृतं, राजा प्रलोकयति, सर्वा अधस्तात् तिष्ठन्ति (हीना दृश्यन्ते), शिवया राजा जितः, कथितं तव लघुमात्रा, भणति–रात्राववसन्नाः कुम्भबलिकयाऽर्चनिकां कुर्वन्तु, यो भूत उत्तिष्ठति तस्य मुखे कूरं क्षिप्यते, तथैव कृतमिति, त्रिके चतुष्केऽट्टालके च यदा सा देवता शिवारूपेण रटति तदा कूरः क्षिप्यते, भणति च–अहं शिवा गोपालकमातेति, एवं सर्वेऽपि निर्जिताः, शान्तिर्जाता, तत्र चतुर्थो वरः। तदाऽभयश्चिन्तयति–कियच्चिरं तिष्ठामः?, याम इति, भणति–भट्टारकाः वरान् ददतु, वृणुष्व पुत्र!, भणति–अनलगिरौ हस्तिनि युष्मासु मेण्ठेषु शिवाया उत्सङ्गे निषण्णोऽग्निं प्रविशामि, अग्निभीरुरथस्य

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥६७५॥

दारुएहिं चियगा कीरउ, तत्थ पविसामि, राया विसन्नो, तुट्ठो सक्कारेउं विसज्जिओ, ताहे अभओ भणइ–अहं तुब्भेहिं छलेणं आणिओ, तुब्भे दिवसओ आइच्चं दीवियं काऊण रडंतं णयरमज्झेण जइ न हरामि तो अग्गिं अतीमित्ति, तं भज्जं गहाय गओ, किंचि कालं रायगिहे अच्छित्ता दो गणियादारियाओ अप्पडिरूवाओ गहाय वाणियगवेसेण उज्जेणीए रायमग्गोगाढं आवारिं गेण्हइ, अण्णया दिट्ठाउ पज्जोएण, ताहिं विसविलासाहिं दिट्ठीहिं निब्भाइओ अंजली य से कया, अइयओ नियगभवणं, दूतीं पेसेइ, ताहिं परिकुवियाहिं धाडिया, भणइ–राया ण होहित्ति, बीयदिवसे सणियगं आरुसियाउ, तइयदिवसे भणिया–सत्तमे दिवसे देवकुले अम्ह देवजण्णगो तत्थ विरहो, इयरहा भाया रक्खइ, तेण य सरिसगो मणूसो पज्जोउत्ति नाम काऊण उम्मत्तओ कओ, भणइ–मम एस भाया सारवेमि णं, किं करेमि ? एरिसो भाइणेहो, सो रुट्ठो रुट्ठो नासइ, पुणो हक्कविऊण रडंतो पुणो २ आणिज्जइ उट्ठेह रे अमुगा अमुगा अहं पज्जोओ हीरामित्ति,

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० ५शिक्षायां वज्रस्वाम्यु० अभयोदन्तः

---

१ दारुभिश्चितिका क्रियतां, तत्र प्रविशामि, राजा विषण्णः, तुष्टः सत्कृत्य विसृष्टः, तदाऽभयो भणति–अहं युष्माभिश्छलेनानीतः, युष्मान् दिवस आदित्यं दीपिकां कृत्वा रटन्तं नगरमध्येन हरामि न यदि तदाऽग्निं प्रविशामीति, तां भार्यां गृहीत्वा गतः, कञ्चित्कालं राजगृहे स्थित्वा द्वे गणिकादारिके अप्रतिरूपे गृहीत्वा वणिग्वेषेणोज्जयिन्यां राजमार्गावगाढमास्पदं गृह्णाति, अन्यदा दृष्टे प्रद्योतेन, ताभ्यां विषविलासाभिर्दृष्टिभिर्निध्यातः अञ्जलिश्च तस्मै कृतः, अतिगतो निजभवनं, दूतीं प्रेषते, ताभ्यां परिकुपिताभ्यां धाटिता, भणति–राजा न भवतीति, द्वितीयदिवसे शनैरारुष्टे, तृतीयदिवसे भणिता–सप्तमे दिवसे देवकुलेऽस्माकं देवयज्ञस्तत्र विरहः, इतरथा भ्राता रक्षति, तेन च सदृशो मनुष्यः प्रद्योत इति नाम कृत्वोन्मत्तः कृतः, भणति–ममैष भ्राता रक्षामि एनं, किं करोमि भ्रातृस्नेह ईदृशः, स रुष्टो रुष्टो नश्यति, पुनः हक्कारयित्वा रटन् पुनः २ आनीयते उत्तिष्ठत रे अमुकाः ! २ अहं प्रद्योतो ह्रिये इति,

॥६७५॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

तेण सत्तमे दिवसे दूती पेसिया, एउ एकल्लउत्ति भणिओ आगओ, गवक्खए विलग्गो, मणुस्सेहिं पडिबद्धो पल्लंकेण समं, हीरइ दिवसओ णयरमज्झेण, विहीकरणमूलेण पुच्छिज्जइ, भणइ–विज्जघरं णेज्जइ, अग्गओ आसरहेहिं उक्खित्तो पाविओ रायगिहं, सेणियस्स कहियं, असिं अछित्ता आगओ, अभएण वारिओ, किं कज्जउ ?, सक्कारित्ता विसज्जिओ, पीई जाया परोप्परं, एवं ताव अभयस्स उट्ठाणपरियावणिया, तस्स सेणियस्स चेल्लणा देवी, तीसे उट्ठाणपारियावणिया कहिज्जइ, तत्थ रायगिहे पसेणइसंतिओ नागनामा रहिओ, तस्स सुलसा भज्जा, सो अपुत्तओ इंदक्खंदादी णमंसइ, सा साविया नेच्छइ, अन्नं परिणेहि, सो भणइ–तव पुत्तो तेण कज्जं, तेण वेज्जोवएसेण तिहिं सयसहस्सेहिं तिण्णि तेलकुलवा पक्का, सक्कालए संलावो–एरिसा सुलसा सावियत्ति, देवो आगओ साहू, तज्जातियरूवेण निसीहिया कया, उट्ठित्ता वंदइ, भणइ—किमागमणं तुज्झं ?, सयसहस्सपायतेल्लं तं देहि, वेज्जेण उवइट्ठं, देमित्ति अतिगया, उत्तारंतीए भिन्नं,

---

१ तेन सप्तमे दिवसे दूती प्रेषिता, एकाकी आयाहीति भणित आगतः, गवाक्षे विलग्नः, मनुष्यैः प्रतिबद्धः पल्यङ्केन समं, ह्रियते दिवसे नगरमध्येन, वीथिकरणमूलेन पृच्छयते, भणति–वैद्यगृहं नीयते, अग्रतोऽश्वरथैरुत्क्षिप्तः प्रापितो राजगृहं, श्रेणिकाय कथितं, असिमाकृष्यागतः, अभयेन वारितः, किं क्रियतां ?, सत्कारयित्वा विसृष्टः, प्रीतिर्जाता परस्परं, एवं तावत् अभयस्योत्थानपर्यापणिका, तस्य श्रेणिकस्य चिल्लणादेवी, तस्या उत्थानपर्यापनिका कथ्यते, तत्र राजगृहे प्रसेनजित्सत्को नागनामा रथिकः, तस्य भार्या सुलसा, सोऽपुत्र इन्द्रस्कन्दादीन् नमस्यति, सा श्राविका नेच्छति, अन्यां परिणय, स भणति– तव पुत्रस्तेन कार्यं, तेन वैद्योपदेशेन त्रिभिः शतसहस्रैस्त्रयः तैलकुलवाः पक्वाः, एकदा शक्रालये संलापः–ईदृशी सुलसा श्राविकेति, देव आगतः साधुः, तज्जातीयरूपेण नैषेधिकी कृता, उत्थाय वन्दते, भणति–किमर्थमागमनं युष्माकं ?, शतसहस्रपाकतैलं तद्देहि, वैद्येनोपदिष्टं, ददामीत्यतिगता, अवतारयन्त्या भिन्नं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥६७६॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० ५ शिक्षायां वज्रस्वाम्यु०अभयोदन्तः

अन्नपक्कं गहाय निग्गया, तंपि भिण्णं, तइयंपि भिण्णं, तुट्ठो य साहइ, जहाविहिं बत्तीसंगुलियाउ देइ, कमेण खाहि, बत्तीसं पुत्ता होहिन्ति, जया य ते किंचि पओयणं ताहे संभरिज्जासि एहामित्ति, ताए चिंतियं–केच्चिरं बालरूवाणं असुइयं मलेस्सामि, एयाहिं सव्वाहिंवि एगो पुत्तो हुज्जा, खइयाओ, तओ णाहूया बत्तीसं, पोट्टं वड्ढइ, अद्धितीए काउस्सग्गं ठिया, देवो आगओ, पुच्छइ, साहइ–सव्वाओ खइयाओ, सो भणइ–दुट्ठु ते कयं, एगाउया होहिंति, देवेण उवसामियं उ असायं, कालेणं बत्तीसं पुत्ता जाया, सेणियस्स सरिसव्वया वड्ढंति, तेऽविरहिया जाया, देवदिन्नत्ति विक्खाया। इओ य वेसालिओ चेडओ हेहयकुलसंभूओ तस्स देवीणं अन्नमन्नाणं सत्त धूयाओ, तंजहा–पभावई पउमावई मियावई सिवा जेट्ठा सुजेट्ठा चेल्लणत्ति सो चेडओ सावओ परविवाहकारणस्स पच्चक्खायं (ति) धूयाओ कस्सइ न देइ, ताओ मादिमिस्सग्गाहिं रायाणिं पुच्छित्ता अन्नेसिं इच्छियाणं सरिसयाणं देइ, पभावती वीईभए णयरे उदायणस्स दिण्णा पउमावई

---

१ अन्यपक्कं गृहीत्वा निर्गता, तदपि भिन्नं, तृतीयमपि भिन्नं, तुष्टश्च कथयति, यथाविधि द्वात्रिंशद्गुटिका ददाति, क्रमेण खादयेः, द्वात्रिंशत् पुत्रा भविष्यन्तीति, यदा च ते किञ्चित् प्रयोजनं तदा संस्मरेः आयास्यामीति, तया चिन्तितं–कियच्चिरं बालरूपाणामशुचि मर्दयिष्यामि, एताभिः सर्वाभिरपि एकः पुत्रो भवतु, खादिताः, तत उत्पन्ना द्वात्रिंशत्, उदरं वर्धते, अधृत्या कायोत्सर्गे स्थिता, देव आगतः, पृच्छति, कथयति, सर्वाः खादिताः, स भणति–दुष्टं त्वया कृतं, एकायुष्का भविष्यन्ति, देवेनोपशमितं त्वसातं, कालेन द्वात्रिंशत् पुत्राः जाताः, श्रेणिकस्य सदृग्वयसो वर्धन्ते, तेऽविरहिता जाताः, देवदत्ता इति विख्याताः, इतश्च वैशालिकश्चेटको हैहयकुलसंभूतो तस्य देवीनामन्यान्यासां सप्त दुहितरः, तद्यथा–प्रभावती पद्मावती मृगावती शिवा ज्येष्ठा सुज्येष्ठा चेल्लणेति, स चेटकः श्रावकः परवीवाहकरणस्य प्रत्याख्यातमिति दुहितॄः कस्मैचित् न ददाति, ता मातृमिश्रकादिभिः राजानं पृष्ट्वाऽन्येभ्य इष्टेभ्यः सदृशेभ्यो दीयन्ते, प्रभावती वीतभये उदायनाय दत्ता पद्मावती

॥६७६॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

चंपाए दहिवायणस्स मियावई कोसंबीए सयाणियस्स सिवा उज्जेणीए पज्जोयस्स जेट्ठा कुंडग्गामे वद्धमाणसामिणो जेट्ठस्स णंदिवद्धणस्स दिण्णा, सुजेट्ठा चेल्लणा य कण्णयाओ अच्छंति, तं अंतेउरं परिवायगा अइगया ससमयं तासिं कहेइ, सुजेट्ठाए निप्पिट्ठपसिणवागरणा कया मुहमक्कडियाहिं निच्छूढा पओसमावण्णा निग्गया, अमरिसेण सुजेट्ठारूवं चित्तफलहे काऊण सेणिघरमागया, दिट्ठा सेणिएण, पुच्छिया, कहियं, अधितिं करेइ, दूओ विसज्जिओ वरगो, तं भणइ चेडगो— किहहं वाहियकुले देमित्ति पडिसिद्धो, घोरतरा अधिती जाया, अभयागमो जहा णाए, पुच्छिए कहियं–अच्छह वीसत्था, आणेमित्ति, अतिगओ निययभवणं उवायं चिंतेंतो वाणियरूवं करेइ, सरभेयवण्णभेयाउ काऊण वेसालिं गओ, कण्णंतेउरसमीवे आवणं गिण्हइ, चित्तपडए सेणियस्स रूवं लिहइ, जाहे ताओ कण्णंतेउरवासीओ केज्जगस्स एइ ताहे सुबहुं देइ, ताओवि य दाणमाणसंगहियाओ करेइ, पुच्छंति–किमेयं चित्तपट्टए ?, भणइ–सेणिओ अम्ह सामी, किं एरिसं तस्स

---

१ चम्पायां दधिवाहनाय मृगावती कौशाम्ब्यां शतानीकाय शिवोज्जयिन्यां प्रद्योताय ज्येष्ठा कुण्डग्रामे वर्धमानस्वामिनो ज्येष्ठस्य नन्दिवर्धनस्य दत्ता, सुज्येष्ठा चेल्लणा च कन्ये तिष्ठतः, तदन्तःपुरं प्रव्राजिकाऽतिगता स्वसमयं ताभ्यां कथयति, सुज्येष्ठया निस्पृष्टप्रश्नव्याकरणा कृता मुखमर्कटिकाभिर्निष्काशिता प्रद्वेषमापन्ना निर्गता, अमर्षेण सुज्येष्ठारूपं चित्रफलके कृत्वा श्रेणिकगृहमागता, दृष्टा श्रेणिकेन, पृष्टा, कथितं, अधृतिं करोति, दूतो विसृष्टो वरकः, तं भणति चेटकः–कथमहं वाहिककुलाय ददामीति प्रतिषिद्धः, घोरतराऽधृतिः जाता, अभयागमो यथा ज्ञाते, पृष्टे कथितं–तिष्ठत विश्वस्ताः, आनयामीति अतिगत निजभवनं, उपायं चिन्तयन् वणिग्रूपं करोति, स्वरभेदवर्णभेदौ कृत्वा विशालां गतः, कन्याऽन्तःपुरसमीपे आपणं गृह्णाति, चित्रपटके श्रेणिकस्य रूपं लिखति, यदा ता अन्तःपुरवासिन्यः क्रयायायान्ति तदा सुबहु ददाति, ता अपिच दानमानसंगृहीताः करोति, पृच्छन्ति–किमेतत् चित्रपट्टके ?, भणति–श्रेणिकोऽस्माकं स्वामी, किमीदृशं तस्य

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥६७७॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० ५ शिक्षायां वज्रस्वा-म्यु०कोणि-कोदन्तः

रूवं ?, अभओ भणइ–को समत्थो तस्स रूवं काउं ?, जं वा तं वा लिहियं, दासचेडीहिं कण्णंतेउरे कहियं, ताओ भणियाओ–आणेह ताव तं पट्टगं, दासीहि मग्गिओ न देइ, मा मज्झ सामिए अवन्नं काहिहि, बहुयाहि जायणियाहिं दिण्णो, पच्छण्णं पवेसिओ, दिट्ठो सुजेट्ठाए, दासीओ विभिण्णरहस्साओ कयाओ, सो वाणियओ भणिओ–कहं सेणिओ भत्ता भविज्जइ ?, सो भणइ–जइ एवं तो इहं चेव सेणियं आणेमि, आणिओ सेणिओ, पच्छन्ना सुरंगा खया, जाव कण्णंतेउरं, सुजेट्ठा चेल्लणं आपुच्छइ–जामि सेणिएण समंति, दोवि पहावियाओ, जाव सुजेट्ठा आभरणाणं गया ताव मणुस्सा सुरुंगाए उब्बुडा चेल्लणं गहाय गया, सुजेट्ठाए आराडी मुक्का, चेडगो संनद्धो, वीरंगओ रहिओ भणइ–भट्टारगा ! मा तुब्भे वच्चेह, अहं आणेमित्ति निग्गओ, पच्छओ लग्गइ, तत्थ दरीए एगो रहमग्गो, तत्थ ते बत्तीसंपि सुलसापुत्ता ठिता, ते वीरंगएण एक्केण सरेण मारिया, जाव सो ते रहे ओसारेइ ताव सेणिओ पलाओ, सोवि नियत्तो, सेणिओ सुजेट्ठं संलवइ,

१ रूपं ?, अभयो भणति–कः समर्थस्तस्य रूपं कर्तुं ?, यद्वा तद्वा लिखितं, दासचेटीभिः कन्याऽन्तःपुरे कथितं, ता भणिताः–आनयत तावत् तं पट्टकं, दासीभिर्मार्गितो न ददाति, मा मम स्वामिनोऽवज्ञां कार्षीत्, बहुकाभिर्याचनाभिर्दत्तः, प्रच्छन्नं प्रवेशितः, दृष्टः सुज्येष्ठया, दास्यो विभिन्नरहस्याः कृताः, स वणिग् भणितः-कथं श्रेणिको भर्त्ता भवेत् ?, स भणति–यद्येवं तदेहैव श्रेणिकमानयामि, आनीतः श्रेणिकः, प्रच्छन्ना सुरङ्गा खाता, यावत्कन्याऽन्तःपुरं, सुज्येष्ठा चेल्लणामापृच्छति–यामि श्रेणिकेन सममिति, द्वे अपि प्रधाविते, यावत् सुज्येष्ठा आभरणेभ्यो गता तावत् मनुष्याः सुरङ्गायां उद्याताश्चेल्लणां गृहीत्वा गताः, सुज्येष्ठयाऽऽराटिर्मुक्ता, चेटकः सन्नद्धः, वीराङ्गदो रथिको भणति–भट्टारका ! मा यूयं व्रजिष्ट, अहमानयामीति निर्गतः, पृष्ठतो लगति, तत्र दर्यामेको रथमार्गः, तत्र ते द्वात्रिंशदपि सुलसापुत्राः स्थिताः, ते वीराङ्गदेनैकेन शरेण मारिताः, स यावत्तान् रथान् अपसारयति तावत् श्रेणिकः पलायितः, सोऽपि निवृत्तः श्रेणिकः सुज्येष्ठां संलपति,

॥६७७॥

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२६]

सा भणइ-अहं चेल्लणा, सेणिओ भणइ-सुजेट्ठतुरिया तुमं चेव, सेणियस्स हरिसोवि विसाओवि विसाओ रहियमारणेण हरिसो चेल्लणालंभेण, चेल्लणाएवि हरिसो तस्स रूवेणं विसादो भगिणीवंचणेण, सुजिट्ठावि धिरत्थु कामभोगाणंति पव्व-तिया, चेल्लणाएवि पुत्तो जाओ कोणिओ नाम, तस्स का उप्पत्ती ?, एगं पच्चंतणयरं, तत्थ जियसत्तुरण्णो पुत्तो सुमंगलो, अमच्चपुत्तो सेणगोत्ति पोट्टिओ, सो हसिज्जइ, पाणिए उच्चोलएहिं मारिज्जइ सो दुक्खाविज्जइ सुमंगलेण, सो तेण निव्वे-एण बालतवस्सी पव्वइओ, सुमंगलोवि राया जाओ, अण्णया सो तेण ओगासेण वोलेंतो पेच्छइ तं बालतवस्सिं, रण्णा पुच्छियं-को एसत्ति ?, लोगो भणइ-एस एरिसं तवं करेति, रायाए अणुकंपा जाया, पुव्विं दुक्खावियगो, निमंतिओ, मम घरे पारेहित्ति, मासक्खमणे पुण्णे गओ, राया पडिलग्गो न दिण्णं दारपालेहिं दारं, पुणोवि उट्ठियं पविट्ठो, संभरिओ, पुणो गओ निमंतेइ, आगओ, पुणोवि पडिलग्गो राया, पुणोवि उट्ठियं पविट्ठो, पुणोवि निमंतेइ तइयं, सो तइयाए

१ सा भणति-अहं चेल्लणा, श्रेणिको भणति-सुज्येष्ठायास्त्वरिता त्वमेव, श्रेणिकस्य हर्षोऽपि विषादोऽपि, विषादो रथिकमारणेन हर्षश्चेल्लणालाभेन, चेल्लणाया अपि हर्षस्तस्य रूपेण विषादो भगिनीवञ्चनेन, सुज्येष्ठापि धिगस्तु कामभोगानिति प्रव्रजिता चेल्लणाया अपि पुत्रो जातः कोणिकनामा, तस्य कोत्पत्तिः ? एकं प्रत्यन्तनगरं, तत्र जितशत्रुराजस्य पुत्रः सुमङ्गलः, अमात्यपुत्रः सेनक इति महोदरः, स हस्यते, पाणिभ्यां उच्चुलुकैर्मार्यते, स दुःख्यते सुमङ्गलेन, स तेन निर्वेदेन बालतपस्वी प्रव्रजितः, सुमङ्गलोऽपि राजा जातः, अन्यदा स तेनावकाशेन व्यतिव्रजन् पश्यति तं बालतपस्विनं, राज्ञा पृष्टं-क एष इति ?, लोको भणति-एष ईदृशं तपः करोति, राज्ञोऽनुकम्पा जाता, पूर्वं दुःखितो, निमन्त्रितः मम गृहे पारयेति, मासक्षपणे पूर्णे गतः, राजा प्रतिलग्नः (ग्लानो जातः), न दत्तं द्वारपालैर्द्वारं, पुनरप्युत्थितं (प्युट्ठिकां) प्रविष्टः, संस्मृतः, पुनर्गतो निमन्त्रयति, आगतः, पुनरपि प्रतिभग्नो राजा, पुनरप्युट्ठिकां प्रविष्टः, पुनरपि निमन्त्रयति तृतीयवारं, स तृतीयवारे

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥६७८॥

आगओ दुवारपालेहिं पिट्टिओ, जइवारा एइ तइवारा राया पडिलग्गइ, सो निग्गओ, अह अधितीए निग्गओ पव्वइओ एइणा धरिसिओ, नियाणं करेइ–एयस्स वहाए उववज्जामित्ति, कालगओ, अप्पिड्ढिओ वाणमंतरो जाओ, सोऽवि राया तावसभत्तो तावसो पव्वइओ सोवि वाणमंतरो जाओ, पुव्विं राया सेणिओ जाओ, कुंडी-समणो कोणिओ, जं चेव चेल्लणाए पोट्टे उववण्णो तं चेव चिंतेइ–कहं रायाणं अक्खीहिं न पेक्खेज्जा ?, तीए चिंतियं–एयस्स गब्भस्स दोसोत्ति गब्भं, साडणेहिवि न पडइ, डोहलकाले दोहलो, किह ?, सेणियस्स उदरवलिमंसाणि खायज्जा, अपूरंते परिहायइ, न य अक्खाइ, णिब्बंधे सवहसावियाए कहियं, तओ अभयस्स कहियं, ससगचंमेण समं मंसं कप्पेत्ता वलीए उवरिं दिन्नं, तीसे ओलोयणगयाए पिच्छमाणीए दिज्जइ, राया अलियप-मुच्छियाणि करेइ, चेल्लणा जाहे सेणियं चिंतेइ ताहे अद्धितीय उप्पज्जइ, जाहे गब्भं चिंतेइ ताहे कहं सव्वं खाएज्जत्ति ?, एवं विणीओ दोहलो, णवहिं मासेहिं दारगो जाओ, रण्णो णिवेइयं, तुट्ठो, दासीए छड्डाविओ असोगवणियाए, कहियं

४ प्रतिक्र-मणाध्य० योगसं० ५ शिक्षायां वज्रस्वा-म्यु०कोणि कोदन्तः

१ आगतो द्वारपालैः पिट्टितः, यतिवारा आयाति ततिवारा राजा प्रतिभज्यते, स निर्गतः, अस्याधृत्या निर्गतः प्रव्रजित एतेन धर्षितः, निदानं करोति–एतस्य वधायोपपद्ये इति, कालगतः, अल्पर्द्धिको व्यन्तरो जातः, सोऽपि राजा तापसभक्तः, तापसः प्रव्रजितः सोऽपि व्यन्तरो जातः, पूर्वं राजा श्रेणिको जातः, कुण्डीश्रमणः कोणिकः, यदैव चेल्लणाया उदरे उत्पन्नस्तदैव चिन्तयति–कथं राजानमक्षिभ्यां न प्रेक्षेय, तया चिन्तितं–एतस्य गर्भस्य दोष इति गर्भं, शातनैरपि न पतति, दोहदकाले दोहदः, कथं ?, श्रेणिकस्योदरवलिमांसानि खादेयं, अपूर्यमाणे परिहीयते, न चाख्याति, निर्बन्धे शपथशापितया कथितं, ततोऽभयाय कथितं, शशकचर्मणा समं मांसं कल्पयित्वा वल्या उपरि दत्तं, तस्यायवलोकनगतायै प्रेक्षमाणायै दीयते, राजा अलीकप्रमूर्च्छनानि करोति, चेल्लणा यदा श्रेणिकं चिन्तयति तदाऽधृतिरुत्पद्यते, यदा गर्भं चिन्तयति यदा कथं सर्वं खादेयमिति, एवं व्यपनीतो दौर्हृदः, नवसु मासेषु दारको जातः, राज्ञे निवेदितं, तुष्टः, दास्या त्याजितोऽशोकवनिकायां, कथितं

॥६७८॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२६]

[1]सेणियस्स, आगओ, अंबाडिया, किं से पढमपुत्तो उज्झिओत्ति ?, गओ असोगवणियं, तेणं सो उज्जीविओ, असोगचंदो से नामं कयं, तत्थवि कुक्कुडिपिंछएणं कोणंगुलीऽहिविद्धा, सुकुमालिया सा न पउणइ, कूणिया जाया, ताहे से दारएहि नामं कयं कूणिओत्ति, जाहे य तं अंगुलिं पूइ गलंति सेणिओ मुहे करेइ ताहे ठाति, इयरहा रोवइ, सो य संवड्ढइ, इओ य अण्णे दो पुत्ता चेल्लणाए जाया–हल्लो विहल्लो य, अण्णे सेणियस्स बहवे पुत्ता अण्णासिं देवीणं, जाहे य किर उज्जाणियांखंधावारो जाओ, ताहे चेल्लणा कोणियस्स गुलमोयए पेसेइ हल्लविहल्लाणं खंडकए, तेण वेरेण कोणिओ चिंतेइ-एए सेणिओ मम देइत्ति पओसं वहइ, अण्णया कोणियस्स अट्ठहिं रायकन्नाहिं समं विवाहो जाओ, जाव उप्पिं पासायवरगओ विहरइ, एसा कोणियस्स उप्पत्ती परिकहिया । सेणियस्स किर रण्णो जावतियं रज्जस्स मोल्लं तावतियं देवदिन्नस्स हारस्स सेयणगस्स गंधहत्थिस्स, एएसिं उट्ठाणं परिकहेयव्वं, हारस्स का उप्पत्ती–कोसंबीए णयरी धिज्जाइणी

---

१ श्रेणिकाय, आगतः, उपालब्धा, किं तया प्रथमपुत्र उज्झित इति?, गतोऽशोकवनिकां, तेन स उज्जीवितः, अशोकचन्द्रस्तस्य नाम कृतं, तत्रापि कुक्कुटपिच्छेन कोणेऽङ्गुलिरभिविद्धा, सुकुमालिका सा न प्रगुणीभवति, वक्रा जाता, तदा तस्य दारकैर्नाम कृतं कूणिक इति, यदा च तस्या अङ्गुल्याः पूतिः स्रवति श्रेणिको मुखे करोति तदा उपरतरुदितो भवति, इतरथा रोदिति, स च संवर्धते, इतश्चान्यौ द्वौ पुत्रौ चेल्लणाया जातौ, हल्लो विहल्लश्च, अन्ये श्रेणिकस्य बहवः पुत्रा अन्यासां देवीनां, यदा च किल उद्यानिकास्कन्धावारो जातस्तदा चेल्लणा कोणिकाय गुडमोदकान् प्रेषते हल्लविहल्लाभ्यां खण्डाकृतान्, तेन वैरेण कोणिकश्चिन्तयति, एतान् श्रेणिको मह्यं ददातीति प्रद्वेषं वहति, अन्यदा कोणिकस्याष्टभिः राजकन्याभिः समं विवाहो जातः, यावत् उपरि प्रासादवरस्य गतो विहरति, एषा कोणिकस्योत्पत्तिः परिकथिता । श्रेणिकस्य किल यावत् राज्यस्य मूल्यं तावत् देवदत्तस्य हारस्य सेचनकस्य गन्धहस्तिनः, एतयोरुत्थानं परिकथयितव्यं, हारस्य कोत्पत्तिः ?–कोशाम्ब्यां धिग्जातीया

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया

॥६७९॥

४ प्रतिक्रम-योग० ५शिक्षायां वज्रस्वाम्यु०सेडुकवृत्तान्तः

गुंविणी पई भणइ–घयमोल्लं विढवेहि, कं मग्गामि ?, भणइ–रायाणं पुप्फेहि ओलग्गाहि, न य वारिज्जिहिसि, सो य उलग्गिओ पुप्फफलादीहिं, एवं कालो वच्चइ, पज्जोओ य कोसंबिं आगच्छइ, सो य सयाणिओ तस्स भएण जउणाए दाहिणं कूलं उद्ववित्ता उत्तरकूलं एइ, सो य पज्जोओ न तरइ जउणं उत्तरिउं, कोसंबीए दक्खिणपासे खंधावारं निवेसित्ता चिट्ठइ, ता बेइ–जे य तस्स तणहारिगाई तेसिं वायस्सिओ गहियओ कन्ननासादि छिंदइ सयाणि य मणुस्सा एवं परिखीणा, एगाए रत्तीए पलाओ, तं च तेण पुप्फपुडियागएण दिट्ठं, रण्णो य निवेइयं, राया तुट्ठो भणइ–किं देमि ?, भणति–बंभणिं पुच्छामि, पुच्छित्ता भणइ–अग्गासणे कूरं मग्गाहित्ति, एवं सो जेमेइ दिवसे २ दीणारं देइ दक्खिणं, एवं ते कुमारामच्चा चिंतेंति–एस रण्णो अग्गासणिओ दाणमाणग्गिहीओ कीरउत्ति ते दीणारा देंति, खद्धादाणिओ जाओ, पुत्तावि से जाया, सो तं बहुयं जेमेयवं, न तीरइ, ताहे दक्खिणालोभेण वमेउं २ जिमिओ, पच्छा से कोढो

१ गुर्वी पतिं भणति–घृतमूल्यमुपार्जय, कं मार्गयामि ?, भणति–राजानमवलग पुष्पैः, न च वार्यसे, स चावलग्नः पुष्पफलादिभिः, एवं कालो व्रजति, प्रद्योतश्च कौशाम्बीमागच्छति, स च शतानीकस्तस्य भयेन यमुनाया दक्षिणं कूलं उत्थाप्योत्तरकूलं गच्छति, स च प्रद्योतो न तरति यमुनामुत्तरीतुं, कौशाम्ब्या दक्षिणपार्श्वे स्कन्धावारं निवेश्य तिष्ठति, तदा ब्रवीति–ये च तस्य तृणहारकादयस्तेषां वागाश्रितो गृहीतः कर्णनासादि छिनत्ति शतानि च मनुष्याणां एवं परिक्षीणानि, एकस्यां रात्रौ पलायितः, तच्च तेन पुष्पपुटिकागतेन दृष्टं, राज्ञे च निवेदितं, राजा तुष्टो भणति–किं ददामि ?, भणति–ब्राह्मणीं पृच्छामि, पृष्ट्वा भणति–अग्रासनेन सह कूरं मार्गयेति, एवं स जेमति दिवसे २ ददाति दीनारं दक्षिणां, एवं ते कुमारामात्याश्चिन्तयन्ति–एष राज्ञोऽग्रासनिको दानमानगृहीतः क्रियतामिति दीनारान् ददति, बहुदानीयो जातः, पुत्रा अपि तस्य जाताः, स तत् बहुकं जेमितव्यं, न शक्यते, तदा दक्षिणालोभेन वान्त्वा २ जिमितः, पश्चात्तस्य कुष्ठं

॥६७९॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

[१]जाओ, अभिग्रस्तस्तेन, ताहे कुमारामच्चा भणंति–पुत्ते ! विसज्जेह, ताहे से पुत्ता जेमेइ, ताणवि तहेव, संतती कालंतरेण पिउणा लज्जिउमारद्धा, पच्छिमे से निलओ कओ, ताओवि से सुण्हाओ न तहा वट्टिउमारद्धाओ, पुत्तावि नाढायंति, तेण चिंतियं–एयाणि मम दव्वेण वड्डियाणि ममं चेव नाढायंति, तहा करेमि जहेयाणिवि वसणं पाविंति, अन्नया तेण पुत्ता सद्दाविया, भणइ–पुत्ता ! किं मम जीविएणं ?, अम्ह कुलपरंपरागओ पसुवहो तं करेमि, तो अणसणं काहामि, तेहिं से कालगओ छगलओ दिण्णो, सो तेण अप्पगं उल्लिहावेइ, उल्लोलियाओ य खवावेइ, जाहे नायं सुगहिओ एस कोढेणंति ताहे लोमाणि उप्पाडेइ फुसिंत्ति एन्ति, ताहे मारेत्ता भणइ–तुब्भेहिं चेव एस खाएयव्वो, तेहिं खइओ, कोढेण गहियाणि, सोवि उट्ठेत्ता नट्ठो, एगत्थ अडवीए पव्वयदरीए णाणाविहाणं रुक्खाणं तयापत्तफलाणि पडंताणि तिफला य पडिया, सो सारएण उण्हेण कक्को जाओ, तं निविण्णो पियइ, तेणं पोट्टं भिण्णं, सोहिए सज्जो जाओ, आगओ सगिहं,

१ जातं, तदा कुमारामात्या भणन्ति–पुत्रान् विसृज, तदा तस्य पुत्रा जेमन्ति, तेषामपि तथैव, संततिः कालान्तरे पितुर्लज्जितुमारब्धा, पश्चिमे तस्य निलयः कृतः, ता अपि तस्य स्नुषा न तथा वर्त्तितुमारब्धाः, पुत्रा अपि नाद्रियन्ते, तेन चिन्तितं–एते मम द्रव्येण वृद्धा मामेव नाद्रियन्ते, तथा करोमि यथैतेऽपि व्यसनं प्राप्नुवन्ति, अन्यदा तेन पुत्राः शब्दिताः, भणति–पुत्राः ! मम किं जीवितेन ?, अस्माकं कुलपरम्परागतः पशुवधः तं करोमि, ततोऽनशनं करिष्यामि, तैस्तस्मै कृष्णश्छगलो दत्तः, स तेनात्मीयं (तनुं) चुम्बयति, मलगुटिकाश्च खादयति, यदा ज्ञातं सुगृहीत एष कुष्ठेनेति तदा रोमाण्युत्पाटयति झटित्यायान्ति, तदा मारयित्वा भणति–युष्माभिरेवैष खादितव्यः, तैः खादितः, कुष्ठेन गृहीताः, सोऽप्युत्थाय नष्टः, एकत्र अटव्यां पर्वतदर्यां नानाविधानां वृक्षाणां त्वक्पत्रफलानि पतन्ति त्रिफला च पतिता, स शारदेन उष्णेन कल्को जातः, ततो निर्विण्णस्तं पिबति, तेनोदरं भिन्नं, शुद्धो सज्जो जातः, आगतः स्वगृहं,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२६]

आवश्यक-
हारिभ-
द्रीया

॥६८०॥

जणो भणइ–किह ते नट्ठं, भणइ–देवेहि मे नासियं, ताणि पेच्छइ–सडसडिंताणि, किह तो तुब्भेवि मम खिंसह?, ताहे ताणि भणंति–किं तुमे पावियाणि ?, भणइ—बाढंति, सो जणेण खिंसिओ, ताहे नट्ठो गओ रायगिहं दारवालिएण समं दारे वसइ, तत्थ बारजक्खणीए सो मरुओ भुंजइ, अण्णया बहू उंडेरया खइया, सामिस्स समोसरणं, सो बारवालिओ तं ठवेत्ता भगवओ वंदओ एइ, सो बारं न छड्डेइ, तिसाइओ मओ वावीए मंडुक्को जाओ, पुव्वभवं संभरइ, उत्तिण्णो वावीए पहाइओ सामिवंदओ, सेणिओ य नीति, तत्थेगेण बारवालिओ किसोरेण अक्कंतो मओ देवो जाओ, सक्को सेणियं पसंसइ, सो समोसरणे सेणियस्स मूले कोढियरूवेणं निविट्ठो तं चिरिका फोडित्ता सिंचइ, तत्थ सामिणा छियं, भणइ–मर, सेणियं जीव, अभयं जीव वा मर वा, कालसोरियं मा मर मा जीव, सेणिओ कुविओ भट्टारओ मर भणिओ, मणुस्सा सण्णिया, उट्ठिए समोसरणे पलोइओ, न तीरइ णाउं देवोत्ति, गओ घरं, बिइयदिवसे पए आगओ, पुच्छइ—सो कोत्ति?,

१ जनो भणति–कथं तव नष्टं ?, भणति–देवैर्मे नाशितं, ते पश्यन्ति–शटितशटितानि (पूतीनि स्वाङ्गानि), कथं तत् यूयमपि मां निन्दत?, तदा ते भणन्ति–किं त्वया प्रापिताः ?, भणति–बाढमिति, स जनेन निर्भर्त्सितः, तदा नष्टो गतो राजगृहं द्वारपालकेन समं द्वारे वसति, तत्र द्वारपक्षावासे स मरुको भुङ्क्ते, अन्यदा बहवो वटका भुक्ताः, स्वामिनः समवसरणं, स द्वारपालस्तं स्थापयित्वा भगवद्वन्दको गतः, स द्वारं न त्यजति, तृषार्दितो मृतो वाप्यां मण्डूको जातः, पूर्वभवं स्मरति, अवतीर्णो वाप्याः प्रधावितः स्वामिवन्दकः, श्रेणिकश्च निर्गच्छति, द्वारपालः तत्रैकेन किशोरेणाक्रान्तो मृतो देवो जातः, शक्रः श्रेणिकं प्रशंसति, स समवसरणे श्रेणिकस्य मूले (अन्तिके) कुष्ठिरूपेण निविष्टः तं स्फोटकान् स्फोटयित्वा सिञ्चति, तत्र स्वामिना क्षुतं, भणति–म्रियस्व, श्रेणिकं जीव, अभयं जीव वा म्रियस्व वा, कालशौकरिकं मा म्रियस्व मा जीव, श्रेणिकः कुपितः भट्टारकं (प्रति) म्रियस्वेति भणितं, मनुष्याः संज्ञिताः, उत्थिते समवसरणे प्रलोकितः, न शक्यते ज्ञातुं देव इति, गतो गृहं, द्वितीयदिवसे प्रगे आगतः, पृच्छति–स क इति,

४ प्रतिक्रम-
योग० ५शि
क्षायां वज्र-
स्वाम्यु०सेडु
कवृत्तान्तः

॥६८०॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

तओ सेडुगवत्तंतं सामी कहेइ, जाव देवो जाओ, ता तुब्भेहिं छीए किं एवं भणइ ?, भगवं ममं भणइ–किं संसारे अच्छह निव्वाणं गच्छेति, तुमं पुण जाव जीवसि ताव सुहं मओ नरयं जाहिसित्ति, अभओ इहवि चेइयसाहुपूयाए पुण्णं समज्जिणइ मओ देवलोगं जाहिति, कालो जइ जीवइ दिवसे २ पंच महिससयाइं वावाएइ मओ नरए गच्छइ, राया भणइ–अहं तुब्भेहिं नाहेहिं कीस नरयं जामि ? केण उवाएण वा न गच्छेज्जा ?, सामी भणइ–जइ कविलं माहणिं भिक्खं दावेसि कालसूरियं सूणं मोएसि तो न गच्छसि नरयं, वीमंसियाणि सव्वप्पगारेण नेच्छंति, सो य किर अभवसिद्धीओ कालो, धिज्जाइयाणिया कविला न पडिवज्जइ जिणवयणं, सेणिएण धिज्जाइणी भणिया सामेण–साहू वंदाहि, सा नेच्छइ, मारेमि ते, तहावि नेच्छइ, कालोवि नेच्छइत्ति, भणइ–मम गुणेण एत्तिओ जणो सुहिओ नगरं च, एत्थ को दोसो ?, तस्स पुत्तो पालगो नाम सो अभएण उवसामिओ, कालो मरिउमारद्धो, तस्स पंचमहिसगसयघातेहिं से ऊणं अहे सत्तमया

---

१ ततः सेडुकवृत्तान्तं स्वामी कथयति, यावद्देवो जातः, तर्हि युष्माभिः क्षुते किमेवं भणति ?, आह भगवान् मां भणति-किं संसारे तिष्ठत निर्वाणं गच्छतेति, त्वं पुनर्यावज्जीवसि तावत्सुखितो मृतो नरकं यास्यसीति, अभय इहापि चैत्यसाधुपूजया पुण्यं समुपार्जयति मृतो देवलोकं यास्यति, कालिको यदि जीवेत् दिवसे २ महिषपञ्चशतीं व्यापादयति मृतो नरकं गमिष्यति, राजा भणति–अहं युष्मासु नाथेषु कथं नरकं गमिष्यामि ?, केन वोपायेन न गच्छेयं ?, स्वामी भणति–यदि कपिलां ब्राह्मणीं भिक्षां दापयसि कालशौकरिकात् सूनां मोचयसि तदा न गच्छसि नरकं, प्रज्ञापितौ सर्वप्रकारेण नेच्छतः, स किलाभव्यसिद्धिकः कालिकः, धिग्जातीया कपिला न प्रतिपद्यते जिनवचनं, श्रेणिकेन धिग्जातीया भणिता साम्ना–साधून् वन्दस्व, सा नेच्छति, मारयामि त्वां, तथापि-न प्रतिपद्यते, कालिकोऽपि नेच्छतीति, भणति–मम गुणेनेयान् जनः सुखी नगरं च, अत्र को दोषः, तस्य पुत्रः पालको नामाभयेन स उपशमितः, कालिको मर्तुमारब्धः, तस्य महिषपञ्चशत्या घातेनाथोनमधः सप्तमी–

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥६८१॥

पंाउग्गं, अण्णया महिससयाणि पंच पुत्तेण से पलावियाणि, तेण विभंगेण दिट्ठाणि मारियाणि य, सोलस य रोगायंका पाउब्भूया विवरीया इंदियत्था जाया जं दुग्गंधं तं सुगंधं मन्नइ, पुत्तेण य से अभयस्स कहियं, ताहे चंदणिउदगं दिज्जइ, भणइ–अहो मिट्ठं विट्ठेण आलिप्पइ पूइमंसं आहारो, एवं किसिऊण मओ अहे सत्तमं गओ, ताहे सयणेण पुत्तो से ठविज्जइ सो नेच्छइ, मा नरगं जाइस्सामित्ति सो नेच्छइ, ताई भणंति–अम्हे विगिंचिस्सामो तुमं नवरं एक्कं मारेहि सेसए सव्वे परियणो मारेहिति, इत्थीए महिसओ बिइए कुहाडो य रत्तचंदणेणं रत्तकणवीरेहिं, दोवि डंडीया मा तेण कुहाडएण अप्पा हओ पडिओ विलवइ, सयणं भणइ–एयं दुक्खं अवणेह, भणंती–न तीरंति, तो कहं भणह–अम्हे विगिंचामोत्ति ?, एयं पसंगेण भणियं, तेण देवेणं सेणियस्स तुट्ठेण अट्ठारसवंको हारो दिण्णो दोण्णि य अक्खलियवट्टा दिण्णा, सो हारो चेल्लणाए दिण्णो पियत्ति काउं, वट्टा नंदाए, ताए रुट्ठाए किमहं चेडरूवत्तिकाऊण अनिरक्खिया खंभे आवडिया भग्गा,

४ प्रतिक्रयोग० ५शिक्षायां वज्रस्वाम्यु० कालिकशौकरिका.

१ प्रायोग्यं, अन्यदा महिषपञ्चशती पुत्रेण तस्य पलायिता, तेन विभङ्गेन दृष्टा मारिता च, षोडश रोगातङ्काश्च प्रादुर्भूताः विपरीता इन्द्रियार्था जाता यत् दुर्गन्धं तत्सुगन्धि मन्यते, पुत्रेण च तस्याभयाय कथितं, तदा वर्चोगृहोदकं दीयते, भणति–अहो मिष्टं विष्ठयोपलिप्यते पूतिमांसमाहारः, एवं क्लिष्टा मृतोऽधः सप्तम्यां गतः, तदा स्वजनेन तस्य पुत्रः स्थाप्यते स नेच्छति, मा नरकं गममिति स नेच्छति, ते भणन्ति–वयं विभक्ष्यामस्त्वं परमेकं मारय शेषान् सर्वान् परिजनो मारयिष्यति, स्त्रिया महिषो द्वितीयया कुठारो रक्तचन्दनेन रक्तकणवीरैः (मण्डितौ), द्वावपि मा दण्डिता भूव तेन कुठारेणात्मा हतः पतितो विलपति, स्वजनं भणति–एतद्दुःखमपनयत, भणन्ति–न शक्यते, तत् कथं भणत–वयं विभक्ष्याम इति ?, एतत्प्रसङ्गेन भणितं, तेन देवेन श्रेणिकाय तुष्टेनाष्टादशसरिको हारो दत्तः द्वौ चास्फाल्यवृत्तौ दत्तौ, स हारश्चेल्लणायै दत्तः प्रियेतिकृत्वा, वृत्तौ नन्दायै, तया रुष्टया किमहं चेटरूपेतिकृत्वा दूरं क्षिप्तौ, स्तम्भे आपतितौ भग्नौ,

॥६८१॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२६]

तत्थ एगंमि कुंडलजुयलं एगंमि देवदूसजुयलं, तुट्ठाए गहियाणि, एवं हारस्स उप्पत्ती । सेयणगस्स का उप्पत्ती ?, एगत्थ वणे हत्थिजूहं परिवसइ, तंमि जूहे एगो हत्थी जाए जाए हत्थिचेल्लए मारेइ, एगा गुव्विणी हत्थिणिगा, सा य ओसरित्ता एक्कल्लिया चरइ, अण्णया कयाइ तणपिंडियं सीसे काऊण तावसासमं गया, तेसिं तावसाणं पाएसु पडिया, तेहिं णायं–सरणागया वराई, अण्णया तत्थ चरंती वियाया पुत्तं, हत्थिजूहेण समं चरंती छिद्देण आगंतूण थणं देइ, एवं संवड्ढइ, तत्थ तावसपुत्ता पुप्फजाईओ सिंचंति, सोवि सोंडाए पाणियं नेऊण सिंचइ, ताहे नामं कयं सेयणओत्ति, संवड्ढिओ मयगलो जाओ, ताहे णेण जूहवई मारिओ, अप्पणा जुहं पडिवण्णो, अण्णया तेहिं तावसेहिं राया गामं दाहितित्ति मोयगेहि लोभित्ता रायगिहं नीओ, णयरं पवेसेत्ता बद्धो सालाए, अण्णया कुलवती तेण चेव पुव्वब्भासेण ढुक्को किं पुत्ता! सेयणग ओच्छगं च से पणामेइ, तेण सो मारिओ, अण्णे भणंति–जूहवइत्तणे ठिएणं मा अण्णावि वियातित्ति ते

---

१ तत्रैकस्मिन् कुण्डलयुगलमेकस्मिन् देवदुष्ययुगलं, तुष्टया गृहीतानि, एवं हारस्योत्पत्तिः,। सेचनकस्य कोत्पत्तिः ?, एकत्र वने हस्तियूथं परिवसति, तस्मिन् यूथे एको हस्ती जातान् जातान् हस्तिकलभान् मारयति, एका गुर्व्वी हस्तिनी, सा चापसृत्यैकाकिनी चरति, अन्यदा कदाचित् तृणपिण्डिकां शीर्षे कृत्वा तापसाश्रमं गता, तेषां तापसानां पादयोः पतिता, तैर्ज्ञातं–शरणागता वराकी, अन्यदा तत्र चरन्ती प्रजनितवती पुत्रं, हस्तियूथेन समं चरन्ती अवसरे आगत्य स्तनं ददाति, एवं संवर्धते, तत्र तापसपुत्राः पुष्पजातीः सिञ्चन्ति, सोऽपि शुण्डया पानीयमानीय सिञ्चति, तदा नाम कृतं सेचनक इति, संवृद्धो मदकलो जातः, तदाऽनेन यूथपतिर्मारितः, आत्मना यूथं प्रतिपन्नं, अन्यदा तैस्तापसै राजा ग्रामं दास्यतीति लोभयित्वा मोदकै राजगृहं नीतः, नगरं प्रवेश्य बद्धः शालायां, अन्यदा कुलपतिस्तेनैव पूर्वाभ्यासेनागतः, किं पुत्र सेचनक! वस्त्रं च तस्मै क्षिपति, तेन स मारितः, अन्ये भणन्ति–यूथपतित्वे स्थितेन माऽन्यापि प्रजीजनदिति ते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥६८२॥

४ प्रतिक्रम- योग० ५शिक्षायां वज्र स्वाम्यु० सेचनक-पूर्वभवः

तावसउडया भग्गा तेहिं तावसेहिं रुट्ठेहिं सेणियस्स रण्णो कहियं, ताहे सेणिएण गहिओ, एसा सेयणगस्स उप्पत्ती। पुव्वभवो तस्स–एगो धिज्जाइओ जन्नं जयइ, तस्स दासो तेण जन्नवाडे ठविओ, सो भणइ–जइ सेसं मम देहि तो ठामि इयरहा ण, एवं होउत्ति सोवि ठिओ, सेसं साहूण देइ, देवाउयं निबद्धं देवलोगाओ चुओ सेणियस्स पुत्तो नंदिसेणो जाओ, धिज्जाइओऽवि संसारं हिंडित्ता सेयणगो जाओ, जाहे किर नंदिसेणो विलग्गइ ताहे ओहयमणसंकप्पो भवइ, विमणो होइ, ओहिणा जाणइ, सामी पुच्छिओ, एयं सव्वं कहेइ, एस सेयणगस्स पुव्वभवो। अभओ किर सामिं पुच्छइ–को अपच्छिमो रायरिसित्ति ?, सामिणा उदायणो वागरिओ, अओ परं बद्धमउडा न पव्वयंति, ताहे अभएण रज्जं दिज्जमाणं न इच्छियं, पच्छा सेणिओ चिंतेइ–कोणियस्स रज्जं दिज्जिहित्ति हल्लस्स हत्थी दिन्नो विहल्लस्स देवदिन्नो हारो, अभएण पव्वयंतेण नंदाए य खोमजुयलं कुंडलजुयलं हल्लविहल्लाणं दिण्णाणि, महया विभवेण अभओ समाऊओ पव्वइओ, अण्णया

१ तापसोटजा भग्नास्तैस्तापसै रुष्टैः श्रेणिकस्य राज्ञः कथितं, तदा श्रेणिकेन गृहीतः, एषा सेचनकस्योत्पत्तिः। तस्य पूर्वभवः–एको धिग्जातीयो यज्ञं यजते, तस्य दासो यज्ञपाटे तेन स्थापितः, स भणति–यदि शेषं मह्यं दास्यसि तर्हि तिष्ठामि इतरथा न, एवं भवत्विति सोऽपि स्थितः, शेषं साधुभ्यो ददाति, देवायुर्निबद्धं, देवलोकाच्युतः श्रेणिकस्य पुत्रो नन्दिषेणो जातः, धिग्जातीयोऽपि संसारं हिण्डित्वा सेचनको जातः, यदा किल नन्दिषेण आरोहति तदोपहतमनः संकल्पो भवति विमनस्को भवति, अवधिना (विभङ्गेन) जानाति, स्वामी पृष्टः एतत् सर्वं कथयति, एष सेचनकस्य पूर्वभवः। अभयः किल स्वामिनं पृच्छति–कोऽपश्चिमो राजर्षिरिति ?, स्वामिनोदायनो व्याकृतः, अतः परं बद्धमुकुटा न प्रव्रजिष्यन्ति, तदाऽभयेन राज्यं दीयमानं नेष्टं, पश्चात् श्रेणिकश्चिन्तयति–कोणिकाय राज्यं दास्यते इति हल्लाय हस्ती दत्तः विहल्लाय देवदत्तो हारो दत्तः, अभयेन प्रव्रजता नन्दायाः क्षौमयुगलं कुण्डलयुगलं च हल्लविहल्लाभ्यां दत्ते, महता विभवेनाभयः समातृकः प्रव्रजितः, अन्यदा

॥६८२॥

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२६]

कोणिओ कालादीहि दसहिं कुमारेहिं समं मंतेइ–सेणियं बंधेत्ता एक्कारसभाए रज्जं करेमोत्ति, तेहिं पडिसुयं, सेणिओ बद्धो, पुव्वण्हे अवरण्हे य कससयं दवावेइ, चेल्लणाइ कयाइ ढोयं न देइ, भत्तं वारियं, पाणियं न देइ, ताहे चेल्लणा कहवि कुम्मासे वालेहिं बंधित्ता सयाउं च सुरं पवेसेइ, सा किर धोवइ सयवारे सुरा पाणियं सव्वं होइ। अण्णया तस्स पउमावईए देवीए पुत्तो उदायितकुमारो जेमंतस्स उच्छंगे ठिओ, सो थाले मुत्तेति, न चालेइ मा दूमिज्जिहित्ति (जत्तिए) मुत्तियं तत्तियं कूरं अवणेइ, मायं भणति–अम्मो ! अण्णस्सवि कस्सवि पुत्तो एप्पिओ अत्थि ?, मायाए सो भणिओ– दुरात्मन् तव अंगुली किमिए वमंती पिया मुहे काऊण अच्छियाइओ, इयरहा तुमं रोवंतो अच्छियाइओ, ताहे चित्तं मउयं जायं, भणइ–किह ?, तो खाइ पुण मम गुलमोयए पेसेइ ?, देवी भणइ–मए ते कया, जं तुमं सदा पिइवेरिओ उदरे आरद्धोत्ति सव्वं कहेइ, तहावि तुज्झ पिया न विरज्जइ, सो तुमे पिया एवं वसणं पाविओ, तस्स अरती जाया,

१ कोणिकः कालादिभिर्दशभिः कुमारैः समं मन्त्रयति–श्रेणिकं बद्ध्वा एकादश भागान् राज्यस्य कुर्म इति, तैः प्रतिश्रुतं, श्रेणिको बद्धः, पूर्वाह्णे अपराह्णे च कशाशतं दापयति, चेल्लणायाः कदाचिदपि गमनं (कर्तुं) न ददाति, भक्तं वारितं, पानीयं न ददाति, तदा चेल्लणा कथमपि कुल्माषान् वालेषु बद्ध्वा स्वयं च सुरां प्रवेशयति, सा किल प्रक्षालयति शतकृत्वः सुरा पानीयं सर्वं भवति। अन्यदा तस्य पद्मावत्या देव्याः पुत्र उदायिकुमारो जेमत उत्सङ्गे स्थितः, स स्थाले मूत्रयति, न चालयति मा दौषीदिति (यावति) मूत्रितं तावन्तं कूरमपनयति, मातरं भणति–अम्ब ! अन्यस्यापि कस्यापि पुत्र इयत्प्रियोऽस्ति ?, मात्रा स भणितः–तवाङ्गुली कृमीन् वमन्ती पिता (तव) मुखे कृत्वा स्थितवान्, इतरथा त्वं रुदन् स्थितवान्, तदा चित्तं मृदु जातं, भणति–कथं? किं पुनस्तर्हि मह्यं गुडमोदकान् अप्रैषीत् ?, देवी भणति–मया ते कृताः, यत्त्वं सदा पितृवैरिकः, उदरे (आगमनात्) आरभ्येति सर्वं कथितं, तथापि तव पिता न त्वयि व्यरंक्षीत्, स त्वया पितैवं व्यसनं प्रापितः, तस्यारतिर्जाता,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥६८३॥

सुणंतओ चेव उट्ठाय लोहदंडं गहाय नियलाणि भंजामित्ति पहाविओ, रक्खवालगा नेहेणं भणंति–एस सो पावो लोहदंडं गहाय एइत्ति, सेणिएण चिंतियं–न नज्जइ कुमारेण मारेहितित्ति तालउडं विसं खइयं जाव एइ ताव मओ, सुट्ठुयरं अधिती जाया ताहे डहिऊण घरमागओ रज्जधुरामुक्कतत्तीओ तं चेव चिंतंतो अच्छइ, कुमारामच्चेहिं चिंतियं–नट्ठं रज्जं होइत्ति तंबिए सासणे लिहित्ता अक्खराणि जुण्णं काऊण राइणो उवणीयं, एवं पिउणो कीरइ पिंडदाणादी, णित्थारिज्जइ, तप्पभिति पिंडनिवेयणा पवत्ता, एवं कालेण विसोगो जाओ, पुणरवि सयणपरिभोए य पियसंतिए दट्ठूण अद्धिती होहित्ति तओ निग्गओ चंपारायहाणीं करेइ, ते हल्लविहल्ला सेयणएण गंधहत्थिणा समं सभवणेसु य उज्जाणेसु य पुक्खरिणीएसु अभिरमंति, सोवि हत्थी अंतेउरियाए अभिरमावेइ, ते य पउमावई पेच्छइ, णयरमज्झेण य ते हल्लविहल्ला हारेण कुंडलेहि य देवदुसेण विभूसिया हत्थिखंधवरगया दट्ठूण अद्धितिं पगया कोणियं विण्णवेइ, सो नेच्छइ पिउणा दिण्णंति,

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० ५ शिक्षायां वज्रस्वाम्यु. चेटककोणिकयुद्ध

---

१ श्रृण्वन्नेवोत्थाय लोहदण्डं गृहीत्वा निगडान् भनज्मि इति प्रधावितः, स्नेहेन रक्षपालकाः भणन्ति–एष स पापो लोहदण्डं गृहीत्वाऽऽयाति, श्रेणिकेन चिन्तितं न ज्ञायते (केन) कुमरणेन मारयिष्यतीति तालपुटं विषं खादितं यावदेति तावन्मृतः, सुष्ठुतराधृतिर्जाता, तदा दग्ध्वा गृहमागतो मुक्तराज्यधूस्तप्तिस्तदेव चिन्तयन् तिष्ठति, कुमारामात्यैश्चिन्तितं–राज्यं नङ्क्ष्यतीति ताम्रिकं शासनं लिखित्वाऽक्षराणि जीर्णानि कृत्वा राज्ञ उपनीतं, एवं पितुः क्रियते पिण्डदानादि, निस्तार्यते, तत्प्रभृति पिण्डनिवेदना प्रवृत्ता, एवं कालेन विशोको जातः, पुनरपि स्वजनपरिभोगांश्च पितृसत्कान् दृष्ट्वाऽधृतिर्भविष्यतीति निर्गतस्ततश्चम्पां राजधानीं करोति, तौ हल्लविहल्लौ सेचनकेन हस्तिना समं स्वभवनेषु उद्यानेषु पुष्करिणीषु चाभिरमंते, सोऽपि हस्ती अन्तःपुरिका अभिरमयते, तौ च पद्मावती प्रेक्षते, नगरमध्येन च तौ हल्लविहल्लौ हारेण कुण्डलाभ्यां देवदुष्येण च विभूषितौ वरहस्तिस्कन्धगतौ दृष्ट्वाऽधृतिं प्रगता कोणिकं विज्ञपयति, स नेच्छति पित्रा दत्तमिति,

॥६८३॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

एवं बहुसो २ भणंतीए चित्तं उप्पण्णं, अण्णया हल्लविहल्ले भणइ–रज्जं अद्धं अद्धेण विगिंचामो सेयणगं मम देह, ते हि मा सुरक्खं चिंतियं देमोत्ति भणंति गया सभवणं, एक्काए रत्तीए सअंतेउरपरिवारा वेसालिं अज्जमूलं गया, कोणियस्स कहियं–नट्ठा कुमारा, तेण चिंतियं—तेवि न जाया हत्थीवि नत्थि, चेडयस्स दुयं पेसइ, अमरिसिओ, जइ गया कुमारा गया नाम, हत्थिं पेसेह, चेडगो भणइ–जहा तुमं मम नत्तुओ तहा एएवि, कह इयाणिं सरणागयाण हरामि, न देमित्ति दूओ पडिगओ, कहियं च, पुणोवि दुयं पट्ठवेइ–देह, न देह तो जुज्झसज्जा होह एमित्ति, भणइ–जहा ते रुचइ, ताहे कोणिएण कालाइया कुमारा दसवि आवाहिया, तत्थेक्केक्कस्स तिन्नि २ हत्थिसहस्सा तिन्नि २ आससहस्सा तिन्नि २ रहसहस्सा तिन्नि २ मणुस्सकोडिओ कोणियस्सवि एत्तियं सव्वाणिवि तित्तीसं ३३, तं सोऊण चेडएण अट्ठारसगणरायाणो मेलिया, एवं ते चेडएण समं एगूणवीसं रायाणो, तेसिंपि तिन्नि २ हत्थिसहस्साणि तह चेव नवरं सव्वं संखेवेण

---

१ एवं बहुशो २ भणन्त्या चित्तमुत्पादितं, अन्यदा हल्लविहल्लौ भणति–राज्यमर्धमर्धं विभजामः सेचनकं मह्यं दत्तं, तौ तु मा सुरक्षं चिन्तितं दावेति भणन्तौ गतौ स्वभवनं, एकया राज्या सान्तःपुरपरिवारौ वैशाल्यामार्य (मातामह) पादमूलं गतौ, कोणिकाय कथितं–नष्टौ कुमारौ, तेन चिन्तितं–तावपि न जातौ हस्त्यपि नास्ति, चेटकाय दूतं प्रेषयति, अमर्षितो, यदि गतौ कुमारौ गतौ नाम हस्तिनं प्रेषय, चेटको भणति–यथा त्वं नप्ता तथैतावपि, कथमिदानीं शरणागतयोर्हरामि, न ददामीति दूतः प्रतिगतः, कथितं च, पुनरपि दूतं प्रस्थापयति–देहि, न दद्यास्तदा युद्धसज्जो भवेमीति, भणति–यथा ते रोचते, तदा कोणिकेन कालादिकाः कुमारा दशाप्याहूताः, तत्रैकैकस्य त्रीणि २ हस्तिसहस्राणि त्रीणि २ अश्वसहस्राणि त्रीणि २ रथसहस्राणि तिस्रो २ मनुष्यकोटयः कोणिकस्याप्येतावत् सर्वाण्यपि त्रयस्त्रिंशत्, तत् श्रुत्वा चेटकेनाष्टादश गणराजा मेलिताः, एवं ते चेटकेन सममेकोनविंशती राजानः, तेषामपि हस्तिनां त्रिसहस्री २ तथैव नवरं सर्वं संक्षेपेण

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया

॥६८४॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० ५ शिक्षायां वज्रस्वाम्यु. चेटककोणिकयुद्ध

सत्तावण्णं, ताहे जुद्धं संपलग्गं, कोणियस्स कालो दंडणायगो, दो वूहा काया, कोणियस्स गरुडवूहो चेडगस्स सागरवूहो, सो जुज्झंतो कालो ताव गओ जाव चेडगो, चेडएण य एगस्स य सरस्स अभिग्गहो कओ, सो य अमोहो, तेण सो कालो मारिओ, भग्गं कोणियबलं, पडिनियत्ता सए २ आवासे गया, एवं दसहि दिवसेहिं दसवि मारिया चेडएण कालादीया, एक्कारसमे दिवसे कोणिओ अट्ठमभत्तं गिण्हइ, सक्कचमरा आगया, सक्को भणइ–चेडगो सावगोत्ति अहं न पहरामि नवरं सारक्खामि, एत्थ दो संगामा महासिलाकंडओ रहमुसलो भाणियव्वो जहा पण्णत्तीए, ते किर चमरेण विउव्विया, ताहे चेडगस्स सरो वइरपडिरूवगे अप्फिडिओ, गणरायाणो नट्ठा सणयरेसु गया, चेडगोवि वेसालिं गओ, रोहगसज्जो ठिओ, एवं बारस वरिसा जाया रोहिज्जंतस्स, एत्थ य रोहए हल्लविहल्ला सेयणएण निग्गया बलं मारेंति दिवे दिवे, कोणिओवि परिखिज्जइ हत्थिणा, चिंतेइ–को उवाओ जेण मारिज्जेज्जा ?, कुमारामच्चा भणंति—जइ नवरं हत्थी

---

१ सप्तपञ्चाशत्, तदा युद्धं प्रवृत्तं, कोणिकस्य कालो दण्डनायकः, द्वौ व्यूहौ कृतौ, कोणिकस्य गरुडव्यूहश्चेटकस्य सागरव्यूहः, स युध्यमानः कालस्तावद्गतो यावच्चेटकः, चेटकेन चैकस्य शरस्याभिग्रहः कृतः, स चामोघः, तेन स कालो मारितः, भग्नं कोणिकबलं, प्रतिनिवृत्ताः स्वके २ आवासे गताः, एवं दशभिर्दिवसैर्दशापि मारिताश्चेटकेन कालादयः, एकादशे दिवसे कोणिकोऽष्टमभक्तं गृह्णाति, शक्रचमरावागतौ, शक्रो भणति–चेटकः श्रावक इत्यहं न प्रहरामि नवरं संरक्षयामि, अत्र द्वौ संग्रामौ महाशिलाकण्टकरथमुशलौ भणितव्यौ यथा प्रज्ञप्तौ, तौ किल चमरेण विकुर्वितौ, तदा चेटकस्य शरो वज्रप्रतिरूपके स्खलितः, गणराजा नष्टाः स्वनगरेषु गताः, चेटकोऽपि वैशालीं गतः, रोधकसज्जः स्थितः, एवं द्वादश वर्षाणि जातानि रुध्यमाने, अत्र च रोधके हल्लविहल्लौ सेचनकेन निर्गतौ बलं मारयतः दिवसे दिवसे, कोणिकोऽपि परिखिद्यते हस्तिना, चिन्तयति–क उपायो येन मार्येत, कुमारामात्या भणन्ति–यदि नवरं हस्ती

॥६८४॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

मारिज्जइ, अमरिसिओ भणइ–मारिज्जउ, ताहे इंगालखड्डा कया, ताहे सेयणओ ओहिणा पेच्छइ न वोलेइ खड्डुं, कुमारा भणंति–तुज्झ निमित्तं इमं आवइं पत्ता तोवि निच्छसि ?, ताहे सेयणएण खंधाओ ओयारिया, सो य ताए खड्डाए पडिओ मओ रयणप्पहाए नेरइओ उववण्णो, तेवि कुमारा सामिस्स सीसत्ति वोसिरंति देवयाए साहरिया जत्थ भयवं तित्थयरो विहरइ, तहवि णयरी न पडइ, कोणियस्स चिंता, ताहे कूलवालगस्स रुट्ठा देवया आगासे भणइ–'समणे जइ कूलवालए मागहियं गणियं लगेहिती। लाया य असोगचंदए, वेसालिं नगरिं गहिस्सइ ॥ १ ॥ सुणेंतओ चेव चंपं गओ कूलवालयं पुच्छइ, कहियं, मागहिया सद्दाविया विडसाविया जाया, पहाविया, का तीसे उप्पत्ती जहा णमोक्कारे पारिणामियबुद्धीए थूभेत्ति–'सिद्धसिलायलगमणं खुड्डगसिललोट्टणा य विक्खंभो। सावो मिच्छावाइत्ति निग्गओ कूलवालतवो ॥ १ ॥ तावसपल्ली नइवारणं च कोहे य कोणिए कहणं। मागहिगमणं वंदण मोदगअइसार

१ मार्यंत, अमर्षितो भणति–मार्यतां, तदाऽङ्गारगर्ता कृता, तदा सेचनकोऽवधिना पश्यति, नातिक्रामति गर्तां, कुमारौ भणतः–तव निमित्तमियमापत्तिः प्राप्ता तथापि नेच्छसि, तदा सेचनकेन स्कन्धादवतारितौ, स च तस्यां गर्तायां पतितो मृतो रत्नप्रभायां नैरयिक उत्पन्नः, तावपि कुमारौ स्वामिनः शिष्याविति व्युत्सृजन्तौ देवतया संहृतौ यत्र भगवान् तीर्थंकरो विहरति, तथापि नगरी न पतति, कोणिकस्य चिन्ता, तदा कूलवालकाय रुष्टा देवताऽऽकाशे भणति–श्रमणः कूलवालको यदि मागधिकां वेश्यां लगिष्यति। राजा चाशोकचन्द्रो वैशालीं नगरीं ग्रहीष्यति ॥ १ ॥ शृण्वन्नेव चम्पां गतः कूलवालकं पृच्छति, कथितं, मागधिका शब्दिता विटश्राविका जाता, प्रधाविता, का तस्या उत्पत्तिर्यथा नमस्कारे पारिणामिकीबुद्धौ स्तूप इति, सिद्धशिलातलगमनं क्षुल्लकेन शिलालोठनं च विष्कम्भः (पादप्रसारिका)। शापो मिथ्यावादीति निर्गतः कूलवालकतपः ॥ १ ॥ तापसपल्ली नदीवारणं च क्रोधे कोणिकाय (देवतया) कथितं। मागधिकागमनं वन्दनं मोदकाः अतीसारः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥६८५॥

¹आणणया ॥ २ ॥ पडिचरणोभासणया कोणियगणियत्ति गमणनिग्गमणं । वेसालि जहा घेप्पइ उदिक्ख जओ गवे- सामि ॥ ३ ॥ वेसालिगमण मग्गण साईकारावणे य आउट्टा । थूभ नरिंदनिवारण इट्टगनिक्कालणविणासो ॥ ४ ॥ पडि- यागमणे रोहण गद्दभहलवाहणापइण्णाय । चेडगनिग्गम वहपरिणओ य माया इवालद्धो ॥ ५ ॥" कोणिओ भणइ– चेडग ? किं करेमि !, जाव पुक्खरिणीओ उट्ठेमि ताव मा नगरीं अतीहि, तेण पडिवण्णं, चेडगो सवलोहियं पडिमं गलए बंधिऊण उइण्णो, धरणेण सभवणं नीओ कालगओ देवलोगं गओ, वेसालिजणो सवो महेसरेण नीलवंतंमि साहरिओ । को महेसरोत्ति ?, तस्सेव चेडगस्स धूया सुजेट्ठा वेरग्गा पवइया, सा उवस्सयस्संतो आयावेइ, इओ य पेढालगो नाम परि- वायओ विज्जासिद्धो विज्जाउ दाउकामो पुरिसं मग्गइ, जइ बंभचारिणीए पुत्तो होज्जा तो समत्थो होज्जा, तं आयावेंतीं दट्ठूणं धूमिगावामोहं काऊण विज्जाविवज्जासो तत्थ सेरित्तु काले जाए गब्भे अतिसयणाणीहिं कहियं–न एयाए

४ प्रतिक्रम- मणाध्य० योग० ५शि क्षायां वज्र- स्वाम्यु० वै. शालीग्रहः

१ आनयनं ॥ २ ॥ प्रतिचरणमवभासनं कोणिकगणिकेति गमनं निर्गमनं । वैशाली यथा गृह्यते उद्वीक्षस्व प्रयतो गवेषयामि ॥ ३ ॥ वैशालीगमनं मार्गणं सत्यङ्कारकारणेनावर्जिता । स्तूपः नरेन्द्रनिवारणं इष्टिकानिष्काशनं विनाशः ॥ ४ ॥ पतिते गमनं रोधः (पूर्त्तिः) गर्दभहलवाहनप्रतिज्ञायाः । चेटकनि- र्गमो वधपरिणतश्च मात्रोपालब्धः ॥ ५ ॥ कोणिको भणति–चेटक! किं करोमि ?, यावत् पुष्करिण्या आगच्छामि तावन्मा नगरीं यासीः, तेन प्रतिपन्नं, चेटकः सकललोहमयीं प्रतिमां गले बद्ध्वा अवतीर्णः, धरणेन स्वभवनं नीतः कालगतो देवलोकं गतः, वैशालीजनः सर्वो महेश्वरेण नीलवति संहृतः । को महेश्वर इति ?, तस्यैव चेटकस्य दुहिता सुज्येष्ठा वैराग्यात्प्रव्रजिता, सोपाश्रयस्यान्तरातापयति, इतश्च पेढालको नाम परिव्राट् विद्यासिद्धो विद्या दातुकामः पुरुषं मार्गयति, यदि ब्रह्मचारिण्याः पुत्रो भवेत् तर्हि समर्थो भवेत्, तामातापयन्तीं दृष्ट्वा धूमिकाव्यामोहं कृत्वा विद्याविपर्यासः तत्र व्युत्सृज्य (ततः) काले जाते गर्भेऽतिशयज्ञानिभिः कथितं–नैतस्याः

॥६८५॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

कामविकारो जाओ, सड्ढयकुले वड्ढाविओ, समोसरणं गओ साहुणीहिं सह, तत्थ य कालसंदीवो वंदित्ता सामिं पुच्छइ–कओ मे भयं ?, सामिणा भणियं–एयाओ सच्चतीओ, ताहे तस्स मूलं गओ, अवण्णाए भणइ–अरे तुमं ममं मारेहिसित्ति पाएसु बला पाडिओ, संवड्ढिओ, परिवायगेण तेण संजतीणं हिओ, विज्जाओ सिक्खाविओ, महारोहिणिं च साहेइ, इमं सत्तमं भवं, पंचसु मारिओ, छट्ठे छम्मासावसेसाउएण नेच्छिया, अह साहेत्तुमारद्धो अणाहमडए चितियं काऊण उज्जालेत्ता अल्लचंमं वियडित्ता वामेण अंगुट्ठएण ताव चंकमइ जाव कट्ठाणि जलंति, एत्थंतरे कालसंदीवो आगओ कट्ठाणि छुब्भइ, सत्तरत्ते गए देवया सयं उवट्ठिया–मा विग्घं करेहि, अहं एयस्स सिज्झिउकामा, सिद्धा भणइ–एगं अंगं परिच्चय जेण पविसामि सरीरं, तेण निलाडेण पडिच्छिया, तेण अइयया, तत्थ बिलं जायं, देवयाए से तुट्ठाए तइयं अच्छि कयं, तेण पेढालो मारिओ, कीस णेणं मम माया रायधूयत्ति विद्धंसिया, तेण से रुद्दो नामं जायं, पच्छा कालसंदीवं आभोएइ,

१ कामविकारो जातः, श्राद्धकुले वर्धितः, समवसरणं गतः साध्वीभिस्सह, तत्र च कालसंदीपको वन्दित्वा स्वामिनं पृच्छति–कुतो मे भयं ?, स्वामिना भणितं–एतस्मात् सत्यकेः, तदा तस्य पार्श्वं गतः, अवज्ञया भणति–अरे त्वं मां मारयिष्यसीति पादयोर्बलात् पातितः, संवृद्धः, परिव्राजकेन तेन संयतीनां पार्श्वात् हृतः, विद्याः शिक्षिताः, महारोहिणीं च साधयति, अयं सप्तमो भवः, पञ्चसु मारितः, षष्ठे षण्मासावशेषायुष्कतया नेष्टा, अथ साधयितुमारब्धः अनाथमृतकेन चितिकां कृत्वा प्रज्वाल्य आर्द्रचर्म प्रावृत्य वामेनाङ्गुष्ठेन तावत् चङ्क्राम्यति यावत् काष्ठानि ज्वलन्ति, अत्रान्तरे कालसंदीपक आगतः काष्ठानि क्षिपति, सप्तरात्रे गते देवता स्वयमुपस्थिता–मा विघ्नं कार्षीः, अहमेतस्य सेधितुकामा, सिद्धा भणति–एकमङ्गं परित्यज येन प्रविशामि शरीरं, तेन ललाटेन प्रतीष्टा, तेनातिगता, तत्र बिलं जातं, देवतया तस्मै तुष्टया तृतीयमक्षि कृतं, तेन पेढालो मारितः, कथं मम माता राजदुहितेति विध्वस्ता, तेन तस्य रुद्रो नाम जातं, पश्चात् कालसंदीपमाभोगयति,

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

दिंट्ठो, पलाओ, मग्गओ लग्गइ, एवं हेट्ठा उवरिं च नासइ, कालसंदीवेण तिन्नि पुराणि विउब्विता, सामिपायमूले अच्छइ, ताणि देवयाणि पहओ, ताहे ताणि भणंति–अम्हे विज्जाओ, सो भट्टारगपायमूलं गओत्ति तत्थ गओ, एक्कमेक्कं खामिओ, अण्णे भणंति–लवणे महापायाले मारिओ, पच्छा सो विज्जाचक्कवट्टी तिसंझं सव्वतित्थगरे वंदित्ता णट्टं च दाइत्ता पच्छा अभिरमइ, तेण इंदेण नामं कयं महेसरोत्ति, सोवि किर धेज्जाइयाण पओसमावण्णो धिज्जाइयकन्नगाण सयं २ विणासेइ, अन्नेसु अंतेउरेसु अभिरमइ, तस्स य भणंति दो सीसा–नंदीसरो नंदी य, एवं पुप्फएण विमाणेण अभिरमइ, एवं कालो वच्चइ, अन्नया उज्जेणीए पज्जोयस्स अंतेउरे सिवं मोत्तूणं सेसाओ विद्धंसेइ, पज्जोओ चिंतेइ–को उवाओ होज्जा जेण एसो विणासेज्जा ?, तत्थेगा उमा नाम गणिया रूवस्सिणी, सा किर धूवग्गहणं गेण्हइ जाहे तेणंतेण एइ, एवं वच्चइ काले उइण्णो, ताए दोण्णि पुप्फाणि वियसियं मउलियं च, मउलियं पणामियं, महेसरेण वियसियस्स हत्थो पसारिओ,

---

१ दृष्टः, पलायितः, पृष्ठतो लगति, एवमधस्तादुपरि च नश्यति, कालसंदीपेन त्रीणि पुराणि विकुर्वितानि, स्वामिपुरस्तिष्ठति, ता देवताः प्रहतः, तदा ता भणन्ति–वयं विद्याः, स भट्टारकपादमूलं गत इति गतः, तत्र एकैकेन क्षमितः, अन्ये भणन्ति–लवणे महापाताले मारितः, पश्चात् स विद्याचक्रवर्त्ती त्रिसन्ध्यं सर्वं तीर्थंकरान् वन्दित्वा नृत्यं च दर्शयित्वा पश्चादभिरमते, तेनेन्द्रेण नाम कृतं महेश्वर इति, सोऽपि किल धिग्जातीयानां प्रद्वेषमापन्नो धिग्जातीयकन्यकानां शतं २ विनाशयति, अन्येष्वन्तःपुरेषु अभिरमते, तस्य च भण्येते द्वौ शिष्यौ–नन्दीश्वरो नन्दी च, एवं पुष्पकेण विमानेन अभिरमते, एवं कालो व्रजति, अन्यदोज्जयिन्यां प्रद्योतस्यान्तःपुरे शिवां मुक्त्वा शेषा विध्वंसयति, प्रद्योतश्चिन्तयति–क उपायो भवेत् येन एष विनाश्येत ?. तत्रैकोमानाम्नी गणिका रूपिणी, सा किल धूपग्रहणं गृह्णाति यदा तेन मार्गेणैति, एवं व्रजति काले अवतीर्णः, तया द्वे पुष्पे विकसितं मुकुलितं च, मुकुलितमर्पयति, महेश्वरेण विकसिताय हस्तः प्रसारितः,

॥ ६८६ ॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

सा मउलं पणामेइ एयस्स तुज्झे अरहसित्ति, कहं ?, ताहे भणइ–एरिसिओ कण्णाओ ममं तावपेच्छह, तीए सह संवसइ हियहियओ कओ, एवं वच्चइ कालो, सा पुच्छइ–काए वेलाए देवयाओ ओसरंति ?, तेण सिद्धं–जाहे मेहुणं सेवामि, तीए रण्णो सिद्धं मा ममं मारेहित्ति, पुरिसेहिं अंगस्स उवरिं जोगा दरिसिया, एवं रक्खामो, ते य पज्जोएण भणिया–सह एयाए मारेह मा य दुरारद्धं करेहिह, ताहे मणुस्सा पच्छण्णं गया, तेहिं संसट्ठो मारिओ सह तीए, ताहे नंदीसरो ताहिं विज्जाहिं अहिट्ठिओ आगासे सिलं विउव्वित्ता भणइ–हा दास ! मओसित्ति, ताहे सनगरो राया उल्लपडसाडगो खमाहि एगावराहंति, सो भणइ–एयस्स जइ तदवत्थं अच्चेह तो मुयामि, एयं च णयरे २ एवं अवाउडियं ठावेहत्ति तो मुयामि, तो पडिवण्णो, ताहे आययणाणि काराविया णि, एसा महेसरस्स उप्पत्ती । ताहे नगरिं सुण्णियं कोणिओ अइगओ गद्दभनंगलेण गाहाविया, एत्थंतरे सेणियभज्जाओ कालियादिमादियाओ पुच्छंति भगवं तित्थयरं–अम्हं पुत्ता

---

१ सा मुकुलमर्पयत्येतस्य त्वमर्हसीति, कथं ?, तदा भणति–ईदृश्यः कन्या मां तावत् प्रेक्षस्व, तया सह संवसति हृतहृदयः कृतः, एवं व्रजति कालः, सा पृच्छति–कस्यां वेलायां देवता अपसरन्ति, तेनोक्तं–यदा मैथुनं सेवे, तया राज्ञे कथितं मा मां मारयतेति, पुरुषैरङ्गस्योपरि योगा दर्शिताः, एवं रक्षयामः, ते च प्रद्योतेन भणिता–सहैतया मारयत मा दुरारब्धं कार्ष्ट, तदा मनुष्याः प्रच्छन्नं गताः, तैः संश्लिष्टो मारितः सह तया, तदा–नन्दीश्वरस्ताभिर्विद्याभिरधिष्ठित आकाशे शिलां विकुर्व्य भणति–हा दास !मृतोऽसीति, तदा सनागरो राजाऽऽर्द्रशाटिकापटः क्षमस्वैकमपराधमिति, स भणति यदि एनमेतदवस्थं अर्चयत, तदा मुञ्चामि, एनं च नगरे २ एवमप्रावृतं स्थापयतेति तदा मुञ्चामि, तदा प्रतिपन्नः, तदाऽऽयतनानि कारितानि, एषा महेश्वरस्योत्पत्तिः । तदा नगरीं शून्यां कोणिकोऽतिगतः गर्दभलाङ्गूलेन कृष्टा, अत्रान्तरे श्रेणिकभार्याः कालिकादिकाः पृच्छन्ति भगवन्तं तीर्थकरं–अस्माकं पुत्राः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥६८७॥

४ प्रतिक्र-मणाध्य० योग० ५शि क्षायां वज्र-स्वाम्यु०को णिकमृतिः ॥६८७॥

संगमाओ (ग्रं० १७५००) एंति नवत्ति जहा निरयावलियाए ताहे पवइयाओ, ताहे कोणिओ चंपं आगओ, तत्थ सामी समोसढो, ताहे कोणिओ चिंतेइ-बहुया मम हत्थी चक्कवट्टीओ एवं आसरहाओ जामि पुच्छामि सामीं अहं चक्कवट्टी होमि नहोमित्ति निग्गओ सव्वबलसमुदएण, वंदित्ता भणइ-केवइया चक्कवट्टी एस्सा ?, सामी भणइ-सवे अतीता, पुणो भणइ-कहिं उववज्जिस्सामि?, छट्टीए पुढवीए, तमसद्दहंतो सवाणि एगिंदियाणि लोहमयाणि रयणाणि करेइ, ताहे सव-बलेणं तिमिसगुहं गओ अट्ठमेणं भत्तेणं, भणइ कयमालगो-अतीता बारस चक्कवट्टिणो जाहित्ति, नेच्छइ, हत्थिविलग्गो मणीं हत्थिमत्थए काऊण दंडेण दुवारं आहणइ, ताहे कयमालगेण आहओ मओ छट्ठिं गओ, ताहे रायाणो उदाइं ठावंति, उदाइस्स चिंता जाया-एत्थ णयरे मम पिया आसि, अद्धितीए अण्णं णयरं कारावेइ, मग्गह वत्थुंति पेसिया, तेवि एगाए पाडलाए उवरिं अवदारिएण तुंडेण चासं पासंति, कीडगा से अप्पणा चेव मुहं अतिंति, किह सा पाडलित्ति,

१ संग्रामात् आगमिष्यन्ति नवेति ?, यथा निरयावलिकायां तदा प्रव्रजिताः, तदा कोणिकश्चम्पामागतः, तत्र स्वामी समवसृतः, तदा कोणिकश्चिन्तयति-बहवो मम हस्तिनश्चक्रवर्त्तिनः (यथा) एवमश्वरथाः यामि पृच्छामि स्वामिनं अहं चक्रवर्त्ती भवामि न भवामीति ? निर्गतः सर्वबलसमुदयेन, वन्दित्वा भणति-कियन्तश्चक्रवर्त्तिन एष्याः ?, स्वामी भणति-सर्वेऽतीताः, पुनर्भणति-कोत्पत्स्ये ?, षष्ठ्यां पृथ्व्यां, तदश्रद्दधानः सर्वाण्येकेन्द्रियाणि रत्नानि लोहमयानि करोति, तदा सर्वबलेन तमिश्रगुहां गतः अष्टमभक्तेन, भणति कृतमालकः-अतीता द्वादश चक्रवर्त्तिनो याहीति, नेच्छति, हस्तिविलग्नो मणिं हस्तिमस्तके कृत्वा दण्डेन द्वारमाहन्ति, तदा कृतमालकेनाहतो मृतः षष्ठीं गतः, तदा राजान उदायिनं स्थापयन्ति, उदायिनश्चिन्ता जाता-अत्र नगरे मम पिताऽऽसीत्, अधृत्याऽन्यन्नगरं कारयति, मार्गयत वास्तु इति प्रेषिताः, तेऽप्येकस्याः पाटलायाः उपर्यवदारितेन तुण्डेन चाषं पश्यन्ति, कीटिकास्तस्यात्मनैव मुखमायान्ति, कथं सा पाटलेति ?,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२६]

दो महुराओ–दक्खिणा उत्तरा य, उत्तरमहुराओ वाणिगदारगो दक्खिणमहुरं दिसाजत्ताए गओ, तस्स तत्थ एगेण वाणियगेण सह मित्तया, तस्स भगिणी अण्णिया, तेण भत्तं कयं, सा य जेमंतस्स वीयणगं धरेइ, सो तं पाएसु आरंभ णिवण्णेति अज्झोववन्नो, मग्गाविया, ताणि भणंति–जइ इहं चेव अच्छसि जाव एक्कंपि ता दारगरूवं जायं तो देमो, पडिवण्णं, दिण्णा, एवं कालो वच्चइ, अण्णया तस्स दारगस्स अंमापितीहिं लेहो विसज्जिओ–अम्हे अंधलीभूयाणि जइ जीवंताणि पेच्छसि तो एहि, सो लेहो उवणीओ, सो तं वाएइ अंसूणि मुयमाणो, तीए दिट्ठो, पुच्छइ, न किंचि साहइ, तीए लेहो गहिओ, वाइत्ता भणइ–मा अधितिं करेहि, आपुच्छामि, ताए कहियं सव्वं अम्मापिऊणं, कहिए विसज्जियाणि, निग्गयाणि दक्खिणमहुराओ, सा य अण्णिया गुव्विणी, सा अंतरा पंथे वियाया, सो चिंतेइ–अम्मापियरो नामं करिहिंतित्ति न कयं, ताहे रमावेंतो परियणो भणेइ–अण्णियाए पुत्तोत्ति, कालेण पत्ताणि, तेहिवि से तं चेव नामं कयं अण्णं

---

१ द्वे मथुरे–दक्षिणा उत्तरा च, उत्तरमथुराया वणिग्दारको दक्षिणमथुरां दिग्यात्रायै गतः, तत्र तस्य एकेन वणिजा सह मैत्री, तस्य भगिनी अर्णिका, तेन भक्तं कृतं, सा च जेमतो व्यजनकं धारयति, स तां पादादारभ्य पश्यति अध्युपपन्नः, मार्गिता, ते भणन्ति–यदीहैव स्थास्यसि यावदेकमपि तावत् दारकरूपं जातं (भवेत्) तदा दद्मः, प्रतिपन्नं, दत्ता, एवं कालो व्रजति, अन्यदा तस्य दारकस्य मातापितृभ्यां लेखो विसृष्टः वयमन्धीभूतौ यदि जीवन्तौ प्रेक्षितुमिच्छसि तदाऽऽयाः, स लेख उपनीतः, स तं वाचयति मुञ्चन्नश्रूणि, तया दृष्टः, पृच्छति, न किञ्चिदपि कथयति, तया लेखो गृहीतो, वाचयित्वा भणति–माऽधृतिं कार्षीः, आपृच्छे, तया कथितं सर्वं मातापितृभ्यां, कथिते विसृष्टौ, निर्गतौ दक्षिणमथुरातः, सा चार्णिका गुर्वी, साऽन्तरा पथः प्रजनितवती, स चिन्तयति–मातरपितरं नाम करिष्यतीति न कृतं, तदा रमयन् परिजनो भणति–आर्णिकायाः पुत्र इति, कालेन प्राप्तौ, ताभ्यामपि तस्य तदेव नाम कृतमन्यत्

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥६८८॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० योग० ५ शिक्षायां वज्रस्वाम्यु० पाटलावृत्तं

नं पइट्ठिहित्ति, ताहे सो अण्णियपुत्तो उम्मुक्कबालभावो भोगे अवहाय पव्वइओ, थेरत्तणे विहरमाणो गंगायडे पुप्फभद्दं नामं णयरं गओ ससीसपरिवारो, पुप्फकेऊ राया पुप्फवती देवी, तीसे जमलगाणि दारगो दारिगा य जायाणि पुप्फचूलो पुप्फचूला य अण्णमण्णमणुरत्ताणि, तेण रायाए चिंतियं–जइ विओइज्जंति तो मरंति, ता एयाणि चेव मिहुणगं करेमि, मेलित्ता नागरा पुच्छिया–एत्थं जं रयणमुप्पज्जइ तस्स को ववसाइ राया णयरे वा अंतेउरे वा ?, एवं पत्तियावेइ, मायाए वारंतीए संजोगो धडाविओ, अभिरमंति, सा देवी साविया तेण निव्वेएण पव्वइया, देवो जाओ, ओहिणा पेच्छइ धूयं, तओ से अज्झहिओ नेहो, मा नरगं गच्छिहित्ति सुमिणए नरए दंसेइ, सा भीया रायाणं अवयासेइ, एवं रत्तिं २, ताहे पासंडिणो सद्दाविया, कहेह केरिसा नरया ?, ते कहिंति, ते अण्णारिसगा, पच्छा अण्णियपुत्ता पुच्छिया, ते कहेउमारद्धा–'निच्चंधयारतमसा०, सा भणइ–किं तुब्भेहिवि सुमिणओ दिट्ठो ?, आयरिया भणंति–तित्थयरोवएसोत्ति,

---

१ न प्रस्थास्यतीति, तदा सोऽर्णिकापुत्र उन्मुक्तबालभावो भोगानपहाय प्रव्रजितः, स्थविरत्वे विचरन् गङ्गातटे पुष्पभद्रं नाम नगरं गतः सशिष्यपरीवारः, पुष्पकेतू राजा पुष्पवती देवी, तस्या युग्मं दारको दारिका च जाते-पुष्पचूलः पुष्पचूला चान्योऽन्यमनुरक्ते, तेन राज्ञा चिन्तितं–यदि वियोज्येते तर्हि म्रियेते, तदेतावेव मिथुनं करोमि, मेलयित्वा नागराः पृष्टाः–अत्र यद्रत्नमुत्पद्यते तस्य को व्यवस्यति राजा नगरं वा अन्तःपुरं वा?, एवं प्रत्याययति, मातरि वारयन्त्यां संयोगो घटितः, अभिरमेते, सा देवी श्राविका तेन निर्वेदेन प्रव्रजिता, देवो जातः, अवधिना प्रेक्षते दुहितरं, ततस्तस्याभ्यधिकः स्नेहः, मा नरकं गादिति स्वप्ने नरकान् दर्शयति, सा भीता राजानं कथयति, एवं रात्रौ रात्रौ, तदा पाषण्डिकाः शब्दिताः, कथयत कीदृशा नरकाः ?, ते कथयन्ति, तेऽन्यादृशः, पश्चादर्णिकापुत्राः पृष्टाः, ते कथयितुमारब्धाः–नित्यान्धकारतमिस्राः०, सा भणति–किं युष्माभिरपि स्वप्नो दृष्टः, आचार्या भणन्ति–तीर्थकरोपदेश इति,

॥६८८॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

[१]एवं गओ, कालेणं देवो देवलोयं दरिसेइ, तत्थवि तहेव पासंडिणो पुच्छिया जाहे न याणंति ताहे अण्णियपुत्ता पुच्छिया, तेहिं कहिया देवलोगा, सा भणइ–किह नरगा न गंमंति ?, तेण साहुधम्मो कहिओ, रायाणं च आपुच्छइ, तेण भणियं–मुएमि जइ इहं चेव मम गिहे भिक्खं गिण्हइत्ति, तीए पडिस्सुयं, पव्वइया, तत्थ य ते आयरिया जंघाबलपरिहीणा ओमे पव्वइयगे विसज्जेत्ता तत्थेव विहरंति, ताहे सा भिक्खं अंतेउराओ आणेइ, एवं कालो वच्चइ, अण्णया तीसे भगवईए सोभणेणऽज्झवसाणेण केवलणाणमुप्पण्णं, केवली किर पुव्वपउत्तं विणयं न लंघेइ, अण्णया जं आयरियाण हियइच्छियं तं आणेइ, सिंभकाले य जेण सिंभो ण उप्पज्जइ, एवं सेसेहिवि, ताहे ते भणंति–जं मए चिंतियं तं चेव आणीयं, भणइ–जाणामि, किह ?, अइसएण, केण?, केवलेण, केवली आसाइओत्ति खामिओ, अण्णे भणंति–वासे पडंते आणियं, ताहे भणंति–किह अज्जे ! वासे पडंते आणेसि ?, सा भणइ–जेण २ अंतेण अचित्तो तेण २ अन्तेण आगया, कह जाणासि ?,

१ एवं गतः, कालेन देवो देवलोकं दर्शयति, तत्रापि तथैव पाषण्डिनः पृष्टा यदा न जानन्ति तदाऽऽचार्याः पृष्टाः, तैः कथिता देवलोकाः, सा भणति–कथं नरका न गम्यन्ते ?, तेन साधुधर्मः कथितः, राजानं चापृच्छते, तेन भणितं–मुञ्चामि यदीहैव मम गृहे भिक्षां गृह्णासि, तया प्रतिश्रुतं, प्रव्रजिता, तत्र च ते आचार्याः परिहीणजङ्घाबला अवमे प्रव्रजितान् विसृज्य तत्रैव विहरन्ति, तदा सा भिक्षामन्तःपुरादानयति, एवं कालो व्रजति, अन्यदा तस्या भगवत्याः शोभनेनाध्यवसानेन केवलज्ञानमुत्पन्नं, केवली किल पूर्वप्रवृत्तं विनयं न लङ्घयति, अन्यदा यदाचार्याणां हृदीप्सितं तदानयति, श्लेष्मकाले च येन श्लेष्मा नोत्पद्यते, एवं शेषैरपि, तदा ते भणन्ति–यन्मया चिन्तितं तदेवानीतं, भणति–जानामि, कथं ?, अतिशयेन, केन ?, केवलेन, क्षमितः केवल्याशातित इति, अन्ये भणन्ति–वर्षायां पतन्त्यां आनीतं, तदा भणन्ति–कथमार्ये ! वर्षायां पतन्त्यामानयसि ?, सा भणति–येन येन मार्गेणाचित्तस्तेन २ मार्गेणागता, कथं जानीषे ?,

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥६८९॥

अइसएण, खामेइ, अद्धितिं पगओ, ताहे सो केवली भणइ–तुब्भेवि चरमसरीरा सिज्झिहिह गंगं उत्तरंता, तो ताहे चेव पउत्तिण्णो, णावावि जेण २ पासेणऽवलग्गइ तं तं निबुड्डइ मज्झे उट्ठिया सव्वावि निबुड्डा, तेहिं पाणीए छूढो, नाणं उप्पण्णं, देवेहिं महिमा कया, पयागं तत्थ तित्थं पवत्तं, से सीसकरोडी मच्छकच्छभेहिं खज्जंती एगत्थ उच्छलिया पुलिणे, सा इओ तओ छुब्भमाणा एगत्थ लग्गा, तत्थ पाडलिबीयं कहवि पविट्ठं, दाहिणाओ हणुगाओ करोडिं भिंदंतो पायगो उट्ठिओ, विसालो पायवो जाओ, तत्थ तं चासं पासंति, चिंतेंति–एत्थ णयरे रायस्स सयमेव रयणाणि एहिंति तं णयरं निवेसिंति, तत्थ सुत्ताणि पसारिज्जंति, नेमित्तिओ भणइ–ताव जाहि जाव सिवा वासेंति तओ नियत्तेज्जासित्ति, ताहे पुव्वाओ अंताओ अवरामुहो गओ तत्थ सिवा उट्ठिया नियत्तो, उत्तराहुत्तो तत्थवि, पुणोवि पुव्वाहुत्तो गओ तत्थवि, दक्खिणहुत्तो तत्थवि सिवाए वासियं, तं किर वीयणगसंठियं नयरं, णयरणाभिए य उदाइणा चेइहरं काराविय़ं, एसा

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० ५ शिक्षायां वज्रस्वाम्यु० पाटलीपुत्रोत्प०

१ अतिशयेन, क्षमयति, अधृतिं प्रगतः, तदा स केवली भणति–यूयमपि चरमशरीराः सेत्स्यथ गङ्गामुत्तरन्तः, ततस्तदैव प्रोत्तीर्णः, नौरपि यस्मिन् २ पार्श्वेऽवलगति तेन २ बूडति मध्ये उपस्थापिताः सर्वापि बूडिता, तैः पानीये क्षिप्तः, ज्ञानमुत्पन्नं, देवैर्महिमा कृतः, प्रयागं तत्र तीर्थं जातं, तस्य शीर्षकरोटिका मत्स्यकच्छपैः खाद्यमानैकत्रोच्छलिता पुलिने, सेतस्ततः क्षिप्यमाणैकत्र लग्ना, तत्र पाटलाबीजं कथमपि प्रविष्टं, दक्षिणाद्धनोः करोटिं भिन्दन् पादप उत्थितः, पादपो विशालो जातः, तत्र तं चाषं पश्यन्ति, चिन्तयन्ति–अत्र नगरे राज्ञः स्वयमेव रत्नान्येष्यन्ति तत्र नगरं निवेशितमिति, तत्र सूत्राणि प्रसार्यन्ते, नैमित्तिको भणति–तावद्यात यावच्छिवा वासयति ततो निवर्त्तयध्वमिति, तदा पूर्वस्मादन्तादपराभिमुखो गतस्तत्र शिवा रसिता निवृत्तः, उत्तराभिमुखस्तत्रापि, पुनरपि पूर्वाभिमुखो गतस्तत्रापि, दक्षिणामुखस्तत्रापि शिवया वासितं, तत्किल व्यजनकसंस्थितं नगरं, नगरनाभौ चोदायिना चैत्यगृहं कारितं, एषा

॥६८९॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

पाडलिपुत्तस्स उप्पत्ती । सो उदाई तत्थ ठिओ रज्जं भुंजइ, सो य राया ते डंडे अभिक्खणं ओलग्गावेइ, ते चिंतेंति– कहमहो एयाए धाडीए मुच्चिज्जामो ?, इओ य एगस्स रायाणस्स कम्हिवि अवराहे रज्जं हियं, सो राया नट्ठो, तस्स पुत्तो भमंतो उज्जेणिमागओ, एगं रायायं ओलग्गइ, सो य बहुसो २ परिभवइ उदाइस्स, ताहे सो रायपुत्तो पायवडिओ विण्णवेइ–अहं तस्स पीइं पिबामि नवरं मम बितिज्जिओ होज्जासि, तेण पडिस्सुयं, गओ पाडलिपुत्तं, बाहिरिगमज्झमिगपरिसासु ओलग्गिऊण छिद्दमलभमाणो साहूणो अतिंति, ते अतीतमाणे पेच्छइ, ताहे एगस्स आयरियस्स मूले पव्वइओ, सव्वा परिसा आराहिया तस्स पजाया, सो राया अट्ठमिचउद्दसीसु पोसहं करेइ, तत्थायरिया अतिंति धम्मकहानिमित्तं, अण्णया वेयालियं, आयरिया भणंति–गेण्हह उवगरणं राउलमतीमो, ताहे सो झडित्ति उट्ठिओ, गहियं उवगरणं, पुव्वसंगोविया कंकलोहकत्तिया सावि गहिया, पच्छण्णं कया, अतिगया राउलं, चिरं धम्मो कहिओ, आयरिया पसुत्ता,

१ पाटलिपुत्रस्योत्पत्तिः । स उदायी तत्र स्थितो राज्यं भुनक्ति, स च राजा तान् (लोकान्) दण्डान् अभीक्ष्णं अवलगयति, ते चिन्तयन्ति–कथमहो एतस्या धाट्या मुच्येमहि, इतश्चैकस्य राज्ञः कस्मिश्चिदपि अपराधे राज्यं हृतं, स राजा नष्टः, तस्य पुत्रो भ्राम्यन् उज्जयिनीमागतः, एकं राजानमवलगयति, स च बहुशः २ परिभूयते उदायिना, तदा स राजपुत्रः पादपतितो विज्ञपयति–अहं तस्य जीवितं पिबामि परं मम द्वितीयो भव, तेन प्रतिश्रुतं, गतः पाटलिपुत्रं, बाह्यमध्यमृगपर्षत्सु अवलग्य छिद्रमलभमानः साधव आयान्ति तान् आयातः प्रेक्षते, तदैकस्याचार्यस्य मूले प्रव्रजितः, सर्वा पर्षत् आराद्धा तस्य प्रजाता, स राजाऽष्टमीचतुर्दश्योः पोषधं करोति, तत्राचार्या आयान्ति धर्मकथानिमित्तं, अन्यदा वैकालिकं, आचार्या भणन्ति–गृहाणोपकरणं राजकुलमतिगच्छामः, तदा स झटिति उत्थितः, गृहीतमुपकरणं पूर्वसंगोपिता कङ्कलोहकर्त्तरिका सापि गृहीता, प्रच्छन्ना कृता, अतिगतौ राजकुलं, चिरं धर्मः कथितः, आचार्याः प्रसुप्ताः,

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया

॥६९०॥

रायावि पसुत्तो, तेण उट्ठित्ता रण्णो सीसे निवेसिया, तत्थेव अट्टिलग्गो निग्गओ, थाणइल्लगावि न वारिंति पव्वइओत्ति, रुहिरेण आयरिया पच्चालिया, उट्ठिया, पेच्छंति रायाणगं वावाइयं, मा पवयणस्स उड्डाहो होहिइत्ति आलोइयपडिक्कंतो अप्पणो सीसं छिंदेइ, कालगओ सो एवं। इओ य ण्हावियसालिगए नावियदुयक्खरओ उवज्झायस्स कहेइ–जहा ममऽज्जऽतेण णयरं वेढियं, पहाए दिट्ठं, सो सुमिणसत्थं जाणइ, ताहे घरं नेऊण मत्थओ धोओ धूया य से दिण्णा, दिप्पिउमारद्धो, सीयाए णयरं हिंडाविज्जइ, सोवि राया अंतेउरसेज्जावलीहिं दिट्ठो सहसा, कुवियं, नायओ, अउत्तोत्ति अण्णेण दारेणं नीणिओ सक्कारिओ, आसो अहियासिओ, अब्भिंतरा हिंडाविओ मज्झे हिंडाविओ बाहिं निग्गओ रायकुलाओ तस्स ण्हावियदासस्स पट्ठिं अडेइ पेच्छइ य णं तेयसा जलंतं, रायाभिसेएण अहिसित्तो राया जाओ, ते य डंडभडभोइया दासोत्ति तहा विणयं न करेंति, सो चिंतेइ जइ विणयं ण करेंति कस्स अहं रायत्ति

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० ५ शिक्षायां वज्रस्वाम्यु. उदायिवृत्तं नन्दराज्यं

॥६९०॥

---

१ राजाऽपि प्रसुप्तः, तेनोत्थाय राज्ञः शीर्षे निवेशिता, तत्रैव लग्नमुष्टिः (?) निर्गतः, प्रातीहारिका अपि न वारयन्ति प्रव्रजित इति, रुधिरेणाचार्याः प्रत्यार्द्रिताः, उत्थिताः, प्रेक्षन्ते राजानं व्यापादितं, मा प्रवचनस्योड्डाहो भूदित्यालोचितप्रतिक्रान्ता आत्मनः शीर्षं छिन्दन्ति, कालगतास्त एवं। इतश्च नापितशालायां नापितदास उपाध्यायाय कथयति–यथा ममाद्यान्त्रेण नगरं वेष्टितं, प्रभाते दृष्टं, स स्वप्नशास्त्रं जानाति, तदा गृहं नीत्वा मस्तकं धौतं दुहिता च तस्मै दत्ता, दीपितुमारब्धः, शिबिकया नगरं हिण्ड्यते, सोऽपि राजा अन्तःपुरिकाशय्यापालिकाभिर्दृष्टः सहसा, कूजितं, ज्ञातः, अपुत्र इत्यन्येन द्वारेण नीतः सत्कारितः, अश्वोऽधिवासितः, अभ्यन्तरे हिण्डितो मध्ये हिण्डितः बहिर्निर्गतो राजकुलात् तं नापितदारकं पृष्ठौ लगयति प्रेक्षते च तं तेजसा ज्वलन्तं, राज्याभिषेकेणाभिषिक्तो राजा जातः, ते च दण्डिकसुभटभोजिका दास इति तथा विनयं न कुर्वन्ति, स चिन्तयति–यदि विनयं न कुर्वन्ति कस्याहं राजेति

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

अत्थाणीओ उट्ठित्ता निग्गओ, पुणो पविट्ठो, ते ण उट्ठेंति, तेण भणियं–गेण्हह एए गोहेत्ति, ते अवरोप्परं दट्ठूण हसंति, तेण अमरिसेण अत्थाणिमंडलियाए लिप्पकम्मनिम्मियं पडिहारजुयलं पलोइयं, ताहे तेण सरभसुद्धाइएण असिहत्थेण मारिया केइ नट्ठा, पच्छा विणयं उवट्ठिया, खामिओ राया, तस्स कुमारामच्चा नत्थि, सो मग्गइ। इओ य कविलो नाम बंभणो णयरबाहिरियाए वसइ, वेयालियं च साहुणो आगया दुक्खं वियाले अतियंतुमित्ति तस्स अग्गिहोत्तस्स घरए ठिया, सो बंभणो चिंतेइ–पुच्छामि ता णे किंचि जाणंति नवत्ति ?, पुच्छिया, परिकहियं आयरिएहिं, सड्ढो जाओ तं चेव रयणिं, एवं काले वच्चंते अण्णया अण्णे साहुणो तस्स घरे वासारत्तिं ठिया, तस्स य पुत्तो जायमेत्तओ अंबारेवईहिं गहिओ, सो साहूण भायणाणि कप्पेंताणं हेट्ठा ठविओ, नट्ठा वाणमंतरी, तीसे पया थिरा जाया, कप्पओत्ति से नामं कयं, ताणि दोवि कालगयाणि, इमोवि चोद्दससु विज्जाट्ठाणेसु सुपरिणिट्ठिओ णाम लभइ पाडलिपुत्ते, सो य संतोसेण दाणं

---

१ आस्थानिकाया उत्थाय निर्गतः पुनः प्रविष्टः, ते नोत्तिष्ठन्ति, तेन भणितं–गृह्णीतैतान् अधमानिति, ते परस्परं दृष्ट्वा हसन्ति, तेनामर्षेणास्थानमण्डपिकायां लेप्यकर्मनिर्मितं प्रतीहारयुगलं प्रलोकितं, तदा तेन सरभसोद्धावितेन असिहस्तेन मारिताः केचिन्नष्टाः, पश्चाद्विनयमुपस्थिताः, क्षामितो राजा, तस्य कुमारामात्या न सन्ति, स मार्गयति। इतश्च कपिलो नाम ब्राह्मणो नगरबाहिरिकायां वसति, विकाले च साधव आगता दुःखं विकालेऽतिगन्तुमिति तस्याग्निहोत्रस्य गृहे स्थिताः, स ब्राह्मणश्चिन्तयति–पृच्छामि तावत् एते किञ्चिज्जानन्ति नवेति ?, पृष्टाः, परिकथितमाचार्यैः, श्राद्धो जातस्तस्यामेव रजन्यां, एवं व्रजति काले अन्यदाऽन्ये साधवस्तस्य गृहे वर्षारात्रे स्थिताः, तस्य च पुत्रः जातमात्रोऽम्बारेवतीभ्यां गृहीतः, स साधुषु कल्पयत्सु भाजनानामधस्तात् स्थापितः, नष्टे व्यन्तर्यौ, तस्याः प्रजा स्थिरा जाता, कल्पक इति तस्य नाम कृतं, तौ द्वावपि कालगतौ, अयमपि चतुर्दशसु विद्यास्थानेषु सुपरिनिष्ठितो नाम (रेखां) लभते पाटलीपुत्रे, स च संतोषेण दानं

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥६९१॥

४ प्रतिक्र-मणाध्य० योगसं० ५ शिक्षायां कल्पकवंशे स्थूलभद्र-दीक्षा

नं इच्छइ, दारियाओ लभमाणीओ नेच्छइ, अणेगेहिं खंडिगसएहिं परिवारिओ हिंडइ, इओ य तस्स अइगमणनिग्गमणपहे एगो मरुओ, तस्स धूया जलूसतवाहिणा गहिया, लाघवं सरीरस्स नत्थि अतीवरूविणित्ति न कोइ वरेइ, महती जाया, रुहिरं से आगयं, तस्स कहियं मायाए, सो चिंतेइ–बंभवज्झा एसा, कप्पगो सच्चसंधो तस्स उवाएण देमि, तेण दारे अगडे खओ, तत्थ ठविया, तेणंतेण य कप्पगोऽतीति, महया सद्देण पकुविओ–भो भो कविला ! अगडे पडिया जो नित्थारेइ तस्सेवेसा, तं सोऊण कप्पगो किवाए धाविओ उत्तारिया यऽणेण, भणिओ य–सच्चसंधो होज्जासि पुत्तगत्ति, ताहे तेण जणवायभएण पडिवण्णा, तेण पच्छा ओसहसंजोएण लट्ठी कया, रायाए सुयं–कप्पओ पंडिओत्ति, सद्दाविओ विण्णविओ य रायाणं भणइ–अहं ग्रासाच्छादनं विनिर्मुच्य परिग्रहं न करेमि, कह इमं किच्चं संपडिवज्जामि ?, न तीरइ निरवराहस्स किंची काउं, ताहे सो राया छिद्दाइ मग्गइ, अण्णया रायाए जायाए साहीए निल्लेवगो सो सद्दाविओ, तुमं

---

१ नेच्छति, दारिका लभ्यमाना नेच्छति, अनेकैश्छात्रशतैः परिवृतो हिण्डते, इतश्च तस्य प्रवेशनिर्गमपथे एको मरुकः, तस्य दुहिता जलोदरव्याधिना गृहीता, लाघवं शरीरस्य नास्तीति अतीवरूपिणीति न कोऽपि वृणुते, महती जाता, ऋतुस्तस्य जातः, तस्मै कथितं मात्रा, स चिन्तयति–ब्रह्महत्यैषा, कल्पकः सत्यसन्धस्तस्मै उपायेन ददामि, तेन द्वारि अवटः खातः, तत्र स्थापिता, तेनाध्वना च कल्पक आयाति, महता शब्देन प्रकूजितः–भो भोः ! कपिल अवटे पतिता यो निस्तारयति तस्यैवैषा, तच्छ्रुत्वा कल्पकः कृपया धावितः, उत्तारिता चानेन, भणितश्च सत्यसन्धो भव पुत्रक इति, तदा तेन जनापवादभीतेन प्रतिपन्ना, तेन पश्चादोषधसंयोगेन लष्टा कृता, राज्ञा श्रुतं–कल्पकः पण्डित इति, शब्दितो विज्ञप्तश्च राजानं भणति न करोमि, कथमिदं कृत्यं संप्रतिपत्स्ये ?, न शक्यते निरपराधस्य किञ्चित् कर्तुं, तदा स राजा छिद्राणि मार्गयति, अन्यदा राज्ञा पाटके (तस्य) जायाया निर्लेपकः स शब्दितः, त्वं

॥६९१॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

कप्पगस्स पोत्ताइं धोवसि नवत्ति ?, भणइ–धोवामि, ताहे रायाए भणिओ–जइ एत्ताहे अप्पेइ तो मा दिज्जासित्ति, अण्णया इंदमहे से भणइ भज्जा–से ममवेताइं पोत्ताइं रयाविहि, सो नेच्छइ, सा अभिक्खणं वड्ढेइ, तेण पडिवण्णं, तेण णीयाणि रयगहरं, सो भणइ–अहं विणा मोल्लेण रयामि, सो छणदिवसे पमग्गिओ, अज्जहिज्जोत्ति कालं हरइ, सो छणो वोलीणो, तहवि न देइ, बीए वरिसे न दिण्णाणि, तइएवि वरिसे दिवे २ मग्गइ न देइ, तस्स रोसो जाओ, भणइ–कप्पगो न होमि जइ तव रुहिरेण न रयामि, अग्गिं पविसामि, अण्णदिवसे गओ छुरियं घेत्तूण, सो रयओ भज्जं भणइ–आणेहित्ति, दिण्णाणि, तस्स पोट्टं फालित्ता रुहिरेण रयाणि, रयगभज्जा भणइ–रायाए एसो वारिओ किमेएण अवरद्धं ?, कप्पस्स चिंता जाया–एस रण्णो माया, तया मए कुमारामच्चत्तणं नेच्छियंति, जइ पव्वइओ होंतो किमेयं होयंति, वच्चामि सयं मा गोहेहि नेज्जीहामित्ति गओ रायकुलं, राया उट्ठिओ, भणइ–संदिसह किं करेमि !, तं मम वितप्पं चिंतियंति, सो

१ कल्पकस्य वस्त्राणि प्रक्षालयसि नवेति ?, भणति–प्रक्षालयामि, तदा राज्ञा भणितः–यद्यधुनाऽर्पयति तर्हि मा दद्या इति, अन्यदेन्द्रमहे तं भणति भार्या–अथ मम तानि वस्त्राणि रञ्जयत, स नेच्छति, साऽभीक्ष्णं कलहयति, तेन प्रतिपन्नं, तेन नीतानि रजकगृहं, स भणति–अहं विना मूल्येन रजामि, स क्षणदिवसे प्रमार्गितः, अद्य श्वः (श्वः) इति कालमुल्लङ्घते, स क्षणो व्यतिक्रान्तः, तथापि न ददाति, द्वितीये वर्षे न दत्तानि, तृतीयेऽपि वर्षे दिवसे २ मार्गयति न ददाति, तस्य रोषो जातः, भणति–कल्पको न भवामि यदि तव रुधिरेण न रजामि, अग्निं प्रविशामि, अन्यदिवसे गतः क्षुरिकां गृहीत्वा, स रजको भार्यां भणति–आनयेति, दत्तानि, तस्योदरं पाटयित्वा रुधिरेण रक्तानि, रजकभार्या भणति–राज्ञैष वारितः किमेतेनापराद्धं, कल्पस्य चिन्ता जाता एषा राज्ञो माया, तदा मया कुमारामात्यत्वं नेष्टमिति, यदि प्रव्रजितोऽभविष्यं किमिदमभविष्यदिति, व्रजामि स्वयं मा दण्डिकैर्नीयिषि इति गतो राजकुलं, राजोत्थितः, भणति–संदिश किं करोमि, तं मम विकल्पं चिन्तितं, स

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]
दीप अनुक्रम [२६]

भणइ–महाराय ! जं भणसि तं करेमि, रयगसेणी आगया, रायाए समं उल्लवेंतं दट्ठूण नट्ठा, कुमारामच्चो ठिओ, एवं सव्वं रज्जं तदायत्तं ठियं, पुत्तावि से जाया, तीसे अण्णाणं च ईसरधूयाणं, अण्णया कप्पगपुत्तस्स विवाहो, तेण [१]चिंतियं–संतेउरस्स रण्णो भत्तं दायव्वं, आहरणाणि रण्णो निजोगो घडिज्जइ, जो नंदेण कुमारामच्चो फेडिओ सो तस्स छिद्दाणि मग्गइ, कप्पगदासी दाणमाणसंगहिया कया, जो य तव सामिस्स दिवसोदंतो तं कहेह दिवे २, तीए पडिवण्णं, अण्णया भणइ–रण्णो निज्जोगो घडिज्जइ, पुव्वामच्चो य जो फेडिओ तेण छिद्दं लद्धं, रायाए पायवडिओ विण्णवेइ–जइवि अम्हे तुम्ह अविगणिया तहावि तुब्भं संतिगाणि सित्थाणि धरंति अज्जवि तेण अवस्सं कहेयव्वं जहा किर कप्पओ तुज्झं अहियं चिंतिन्तो पुत्तं रज्जे ठविउकामो, रज्जनिज्जोगो सज्जिज्जइ, पेसविया रायपुरिसा, सकुडुंबो कूवे छूढो, कोद्दवोदणसेइया पाणियगलंतिया य दिज्जइ, सव्वं ताहे सो भणइ–एएण सव्वेहिंवि मारियव्वं, जो णे एगो कुलुद्धारयं करेइ वेरनिज्जायणं च

१ भणति–महाराज ! यद्भणसि तत् करोमि, रजकश्रेणिरागता, राज्ञा सममुल्लापयन्तं दृष्ट्वा नष्टा, कुमारामात्यःस्थितः, एवं सर्वं राज्यं तदायत्तं स्थितं, पुत्रा अपि तस्य जाताः, तस्या अन्यासां चेश्वरदुहितॄणाञ्च, अन्यदा कल्पकपुत्रस्य विवाहो (जातः), तेन चिन्तितं–सान्तःपुरस्य राज्ञो भक्तं दातव्यं, आभरणानि राज्ञो निर्योगो घट्यते, यो नन्देन कुमारामात्यः स्फेटितः स तस्य छिद्राणि मार्गयति, कल्पकदास्यो दानमानसंगृहीताः कृताः, यश्च तव स्वामिनो दिवसोदन्तस्तं कथयेः दिवा दिवा, तया प्रतिपन्नं, अन्यदा भणति–राज्ञो निर्योगो घट्यते, पूर्वामात्यश्च यः स्फेटितस्तेन छिद्रं लब्धं, राज्ञे पादपतितो विज्ञपयति–यद्यपि वयं युष्माकमविमतास्तथापि युष्मत्सत्कानि सिक्थूनि ध्रियन्तेऽद्यापि तेनावश्यं कथयितव्यं यथा किल कल्पको युष्माकमहितं चिन्तयन् पुत्रं राज्ये स्थापयितुकामः, राज्यनिर्योगः प्रगुणीक्रियते, प्रेषिता राजपुरुषाः, सकुटुम्बः कूपे क्षिप्तः, कोद्रवौदनसेतिका पानीयस्य गलन्तिका (गर्गरी) च दीयते, सर्वान् तदा स भणति–एतेन सर्वेऽपि मारयितव्याः, योऽस्माकमेकः कुलोद्धारं करोति वैरनिर्यातनं च

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० ५ शिक्षायां कल्पकवंशे स्थूलभद्र-दीक्षा

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२६]	

सो जेमेउ, ताणि भणंति–अम्हे असमत्थाणि, भत्तं पच्चक्खामो, पच्चक्खायं, गयाणि देवलोगं, कप्पगो जेमेइ, पच्चंतराईहि य सुयं जहा कप्पगो विणासिओ, जामो गेण्हामोत्ति, आगएहिं पाडलिपुत्तं रोहियं, नंदो चिंतेइ–जइ कप्पगो होंतो न एवं अभिद्दवंतो, पुच्छिया बारवाला–अत्थि तत्थ कोइ भत्तं पडिच्छइ ?, जो तस्स दासो सोवि महामंतित्ति, तेहिं भणियं–अत्थि, ताहे आसंदएण उक्खित्ता नीणिओ, पिल्लुकिओ विज्जेहिं संधुकिओ आउसे कारिए पागारे दरिसिओ कप्पगो, दरिसिओ कप्पगोत्ति ते भीया दंडा सासंकिया जाया, नंदं परिहीणं णाऊण सुट्ठुतरं अभिद्दवंति, ताहे लेहो विसज्जिओ, जो तुज्झ सव्वेसिं अभिमओ सो एउ तो संधी वा जं तुब्भे भणिहिह तं करेहित्ति, तेहिं दूओ विसज्जिओ, कप्पओ विनिग्गओ, नदीमज्झे मिलिया, कप्पगो नावाए हत्थसण्णाहिं लवइ, उच्छुकलावस्स हेट्ठा उवरिं च छिन्नस्स मज्झे किं होहि, दहिकुंडस्स हेट्ठा उवरिं च छिन्नस्स धसत्ति पडियस्स किं होहिइत्ति ?, एवं भणित्ता तं पयाहिणं करेंतो

१ स जेमतु, ते भणन्ति–वयमसमर्थाः, भक्तं प्रत्याख्यामः, प्रत्याख्यातं, गता देवलोकं, कल्पको जेमति, प्रत्यन्तराजभिश्च श्रुतं यथा कल्पको विनाशितः, यामो गृह्णीम इति, आगतैः पाटलिपुत्रं रुद्धं, नन्दश्चिन्तयति–यदि कल्पकोऽभविष्यत्तदा नैवमभ्यद्रोष्यं, पृष्टा द्वारपालाः–अस्ति तत्र कश्चित् ?, भक्तं प्रतीच्छति ? यस्तस्य दासः सोऽपि महामन्त्रीति, तैर्भणितं–अस्ति, तदाऽऽस्यन्दकेनोत्क्षिप्य निष्काशितः, पूत्कृतो वैद्यैः (प्रीतिमान्वितः), पटौ जाते प्राकारे दर्शितः कल्पकः, दर्शितः सन् कल्पक इति ते भीताः दण्डाः साशङ्का जाताः, नन्दं परिहीणं ज्ञात्वा सुष्ठुतरामभिद्रवन्ति, तदा लेखो विसृष्टः–यो युष्माकं सर्वेषामभिमतः स आयातु, ततः सन्धि वा यद्यूयं भणिष्यथ तत् करिष्याम इति, तैर्दूतो विसृष्टः, कल्पको विनिर्गतः, नदीमध्ये मिलिताः, कल्पको नावि हस्तसंज्ञाभिर्लपति, इक्षुकलापस्याधस्तादुपरि च छिन्नस्य मध्ये किं भवति ?, दधिकुण्डस्याधस्तादुपरि च छिन्नस्य धसगिति पतितस्य किं भवतीति, एवं भणित्वा तान् प्रदक्षिणां कुर्वन्

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥६९३॥

पडिनियत्तो, इयरोवि विलक्खो नियत्तो पुच्छिओ लज्जइ अक्खिउं, पलवइ बडुगोत्ति अक्खायं, नट्ठा, नंदोवि कप्पएण भणिओ–सण्णह, पच्छा आसहत्थी य गहिया, पुणोवि ठविओ तंमि ठाणे, सो य निओगामच्चो विणासिओ, तस्स कप्पगस्स वंसो णंदवंसेण समं अणुवत्तइ, नवमए नंदे कप्पगवंसपसूओ सगडालो, थूलभद्दो से पुत्तो सिरिओ य, सत्त धीयरी य जक्खा जक्खदिन्ना भूया भूयदिण्णा सेणा वेणा रेणा, इओ य वररुइ धिज्जाइओ नंदं अट्ठसएणं सिलोगाणमोलग्गइ, सो राया तुट्ठो सगडालमुहं पलोएइ, सो मिच्छत्तंतिकाउं न पसंसेइ, तेण भज्जा से ओलग्गिया, पुच्छिओ भणइ–भत्ता ते ण पसंसइ, तीए भणियं–अहं पसंसावेमि, तओ सो तीए भणिओ, पच्छा भणइ–किह मिच्छत्तं पसंसामित्ति ?, एवं दिवसे २ महिलाए करणिं कारिओ अण्णया भणइ–सुभासियंति, ताहे दीणाराणं अट्ठसयं दिण्णं, पच्छा दिणे २ पदिण्णो, सगडालो चिंतेइ–निट्ठिओ रायकोसोत्ति, नंदं भणइ–भट्टारगा ! किं तुब्भे एयस्स देह ?, तुब्भे पसंसिओत्ति, भणइ–अहं

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० ५ शिक्षायां कल्पकवंशे स्थूलभद्र-दीक्षा

१ प्रतिनिवृत्तः, इतरोऽपि विलक्षो निवृत्तः पृष्टो लज्जते आख्यातुं, प्रलपति बटुक इति आख्यातं, नष्टाः, नन्दोऽपि कल्पकेन भणितः–सन्नध्य, पश्चादश्वा हस्तिनश्च गृहीताः, पुनरपि स्थापितस्तस्मिन् स्थाने, स च नियोगामात्यो विनाशितः, तस्य कल्पकस्य वंशो नन्दवंशेन सममनुवर्त्तते, नवमे नन्दे कल्पकवंशप्रसूतः शकटालः, स्थूलभद्रस्तस्य पुत्रः श्रीयकश्च, सप्त दुहितरश्च यक्षा यक्षदत्ता भूता भूतदत्ता सेना वेणा रेणा, इतश्च वररुचिर्धिग्जातीयो नन्दमष्टशतेन श्लोकानां सेवते, स राजा तुष्टः शकटालमुखं प्रलोकयति, स मिथ्यात्वमितिकृत्वा न प्रशंसति, तेन भार्या तस्याराद्धा, पृष्टो भणति–भर्त्ता तव न प्रशंसति, तया भणितं–अहं प्रशंसयामि, ततः स तया भणितः, पश्चात् भणति–कथं मिथ्यात्वं प्रशंसामि ? इति, एवं दिवसे दिवसे महिलया वाचं (प्रशंसाक्रियां) ग्राहितोऽन्यदा भणति–सुभाषितमिति, तदा दीनाराणामष्टशतं दत्तं, पश्चाद्दिने दिने प्रदातुमारब्धः, शकटालश्चिन्तयति–निष्ठितो राजकोश इति, नन्दं भणति–भट्टारकाः ! किं यूयमेतस्मै दत्त ?, त्वया प्रशंसित इति, भणति–अहं

॥६९३॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२६]

पंसंसामि लोइयकव्वाणि अनट्ठाणि पढइ, राया भणइ–कहं लोइयकव्वाणि ?, सगडालो भणइ–मम धूयाओवि पढंति, किमंग पुण अण्णो लोगो ?, जक्खा एगंपि सुयं गिण्हइ, बितिया दोहि तइया तिहि वाराहि, ताओ अण्णया पविसंति अंतेउरं, जवणियंतरियाओ ठवियाओ, वररुई आगओ थुणइ, पच्छा जक्खाए पढियं बितियाए दोण्णि तइयाए तिण्णि वारा सुयं पढियं एवं सत्तहिवि, रायाए पत्तियं, वररुईस्स दाणं वारियं, पच्छा सो ते दीणारे रत्तिं गंगाजले जंते ठवेइ, ताहे दिवसओ थुणइ गंगं, पच्छा पाएण आहणइ, गंगा देइत्ति एवं लोगो भणइ, कालंतरेण रायाए सुयं, सगडालस्स कहेइ–तस्स किर गंगा देइ, सगडालो भणइ–जइ मए गए देइ तो देइ, कल्लं वच्चामि, तेण पच्चइगो पुरिसो पेसिओ विगाले पच्छन्नं अच्छसु जं वररुई ठवेइ तं आणेज्जासि, गएण आणिया पोट्टलिया सगडालस्स दिण्णा, गोसे नंदोवि गओ, पेच्छइ थुणंतं, थुए निब्बुडो, हत्थेहि पाएहि य जंतं मग्गइ, नत्थि, विलक्खो जाओ, ताहे सगडालो पोट्टलियं रण्णो

१ प्रशंसामि लौकिककाव्यानि अनर्थकानि पठति, राजा भणति–कथं लौकिककाव्यानि ?, शकटालो भणति–मम दुहितरोऽपि पठन्ति किमङ्ग पुनरन्यो लोकः ?, यक्षा एकशः श्रुतं गृह्णाति द्वितीया द्विकृत्वः तृतीया त्रिः, ता अन्यदा प्रवेशयति अन्तःपुरं, यवनिकान्तरिताः स्थापिताः, वररुचिरागतः स्तौति, पश्चात् यक्षया एकशः द्वितीयया द्विकृत्वस्तृतीयया त्रिः श्रुतं पठितं एवं सप्तभिरपि, राज्ञा प्रत्ययितं, वररुचये दानं वारितं, पश्चात्स तान् दीनारान् रात्रौ गङ्गाजले यन्त्रे स्थापयति, तदा दिवसे स्तौति गङ्गां पश्चात्पादेनाहन्ति, गङ्गा ददातीत्येवं लोको भणति, कालान्तरेण राज्ञा श्रुतं, शकटालाय कथयति–तस्मै किल गङ्गा ददाति, शकटालो भणति–यदि मयि गते ददाति तर्हि ददाति, कल्ये व्रजावः, तेन प्रत्ययितः पुरुषः प्रेषितो विकाले प्रच्छन्नं तिष्ठ यद्वररुचिः स्थापयति तदानयेः, गतेनानीता पोट्टलिका शकटालाय दत्ता, प्रत्यूषसि नन्दोऽपि गतः, प्रेक्षते स्तुवन्तं, स्तुत्वा मग्नः हस्ताभ्यां पादाभ्यां च यन्त्रं मार्गयति, नास्ति, विलक्षो जातः, तदा शकटालः पोट्टलिकां राज्ञे

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥६९४॥

दंरिसेइ, ओहामिओ गओ, पुणोवि छिद्दाणि मग्गइ सगडालस्स एएण सव्वं खोडियंति, अण्णया सिरीयस्स विवाहो, रण्णो अणुओगो सज्जिज्जइ, वररुइणा तस्स दासी ओलग्गिया, तीए कहियं–रण्णो भत्तं सज्जिज्जइ आजोगो य, ताहे तेण चिंतियं–एयं छिड्डुं, डिंभरूवाणि मोयगे दाऊण इमं पाढेइ–'रायनंदु नवि जाणइ जं सगडालो काहिइ । रायनंदं मारेत्ता तो सिरियं रज्जे ठवेहित्ति ॥ १ ॥' ताइ पढंति, रायाए सुयं, गवेसामि, तं दिट्ठं, कुविओ राया, जओ जओ सगडालो पाएसु पडइ तओ तओ पराहुत्तो ठाइ, सगडालो घरं गओ, सिरिओ नंदस्स पडिहारो, तं भणइ–किमहं मरामि सव्वाणिवि मरंतु?, तुमं ममं रण्णो पायवडियं मारेहि, सो कन्ने ठएइ, सगडालो भणइ–अहं तालउडं विसं खामि, पायवडिओ य पमओ, तुमं ममं पायवडियं मारेहिसि, तेण पडिस्सुयं, ताहे मारिओ, राया उट्ठिओ, हाहा अकज्जं !, सिरियत्ति, भणइ–जो तुज्झ पावो सो अम्हवि पावो, सक्कारिओ सिरियओ, भणिओ, कुमारामच्चत्तणं पडिवज्जसु, सो भणइ–ममं जेट्ठो

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० ५ शिक्षायां कल्पकवंशे स्थूलभद्र-दीक्षा

॥६९४॥

---

१ दर्शयति, अपभ्राजितो गतः, पुनरपि छिद्राणि मार्गयति शकटालस्य एतेन सर्वं विनाशितमिति, अन्यदा श्रीयकस्य विवाहः, राज्ञो नियोगः सज्ज्यते, वररुचिना तस्य दासी अवलगिता, तया कथितं–राज्ञो भक्तं सज्ज्यते आयोगश्च, तदा तेन चिन्तितं–एतत् छिद्रं, डिम्भान् मोदकान् दत्त्वैतत् पाठयति–'नन्दो राजा नैव जानाति यत् शकटालः करिष्यति। नन्दराजं मारयित्वा ततः श्रीयकं राज्ये स्थापयिष्यती'ति, ते पठन्ति, राज्ञा श्रुतं, गवेषयामि, तद्दृष्टं, कुपितो राजा, यतो यतः शकटालःपादयोः पतति ततस्ततः पराङ्मुखस्तिष्ठति, शकटालो गृहं गतः, श्रीयको नन्दस्य प्रतीहारः, तं भणति–किमहं म्रिये सर्वेऽपि म्रियन्तां ?, त्वं मां राज्ञः पदोः पतितं मारय, स कर्णौ स्थगयति, शकटालो भणति–अहं तालपुटं विषं खादामि, पादपतितः प्रमृतः, त्वं मां पादपतितं मारयेः, तेन प्रतिश्रुतं, तदा मारितः, राजोत्थितः–हा हा अकार्यं श्रीयक इति, भणति–यस्त्वय्येव पापः सोऽस्माकमपि पापः, सत्कृतः श्रीयकः, भणितः–कुमारामात्यत्वं प्रतिपद्यस्व, स भणति–मम ज्येष्ठो

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२६]

भाया थूलभद्दो बारसमं वरिसं गणियाए घरं पविट्ठस्स, सो सद्दाविओ भणइ–चिंतेमि, सो भणइ–असोगवणियाए चिंतेहि, सो तत्थ अइयओ चिंतेइ–केरिसया भोगा रज्जवक्खित्ताणं ?, पुणरवि णरयं जाइव्वं होहितित्ति, एते णामेरिसया भोगा तओ पंचमुट्ठियं लोयं काऊण कंबलरयणं छिंदित्ता रयहरणं करेत्ता रण्णो पासमागओ धम्मेण वड्ढाहि एवं चिंतियं, राया भणइ–सुचिंतियं, निग्गओ, राया भणइ–पेच्छह कवडत्तणेण गणियाघरं पविसइ नवित्ति, आगासतलगओ पेच्छइ, जहा मतकडेवरस्स जणो अवसरइ मुहाणि य ठएइ, सो भगवं तहेव जाइ, राया भणइ–निव्विण्णकामभोगो भगवंति, सिरिओ ठविओ, सो संभूयविजयस्स पासे पव्वइओ, सिरियओवि किर भाइनेहेण कोसाए गणियाए घरं अल्लियइ, सा य अणुरत्ता थूलभद्दे अण्णं मणुस्सं नेच्छइ, तीसे कोसाए डहरिया भगिणी उवकोसा, तीए सह वररुई चिट्ठइ, सो सिरिओ तस्स छिद्दाणि मग्गइ, भाउज्जायाए मूले भणइ–एयस्स निमित्तेण अम्हे पितिमरणं पत्ता, भाइविओगं च पत्ता, तुज्झ विओओ

---

१ भ्राता स्थूलभद्रः द्वादशं वर्षं गणिकागृहं प्रविष्टस्य, स शब्दितो भणति–चिन्तयामि, स भणति–अशोकवनिकायां चिन्तय, स तत्रातिगतश्चिन्तयति कीदृशा भोगा राज्यव्याक्षिप्तानां ? पुनरपि नरकं यातव्यं भविष्यतीति, एते नामेदृशा भोगास्ततः पञ्चमुष्टिकं लोचं कृत्वा कम्बलरत्नं छित्त्वा रजोहरणं कृत्वा राज्ञः पार्श्वमागत्य धर्मेण वर्धस्वैवं चिन्तितं, राजा भणति–सुचिन्तितं, निर्गतो, राजा भणति–पश्यामि कपटेन गणिकागृहं प्रविशति नवेति, आकाशतलगतः प्रेक्षते, यथा मृतकलेवरात् जनोऽपसरति मुखानि च स्थगयति स भगवान् तथैव याति, राजा भणति–निर्विण्णकामभोगो भगवानिति, श्रीयकः स्थापितः, स संभूतिविजयस्य पार्श्वे प्रव्रजितः, श्रीयकोऽपि किल भ्रातृस्नेहेन कोशाया गृहमाश्रयति, सा चानुरक्ता स्थूलभद्रेऽन्यं मनुष्यं नेच्छति, तस्याः कोशाया लघ्वी भगिन्युपकोशा, तया सह वररुचिस्तिष्ठति, स श्रीयकस्तस्य छिद्राणि मार्गयति, भ्रातृजायाया मूले भणति–एतस्य निमित्तेन अस्माकं पिता मरणं प्राप्तः, भ्रातृवियोगं च (वयं) प्राप्ताः, तव वियोगो

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥६९५॥

जाओ, एयं सुरं पाएहि, तीए भगिणी भणिया–तुमं मत्तिया एस अमत्तओ जं वा तं वा भणिहिसि, एयंपि पाएहि, सा पपाइया, सो नेच्छइ, अलाहि ममं तुमे, ताहे सो तीए अविओगं मग्गंतो चंदप्पभं सुरं पियइ, लोगो जाणाइ खीरंति, कोसाए सिरियस्स कहियं, राया सिरियं भणइ–एरिसो मम हिओ तव पियाऽऽसी, सिरिओ भणइ–सच्चं सामी !, एएण मत्तवालएण एयं अम्ह कयं, राया भणइ–किं मज्जं पियइ ?, पियइ, कहं ?, तो पेच्छइ, सो राउलं गओ, तेणुप्पलं भावियं मणुस्सहत्थे दिण्णं, एयं वररुइस्स दिज्जाहि, इमाणि अण्णेसिं, सो अत्थाणीए पहाइओ, तं वररुइस्स दिन्नं, तेणुसिंसघियं, भिंगारेण आगयं निच्छूढं, चाउव्वेज्जेण पायच्छित्तं से तत्तं तउयं पेज्जाविओ, मओ। थूलभद्दसामीवि संभूयविजयाणं सगासे घोराकारं तवं करेइ, विहरंतो पाडलिपुत्तमागओ, तिण्णि अणगारा अभिग्गहं गिण्हंति–एगो सीहगुहाए, तं पेच्छंतो सीहो उवसंतो, अण्णो सप्पवसहीए, सोवि दिट्ठीविसो उवसंतो, अण्णो कूवफलए, थूलभद्दो कोसाए घरं, सा

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० ५ शिक्षायां कल्पकवंशे स्थूलभद्र-दीक्षा

---

१ जातः, एनं सुरां पायय, तया भगिनी भणिता–त्वं मत्ता एषोऽमत्तो यद्वा तद्वा भणिष्यसि, एनमपि पायय, सा प्रपायिता, स नेच्छति, अलं मम स्वयं तदा स तस्या अवियोगं मृगयमाणश्चन्द्रप्रभां सुरां पिबति, लोको जानाति–क्षीरमिति, कोशया श्रीयकाय कथितं, राजा श्रीयकं भणति–ईदृशो मम हितस्तव पिताऽऽसीत्, श्रीयको भणति–सत्यं स्वामिन् ! एतेन पुनर्मद्यपायिना एतदस्माकं कृतं, राजा भणति–किं मद्यं पिबति ?, पिबति, कथं ?, तर्हि प्रेक्षध्वं, स राजकुलं गतः, तेनोत्पलं भावितं मनुष्यहस्ते दत्तं, एतत् वररुचये दद्याः, इमान्यन्येभ्यः, स आस्थान्यां प्रधावितः, तत् वररुचये दत्तं, तेनाघ्रातं, कलशेनाग समुद्गीर्णं, चातुर्वैद्येन प्रायश्चित्ते स तप्तं त्रपुः पायितः, मृतः। स्थूलभद्रस्वाम्यपि संभूतिविजयानां सकाशे घोराकारं तपः करोति, विहरन् पाटलिपुत्रमागतः, त्रयोऽनगारा अभिग्रहं गृह्णन्ति–एकः सिंहगुहायां, तं प्रेक्षमाणः सिंह उपशान्तः, अन्यः सर्पवसतौ, सोऽपि दृष्टिविष उपशान्तः, अन्यः कूपफलके, स्थूलभद्रः कोशाया गृहे, सा. ॥६९५॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२६]

तुट्ठा परीसहपराजिओ आगओत्ति, भणइ–किं करेमि ?, उज्जाण घरे ठाणं देहि, दिण्णो, रत्तिं सव्वालंकारविहूसिया आगया, चाडुयं पकया, सो मंदरो इव निक्कंपो न सक्कए खोहेउं, ताहे धम्मं पडिसुणइ, साविया जाया, भणइ–जइ रायावसेणं अण्णेण समं वसेज्जा इयरहा बंभचारिणियावयं सा गिण्हइ, ताहे सीहगुहाओ आगओ चत्तारि मासे उववासं काऊण, आयरिएहि ईसित्ति अभुट्ठिओ, भणियं–सागयं दुक्करकारगस्सत्ति ?, एवं सप्पइत्तो कूवफलइत्तोवि, थूलभद्दसामीवि तत्थेव गणियाघरे भिक्खं गेण्हइ, सोवि चउमासेसु पुण्णेसु आगओ, आयरिया संभमेण अब्भुट्ठिया, भणियं–सागयं ते अइदुक्कर २ कारगत्ति ?, ते भणंति तिण्णिवि–पेच्छह आयरिया रागं वहंति अमच्चपुत्तोत्ति, बितियवरिसारत्ते सीहगुहाखमओ गणियाघरं वच्चामि अभिग्गहं गेण्हइ, आयरिया उवउत्ता, वारिओ, अपडिसुणेंतो गओ, वसही मग्गिया, दिन्ना, सा सभावेणं उरालियसरीरा विभूसिया अविभूसियावि, धम्मं सुणेइ, तीसे सरीरे सो अज्झोववन्नो, ओभासइ, सा

१ तुष्टा परीषहपराजित आगत इति, भणति–किं करोमि ?, उद्याने गृहे स्थानं देहि, दत्तं, रात्रौ सर्वालङ्कारविभूषिता आगता, चाटु प्रकृता, स मेरुरिव निष्प्रकम्पो न शक्यते क्षोभयितुं, तदा धर्मं शृणोति, श्राविका जाता, भणति–यदि राजवशेनान्येन समं वसामि इतरथा ब्रह्मचारिणीव्रतं सा गृह्णाति, तदा सिंहगुहाया आगतश्चतुरो मासानुपवासं कृत्वा, आचार्यैरीषदिति अभ्युत्थितः, भणितं–स्वागतं दुष्करकारकस्येति ?, एवं सर्पबिलसत्कः कूपफलकसत्कोऽपि, स्थूलभद्रोऽपि स्वामी तत्रैव गणिकागृहे भिक्षां गृह्णाति, सोऽपि चतुर्मास्यां पूर्णायामागतः, आचार्याः संभ्रमेणोत्थिताः, भणितं–स्वागतं तेऽतिदुष्करदुष्करकारकस्येति ?, ते भणन्ति त्रयोऽपि–पश्यत आचार्या रागं वहन्ति अमात्यपुत्र इति, द्वितीयवर्षारात्रे सिंहगुहाक्षपको गणिकागृहं व्रजामीति अभिग्रहं गृह्णाति, आचार्या उपयुक्ताः, वारितोऽप्रतिशृण्वन् गतः, वसतिर्मार्गिता, दत्ता, सा स्वभावेनोदारशरीरा विभूषिता अविभूषिताऽपि, धर्मं शृणोति, तस्याः शरीरे सोऽध्युपपन्नः, याचते, सा

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥६९६॥

नेच्छइ, भणइ–जइ नवरि किंचि देसि, किं देमि ?, सयसहस्सं, सो मग्गिउमारद्धो, नेपालविसए सावगो राया, जो तहिं जाइ तस्स सयसहस्समोल्लं कंबलं देइ, सो तं गओ, दिन्नो रायाणएण, एइ, एगत्थ चोरेहिं पंथो बद्धो, सउणो वासइ–सयसहस्सं एइ, सो चोरसेणावई जाणइ, नवरं एज्जंतं संजयं पेच्छइ, वोलीणो, पुणोवि वासइ–सयसहस्सं गयं, तेण सेणावइणा गंतूण पलोइओ, भणइ–अत्थि कंबलो गणियाए नेमि, मुक्को, गओ, तीसे दिन्नो, ताए चंदणियाए छूढो, सो वारेइ–मा विणासेहि, सा भणइ–तुमं एयं सोयसि अप्पयं न सोयसि, तुमंपि एरिसो चेव होहिसि, उवसामिओ, लद्धा बुद्धी, इच्छामित्ति मिच्छामिदुक्कडं, गओ, पुणोवि आलोएत्ता विहरइ, आयरिएण भणियं–एवं अइदुक्करदुक्करकारगो थूलभद्दो, पुव्वपरिचिया असाविया य थूलभद्देण अहियासिया य, इयाणिं सड्ढा तुमे अदिट्ठदोसा पत्थियत्ति उवालद्धो, एवं ते विहरंति, एवं सा गणिया रहियस्स दिण्णा नंदेण, थूलभद्दसामिणो अभिक्खणं गुणगहणं करेइ, न तहा उवचरइ,

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० ७ शिक्षायां कल्पकवंशे स्थूलभद्र-दीक्षा

१ नेच्छति, भणति–यदि परं किञ्चिद्ददासि, किं ददामि ?, शतसहस्रं, स मार्गितुमारब्धः, नेपालविषये श्रावको राजा, यः तत्र याति तस्मै शतसहस्रमूल्यं कम्बलं ददाति, स तं गतः, दत्तो राज्ञा, आयाति, एकत्र चौरैः स्थानं बद्धं, शकुनो रटति–शतसहस्रमायाति, स चौरसेनापतिर्जानाति, नवरमायान्तं संयतं पश्यति, पश्चाद्गतः, पुनरपि रटति–शतसहस्रं गतं, तेन सेनापतिना गत्वा प्रलोकितः, भणति–अस्ति कम्बलो गणिकायै नयामि, मुक्तो, गतः, तस्यै दत्तः, तया वर्चोगृहे क्षिप्तः, स वारयति–मा विनाशय, सा भणति–त्वमेनं शोचसे आत्मानं न शोचसे, त्वमपीदृशो भविष्यसि चैव, उपशान्तः, लब्धा बुद्धिः, इच्छामीतिमे मिथ्यादुष्कृतमिति, गतः, पुनरपि आलोच्य विहरति, आचार्येण भणितं–एवमतिदुष्करदुष्करकारकः स्थूलभद्रः, पूर्वपरिचिता अश्राविका च स्थूलभद्रेण अध्यासिता च, इदानीं श्राद्धा त्वयाऽदृष्टदोषा प्रार्थितेति उपालब्धः, एवं ते विहरन्ति, एवं सा गणिका रथिकाय दत्ता नन्देन, स्थूलभद्रस्वामिनोऽभीक्ष्णं गुणग्रहणं करोति, न तथोपचरति

॥६९६॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

सो तीए अप्पणो विण्णाणं दरिसिउकामो असोगवणियं नेइ, भूमीगएण अंबगपिंडी पाडिया, कंडपुंखे अण्णोण्णं लायं-तेण हत्थब्भासं आणेत्ता अद्धचंदेण छिन्ना गहिया, तहवि न तूसइ, भणइ–किं सिक्खियस्स दुक्करं ?, सा भणइ–पेच्छ ममंति, सिद्धत्थगरासिंमि नच्चिया सूईणं अग्गयंमि य, सो आउट्टो, सा भणइ–'न दुक्करं तोडिय अंबलुंबिया न दुक्करं नच्चिउ सिक्खियाए। तं दुक्करं तं च महाणुभावं, जं सो मुणी पमयवणंमि वुच्छो ॥ १ ॥ तीए सोवि सावओ कओ। तंमि य काले बारवरिसिओ दुक्कालो जाओ, संजयाइ तओ समुद्दतीरे अच्छित्ता पुणरवि पाडलिपुत्ते मिलिया, तेसिं अण्णस्स उद्देसो अण्णस्स खंडं एवं संघातंतेहिं एक्कारस अंगाणि संघाइयाणि, दिट्ठिवाओ नत्थि, नेपालवत्तिणीए य भद्दबाहू अच्छंति चोद्दसपुव्वी, तेसिं संघेण संघाडओ पट्ठविओ दिट्ठिवायं वाएहित्ति, गंतूण निवेइयं संघकज्जं, ते भणंति–दुक्कालनिमित्तं महापाणं न पविट्ठोमि, इयाणिं पविट्ठो, तो ण जाइ वायणं दाउं, पडिणियत्तेहिं संघस्स अक्खायं, तेहिं

---

१ स तस्यायात्मनो विज्ञानं दर्शयितुकामोऽशोकवनिकां नयति, भूमिगतेनाम्रपिण्डी पातिता, बाणपृष्ठेऽन्योऽन्यं लाता हस्तेनानीयार्धचन्द्रेण छित्वा गृहीता, तथापि न तुष्यति, भणति–किं शिक्षितस्य दुष्करं ?, सा भणति–पश्य ममेति, सिद्धार्थकराशौ नर्त्तिता सूचीनां चाग्रे, स आवर्जितः, सा भणति–न दुष्करं त्रोटितायामाम्रपिण्ड्यां न दुष्करं सर्षपनर्त्तने(शिक्षितायाः)। तद्दुष्करं तच्च महानुभावं यत्स मुनिः प्रमदावने उषितः ॥१॥ तया सोऽपि श्रावकः कृतः । तस्मिंश्च काले द्वादशवार्षिको दुष्कालो जातः, संयतादिकाः ततः समुद्रतीरे स्थित्वा पुनरपि पाटलिपुत्रे मिलिताः, तेषामन्यस्योद्देशोऽन्यस्य खण्डमेवं संघातयद्भिरेकादशाङ्गानि संघातितानि, दृष्टिवादो नास्ति, नेपालदेशे च भद्रबाहुवस्तिष्ठन्ति चतुर्दशपूर्वधराः, तेषां सङ्घेन संघाटकः प्रेषितो दृष्टिवादं वाचयेति, गत्वा निवेदितं संघकार्यं, ते भणन्ति–दुष्कालनिमित्तं महाप्राणं न प्रविष्टोऽस्मि, इदानीं प्रविष्टस्ततो न वाचनां दातुं समर्थः, प्रतिनिवृत्तैः संघायाख्यातं,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥६९७॥

४ प्रतिक्र-मणाध्य० योगसं० ५ शिक्षायां भद्रबाहु०

अन्नो सिंघाडओ विसज्जिओ, जो संघस्स आणं वइक्कमइ तस्स को दंडो ?, ते गया, कहियं, भणइ–ओघाडिज्जइ, ते भणंति, मा उग्घाडेह पेसेह मेहावी सत्त पडियाओ देमि, भिक्खायरियाए आगओ १ कालवेलाए २ सण्णाए आगओ ३ वेयालियाए ४ पडिपुच्छा आवस्सए तिण्णि ७, महापाणं किर जया अइयओ होइ तया उप्पण्णे कज्जे अंतोमुहुत्तेण चउद्दस पुव्वाणि अणुपेहइ, उक्कइओवक्कइयाणि करेइ, ताहे थूलभद्दप्पमुहाणं पंच मेहावीणं सयाणि गयाणि, ते प (प)ढिया वायणं, मासेणं एगेणं दोहिं तिहिं सव्वे ऊसरिया न तरंति पडिपुच्छएण पढिउं, नवरं थूलभद्दसामी ठिओ, थेवावसेसे महापाणे पुच्छिओ–न हु किलंमसि ?, भणइ–न किलामामि, खमाहि कंचि कालं तो दिवसं सव्वं वायणं देमि, पुच्छइ–किं पढियं कित्तियं वा सेसं ?, आयरिया भणंति–अट्ठासी य सुत्ताणि, सिद्धत्थगमंदरे उवमाणं भणिओ, एत्तो ऊणतरेणं कालेणं पढिहिसि मा विसायं वच्च, समत्ते महापाणे पढियाणि नव पुव्वाणि दसमं च दोहिं वत्थूहिं ऊणं, एयंमि अंतरे विहरंता गया पाडलिपुत्तं,

---

१ तैरन्यः संघाटको विसृष्टः, यः संघस्याज्ञामतिक्राम्यति तस्य को दण्डः?, ते गताः, कथितं, भणति–उद्घाट्यते, ते भणन्ति, मा उज्जीघटः प्रेषयत मेधाविनः सप्त वाचना ददामि, भिक्षाचर्याया आगतः कालवेलायां संज्ञाया आगतो विकाले आवश्यके कृते तिस्रः, महाप्राणं किल यदातिगतो भवति तदोत्पन्ने कार्येऽन्तर्मुहूर्त्तेन चतुर्दश पूर्वाणि अनुप्रेक्ष्यते, उत्क्रमिकापक्रमिकानि करोति, तदा स्थूलभद्रप्रमुखाणां पञ्च मेधाविनां शतानि गतानि, ते वाचनाः पठितुमारब्धाः, मासेनैकेन द्वाभ्यां त्रिभिः सर्वेऽपसृता न शक्नुवन्ति प्रतिपृच्छकेन (विना) पठितुं, नवरं स्थूलभद्रस्वामी स्थितः, स्तोकावशेषे महाप्राणे पृष्टः–नैव क्लाम्यसि ?, भणति–न क्लाम्यामि, प्रतीक्षस्व कञ्चित् कालं ततो दिवसं सर्वं वाचनां दास्यामि, पृच्छति–किं पठितं कियत् शेषं ?, आचार्या भणन्ति–अष्टाशीतिः सूत्राणि, सिद्धार्थकमन्दरोपमानं भणितं, इत ऊनतरेण कालेन पठिष्यसि मा विषादं व्राजीः, समाप्ते महाप्राणे पठितानि नव पूर्वाणि दशमं च द्वाभ्यां वस्तुभ्यामूनं, एतस्मिन्नन्तरे विहरन्तो गताः पाटलिपुत्रं,.

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

थूलभद्दस्स य ताओ सत्तवि भगिणीओ पवइयाओ, आयरिए भाउगं च वंदिउं निग्गयाओ, उज्जाणे किर ठविएल्लगा आयरिया, वंदित्ता पुच्छंति–कहिं जेट्ठज्जो ?, एयाए देउलियाए गुणेइत्ति, तेणं ताओ दिट्ठाओ, तेण चिंतियं–भगिणीणं इड्ढिं दरिसेमित्ति सीहरूवं विउवइ, ताओ सीहं पेच्छंति, ताओ नट्ठाओ, भणंति–सीहेण खइओ, आयरिया भणंति–न सो सीहो थूलभद्दो सो, ता जाह एत्ताहे, आगयाओ वंदिओ, खेमं कुसलं पुच्छइ, जहा सिरियओ पवइओ अब्भत्तट्ठेण कालगओ, महाविदेहे य पुच्छिया तित्थयरा, देवयाए नीया, अज्जा ! दो अज्झयणाणि भावणाविमुत्ती आणियाणि, एवं वंदित्ता गयाओ, बिइयदिवसे उद्देसकाले उवट्ठिओ, न उद्दिसंति, किं कारणं ?, उवउत्तो, तेण जाणियं, कल्लत्तणगेण, भणइ,–न पुणो काहामि, ते भणंति–न तुमं काहिसि, अन्ने काहिंति, पच्छा महया किलेसेण पडिवण्णा, उवरिल्लाणि चत्तारि पुव्वाणि पढाहि, मा पुण अण्णस्स दाहिसि, ते चत्तारि तओ वोच्छिण्णा, दसमस्स दो पच्छिमाणि वत्थूणि वोच्छिण्णाणि,

१ स्थूलभद्रस्य च ताः सप्तापि भगिन्यः प्रव्रजिताः, आचार्यान् भ्रातरं च वन्दितुं निर्गताः, उद्याने किल स्थिता आचार्याः, वन्दित्वा पृच्छन्ति–क्व ज्येष्ठार्य ?, एतस्यां देवकुलिकायां गुणयति, तेन ता दृष्टाः, तेन चिन्तितं–भगिनीनां ऋद्धिं दर्शयामीति सिंहरूपं विकुर्वति, ताः सिंहं पश्यन्ति, ता नष्टाः, भणन्ति–सिंहेन खादितः, आचार्या भणन्ति– न स सिंहः स्थूलभद्रः सः तत् याताधुना, आगताः वन्दितः, क्षेमं कुशलं च पृच्छति, यथा श्रीयकः प्रव्रजितोऽभक्तार्थेन कालगतः, महाविदेहेषु च पृष्टास्तीर्थकराः, देवतया नीता, आर्ये ! द्वे अध्ययने भावनाविमुक्ती आनीते, एवं वन्दित्वा गते, द्वितीयदिवसे उद्देसकाले उपस्थितः, नोद्दिशन्ति, किं कारणं ?, उपयुक्तः, तेन ज्ञातं, ह्यस्तनीयेन, भणति–न पुनः करिष्यामि, ते भणन्ति–न त्वं करिष्यसि, अन्ये करिष्यन्ति, पश्चात् महता क्लेशेन प्रतिपन्नवन्तः, उपरितनानि चत्वारि पूर्वाणि पठ मा पुनरन्यस्मै दाः, तानि चत्वारि ततो व्युच्छिन्नानि, दशमस्य द्वे पश्चिमे वस्तुनी व्यवच्छिन्ने,

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥६९८॥

४ प्रतिक्र-मणाध्य० योगसं० ६ निष्प्रतिकर्मता

देस पुवाणि अणुसज्जंति ॥ एवं शिक्षां प्रति योगाः सङ्गृहीता भवन्ति यथा स्थूलभद्रस्वामिनः। शिक्षेति गतं ५। इयाणिं निप्पडिकंमयत्ति, निप्पडिकम्मत्तणेण योगाः सङ्गृह्यन्ते, तत्र वैधर्म्योदाहरणमाह—

पइठाणे नागवसू नागसिरी नागदत्त पव्वज्जा। एगविहा सड्डाणे देवय साहू य विल्लगिरे ॥ १२८५ ॥

अस्याश्चार्थः कथानकादवसेयः, तच्चेदम्—पइट्ठाणे णयरे नागवसू सेट्ठी णागसिरी भज्जा, सड्ढाणि दोवि, तेसिं पुत्तो नागदत्तो निव्विण्णकामभोगो पव्वइओ, सो य पेच्छइ जिणकप्पियाण पूयासक्कारे, विभासा जहा ववहारे पडिमापडिवन्नाण य पडिनियत्ताणं पूयाविभासा, सो भणइ—अहंपि जिणकप्पं पडिवज्जामि, आयरिएहिं वारिओ, न ठाइ, सयं चेव-पडिवज्जइ, निग्गओ, एगत्थ वाणमंतरघरे पडिमं ठिओ, देवयाए सम्मद्दिट्ठियाए मा विणिस्सिहितित्ति इत्थिरूवेण उवहारं गहाय आगया, वाणमंतरं अच्चित्ता भणइ—गिण्ह खवणत्ति, पललभूयं कूरं भक्खरूवाणि नाणापगाररूवाणि गहियाणि, खाइत्ता रत्तिं पडिमं ठिओ, जिणकप्पियत्तं न मुंचति, पोट्टसरणी जाया, देवयाए आयरियाण कहियं, सो सीसो अमुगत्थ,

१ दश पूर्वाणि अनुसज्यन्ते। प्रतिष्ठाने नगरे नागवसुः श्रेष्ठी नागश्रीर्भार्या, श्राद्धे द्वे अपि, तयोः पुत्रो नागदत्तो निर्विण्णकामभोगः प्रव्रजितः, स च प्रेक्षते जिनकल्पिकानां पूजासत्कारौ, विभाषा यथा व्यवहारे प्रतिमाप्रतिपन्नानां च प्रतिनिवृत्तानां पूजाविभाषा, स भणति—अहमपि जिनकल्पं प्रतिपद्ये, आचार्यैर्वारितः, न तिष्ठति, स्वयमेव प्रतिपद्यते, निर्गतः, एकत्र व्यन्तरगृहे प्रतिमया स्थितः, देवता सम्यग्दृष्टिः मा विनङ्क्षदिति स्त्रीरूपेणोपहारं गृहीत्वाऽऽगता, व्यन्तरमर्चयित्वा भणति—गृहाण क्षपक इति, पललभूतं (मिष्टं) कूरं भक्ष्यरूपाणि नानाप्रकारस्वरूपाणि गृहीतानि, खादित्वा रात्रौ प्रतिमां स्थितः, जिनकल्पिकतां न मुञ्चति, अतिसारो जातः, देवतयाऽऽचार्याणां कथितं, स शिष्योऽमुत्र,

॥६९८॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

साहू पेसिया, आणिओ, देवयाए भणियं–बिलगिरं दिज्जहित्ति दिन्नं, ठियं, सिक्खविओ य–न य एवं कायवं । निप्पडिकंमत्ति गयं ६। इयाणिं अन्नायएत्ति, कोऽर्थः ?–पुविं परीसहसमत्थाणं जं उवहाणं कीरइ तं जहा लोगो न याणाइ तहा कायवंति, नायं वा कयं न नज्जेज्जा पच्छन्नं वा कयं नज्जेज्जा, तत्रोदाहरणगाहा—

कोसंबिय जियसेणे धम्मवसू धम्मघोस धम्मजसे । विगयभया विणयवई इड्ढिविभूसा य परिकम्मे ॥ १२८६ ॥

इमीए वक्खाणं—कोसंबीए अजियसेणो राया, धारिणी तस्स देवी, तत्थवि धम्मवसू आयरिया, ताणं दो सीसा–धम्मघोसो धम्मजसो य, विणयमई मयहरिया, विगयभया तीए सिस्सिणीया, तीए भत्तं पच्चक्खायं, संघेण महया इड्ढिसक्कारेण निज्जामिया, विभासा, ते धम्मवसुसीसा दोवि परिकम्मं करेंति, इओ य—

उज्जेणिवंतिवद्धणपालगसुयरट्ठवद्धणे चेव । धारिय(णि) अवंतिसेणे मणिप्पभा वच्छगातीरे ॥ १२८७ ॥

व्याख्या—उज्जेणीए पज्जोयसुया दो भायरो पालगो गोपालओ य, गोपालओ पवइओ, पालगस्स दो पुत्ता–अवंतिवद्धणो

---

१ साधवः प्रेषिताः, आनीतः, देवतया भणिताः–बीजपूरगर्भे दत्त, दत्तः, स्थितः, शिक्षितश्च–न चैवं कर्त्तव्यं । निष्प्रतिकर्मेति गतं । इदानीमज्ञात इति, पूर्वं परीषहसमर्थैर्यदुपधानं क्रियते तत् यथा लोको न जानाति तथा कर्त्तव्यमिति, ज्ञातं वा कृतं न ज्ञायेत प्रच्छन्नं वा कृतं ज्ञायेत । अस्या व्याख्यानं—कोशाम्ब्यामजितसेनो राजा धारिणी तस्य देवी, तत्रापि धर्मवसव आचार्याः, तेषां द्वौ शिष्यौ–धर्मघोषो धर्मयशाश्च, विनयमतिर्महत्तरिका, विगतभया तस्याः शिष्या, तया भक्तं प्रत्याख्यातं, सङ्घेन महता ऋद्धिसत्कारेण निर्यामिता, विभाषा, तौ धर्मवसुशिष्यौ द्वावपि परिकर्म कुर्वतः, इतश्च–उज्जयिन्यां प्रद्योतसुतौ द्वौ भ्रातरौ–पालको गोपालकश्च, गोपालकः प्रव्रजितः, पालकस्य द्वौ पुत्रौ–अवन्तीवर्धनो

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥६९९॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० ७ अज्ञातके

रट्ठवद्धणो य, पालगो अवंतिवद्धणं रायाणं रट्ठवद्धणं जुवरायाणं ठवित्ता पव्वइओ, रट्ठवद्धणस्स भज्जा धारिणी, तीसे पुत्तो अवंतिसेणो। अन्नया उज्जाणे राइणा धारिणी सव्वंगे वीसत्ता अच्छंती दिट्ठा, अज्झोववन्नो, दूती पेसिया, सा नेच्छइ, पुणो २ पेसइ, तीए अधोभावेण भणियं–भाउस्सवि न लज्जसि ?, ताहे तेण सो मारिओ, विभासा, तंमि वियाले सयाणि आभरणगाणि गहाय कोसंबिं सत्थो वच्चइ, तत्थ एगस्स वुड्ढस्स वाणियगस्स उवल्लीणा, गया कोसंबिं, संजइओ पुच्छित्ता रण्णो जाणसालाए ठियाओ तत्थ गया, वंदित्ता साविया पव्वइया, तीए गब्भो अहुणोववन्नो साहुणो माण पव्वाविहिंति(त्ति) तं न अक्खियं, पच्छा णाए मयहरियाए पुच्छिया–सब्भावेण कहिओ जहा रट्ठवद्धणभज्जाऽहं, संजतीमज्झेऽसागारियं अच्छाविया, वियाया रत्तिं, मा साहूणं उड्डाहो होहितित्ति णाममुद्दा आभरणाणि य उक्खिणित्ता रण्णो अंगणए ठवित्ता पच्छन्ना अच्छइ, अजियसेणेणागासतलगएणं पभा मणीण दिव्वा दिट्ठा, दिट्ठो य, गहिओ, णेण

---

१ राष्ट्रवर्धनश्च, पालकोऽवन्तीवर्धनं राजानं राष्ट्रवर्धनं युवराजं स्थापयित्वा प्रव्रजितः, राष्ट्रवर्धनस्य भार्या धारिणी, तस्याः पुत्रोऽवन्तीषेणः। अन्यदोद्याने राज्ञा धारिणी सर्वाङ्गेषु विश्वस्ता तिष्ठन्ती दृष्टा, अध्युपपन्नः, दूती प्रेषिता, सा नेच्छति, पुनः २ प्रेषते, तया तिरस्कारबुद्ध्या भणितं–भ्रातुरपि न लज्जसे ?, तदा तेन स मारितः, विभाषा, तस्मिन् विकाले स्वकान्याभरणानि गृहीत्वा कौशाम्ब्यां सार्थो व्रजति तत्रैकस्य वृद्धस्य वणिजः पार्श्वमाश्रिता, गता कौशाम्बीं, संयत्यः पृष्ट्वा राज्ञो यानशालायां स्थिताः तत्र गता, वन्दित्वा श्राविका प्रव्रजिता, तया गर्भोऽधुनोत्पन्नः साधवो मा प्रव्रिजन्निति तन्नाख्यातं, पश्चात् ज्ञाते महत्तरिकया पृष्टा–सद्भावः कथितः यथा राष्ट्रवर्धनस्य भार्याऽहं, संयतीमध्येऽसागारिकं स्थापिता, प्रजनितवती रात्रौ, मा साधूनामुड्डाहो भूदिति नाममुद्राभरणानि चोत्क्षिप्य राज्ञोऽङ्गणे स्थापयित्वा प्रच्छन्ना तिष्ठति, अजितसेनेनाकाशतलगतेन मणीनां प्रभा दिव्या दृष्टा, दृष्टश्च, गृहीतः, अनेन ॥६९९॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

अग्गमहिसीए दिन्नो अपुत्ताए, सो य पुत्तो, सा य संजतीहिं पुच्छिया भणइ–उद्दाणगं जायं तं मए विगिंचियं, खइयं होहिति, ताहे अंतेउरं णीइ अतीइ य, अंतेउरियाहिं समं मित्तिया जाया, तस्स मणिप्पहोत्ति णामं कयं, सो राया मओ, मणिप्पभो राया जाओ, सो य तीए संजईए निरायं अणुरत्तो, सो य अवंतिवद्धणो पच्छायावेण भायावि मारिओ सावि देवी ण जायत्ति भाउनेहेण अवंतिसेणस्स रज्जं दाऊण पव्वइओ, सो य मणिप्पहं कप्पागं मग्गइ, सो न देइ, ताहे सव्वबलेण कोसंबिं पहाविओ । ते य दोवि अणगारा परिकम्मे समत्ते एगो भणइ–जहा विणयवतीए इड्ढी तहा ममवि होउ, णयरे भत्तं पच्चक्खायं, बीओ धम्मजसो विभूसं नेच्छंतो कोसंबीए उज्जेणीए य अंतरा वच्छगातीरे पव्वयकंदराए भत्तं पच्चक्खायं । ताहे तेण अवंतिसेणेण कोसंबी रोहिया, तत्थ जणो अप्पणो अद्दण्णो, न कोइ धम्मघोसस्स समीवं अल्लियइ, सो य चिंतियमत्थमलभमाणो कालगओ, बारेण निप्फेडो न लब्भइ पागारस्स उवरिएण अहिक्खित्तो । सा पव्वइय

---

१ अग्रमहिष्यै अपुत्रायै दत्तः, स च पुत्रः, सा च संयतीभिः पृष्टा भणति–मृतं जातं तन्मया त्यक्तं, प्रसिद्धं (विनष्टं ?) भविष्यतीति, तदाऽन्तःपुरं गच्छत्यायाति च, अन्तःपुरिकाभिः समं मैत्री जाता, तस्य मणिप्रभ इति नाम कृतं, स राजा मृतः, मणिप्रभो राजा जातः, स च तस्यां संयत्यां नितरामनुरक्तः, स चावन्तिवर्धनः पश्चात्तापेन भ्राताऽपि मारितः साऽपि देवी न प्राप्तेति भ्रातृस्नेहेनावन्तीषेणस्य राज्यं दत्त्वा प्रव्रजितः, स च मणिप्रभं दण्डं मार्गयति, स न ददाति, तदा सर्वबलेन कौशाम्बीं प्रधावितः । तौ च द्वावपि अनगारौ परिकर्मणि समाप्ते (अनशनोद्यतौ) एको भणति–यथा विनयवत्या ऋद्धिस्तथा ममापि भवतु, नगरे भक्तं प्रत्याख्यातं, द्वितीयो धर्मयशा विभूषामनिच्छन्। कौशम्ब्या उज्जयिन्याश्चान्तरा वत्सकातीरे पर्वतकन्दरायां भक्तं प्रत्याख्यातवान्। तदा तेनावन्तीषेणेन कौशाम्बी रुद्धा, तत्र स्वयं जनः पीडितः, न कश्चिद्धर्मघोषस्य समीपमागच्छति, स च चिन्तितमर्थमलभमानः कालगतः, द्वारेण निष्काशनं न लभ्यते (इति) प्राकारस्योपरिकया बहिः क्षिप्तः । सा प्रव्रजिता

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया ||७००||

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० अज्ञातके ७

चिंतेई–मा जणक्खओ होउत्ति रहस्सं भिंदामि, अंतेउरमइगया, मणिप्पहं ओसारेत्ता भणइ–किं भाउगेण समं कलहेसि ?, सो भणइ–कहन्ति, ताहे तं सव्वं संबंधं अक्खायं, जइ न पत्तियसि तो मायरं पुच्छाहि, पुच्छइ, तीए णायं अवस्सं रहसभेओ, कहियं जहावत्तं रट्ठवद्धणसंतगाणि आभरणगाणि नाममुद्दाइ दाइयाइं, पत्तीओ भणइ–जइ एत्ताहे ओसरामि तो ममं अयसो, अज्जा भणइ–अहं तं पडिबोहेमि, एवं होउत्ति, निग्गया, अवंतिसेणस्स निवेइयं, पव्वइया दट्ठुमिच्छइ, अइयया, पाए दट्ठूण णाया अंगपाडिहारियाहिं, पायवडियाओ परुन्नाओ, कहियं तस्स तव मायत्ति, सो य पायवडिओ परुन्नो, तस्सवि कहेइ–एस भे भाया, दोवि बाहिं मिलिया, अवरोप्परमवयासेऊणं परुण्णा, किंचि कालं कोसंबीए अच्छित्ता दोवि उज्जेणिं पाविया, मायावि सह मयहारियाए पणीया, जाहे य वच्छयातीरे पव्वयं पत्ता, ताहे जे तंमि जणवए साहुणो ते पव्वए ओरुभंते चडंते य दट्ठूण पुच्छिया, ताहे ताओवि वंदिउं गयाओ, बितियदिवसे राया पहाविओ,

---

१ चिन्तयति–मा जनक्षयो भूदिति रहस्यं भिनद्मि, अन्तःपुरमतिगता, मणिप्रभमपसार्य भणति–किं भ्रात्रा समं कलहयसि ?, स भणति–कथमिति, तदा तं सर्वं सम्बन्धमाख्यातवती, यदि न प्रत्येषि तर्हि मातरं पृच्छ, पृच्छति, तया ज्ञातं–अवश्यं रहस्यभेदः, कथितं यथावृत्तं राष्ट्रवर्धनसत्कानि आभरणानि नाममुद्रादीनि दर्शितानि, प्रत्ययितो भणति–यद्यधुनापसरामि तर्हि मेऽयशः, आर्या भणति–अहं तं प्रतिबोधयामि, एवं भवत्विति, निर्गता, अवन्तीषेणाय निवेदितं, प्रव्रजिता द्रष्टुमिच्छति, अतिगता, पादौ दृष्ट्वा ज्ञाताऽन्तःपुरप्रतिहारिणीभिः, पादपतिताः प्ररुदिताः, कथितं तस्य तव मातेति, स च पादपतितः प्ररुदितः, तस्यापि कथयति, एष तव भ्राता, द्वावपि बहिर्मिलितौ परस्परमालिङ्ग्य प्ररुदितौ, कञ्चित्कालं कौशाम्ब्यां स्थित्वा द्वावप्युज्जयिनीं प्राप्तौ, मातापि सह महत्तरिकया नीता, यदा च वत्सकातीरे पर्वतं प्राप्ता तदा ये तस्मिन् जनपदे साधवस्तान् पर्वतादवतरत आरोहतश्च दृष्ट्वा पृष्टवती, तदा ता अपि वन्दितुं गताः, द्वितीयदिवसे राजा प्रस्थितः,.

||७००||

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

ताओ भणंति–भत्तं पच्चक्खायओ एत्थं साहू अम्हे अच्छामो, दोवि रायाणो ठिया, दिवसे २ महिमं करेंति, कालगओ, एवं ते य गया रायाणो, एवं तस्स अनिच्छमाणस्सवि जाओ इयरस्स इच्छमाणस्सवि न जाओ पूयासक्कारो, जहा धम्मजसेण तहा कायव्वं। अण्णाययत्तिगयं ७। इयाणिं अलोभेत्ति, लोभविवेगयाए जोगा संगहिया भवंति अलोभया तेण कायव्वा, कहं ? तत्थोदाहरणमाह—

साएए पुंडरीए कंडरिए चेव देविजसभद्दा। सावत्थिअजियसेणे कित्तिमई खुड्डगकुमारो ॥ १२८८ ॥
जसभद्दे सिरिकंता जयसंधी चेव कण्णपाले य। नट्टविही परिओसे दाणं पुच्छा य पव्वज्जा ॥ १२८९ ॥
सुट्ठु वाइयं सुट्ठु गाइयं सुट्ठु नच्चियं साम सुंदरि!। अणुपालिय दीहराइयओ सुमिणंते मा पमायए ॥१२९०॥

द्वारगाथात्रयम्, अस्य व्याख्या कथानकादवसेया, तच्चेदं—सागेयं णयरं, पुंडरिओ राया, कंडरिओ जुवराया, जुवरन्नो देवी जसभद्दा, तं पुंडरीओ चंकमंती दट्ठूण अज्झोववन्नो, नेच्छइ, तहेव जुवराया मारिओ, सावि सत्थेण समं पलाया, अहुणोववन्नगब्भा पत्ता य सावत्थिं, तत्थ य सावत्थीए अजियसेणो आयरिओ, कित्तिमती मयहरिया, सा

१ ता भणन्ति–प्रत्याख्यातभक्तोऽत्र साधुः ततो वयं तिष्ठामः द्वावपि राजानौ स्थितौ, दिवसे २ महिमानं कुरुतः, कालगतः, एवं ते राजानौ च गताः। एवं तस्यानिच्छतोऽपि जात ऋद्धिसत्कारः, इतरस्येच्छतोऽपि न जातः पूजासत्कारः, यथा धर्मयशसा तथा कर्त्तव्यं। अज्ञातकमिति गतं, इदानीं अलोभ इति, लोभविवेकितया योगाः संगृहीता भवन्ति, अलोभता तेन कर्त्तव्या, कथं?, तत्रोदाहरणमाह। साकेतं नगरं, पुण्डरीको राजा, कण्डरीको युवराजः, युवराजस्य देवी यशोभद्रा, तां चङ्क्रमन्तीं दृष्ट्वा पुण्डरीकोऽध्युपपन्नः, नेच्छति, तथैव युवराजो मारितः, साऽपि सार्थेन समं पलायिता, अधुनोत्पन्नगर्भा प्राप्ता च श्रावस्तीं, तत्र च श्रावस्त्यामजितसेन आचार्यः, कीर्तिमतिर्महत्तरिका, सा.

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७०१॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० अलोभता०

[1]तीए मूले तेणेव कमेण पव्वइया जहा धारिणी तहा विभासियव्वा, नवरं तीए दारओ न छड्डिओ खुड्डगकुमारोत्ति से नामं कयं, सो जोव्वणत्थो जाओ, चिंतेइ–पव्वज्जं न तरामि काउं, मायरं आपुच्छइ–जामि, सा अणुसासइ तहवि न ठाइ, सा भणइ–तो खाइ मज्झिमित्तं बारस वरिसाणि करेहि, भणइ–करेमि, पुन्नेसु आपुच्छइ, सा भणइ–मयहरियं आपुच्छामि, तीसेवि बारस वरिसाणि, ताहे आयरियस्सवि वयणेण बारस, उवज्झायस्स बारस, एवं अडयालीसं वरिसाणि अच्छाविओ तह वि न ठाइ, विसज्जिओ, पच्छा मायाए भण्णइ–मा जहिं वा तहिं वा वच्चाहि, महल्लपिया तुज्झ पुंडरीओ राया, इमा ते पितिसंतिया मुद्दिया कंबलरयणं च मए निंतीए नीणीयं एयाणि गहाय वच्चाहित्ति, गओ णयरं, रण्णो जाणसालाए आवासिओ कल्ले रायाणं पेच्छिहामित्ति, अब्भंतरपरिसाए पेच्छणयं पेच्छइ, सा नट्टिया सव्वरत्तिं नच्चिऊण पभायकाले निद्दाइया, ताहे सा धोरिगिणी चिंतेइ–तोसिया परिसा बहुगं च लद्धं जइ एत्थ वियट्टइ तो धरिसियामोत्ति, ताहे इमं गीतियं पगाइया–'सुट्ठु गाइयं सुट्ठु नच्चियं सुट्ठु वाइयं साम सुंदरि। अणुपालिय दीहराइयओ सुमिणंते मा पमायए ॥ १ ॥

१ तस्या मूले तेनैव क्रमेण प्रव्रजिता यथा धारिणी तथा विभावितव्या, नवरं तया दारको न त्यक्तः क्षुल्लककुमार इति तस्य नाम कृतं, स यौवनस्थो जातः, चिन्तयति–प्रव्रज्यां न शक्नोमि कर्त्तुं, मातरमापृच्छते–यामि, सा अनुशास्ति तथापि न तिष्ठति, सा भणति–तदा मन्निमित्तं द्वादश वर्षाणि कुरु, भणति–करोमि, पूर्णेषु आपृच्छते, सा भणति–महत्तरिकामापृच्छे, तस्या अपि द्वादश वर्षाणि, तत आचार्यस्यापि वचनेन द्वादश उपाध्यायस्य द्वादश, एवमष्टचत्वारिंशत् वर्षाणि स्थापितस्तथापि न तिष्ठति, विसृष्टः, पश्चाद् मात्रा भण्यते–मा यत्र वा तत्र वा व्राजीः, पितृव्यस्तव पुण्डरीको राजा, इयं च ते पितृसत्का मुद्रिका कम्बलरत्नं मया निर्गच्छन्त्याऽऽनीतं, एते गृहीत्वा व्रज, गतो नगरं, राज्ञो यानशालायामुषितः कल्ये राजानं प्रेक्षिष्य इति, अभ्यन्तरपर्षदि प्रेक्षणकं प्रेक्षते, सा नटी सर्वरात्रं नर्त्तित्वा प्रभातकाले निद्रायिता, तदा सा नर्त्तकी चिन्तयति–तोषिता पर्षत् बहु च लब्धं यद्यधुना प्रमाद्यति तर्हि अपभ्राजिताः स्म इति, तदेमां गीतिकां प्रगीतवती–सुष्ठु गीतं सुष्ठु नर्त्तितं सुष्ठु वादितं श्यामायां सुन्दरि!। अनुपालितं दीर्घरात्रं स्वप्नान्ते मा प्रमादीः॥ १ ॥

॥७०१॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

इयं निगदसिद्धैव, एत्थंतरे खुड्डुएण कंबलरयणं छूढं, जसभद्देण जुवराइणा कुंडलं सयसहस्समोल्लं, सिरिकंताए सत्थवाहिणीए हारो सयसहस्समोल्लो, जयसंधिणा अमच्चेण कडगो सयसहस्समोल्लो, कण्णवालो मिंठो तेण अंकुसो सयसहस्सो, कंबलं कुंडलं (कडयं) हारेगावलि अंकुसोत्ति एयाइ सयसहस्समोल्लाइ, जो य किर तत्थ तूसइ वा देइ वा सो सव्वो लिखिज्जइ, जइ जाणइ तो तुट्ठो अह न याणइ तो दंडो तेसिंति सव्वे लिहिया, पभाए सव्वे सद्दाविया, पुच्छिया, खुड्डगो! तुब्भे कीस दिन्नं ?, सो जहा पियामारिओ तं सव्वं परिकहेइ जाव न समत्थो संजममणुपालेउं, तुब्भं मूलमागओ रज्जं अहिलसामित्ति, सो भणइ–देमि, सो खुड्डगो भणइ–अलाहि, सुमिणंतयं वट्टइ, मरिज्जा, पुव्वकओवि संजमो नासिहित्ति, जुवराया भणइ–तुमं मारेउं मग्गामि थेरो राया रज्जं न देइत्ति, सोवि दिज्जंतं नेच्छइ, सत्थवाहभज्जा भणइ–बारस वरिसाणि पउत्थस्स, पहे वट्टइ, अन्नं पवेसेमि वीमंसा वट्टइ, अमच्चो–अण्णरायाणएहिं समं घडामि, पच्चंतरायाणो हत्थिमेंठं भणंति–हत्थिं आणेहि

---

१ अत्रान्तरे क्षुल्लककुमारेण कम्बलरत्नं क्षिप्तं, यशोभद्रेण युवराजेन कुण्डलं शतसहस्रमूल्यं, श्रीकान्तया सार्थवाह्या हारः शतसहस्रमूल्यः, जयसन्धिनाऽमात्येन कटकं शतसहस्रमूल्यं, कर्णपालो मेण्ठस्तेनाङ्कुशः शतसहस्रमूल्यः, कम्बलं कुण्डलं (कटकं) हार एकावलिकः अङ्कुश इत्येतानि शतसहस्रमूल्यानि, यश्च किल तत्र तुष्यति ददाति वा स सर्वो लिख्यते, यदि जानाति तदा तुष्टः अथ न जानाति तदा दण्डस्तेषामिति सर्वे लिखिताः, प्रभाते सर्वे शब्दिताः पृष्टाः, क्षुल्लक! त्वया किं दत्तं ?, स यथा पिता मारितः तत् सर्वं परिकथयति यावन्न समर्थः संयममनुपालयितुं, युष्माकं पार्श्वमागतः राज्यमभिलष्यामीति, स भणति–ददामि, स क्षुल्लको भणति अलं, स्वप्नान्तो वर्त्तते, म्रिये, पूर्वकृतोऽपि संयमो नश्येदिति, युवराजो भणति–त्वां मारयितुं मृगये स्थविरो राजा राज्यं ददातीति सोऽपि दीयमानं नेच्छति, सार्थवाहभार्या भणति–द्वादश वर्षाणि प्रोषितस्य, पथि वर्त्तते, अन्यं प्रवेशयामीति विमर्शोऽभूत्, अमात्यः–अन्यराजभिः समं मन्त्रयामि, प्रत्यन्तराजानो हस्तिमेण्ठं भणन्ति–हस्तिनमानय

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥७०२॥

४ प्रतिक्र-मणाध्य० योगसं० तितिक्षा

[1]मारेह वत्ति, भणंति ते तहा करेहित्ति भणिया नेच्छंति, खुड्डगकुमारस्स मग्गेण लग्गा पव्वइया, सव्वेहिं लोभो परिचत्तो, एवं अलोभया कायव्वा, अलोभेत्ति गयं ८। इयाणिं तितिक्खत्ति दारं, तितिक्खा कायव्वा–परीसहोवसग्गाणं अतिसहणं भणियं होइ, तत्रोदाहरणगाथाद्वयम्—

इंदपुर इंददत्ते बावीस सुया सुरिंददत्ते य। महुराए जियसत्तू सयंवरो निव्वुईए उ ॥ १२९१ ॥
अग्गियए पव्वयए बहुली तह सागरे य बोद्धव्वे। एगदिवसेण जाया तत्थेव सुरिंददत्ते य ॥ १२९२ ॥

अस्य व्याख्या कथानकादवसेया, तच्चेदम्—इंदपुरं णयरं, इंददत्तो राया, तस्स इट्ठाण वराण देवीणं बावीसं पुत्ता, अण्णे भणंति–एगाए देवीए, ते सव्वे रण्णो पाणसमा, अहेगा धूया अमच्चस्स, सा जं परं परिणंतेण दिट्ठा, सा अण्णया कयाइ ण्हाया समाणी अच्छइ, ताहे रायाए दिट्ठा, कस्सेसा ?, तेहिं भणियं–तुब्भं देवी, ताहे सो ताए समं एक्कं रत्तिं वुच्छो, सा य रितुण्हाया, तीसे गब्भो लग्गो, सा अमच्चेण भणिएल्लिया–जधा तुब्भ गब्भो लग्गइ तया ममं साहेज्जाहि,

---

१ मारय वेति, भणन्ति ते तथा कुर्वीति, भणिता नेच्छन्ति, क्षुल्लककुमारस्य मार्गेण लग्नाः प्रव्रजिताः, सर्वैर्लोभः परित्यक्तः, एवमलोभता कर्त्तव्या, अलोभ इति गतं। इदानीं तितिक्षेतिद्वारं, तितिक्षा कर्त्तव्या–परीषहोपसर्गाणां अधिसहनं भणितं भवति। इन्द्रपुरं नगरं, इन्द्रदत्तो राजा, तस्येष्टानां वराणां देवीनां द्वाविंशतिः पुत्राः, अन्ये भणन्ति–एकस्या देव्याः, ते सर्वे राज्ञः प्राणसमाः, अथैकाऽमात्यस्य दुहिता, सा यत्परं परिणयता दृष्टा, सा अन्यदा ऋतुस्नाता सती तिष्ठति, तदा राज्ञा दृष्टा, कस्यैषा ?, तैर्भणितं–युष्माकं देवी, तदा स तया सममेकां रात्रिमुषितः, सा च ऋतुस्नाता, तस्यां गर्भो लग्नः, साऽमात्येन भणितपूर्वा–यदा तव गर्भो भवेत्तदा मह्यं कथयेः,.

॥७०२॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

[१]ताए सो दिवसो सिट्ठो मुहुत्तो वेला जं च राएण उल्लवियं साइतंकारो तेण तं पत्तए लिहियं, सो य सारवेइ, नवण्हं मासाणं दारओ जाओ, तस्स दासचेडाणि तद्दिवसं जायाणि, तं०–अग्गियओ पव्वयओ बहुलिगो सागरगो, ताणि सहजायाणि, तेण कलायरियस्स उवणीओ, तेण लेहाइयाओ बावत्तरिं कलाओ गहियाओ, जाहे ताओ गाहेइ आयरिओ ताहे ताणि कुट्टंति विकड्ढंति य, पुव्वपरिच्चएण ताणि रोडंति सोवि ताणि न गणेइ, गहियाओ कलाओ, ते अन्ने गाहिज्जंति बावीसंपि कुमारा, जस्स अप्पिज्जंति आयरियस्स तं पिट्टेंति मत्थएहि य हणंति, अह उवज्झाओ ते पिट्टेइ अपढंते ताहे साहेंति माइमिस्सिगाणं, ताहे ताओ भणंति–किं सुलभाणि पुत्तजम्माणि ?, ताहे न सिक्खियाइं। इओ य महुराए जियसत्तू राया, तस्स सुया निव्वुई नाम कण्णया, सा अलंकिया रण्णो उवणीया, राया भणइ–जो रोयइ सो ते भत्ता, ताहे ताए णायं–जो सूरो वीरो विक्कंतो सो पुण रज्जं दिज्जा, ताहे सा य बलं वाहणं गहाय गया इंदपुरं णयरं, रायस्स बहवे पुत्ता सुएल्लिआ, दूओ पयट्टो, ताहे आवाहिया सव्वे रायाणो, ताहे तेण रायाणएण सुयं–

१ तया स दिवसो मुहूर्त्तो वेला यच्च राज्ञोल्लसं सत्यङ्कारः (तत् सर्वमुक्तं) तेन तत् पत्रके लिखितं, स च संरक्षति, नवसु मासेषु दारको जातः, तस्य दासचेटास्तद्दिवसे जाताः, तद्यथा–अग्निः पर्वतकः बहुलिकः सागरः, ते सहजाताः, तेन कलाचार्यायोपनीतः, तेन लेखादिका द्वासप्ततिः कला गृहीताः, यदा ता ग्राहयत्याचार्यस्तान् तदा ते कुट्टयन्ति विकर्षयन्ति च, पूर्वपरिचयेन ते लुठन्ति, सोऽपि तांश्च गणयति, गृहीताः कलाः, तेऽन्ये ग्राह्यन्ते द्वाविंशतिरपि कुमाराः, यस्मै अर्प्यन्ते आचार्याय तं पिट्टयन्ति मस्तकेन च घ्नन्ति, अथोपाध्यायस्तान् पिट्टयति अपठतः तदा कथयन्ति मातृप्रभृतीनां, तदा ता भणन्ति–किं सुलभानि पुत्रजन्मानि, तदा(ते) न शिक्षिताः। इतश्च मथुरायां जितशत्रू राजा, तस्य सुता निर्वृतिर्नाम कन्या, साऽलङ्कृता राज्ञ उपनीता, राजा भणति–यो रोचते स ते भर्त्ता, तदा तया ज्ञातं–यः शूरो वीरो विक्रान्तः स पुना राज्यं दद्यात्, तदा सा बलं वाहनं च गृहीत्वा गतेन्द्रपुरं नगरं, राज्ञो बहवः सुताः श्रुतपूर्वाः, दूतः प्रवर्त्तितः, तदाऽऽहूता अखिला राजानः, तदा तेन राज्ञा श्रुतं.

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

जहा सा एइ, हट्ठतुट्ठो, उस्सियपडागं णयरं कयं, रंगो कओ, तत्थ चक्कं, एत्थ एगंमि अक्खे अट्ठ चक्काणि, तेसिं पुरओ धीया ठविया, सा पुण विंधियव्वा, राया सन्नद्धो निग्गओ सह पुत्तेहिं, ताहे सा कण्णा सव्वालंकारविहूसिया एगंमि पासे अच्छइ, सो रंगो रायाणो य ते य डंडभडभोइया जारिसो दोवतीए, तत्थ रण्णो जेट्ठपुत्तो सिरिमाली कुमारो, एसा दारिया रज्जं च भोत्तव्वं, सो तुट्ठो, अहं नूणं अण्णेहिंतो राईहिं अब्भहिओ, ताहे सो भणिओ–विंधहत्ति, ताहे सो अकयकरणो तस्स समूहस्स मज्झे तं धणुं घेत्तूण चेव न चाएइ, किहवि अणेण गहियं, तेण जत्तो वच्चइ तत्तो वच्चइत्ति कंडं मुक्कं, एवं कस्सइ एगं अरयं वोलियं कस्स दो तिण्णि अण्णेसिं बाहिरेण चेव निंति, तेणवि अमच्चेण सो नत्तुगो पसाहिउं तद्दिवसमाणीओ तत्थऽच्छइ, ताहे सो राया ओहयमणसंकप्पो करयलपल्हत्थमुहो–अहो अहं पुत्तेहिं लोगमज्झे विगोविओत्ति अच्छइ, ताहे सो अमच्चो पुच्छइ–किं तुब्भे देवाणुप्पिया ओहय जाव झियायह ?, ताहे सो भणइ–

---

१ यथा सैति, हृष्टतुष्टः, उच्छ्रितपताकं नगरं कृतं, रङ्गः कृतः, तत्र चक्रं, अत्रैकस्मिन् चक्रेऽष्ट चक्राणि तेषां पुरतः पुत्तलिका स्थापिता, सा पुनर्वेद्धव्या, राजा सन्नद्धो निर्गतः सह पुत्रैः, तदा सा कन्या सर्वालङ्कारविभूषिता एकस्मिन् पार्श्वे तिष्ठति, स रङ्गः ते राजानो दण्डिकभटभोजिका यादृशो द्रौपद्याः, तत्र राज्ञो ज्येष्ठः पुत्रः श्रीमाली कुमारः, एषा दारिका राज्यं च भोक्तव्यं, स तुष्टः, अहं नूनमन्यराजभ्योऽभ्यधिकः, तदा स भणितः–विध्येति, तदा सोऽकृतकरणस्तस्य समूहस्य मध्ये तद्धनुर्ग्रहीतुमेव न शक्नोति, कथमप्यनेन गृहीतं, तेन यतो व्रजति ततो व्रजत्विति काण्डं मुक्तं, एवं कस्यचिदेकमरकं व्यतिक्रान्तं कस्यचिद्वे त्रीणि अन्येषां बहिरेव निर्गच्छति, तेनाप्यमात्येन स नप्ता प्रसाध्य तद्दिवसमानीतस्तत्र तिष्ठति, तदा स राजोपहतमनःसंकल्पः करतलस्थापितमुखः अहो अहं पुत्रैर्लोकमध्ये विगोपित इति तिष्ठति, तदा सोऽमात्यः पृच्छति–किं यूयं देवानुप्रिया उपहतमनःसंकल्पा यावत् ध्यायत ?, तदा स भणति–

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

ऐएहिं अहं लहुईकओ, ताहे भणइ–अत्थि पुत्तो तुब्भं अण्णोवि, कहिं ?, सुरिंददत्तो नाम कुमारो, तं सोवि ता विण्णासउ मे, ताहे तं राया पुच्छइ–कओ मम एस पुत्तो ?, ताहे ताणि सिद्धाणि रहस्साणि, ताहे राया तुट्ठो भणइ–सेयं तव पुत्ता ! एए अट्ठ चक्के भेत्तूण रज्जसोक्खं निव्वुत्तिदारियं पावित्तए, ताहे सो कुमारो ठाणं आलीढं ठाइऊण गिण्हइ धणू, लक्खाभिमुहं सरं संधेइ, ताणि चेडरूवाणि ते य कुमारा सव्वओ रोडंति, अण्णे य दोण्णि पुरिसा असिव्यग्रहस्तौ, ताहे सो पणामं रण्णो उवज्झायस्स य करेइ, सोवि से उवज्झाओ भयं दावेइ–एए दोण्णि पुरिसा जइ फिडिसि सीसं ते फिट्टइ (छिंस्संति) तेसिं दोण्हवि पुरिसाण ते य चत्तारि ते य बावीसं अगणंतो ताण अट्ठण्हं रहचक्काणं छिद्दं जाणिऊण एगंमि छिड्डे नाऊण अप्फिडियाए दिट्ठीए तंमि लक्खे तेणं अण्णंमि य मणं अकुणमाणेण सा धीतीगा अच्छिंमि विद्धा, तत्थ उक्कुट्ठिसीहनायसाहुक्कारो दिण्णो, एसा दव्वतितिक्खा, एसा चेव विभासा भावे, उवसंहारो जहा कुमारो तहा साहू जहा ते चत्तारि तहा

---

१ एतैरहं लघूकृतः, तदा भणति–अस्ति पुत्रो युष्माकमन्योऽपि, क ?, सुरेन्द्रदत्तो नाम कुमारः, तत् सोऽपि तावत् परीक्ष्यतां मम, तदा तं राजा पृच्छति–कुतो मम पुत्र एषः, तदा तानि शिष्टानि रहस्यानि, तदा राजा तुष्टो भणति–श्रेयस्तव पुत्र ! एतानि अष्ट चक्राणि भित्त्वा राज्यसौख्यं निर्वृतिं दारिकां च प्राप्तुं, तदा स कुमारः स्थानमालीढं स्थित्वा गृह्णाति धनुः, लक्ष्याभिमुखं शरं संदधाति, ते चेटास्ते च कुमाराः सर्वतो बोलं कुर्वन्ति, अन्यौ च द्वौ पुरुषौ, तदा स प्रणामं राज्ञ उपाध्यायस्य च करोति, सोऽपि तस्योपाध्यायो भयं दर्शयति–एतौ द्वौ पुरुषौ यदि स्खलसि शीर्षं ते पातयिष्यतः, तौ द्वावपि पुरुषौ तांश्च चतुरस्तांश्च द्वाविंशतिं अगणयन् तेषामष्टानां रथचक्राणां छिद्रं ज्ञात्वैकस्मिंश्छिद्रे ज्ञात्वाऽपतितया दृष्ट्या तस्माल्लक्ष्यात् अन्यस्मिन् मनोऽकुर्वता तेन सा पुत्तलिकाऽक्षिण विद्धा, तत्रोत्कृष्टिसिंहनादपुरस्साधुकारो दत्तः, एषा द्रव्यतितिक्षा, एषैव विभाषा भावे, उपसंहारो यथा कुमारस्तथा साधुः यथा ते चत्वारस्तथा

प्रत सूत्रांक [सू.]
दीप अनुक्रम [२६]

चत्तारि[1] कसाया जहा ते बावीसं कुमारा तहा बावीसं परीसहा जहा ते दो मणूसा तहा रागद्दोसा जहा धितिगा विंधेयव्वा तहा आराहणा जहा निवुत्तीदारिया तहा सिद्धी । तितिक्खत्ति गयं ९, इयाणिं अज्जवत्ति, अज्जवं नाम उज्जुयत्तणं, तत्थुदाहरणगाहा—

चंपाए कोसियज्जो अंगरिसी रुद्दए य आणत्ते । पंथग जोइजसाविय अब्भक्खाणे य संबोही ॥ १२९३ ॥

इमीए वक्खाणं—चंपाए कोसिअज्जो नाम उवज्झाओ, तस्स दो सीसा—अंगरिसी रुद्दओ य, अंगओ भद्दओ, तेण से अंगरिसी नामं कयं, रुद्दओ सो गंठिछेदओ, ते दोवि तेण उवज्झाएण दारुगाणं पट्ठविया, अंगरिसी अडवीओ भारं गहाय पडिएति, रुद्दओ दिवसे रमित्ता वियाले संभरियं ताहे पहाविओ अडविं, तं च पेच्छइ दारुगभारएण एन्तगं, चिंतेइ य—निच्छूढोमि उवज्झाएणंति, इओ य जोइजसा नाम वच्छवाली पुत्तस्स पंथगस्स भत्तं नेऊण दारुगभारएण एइ, रुद्दएण सा एगाए खड्डाए मारिया, तं दारुगभारं गहाय अण्णेण मग्गेण पुरओ आगओ उवज्झायस्स हत्थे

---

१ चत्वारः कषाया यथा ते द्वाविंशतिः कुमारास्तथा द्वाविंशतिः परीषहा यथा तौ द्वौ पुरुषौ तथा रागद्वेषौ यथा पुत्तलिका वेद्धव्या तथाऽऽराधना यथा निर्वृतिदारिका तथा सिद्धिः । तितिक्षेति गतं, इदानीमार्जवमिति, आर्जवं नाम ऋजुत्वं, तत्रोदाहरणगाथा, अस्या व्याख्यानं—चम्पायां कौशिकार्यो नामोपाध्यायः, तस्य द्वौ शिष्यौ—अङ्गर्षिः रुद्रश्च, अङ्गको भद्रकस्तेन तस्याङ्गर्षिः नाम कृतं, रुद्रः स ग्रन्थिच्छेदकः, तौ द्वावपि तेनोपाध्यायेन दारुकेभ्यः प्रस्थापितौ, अङ्गर्षिरटवीतो भारं गृहीत्वा प्रत्येति, रुद्रको दिवसे रन्त्वा विकाले स्मृतं यदा तदा प्रधावितोऽटवीं, तं च प्रेक्षते दारुकभारेणायान्तं, चिन्तयति च निष्काशितोऽस्मि उपाध्यायेनेति, इतश्च ज्योतिर्यशा नाम वत्सपालिका पुत्रस्य पन्थकस्य भक्तं नीत्वा दारुकभारकेणायाति, सा रुद्रकेणैकस्यां गर्तायां मारिता, तं दारुकभारं गृहीत्वाऽन्येन मार्गेण पुरत आगत उपाध्यायस्य हस्ते

॥७०४॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

धुणमाणो कहेइ–जहा णेण तुज्झ सुंदरसीसेण जोइजसा मारिया, रमणविभासा, सो आगओ, धाडिओ वणसंडे चिंतेइ–सुहज्झवसाणेण जाती सरिया संजमो केवलनाणं देवा महिमं करेंति, देवेहिं कहियं, जहा एएण अब्भक्खाणं दिन्नं, रुद्दगो लोगेण हीलिज्जइ, सो चिंतेइ–सच्चं मए अब्भक्खाणं दिन्नं, सो चिंतेंतो संबुद्धो पत्तेयबुद्धो, इयरो बंभणो बंभणी य दोवि पव्वइयाणि, उप्पण्णणाणाणि सिद्धाणि चत्तारिवि, एवं कायव्वं वा न कायव्वं वेति १० । अज्जवत्ति गयं, इयाणिं सुइत्ति, सुई नाम सच्चं, सच्चं च संजमो, सो चेव सोयं, सत्यं प्रति योगाः सङ्गृहीता भवन्ति, तत्रोदाहरणगाथा—

सोरिअ सुरंबरेवि अ सिट्ठी अ धणंजए सुभद्दा य । वीरे अ धम्मघोसे धम्मजसेऽसोगपुच्छा य ॥ १२९४ ॥

सोरियपुरं णयरं, तत्र सुरवरो जक्खो, तत्थ सेट्ठी धणंजओ नाम, तस्स भज्जा सुभद्दा, तेहिं सुरवरो नमंसिओ, पुत्तकामेहिं उवाइयं सुरवरस्स कयं–जइ पुत्तो जायइ तो महिससएणं जण्णं करेमि, ताणं संपत्ती जाया, ताणि संबुज्झेहिन्ति सामी समोसढो, सेट्ठी निग्गओ, संबुद्धो, अणुव्वयाणि गिण्हामित्ति जइ जक्खो अणुजाणइ, सोवि जक्खो उवसामिओ,

---

१ इदत् कथयति–यथाऽनेन तव सुन्दरशिष्येण ज्योतिर्यशा मारिता, रमणविभाषा, स आगतः, निर्धाटितो वनषण्डे चिन्तयति–शुभाध्यवसानेन जातिः स्मृता संयमः केवलज्ञानं महिमानं देवाः कुर्वन्ति, देवैः कथितं यथैतेनाभ्याख्यानं दत्तं, रुद्रको लोकेन हील्यते, स चिन्तयति–सत्यं मयाऽभ्याख्यानं दत्तं, स चिन्तयन् संबुद्धः प्रत्येकबुद्धः, इतरो ब्राह्मणो ब्राह्मणी च द्वे अपि प्रव्रजिते, उत्पन्नज्ञानाश्चत्वारोऽपि सिद्धाः । एवं कर्त्तव्यं वा न कर्त्तव्यं वेति । आर्जवमिति गतं, इदानीं शुचिरिति, शुचिर्नाम सत्यं, सत्यं च संयमः स एव शौचं, शौर्यपुरं नगरं, तत्र सुरवरो यक्षः, तत्र श्रेष्ठी धनञ्जयो नाम, तस्य भार्या सुभद्रा, ताभ्यां सुरवरो नमस्कृतः, पुत्रकामाभ्यामुपयाचितं सुरवरस्य कृतं–यदि पुत्रो भविष्यति तर्हि महिषशतेन यज्ञं करिष्यामि, तयोः संपत्तिर्जाता, तानि संभोत्स्यन्ते इति स्वामी समवसृतः, श्रेष्ठी निर्गतः, संबुद्धः, अनुव्रतानि गृह्णामीति यदि यक्षोऽनुजानीते, सोऽपि यक्ष उपशान्तः,.

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ||७०५||

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० १३ शुचौ धनञ्जयो नारदश्च

[1]अण्णे भणंति–वएहिं संण्णिहिएहिं मग्गिओ, दयाए न देइ, नियसरीरसयखंडपवज्जणेण कतिवयखंडेसु कएसु सेट्ठी चिंतेइ–अहोऽहं धण्णो ! जेण इमाए वेयणाए पाणिणो ण जोइयत्ति, सत्तं परिक्खिऊण सुरवरो सयं चेव पडिबुद्धो, पिट्ठमया वा कया, एष देशशुचिः श्रावकत्वं, सर्वशुची सामिस्स दो सीसा–धम्मघोसो धम्मजसो य, एगस्स असोगवरपायवस्स हेट्ठा गुणेंति, ते पुव्वण्हे ठिया अवरण्हेवि छाया ण परावत्तइ, एगो भणइ–तुज्झ सिद्धी, बीओ भणइ–तुज्झ लद्धी, एगो काइगभूमीए गओ, बितिओवि तहेव, नायं जहा एगस्सवि न होइ एस लद्धी, पुच्छिओ सामी–कहेइ तस्स उप्पत्ती—

सोरियसमुद्दविजए जन्नजसे चेव जन्नदत्ते य । सोमित्ता सोमजसा उंछविही नारदुप्पत्ती ॥ १२९५ ॥

अणुकंपा वेयड्ढो मणिकंचण वासुदेव पुच्छा य । सीमंधरजुगबाहू जुगंधरे चेव महबाहू ॥ १२९६ ॥

गाथा द्वितयम्, अस्य व्याख्या–सोरियपुरे समुद्दविजओ जया राया आसि तया जण्णजसो तावसो आसी, तस्स भज्जा सोमित्ता, तीसे पुत्तो जन्नदत्तो, सोमजसा सुण्हा, ताण पुत्तो नारदो, ताणि उंछवित्तीणि, एगदिवसं जेमेंति एगदिवसं ||७०५||

१ अन्ये भणन्ति–व्रतेषु सन्निहितेषु मार्गितः, दयया न ददाति, निजशरीरशतखण्डैः प्रपद्यमाने कतिपयेषु खण्डेषु कृतेषु श्रेष्ठी चिन्तयति–अहो अहं धन्यो येन मयाऽनया वेदनया प्राणिनो न योजिता इति, सत्त्वं परीक्ष्य सुरवरः स्वयमेव प्रतिबुद्धः, पिष्टमया वा कृताः । स्वामिनो द्वौ शिष्यौ–धर्मघोषो धर्मयशाश्च, एकस्य वराशोकपादपस्याधस्ताद् गुणयन्तौ तौ पूर्वाह्णे स्थितौ अपराह्णेऽपि छाया न परावर्त्तते, एको भणति–तव सिद्धिः, द्वितीयो भणति–तव लब्धिः, एकः कायिकीभूमिं गतः, द्वितीयोऽपि तथैव, ज्ञातं यथा नैकस्याप्येषा लब्धिरस्ति, पृष्टः स्वामी कथयति तस्योत्पत्तिं । शौर्यपुरे नगरे समुद्रविजयो यदा राजाऽऽसीत् तदा यज्ञयशास्तापस आसीत्, तस्य भार्या सौमित्री आसीत्, तस्याः पुत्रो यज्ञदत्तः, सोमयशाः स्नुषा, तयोः पुत्रो नारदः, तावुञ्छवृत्ती, एकस्मिन् दिवसे जेमत एकस्मिन् । २ गइएहिं

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

उववासं करेंति, ताणि तं नारदं असोगरुक्खहेट्ठे पुवण्हे ठविऊण दिवसं उंछंति, इओ य वेयड्ढाए वेसमणकाइया देवा जंभगा तेणं २ वीतीवयंति, पेच्छंति दारगं, ओहिणा आभोएंति, सो ताणं देवनिकायाओ चुओ तो तं अणुकंपाए तं छाहिं थंभेंति–दुक्खं उण्हे अच्छइत्ति, पडिनियत्तेहिं नीसीहिओ सिक्खाविओ य–प्रद्युम्नवत्, केइ भणंति–एसा असोगपुच्छा, नारदुप्पत्ती य, सो उम्मुक्कबालभावो तेहिं देवेहिं पुवभवपिययाए विज्जाजंभएहि पन्नत्तिमादियाओ सिक्खाविओ, सो मणिपाउआहिं कंचणकुंडियाए आगासेण हिंडइ, अण्णया बारवइमागओ, वासुदेवेण पुच्छिओ–किं शौचं इति ?, सो ण तरति णिव्वेढेउं, वक्खेवो कओ, अण्णाए कहाए उट्ठेत्ता पुवविदेहे सीमंधरसामिं जुगबाहूवासुदेवो पुच्छइ–किं शौचं ?, तित्थगरो भणइ–सच्चं सोयंति, तेण एगेण पएण सच्चं पज्जाएहि ओवहारियं, पुणो अवरविदेहं गओ, जुगंधरतित्थगरं महाबाहू नाम वासुदेवो पुच्छइ तं चेव, तस्सवि सक्खं उवगयं, पच्छा बारवइमागओ वासुदेवं भणइ–किं ते तया पुच्छियं ?,

---

१ दिवसे उपवासं कुरुतः, तौ तं नारदमशोकवृक्षस्याधस्तात् पूर्वाह्णे स्थापयित्वोञ्छतः, इतश्च वैताढ्ये वैश्रमणकायिका देवा जृम्भकास्तेनाध्वना व्यतिव्रजन्ति, प्रेक्षन्ते दारकं, अवधिनाऽऽभोगयन्ति, स तेषां देवनिकायाच्च्युतः, ततस्तदनुकम्पया तां छायां स्तम्भयन्ति–दुःखमुष्णे तिष्ठतीति, प्रतिनिवृत्तैः निशीथ्यः (गुप्ता विद्याः) शिक्षितः, केचिद् भणन्ति–एषाऽशोकपृच्छा नारदोत्पत्तिश्च, स उन्मुक्तबालभावस्तैर्देवैः पूर्वभवप्रियतया विद्याजृम्भकैः प्रज्ञप्त्यादिकाः शिक्षितः, स मणिपादुकाभ्यां काञ्चनकुण्डिकयाऽऽकाशेन हिण्डते, अन्यदा द्वारवतीमागतो, वासुदेवेन पृष्टः–स न शक्नोत्युत्तरं दातुं, उत्क्षेपः कृतः, अन्यथा कथयोत्थाय पूर्वविदेहेषु सीमन्धरस्वामिनं युगबाहुवासुदेवः पृच्छति– तीर्थंकरो भणति–सत्यं शौचमिति, तेनैकेन पदेन सत्यं पर्यायैरवधारितं, पुनरपरविदेहेषु युगन्धरतीर्थंकरं महाबाहुर्नाम वासुदेवः पृच्छति तदेव, तस्मादपि साक्षादुपगतं, पश्चाद् द्वारवतीमागतो वासुदेवं भणति–किं त्वया तदा पृष्टं,

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥७०६॥

४ प्रतिक्र-मणाध्य० योगसं० १२ सम्य-ग्दृष्टौ प्र-भासोदा०

ताहे सो तं भणइ–सोयंति, भणइ–सच्चंति, पुच्छिओ किं सच्चं ?, पुणो ओहासइ, वासुदेवेण भणियं–जहिं ते एयं पुच्छियं तहिं एयंपि पुच्छियं होंतंति खिंसिओ, तेण भणियं–सच्चं भट्टारओ न पुच्छिओ, विचिंतेउमारद्धो, जाई सरिया, पच्छा अतीव सोयवंतो पत्तेयबुद्धो जाओ, पढममज्झयणं सो चेव वदइ, एवं सोएण जोगा समाहिया भवंति ११। सोएत्ति गयं, इयाणिं सम्मद्दिट्ठित्ति, संमद्दंसणविसुद्धीएवि किल योगाः सङ्गृह्यन्ते, तत्थ उदाहरणगाहा—

सागेयम्मि महाबल विमलपहे चेव चित्तकम्मे य । निप्फत्ति छट्ठमासे भुमीकम्मस्स करणं च ॥ १२९७ ॥

अस्या व्याख्या कथानकादवसेया, साएए महब्बलो राया, अत्थाणीए दूओ पुच्छिओ–किं नत्थि मम जं अन्नेसिं रायाणं अत्थित्ति ?, चित्तसभत्ति, कारिया, तत्थ दोवि चित्तकरावप्रतिमौ विख्यातौ विमलः प्रभाकरश्च, तेसिं अद्धद्धेणं अप्पिया, जवणियंतरिया चित्तेइ, एगेण निम्मवियं, एगेण भूमी कया, राया तस्स तुट्ठो, पूइयो य पुच्छिओ य,–प्रभाकरो पुच्छिओ भणइ–भूमी कया, न ताव चित्तेमित्ति, राया भणइ–केरिसया भूमी कयत्ति ?, जवणिया अवणीया, इयरं चित्तकम्मं

॥७०६॥

---

१ तदा स तं भणति–शौचमिति, भणति सत्यमिति, पृष्टः किं सत्यं ?, पुनरपभ्राजते, वासुदेवेन भणितं–यत्र त्वयैतत् पृष्टं तत्रैतदपि पृष्टमभविष्यदिति निर्भर्त्सितः, तेन भणितं–सत्यं भट्टारको न पृष्टः, विचिन्तयितुमारब्धः, जातिः स्मृता, पश्चादतीव शौचवान् प्रत्येकबुद्धो जातः, प्रथममध्ययनं स एव (तदेव) वदति । एवं शौचेन योगाः संगृहीता भवन्ति । शौचमिति गतं, इदानीं सम्यग्दृष्टिरिति, सम्यग्दर्शनविशुद्ध्यापि, तत्रोदाहरणगाथा । साकेते महाबलो राजा, आस्थान्यां दूतः पृष्टः–किं नास्ति मम यदन्येषां राज्ञां अस्ति ?, चित्रसभेति, कारिता, तत्र द्वौ चित्रकरौ, ताभ्यामर्धामर्धा अर्पितवान्, यवनिकान्तरितौ चित्रयतः, एकेन निर्मितं, एकेन भूमी कृता, राजा तस्मै तुष्टः, पूजितश्च पृष्टश्च प्रभाकरः पृष्टो भणति–भूमी कृता, न तावत् चित्रयामीति, राजा भणति–कीदृशी भूमिः कृतेति, यवनिकाऽपनीता, इतरच्चित्रकर्म

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

निम्मलयरं दीसइ, राया कुविओ, विन्नविओ–पभा एत्थ संकंतत्ति, तं छाइयं, नवरं कुड्डं, तुट्ठेण एवं चेव अच्छउत्ति भणिओ, एवं संमत्तं विसुद्धं कायवं, तेनैव योगाः सङ्गृहीता भवन्ति १२। सम्यग्दष्टिरिति गतं, इयाणिं समाहित्ति समाधानं, तत्थोदाहरणगाहा—

णयरं सुदंसणपुरं सुसुणाए सुजस सुव्वए चेव। पव्वज्ज सिक्खमादी एगविहारे य फासणया ॥ १२९८ ॥

व्याख्या–कथानकादवसेया, तच्चेदम्—सुदंसणपुरे सुसुनागो गाहावई, सुजसा से भज्जा, सड्ढाणि, ताण पुत्तो सुव्वओ नाम सुहेण गब्भे अच्छिओ सुहेण वड्ढिओ एवं जाव जोव्वणत्थो संबुद्धो आपुच्छित्ता पवइओ पढिओ, एक्कलविहारपडिमापडिवण्णो, सक्कपसंसा, देवेहिं परिक्खिओ अणुकूलेण, धण्णो कुमारबंभचारी एगेण, बीएण को एयाओ कुलसंताणच्छेदगाओ अधण्णोत्ति ?, सो भगवं समो, एवं मायावित्ताणि सविसयपसत्ताणि दंसियाणि, पच्छा मारिज्जंतगाणि, कलुणं कूवेंति, तहावि समो, पच्छा सवेवि उऊ विउविता दिवाए इत्थियाए सविब्भमं पलोइयं मुक्कदीहनीसासमवगूढो, तहावि

---

१ निर्मलतरं दृश्यते, राजा कुपितः, विज्ञप्तः-प्रभाऽत्र संक्रान्तेति, तच्छादितं, नवरं कुड्यं, तुष्टेनैवमेव तिष्ठत्विति भणितः, एवं सम्यक्त्वं विशुद्धं कर्त्तव्यं। इदानीं समाधिरिति, तत्रोदाहरणगाथा। सुदर्शनपुरे शिशुनागः श्रेष्ठी, सुयशास्तस्य भार्या, श्राद्धौ, तयोः पुत्रः सुव्रतो नाम सुखेन गर्भे स्थितः सुखेन वृद्धः एवं यावत् यौवनस्थः संबुद्धः, आपृच्छ्य प्रव्रजितः पठितः, एकाकिविहारप्रतिमां प्रतिपन्नः, शक्रप्रशंसा, देवैः परीक्षितोऽनुकूलेन, धन्यः कुमारब्रह्मचारी एकेन, द्वितीयेन क एतस्मात् कुलसन्तानच्छेदकादधन्य इति ?, स भगवान् समः, एवं मातापितरौ स्वविषयप्रसक्तौ दर्शितौ, पश्चात् मार्यमाणौ, करुणं कूजतः, तथाऽपि समः, पश्चात् सर्वा ऋतवो विकुर्विता दिव्यया स्त्रिया सविभ्रमं प्रलोकितं मुक्तदीर्घनिःश्वासमुपगूढः तथाऽपि.

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७०७॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० १३ समाधौ सुव्रतः १४आचारे ज्वलनदहनौ ॥७०७॥

संजमे समाहिततरो जाओ, णाणमुप्पण्णं, जाव सिद्धो १३। समाहित्ति गयं, आयारेत्ति इयाणिं, आयारउवगच्छणयाए योगाः सङ्गृह्यन्ते, एत्थोदाहरणगाहा—

पाडलिपुत्त हुयासण जलणसिहा चेव जलणडहणे य। सोहम्मपलियपणए आमलकप्पाइ णट्टविही ॥ १२९९ ॥

व्याख्या कथानकादवसेया, तच्चेदं—पाडलिपुत्ते हुयासणो माहणो, तस्स भज्जा जलणसिहा, सावगाणि, तेसिं दो पुत्ता— जलणो डहणो य, चत्तारिवि पव्वइयाणि, जलणो उज्जुसंपण्णो, डहणो मायाबहुलो, एहित्ति वच्चइ, वच्चाहि एइ, सो तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंतो कालगओ, दोवि सोधम्मे उववन्ना सक्कस्स अब्भिंतरपरिसाए, पंच पलिओवमाति ठिती, सामी समोसढो आमलकप्पाए अंबसालवणे चेइए, दोवि देवा आगया, नट्टविहिं दाएंति दोवि जणा, एगो उज्जुगं विउव्विस्सामित्ति उज्जुगं विउव्वइ, इमस्स विवरीयं, तं च दट्ठूण गोयमसामिणा सामी पुच्छिओ, ताहे सामी तेसिं पुव्वभवं कहेइ—मायादोसोत्ति,

---

१ संयमे समाहिततरो जातः, ज्ञानमुत्पन्नं यावत् सिद्धः। समाधिरिति गतं, आचार इतीदानीं, आचारोपगततया योगाः, अत्रोदाहरणगाथा। पाटलिपुत्रे हुताशनो ब्राह्मणः, तस्य भार्या ज्वलनशिखा, श्रावकौ, तयोर्द्वौ पुत्रौ—ज्वलनो दहनश्च, चत्वारोऽपि प्रव्रजिताः, ज्वलन ऋजुतासंपन्नः, दहनो मायाबहुलः, आयाहीति व्रजति व्रजेत्यायाति, स तस्य स्थानस्यानालोचितप्रतिक्रान्तः कालगतः, द्वावपि सौधर्मे उत्पन्नौ शक्रस्याभ्यन्तरपर्षदि, पञ्च पल्योपमानि स्थितिः, स्वामी समवसृतः आमलकल्पायामाम्रशालवने चैत्ये, द्वावपि देवावागतौ नृत्यविधिं दर्शयतः द्वावपि जनौ, एक ऋजु विकुर्वयिष्यामीति ऋजुकं विकुर्वति, अस्य विपरीतं, तच्च दृष्ट्वा गौतमस्वामिना स्वामी पृष्टः, तदा स्वामी तयोः पूर्वभवं कथयति—मायादोष इति.

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

एवं आयारोपगयत्तणेण जोगा संगहिया भवंति १४ । आयारोवगेत्ति गयं, इयाणिं विणओवगयत्तणेण जोगा संगहिया भवंति, तत्थ उदाहरणगाहा—

उज्जेणी अंबरिसी मालुग तह निंबए य पव्वज्जा । संकमणं च परगणे अविणय विणए य पडिवत्ती ॥ १३०० ॥

व्याख्या कथानकादवसेया, तच्चेदं—उज्जेणीए अंबरिसी माहणो, मालुगा से भज्जा, सड्ढाणि, निंबगो पुत्तो, मालुगा कालगया, सो पुत्तेण समं पव्वइओ, सो दुव्विणीओ काइयभूमीए कंटए निक्खिवइ सज्झायं पट्ठविन्ताणं छीयइ, असज्झायं करेइ, सव्वं च सामायारीं वितहं करेइ, कालं उवहणइ, ताहे पव्वइया आयरियं भणंति—अथवा एसो अच्छउ अहवा अम्हेत्ति, निच्छूढो, पियावि से पिट्ठओ जाइ, अन्नस्स आयरियस्स मूलं गओ, तत्थवि निच्छूढो, एवं किर उज्जेणीए पंच पडिस्सगसयाणि सव्वाणि हिंडियाणि, निच्छूढो य सो खंतो सन्नाभूमीए रोवइ, सो भणइ—किं खंता! रोवसित्ति ?, तुमं नामं कयं निंबओत्ति एयं न अण्णहत्ति, एएहिमणभागेहिं आयारेहि तुज्झंतेण एण्हिं च अहंपि ठायं

---

१ एवमाचारोपगततया योगाः संगृहीता भवन्ति । आचारोपग इति गतं, इदानीं विनयोपगतत्वेन योगाः संगृहीता भवन्ति, तत्रोदाहरणगाथा । उज्जयिन्यामम्बर्षिर्ब्राह्मणः, मालुका तस्य भार्या, श्राद्धौ, निम्बकः पुत्रः, मालुका कालगता, स पुत्रेण समं प्रव्रजितः, स दुर्विनीतः कायिकीभूमौ कण्टकान् निक्षिपति स्वाध्यायं प्रस्थापयत्सु (साधुषु) क्षौति, अस्वाध्यायं करोति, सर्वां च सामाचारीं वितथां करोति, कालमुपहन्ति, तदा प्रव्रजिता आचार्यं भणन्ति— अथ चैष तिष्ठतु अथवा वयमिति, निष्काशितः, पिताऽपि तस्य पृष्ठे याति, अन्यस्याचार्यस्य मूलं गतः, तत्रापि निष्काशितः, एवं किलोज्जयिन्यां पञ्च प्रतिश्रयशतानि सर्वाणि हिण्डितौ, निष्काशितश्च स वृद्धः संज्ञाभूमौ रोदिति, स भणति–किं वृद्ध! रोदिषीति ?, तव नाम कृतं निम्बक इति एतन्नान्यथेति, एतैरभाग्यैराचारैस्त्वदीयैरधुनाऽहमपि स्थितिं

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥७०८॥

ने[1] लभामि, न य वट्टइ उप्पव्वइउं, तस्सवि अधिती जाया, भणइ–खंता ! एक्कसिं कहिंचि ठाहिं मग्गाहि, भणइ–मग्गामि जइ विणीओ होसि एक्कसि नवरं जइ, पव्वइयाणं मूलं गया, पव्वइयगा खुहिया, सो भणइ–न करेहित्ति, तहवि निच्छंति, आयरिया भणंति–मा अज्जो ! एवं होह, पाहुणगा भवे, अज्जकल्लं जाहिंति, ठिया, ताहे खुलओ तिण्णि २ उच्चारपासवणाणं बारस भूमीओ पडिलेहित्ता सव्वा सामायारी, विभासियव्वा अवितहा, साहू तुट्ठा, सो निंबओ अमयखुड्डगो जाओ, तरतमजोगेण पंचवि पडिस्सगसयाणि ताणि मंमाणियाणि आराहियाणि, निग्गंतुं न दिंति, एवं पच्छा सो विणओवगो जाओ, एवं कायव्वं १५ । विणओवएत्ति गयं, इयाणिं धिइमईयत्ति, धितीए जो मतिं करेइ तस्य योगाः सङ्गृहीता भवन्ति, तत्थोदाहरणगाहा—

नयरी य पंडुमहुरा पंडववंसे मई य सुमई य । वारीवसभारुहणे उप्पाइय सुट्ठियविभासा ॥ १३०१ ॥

व्याख्या कथानकादवसेया, तच्चेदं—णयरी य पंडुमहुरा, तत्थ पंच पंडवा, तेहिं पवयंतेहिं पुत्तो रज्जे ठविओ,

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० त्रिनयोपगे १५निम्बकः १६धृतिम्मतौ मति सुमत्यौ

॥७०८॥

१ न लभे, न च वर्त्तते उत्प्रव्रजितुं, तस्याप्यधृतिर्जाता, भणति–वृद्ध !, एकशः कुत्रापि स्थितिमन्वेषय, भणति–मार्गयामि यदि विनीतो भवस्येकशः, परं यदि, प्रव्रजितानां मूलं गतौ, प्रव्रजिताः क्षुब्धाः, स भणति–न करिष्यतीति, तथापि नेच्छन्ति, आचार्या भणन्ति–मैवं भवतार्याः, प्राघूर्णकौ भवतां, अद्य कल्ये यास्यत इति, स्थितौ, तदा क्षुल्लकः तिस्रः २ उच्चारप्रश्रवणयोर्द्वादश भूमीः प्रतिलिख्य सर्वाः समाचारीः (करोति), विभाषितव्याः अवितथाः, साधवस्तुष्टाः, स निम्बकोऽमृतक्षुल्लको जातः, तरतमयोगेन पञ्चापि प्रतिश्रयशतानि तानि ममीकृतानि आराद्धानि, निर्गन्तुं न ददति, एवं स पश्चात् स विनयोपगो जातः, एवं कर्त्तव्यं । विनयोपग इति गतं, इदानीं धृतिमतिरिति, धृतौ यो मतिं करोति तस्य–तत्रोदाहरणगाथा । नगरी च पाण्डुमथुरा, तत्र पञ्च पाण्डवाः, तैः प्रव्रजद्भिः पुत्रो राज्ये स्थापितः.

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

ते अरिट्ठनेमिस्स पायमूले पट्ठिया, हत्थकप्पे भिक्खं हिंडिंता सुणेंति–जहा सामी कालगओ, गहियं भत्तपाणं विगिंचित्ता सेत्तुंजे पव्वए भत्तपच्चक्खायं करेंति, णाणुप्पत्ती, सिद्धा य। ताण वंसे अण्णो राया पंडुसेणो नाम, तस्स दो धूयाओ–मई सुमई य ताओ उज्जंते चेइयवंदियाओ सुरट्ठं वारिवसभेण [वारिवसभो नाम वहणं तेण] समुद्देण एइ, उप्पाइयं उट्ठियं, लोगो खंदरुद्दे नमंसइ, इमाहि धणियतरागं अप्पा संजमे जोइओ, एसो सो कालोत्ति, भिन्नं वहणं, संजयत्तंपि सिणायगत्तंपि कालगयाओ सिद्धाओ, एगत्थ सरीराणि उच्छलियाणि, सुट्ठिएण लवणाहिवइणा महिमा कया, देवुज्जोए ताहे तं पभासं तित्थं जायं, दोहित्रि ताहे धीतीए मतिं करेंतीहि जोगा संगहिया, धिइमई यत्ति गयं १६, इयाणिं संवेगेत्ति, सम्यग् वेगः संवेगः तेण संवेगेण जोगा संगहिया भवंति, तत्रोदाहरणगाथाद्वयं—

चंपाए मित्तपभे धणमित्ते धणसिरी सुजाते य। पियंगू धम्मघोसे य अरक्खुरी चेव चंदघोसे य ॥ १३०२ ॥

चंदजसा रायगिहे वारत्तपुरे अभयसेण वारत्ते। सुसुमार धुंधुमारे अंगारवई य पज्जोए ॥ १३०३ ॥

---

१ तेऽरिष्ठनेमेः पादमूलं प्रस्थिताः, हस्तिकल्पे हिण्डमानाः शृण्वन्ति–यथा स्वामी कालगतः, गृहीतं भक्तपानं त्यक्त्वा शत्रुञ्जये पर्वते भक्तप्रत्याख्यानं कुर्वन्ति, ज्ञानोत्पत्तिः सिद्धाश्च। तेषां वंशे अन्यो राजा पाण्डुषेणो नाम, तस्य द्वे दुहितरौ–मतिः सुमतिश्च, ते उज्जयन्ते चैत्यवन्दिके सुराष्ट्रं वाहनेन समुद्रेणायातः उत्पात उत्थितः, लोकः स्कन्दरुद्रौ नमस्यति, आभ्यां बाढतरमात्मा संयमे योजितः, एष स काल इति, भिन्नं प्रवहणं, संयतत्वमपि स्नातकमपि कालगते सिद्धे, एकत्र शरीरे उच्छलिते, सुस्थितेन लवणाधिपतिना महिमा कृतः, देवोद्योते तत्र प्रभासाख्यं तत् तीर्थं जातं, द्वाभ्यामपि तदा धृतौ मतिं कुर्वतीभ्यां योगाः संगृहीताः। धृतिमतिरिति गतं, इदानीं संवेग इति, तेन संवेगेन योगाः संगृहीता भवन्ति।

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७०९॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० १७ संवेगे वारत्रकर्षि कथा

अस्या व्याख्या कथानकादवसेया तच्चेदं—चंपाए मित्तप्पभो राया, धारिणी देवी, धणमित्तो सत्थवाहो, धणसिरी भज्जा, तीसे ओवाइयलद्धओ पुत्तो जाओ, लोगो भणइ–जो एत्थ धणसमिद्धे सत्थवाहकुले जाओ तस्स सुजायंति, निव्वित्ते बारसाहे सुजाओत्ति से नामं कयं, सो य किर देवकुमारो जारिसो तस्स ललियमण्णे अणुसिक्खंति, ताणि य सावगाणि, तत्थेव णयरे धम्मघोसो अमच्चो, तस्स पियंगू भज्जा, सा सुणेइ–जहा एरिसो सुजाओत्ति, अण्णया दासीओ भणइ–जाहे सुजाओ इओ वोलेज्जा ताहे मम कहेज्जह जाव तं णं पेच्छेज्जामित्ति, अण्णया सो मित्तवंदपरिवारिओ तेणंतेण एति, दासीए पियंगूए कहियं, सा निग्गया, अण्णाहि य सवत्तीहिं दिट्ठो, ताए भण्णइ–धण्णा सा जीसे भागावडिओ, अण्णया ताओ परोप्परं भणंति–अहो लीला तस्स, पियंगू सुजायस्स वेसं करेइ, आभरणविभूसणेहिं विभूसिया रमइ, एवं वच्चइ सविलासं, एवं हत्थसोहा विभासा, एवं मित्तेहि समंपि भासइ, अमच्चो अइगओ, नीसद्दं अंतेउरंति पाए सणियं निक्खिवंतो

---

१ चम्पायां मित्रप्रभो राजा, धारिणी देवी धनमित्रः सार्थवाहः, धनश्रीर्भार्या, तस्या उपयाचितैर्लब्धः पुत्रो जातः, लोको भणति–योऽत्र धनसमृद्धे सार्थवाहकुले जातस्तस्य सुजातमिति, निर्वृत्ते द्वादशाहे सुजात इति तस्य नाम कृतं, स च किल देवकुमारो यादृशः तस्य ललितमन्येऽनुशिक्षन्ते, ते श्रावकाः तत्रैव नगरे धर्मघोषोऽमात्यः, तस्य प्रियङ्गूः भार्या, सा शृणोति यथेदृशः सुजात इति, अन्यदा दासीर्भणति–यदा सुजातोऽनेन वर्त्मना व्यतिक्राम्येत् तदा मम कथयेत यावत्तं प्रेक्षयिष्ये इति, अन्यदा स मित्रवृन्दपरिवारितस्तेनाध्वना याति, दास्या प्रियङ्ग्वे कथितं, सा निर्गता, अन्याभिश्च सपत्नीभिर्दृष्टः, तया भण्यते–धन्या सा यस्या भाग्ये आपतितः, अन्यदा ताः परस्परं भणन्ति–अहो लीला तस्य, प्रियङ्गुः सुजातस्य वेषं करोति, आभरणविभूषणैर्विभूषिता रमते, एवं व्रजति सविलासं, एवं हस्तशोभा विभाषा, एवं मित्रैः सममपि भाषते, अमात्योऽतिगतः, विनष्टमन्तःपुरमिति पादौ शनैः निक्षिपन्

॥७०९॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

बारछिद्देणं पलोएइ, दिट्ठा विखुड्डुंती, सो चिंतेइ–विनट्ठं अंतेउरंति, भणइ–पच्छण्णं होउ, मा भिण्णे रहस्से सइरायाराउ होहिंति, मारेउं मग्गइ सुजायं, बीहेइ य, पिया य से रण्णो निरायं अच्छिओ, मा तओ विणासं होहित्ति, उवायं चिंतेइ, लद्धो उवाओत्ति, अण्णया कूडलेहेहिं पुरिसा कया, जो मित्तप्पहस्स विवक्खो, तेण लेहा विसज्जिया तेणंति, सुजाओ वत्तव्वो–मित्तप्पभरायाणं मारेहि, तुमं पगओ राउले, तओ अद्धरज्जियं करेमि, तेण ते लेहा रण्णो पुरओ वाइया, जहा तुमं मारेयव्वोत्ति, राया कुविओ, तेवि लेहारिया वज्झा आणत्ता, तेणं ते पच्छण्णा कया, मित्तप्पभो चिंतेइ–जइ लोगनायं कज्जिहि तो पउरे खोभो होहित्ति, ममं च तस्स रण्णो अयसो दिज्ज, तओ उवाएण मारेमि, तस्स मित्तप्पहस्स एगं पच्चंतणयरं अरक्खुरी नाम, तत्थ तस्स मणूसो चंदज्झओ नाम, तस्स लेहं देइ (ग्रं० १९०००) जहा सुजायं पेसेमि तं मारेहित्ति, पेसिओ, सुजायं सद्दावेत्ता भणइ–वच्च अरक्खुरीं, तत्थ रायकज्जाणि पेच्छाहि गओ तं णयरिं अरक्खुरिं नाम, दिट्ठो

---

१ द्वारच्छिद्रेण प्रलोकयति, दृष्टा क्रीडन्ती, स चिन्तयति–विनष्टमन्तःपुरमिति, भणति–प्रच्छन्नं भवतु, मा भिन्ने रहस्ये स्वैराचारा भूवन्निति, मारयितुं मार्गयति सुजातं, बिभेति च, पिता च तस्य राज्ञो नितरां स्थितः, मा ततो विनाशो भूदिति, उपायं चिन्तयति, लब्ध उपाय इति, अन्यदा कूटलेखैः (युक्ताः) पुरुषाः कृताः, यो मित्रप्रभस्य विपक्षः तेन लेख विसृष्टास्तस्मै इति, सुजातो वक्तव्यः–मित्रप्रभराजं मारय, त्वं प्रगतो राजकुले, तत आर्धराजिकं करोमि, तेन ते लेखा राज्ञः पुरतो वाचिता यथा त्वं मारयितव्य इति, राजा कुपितः, ते लेखहारका वध्या आज्ञप्ताः, तेन ते प्रच्छन्नाः कृताः, मित्रप्रभश्चिन्तयति–यदि लोकज्ञातं क्रियते तदा पुरे क्षोभो भविष्यतीति, मह्यं च तस्य राज्ञोऽयशो दास्यति, तत उपायेन मारयामि, तस्य मित्रप्रभस्यैकं प्रत्यन्तनगरमारक्षुरं नाम, तत्र तस्य मनुष्यश्चन्द्रध्वजो नाम, तस्मै लेखं ददाति–यथा सुजातं प्रेषयामि तं मारयेरिति, प्रेषितः, सुजातं शब्दयित्वा भणति–व्रजारक्षुरं, तत्र राज्यकार्याणि प्रेक्षस्व, गतः तां नगरीमारक्षुरीं नाम, दृष्टः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

॥७१०॥

[1]अच्छउ वीसत्थो मारिजिहितित्ति दिणे २ एगट्ठा अभिरमंति, तस्स रूवं सीलं समुदायारं दट्ठूणं चिंतेइ–नवरं अंतेउरियाहिं समं विणट्ठोत्ति तेण मारिज्जइ, किह वा एरिसं रूवं विणासेमित्ति उस्सारित्ता सव्वं परिकहेइ, लेहं च दरिसेइ, तेण सुजाएण भणइ–जं जाणसि तं करेइ, तेण भणियं–तुमं न मारेमित्ति, नवरं पच्छण्णं अच्छाहि, तेण चंदजसा भगिणी दिण्णा, सा य तज्जाइणी तीए सह अच्छइ, परिभोगदोसेण तं वट्टइ सुजायस्स ईसि संकंतं, सावि तेण साविया कया, चिंतेइ–मम कएण एसो विणट्ठोत्ति संवेगमावण्णा भत्तं पच्चक्खाइ, तेणं चेव निज्जामिया, देवो जाओ, ओहिं पउंजइ, दट्ठूणागओ, वंदित्ता भणइ–किं करेमि ?, सोवि संवेगमावण्णो चिंतेइ–जहा अम्मापियरो पेच्छिज्जामि तो पव्वयामि, तेण देवेण सिला विउव्विया नगरस्सुवरिं, नागरा राया य धूवपडिग्गहहत्था पायवडिया विण्णवेंति, देवो तासेइ–हा ! दासत्ति सुजाओ समणोवासओ अमच्चेण अकज्जे दूसिओ, अज्ज भे चूरेमि, तो नवरि मुयामि जइ तं आणेह पसादेह णं, कहिं ?, सो भणइ–एस

---

१ तिष्ठतु विश्वस्तो मार्यते इति दिने २ एकस्थौ अभिरमेते, तस्य रूपं शीलं समुदाचारं दृष्ट्वा चिन्तयति–नवरमन्तःपुरिकाभिः समं विनष्ट इति तेन मार्यते, कथं वेदृशं रूपं विनाशयामीति ?, उत्सार्य सर्वं परिकथयति, लेखं च दर्शयति, तेन सुजातेन भण्यते–यज्जानासि तत् कुरु, तेन भणितं–त्वां न मारयामीति, नवरं प्रच्छन्नं तिष्ठ, तेन चन्द्रयशा भगिनी दत्ता, सा च तज्जातीया (त्वग्दोषदुष्टा) तया सह तिष्ठति, परिभोगदोषेण तत् वर्त्तते सुजातस्येषत् संक्रान्तं, साऽपि तेन श्राविकीकृता, चिन्तयति मम कृतेनैष विनष्ट इति संवेगमापन्ना भक्तं प्रत्याख्याति, तेनैव निर्यामिता, देवो जातः, अवधिं प्रयुनक्ति, दृष्ट्वा आगतः, वन्दित्वा भणति–किं करोमि ?, सोऽपि संवेगमापन्नश्चिन्तयति–यथा मातापितरौ प्रेक्षेयं तदा प्रव्रजेयं, तेन देवेन शिला विकुर्विता नगरस्योपरि, नागरा राजा च धूपप्रतिग्रहहस्ताः पादपतिता विज्ञपयन्ति, देवस्त्रासयति–हा दासा इति, सुजातः श्रमणोपासकोऽमात्येनाकार्ये दूषितः, अद्य भवतश्चूरयामि, तर्हि परं मुञ्चामि यदि तमानयत प्रसादयतैनं, क्व ?, स भणति–एष.

॥७१०॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

उज्जाणे, सणायरो राया निग्गओ खामिओ, अम्मापियरो रायाणं च आपुच्छित्ता पव्वइओ, अम्मापियरोवि अणुपव्वइयाणि, ताणि सिद्धाणि, सोऽवि धम्मघोसो निव्विसओ आणत्तो जेणं तस्स गुणा लोए पयरंति, यथा नेत्रे तथा शीलं, यथा नासा तथाऽऽर्जवम् । यथा रूपं तथा वित्तं, यथा शीलं तथा गुणाः ॥ १ ॥ अथवा–विषमसमैर्विषमसमाः, विषमैर्विषमाः समैः समाचाराः । करचरणकर्णनासिकदन्तोष्ठनिरीक्षणैः पुरुषाः ॥ २ ॥ पच्छा सो य निव्वेयमावण्णो सच्चं मए भोगलोभेण विणासिओत्ति निग्गओ, हिंडंतो रायगिहे णयरे थेराणं अंतिए पव्वइओ, विहरंतो बहुस्सुओ वारत्तपुरं गओ, तत्थ अभयसेणो राया, वारत्तओ अमच्चो, भिक्खं हिंडंतो वरत्तगस्स घरं गओ धम्मघोसो, तत्थ महुघयसंजुत्तं पायसथालं नीणीयं, तओ बिंदू पडिओ, सो पारिसाडिति निच्छइ, वारत्तओ ओलोयणगओ पेच्छइ, किं मन्ने नेच्छइ ?, एवं चिंतेइ जाव (ताव) तत्थ मच्छिया उलीणा, ताओ घरकोइलिया पेच्छइ, तंपि सरडो, सरडंपि मज्जारो, तंपि पच्चंतियसुणओ, तंपि वत्थव्वगसुणओ, ते दोवि भंडणं लग्गा, सुणयसामी उवट्ठिया, भंडणं जायं, मारामारी, बाहिं निग्गया पाहुणगा बलं

१ उद्याने, सनागरो राजा निर्गतः क्षामितः, मातापितरौ राजानं चापृच्छ्य प्रव्रजितः, मातापितरावपि अनुप्रव्रजितौ, ते सिद्धाः । सोऽपि धर्मघोषो निर्विषय आज्ञप्तो येन तस्य गुणा लोके प्रचरन्ति, पश्चात् स च निर्वेदमापन्नः सत्यं मया भोगलोभेन विनाशित इति निर्गतः, हिण्डमानो राजगृहे नगरे स्थविराणामन्तिके प्रव्रजितः, विहरन् बहुश्रुतो वारत्रकपुरं गतः, तत्राभयसेनो राजा, वारत्रकोऽमात्यः, भिक्षां हिण्डमानो वारत्रकस्य गृहं गतो धर्मघोषः, तत्र घृतमधुसंयुक्तं पायसस्थालमानीतं, ततो बिन्दुः पतितः, स परिशाटिरिति नेच्छति, वारत्रकोऽवलोकनगतः पश्यति, किं मन्ये नेच्छति, एवं यावच्चिन्तयति तावत्तत्र मक्षिका आगताः ततो (ताः) गृहकोकिला तामपि सरटः सरटमपि मार्जारः तमपि प्रत्यन्तिकः श्वा तमपि वास्तव्यः श्वा, तौ द्वावपि भण्डयितुं लग्नौ, श्वस्वामिनावुपस्थितौ, युद्धं जातं, दण्डादण्ड्यादि, बहिर्निर्गताः प्राघूर्णकाः बलं

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

४ प्रतिक्र-मणाध्य० योगसं० १७ संवेगे वारत्रकर्षि कथा

॥७११॥

[1]पिंडेसा आगया, महासमरसंघाओ जाओ, पच्छा वारत्तगो चिंतेइ–एएण कारणेण भगवं नेच्छइत्ति, सोहणं अज्झवसाणं उवगओ, जाई संभरिया, संबुद्धो, देवयाए भंडगं उवणीयं, सो वारत्तरिसी विहरंतो सुसुमारपुरं गओ, तत्थ धुंधुमारो राया, तस्स अंगारवई धूया, साविया, तत्थ परिवायगा उवागया, वाए पराजिया, पदोसमावन्ना से सावत्तए पाडेमित्ति चित्तं फलए लिहित्ता उज्जेणीए पज्जोयस्स दंसेइ, पज्जोएण पुच्छियं, कहियं चणाए, पज्जोओ तस्स दूयं पेसइ, सो धुंधुमारेण असक्कारिओ निच्छूढो, भणइ पिवासाए–विणएणं वरिज्जइ, दूएण पडियागएण बहुतरगं पज्जोयस्स कहियं, आसुरुत्तो, सव्वबलेणं निग्गओ, सुंसुमारपुरं वेढेइ, धुंधुमारो अंतो अच्छइ, सो य वारत्तगरिसी एगत्थ नागघरे चच्चरमूले ठिएल्लगो, सो राया भीओ एस महाबलवगोत्ति, नेमित्तगं पुच्छइ, सो भणइ–जाह–जाव नेमित्तं गेण्हामि, चेडगरूवाणि रमंति ताणि भेसावियाणि, तस्स वारत्तगस्स मूलं आगयाणि रोवंताणि, ताणि भणियाणि–मा बीहेहित्ति, सो आगंतूण भणइ–मा

---

१ पिण्डयित्वा आगताः, महासमरसंघातो जातः, पश्चाद्वारत्रकश्चिन्तयति–एतेन कारणेन भगवान्नैषीदिति, शोभनमध्यवसानमुपगतः, जातिः स्मृता, संबुद्धः, देवतयोपकरणमुपनीतं, स वारत्रकर्षिर्विहरन् शिशुमारपुरं गतः, तत्र धुन्धुमारो राजा, तस्याङ्गारवती दुहिता, श्राविका, तत्र परिव्राजिका आगता, वादे (तया) पराजिता, तस्याः प्रद्वेषमापन्ना सापत्न्ये पातयामीति चित्रं फलके लिखित्वोज्जयिन्यां प्रद्योताय दर्शयति, प्रद्योतेन पृष्टं, कथितं चानया, प्रद्योतस्तस्मै दूतं प्रेषयति, स धुन्धुमारेणासत्कृतो निष्काशितः, भणितः पिपासया–विनयेन म्रियते, दूतेन प्रत्यागतेन बहुतरं प्रद्योतस्य कथितं, क्रुद्धः, सर्वबलेन निर्गतः, शिशुमारपुरं वेष्टयति, धुन्धुमारोऽन्तः तिष्ठति, स च वारत्रकर्षिरेकत्र चत्वरमूले स्थितोऽस्ति, स राजा भीत एष महाबल इति, नैमित्तिकं पृच्छति, स भणति–यात यावन्निमित्तं गृह्णामि, चेटा रमन्ते ते भापितास्तस्य वारत्रकस्य पार्श्वमागता रुदन्तः, ते भणिता–मा भैष्टेति, स आगत्य भणति–मा

॥७११॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

बीहेहित्ति, तुज्झं जओ, ताहे मज्झण्हे ओसण्णद्धाणं उवरिं पडिओ, पज्जोओ वेढित्ता गहिओ, णयरिं आणिओ, बाराणि बद्धाणि, पज्जोओ भणिओ–कओमुहो ते वाओ वाइ ?, भणइ–जं जाणसि तं करेह, भणइ–किं तुमे महासासणेण वहिएण ?, ताहे से महाविभूईए अंगारवई पदिण्णा, दाराणि मुक्काणि, तत्थ अच्छइ, अण्णे भणंति–तेण धुंधुमारेण देवयाए उववासो कओ, तीए चेडरूवाणि विउव्विया णिमित्तं गहियंति, ताहे पज्जोओ णयरे हिंडइ, पेच्छइ अप्पसाहणं रायाणं, अंगारवतिं पुच्छइ–कहं अहं गहिओ ?, सा साधुवयणं कहेइ, सो तस्स मूलं गओ, वंदामि निमित्तिगखमणंति, सो उवउत्तो जाव पव्वज्जाउ, चेडरूवाणि संभरियाणि। चंदजसाए सुजायस्स धम्मघोसस्स वारत्तगस्स सव्वेसिं संवेगेणं जोगा संगहिया भवंति, केई तु सुरवरं जाव मियावई पव्वइया परंपरओ एयंपि कहेइ १७। संवेगत्ति गयं, इयाणिं पणिहित्ति, पणिही नाम माया, सा दुविहा–दव्वपणिही य भावपणिही य, दव्वपणिहीए उदाहरणगाहा—

---

१ भेष्टेति, तव जयः, तदा मध्याह्ने उत्सन्नद्धानामुपरि पतितः, प्रद्योतो वेष्टयित्वा गृहीतः, नगरीमानीतः, द्वाराणि बद्धानि, प्रद्योतो भणितः–कुतोमुखस्ते वातो वाति ?, भणति–यज्जानासि तत्कुरु, भणति–किं त्वया महाशासनेन विनाशितेन ?, तदा तस्मै धुन्धुमारेण महाविभूत्याङ्गारवती दत्ता, द्वाराणि मुत्कलितानि, तत्र तिष्ठति, अन्ये भणन्ति–तेन धुन्धुमारेण देवतायै उपवासः कृतः, तया चेटा विकुर्विता निमित्तं गृहीतमिति, तदा प्रद्योतो नगरे हिण्डमानः प्रेक्षते राजानमल्पसाधनं, अङ्गारवतीं पृच्छति–अहं कथं गृहीतः, सा साधुवचनं कथयति, स तस्य पार्श्वं गतः, वन्दे नैमित्तिकक्षपणकमिति, स उपयुक्तो यावत् प्रव्रज्यां चेटाः स्मृताः। चन्द्रयशसः सुजातस्य धर्मघोषस्य वारत्रकस्य सर्वेषां संवेगेन योगाः संगृहीता भवन्ति, केचित्तु सुरवरं यावत् मृगापतिः प्रव्रजिता (एषः) परम्परकः एनमपि कथयन्ति। संवेग इति गतं, इदानीं प्रणिधिरिति, प्रणिधिर्माया, सा द्विविधा–द्रव्यप्रणिधिश्च भावप्रणिधिश्च, द्रव्यप्रणिधावुदाहरणगाथा—

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७१२॥

भरुयच्छे जिणदेवो भयंतमिच्छे कुलाण भिक्खू य। पइठाण सालवाहण गुग्गुल भगवं च णहवाणे ॥ १३०४॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० १८ प्रणिधौ जिनदेवो०

व्याख्या कथानकादवसेया, तच्चेदं–भरुयच्छे णयरे नहवाहणो राया कोससमिद्धो, इओ य पइट्ठाणे सालवाहणो राया बलसमिद्धो, सो नहवाणं रोहेइ, सो कोससमिद्धो जो हत्थं वा सीसं वा आणेइ तस्स सयसहस्सगं वित्तं देइ, ताहे तेण नहवाहणमणूसा दिवे २ मारंति, सालवाहणमणुस्सावि केवि मारित्ता आणेंति, सो तेसिं न किंचि देइ, सो खीणजणो पडिजाइ, नासित्ता पुणोवि वितियवरिसे एइ, तत्थवि तहेव नासइ, एवं कालो वच्चइ, अण्णया अमच्चो भणइ–ममं अवराहेत्ता निव्विसयं आणवेह माणुसगाणि य बंधाहि, तेण तहेव कयं, सोवि निग्गंतूण गुग्गुलभारं गहाय भरुयच्छमागओ, एगत्थ देवउले अच्छइ, सामंतरज्जेसु फुट्टं–सालवाहणेणं अमच्चो निच्छूढो, भरुयच्छे णाओ, केणति पुच्छिओ को सोत्ति, भणइ–गुग्गुलभगवं नाम अहंति, जेहिं णाओ ताण कहेइ जेण विहाणेण निच्छूढो, अहा लहु से गणत्ति, पच्छा नहवाहणेण

---

१ भृगुकच्छे नगरे नभोवाहनो राजा कोशसमृद्धः, इतश्च प्रतिष्ठाने शालवाहनो राजा बलसमृद्धः, स नभोवाहनं रुणद्धि, स कोशसमृद्धो यो हस्तं वा शीर्षं वाऽऽनयति तस्मै शतसहस्रद्रव्यं ददाति, तदा तेन नभोवाहनमनुष्या दिवसे २ मारयन्ति, शालवाहनमनुष्या अपि कांश्चनापि मारयित्वाऽऽनयन्ति, स तेभ्यः किञ्चिदपि न ददाति, स क्षीणजनः प्रतियाति, नंष्ट्वा पुनरपि द्वितीयवर्षे आयाति, तत्रापि तथैव नश्यति, एवं कालो व्रजति, अन्यदाऽमात्यो भणति–मामपराध्य निर्विषयमाज्ञपयत मनुष्यांश्च बधान, तेन तथैव कृतं, सोऽपि निर्गत्य गुग्गुलभारं गृहीत्वा भृगुकच्छमागतः, एकत्र देवकुले तिष्ठति, सामन्तराजेषु वित्तं–शालवाहनेनामात्यो निष्काशितः, भृगुकच्छे ज्ञातः, केनचित् पृष्टः, कः स इति, भणति-गुग्गुलभगवान् नामाहमिति, यैर्ज्ञातस्तान् कथयति येन विधिना निष्काशितः, यथा लधुं (अपराधं) ते गणयन्ति, पश्चान्नभोवाहनेन ॥७१२॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

सुयं, मणुस्सा विसज्जिया नेच्छइ कुमारामच्चत्तणस्स गंधंपि सोउं, सो य राया सयं आगओ, ठविओ अमच्चो, वीसंभं जाणिऊण भणइ–पुण्णेण रज्जं लब्भइ, पुणोवि अण्णस्स जम्मस्स पत्थयणं करेहि, ताहे देवकुलाणि थूभतलागवावीण खणावणादिएहिं दव्वं खइयं, सालवाहणो आवाहिओ, पुणोवि ताविज्जइ, अमच्चं भणइ–तुमं पंडिओत्ति, सो भणइ–घडामि अंतेउरियाण आभरणेणंति, पुणो गओ पइट्ठाणंति, पच्छा पुणो संतेउरिओ णिवाहेइ, तम्मि णिट्ठिए सालवाहणो आवाहिओ, नत्थि दायव्वं, सो विणट्ठो, नट्ठं नयरंपि गहियं, एसा दव्वपणिही भावपणिहीए उदाहरणं–भरुयच्छे जिणदेवो नाम आयरिओ, भदंतमित्तो कुणालो य तच्चणिया दोवि भायरो वाई, तेहिं पडहओ निक्कालिओ, जिणदेवो चेइयवंदगो गओ सुणेइ, वारिओ, राउले वादो जाओ, पराजिया दोवि, पच्छा ते विचिंतेइ–विणा एएसिं सिद्धंतेण न तीरइ एएसिं उत्तरं दाउं, पच्छा माइठाणेण ताण मूले पव्वइया, विभासा गोविन्दवत्, पच्छा पढंताण उवगयं, भावओ पडिवन्ना,

---

१ श्रुतं, मनुष्या विसृष्टा नेच्छति कुमारामात्यगन्धमपि श्रोतुं, स च राजा स्वयमागतः, स्थापितोऽमात्यः, विश्रम्भं ज्ञात्वा भणति–पुण्येन राज्यं लभ्यते, पुनरप्यन्यस्य जन्मनः पथ्यदनं कुरु, तदा देवकुलानि स्तूपतटाकवापीनां खाननादिभिः सर्वं द्रव्यं खादितं, शालवाहन आहूतः, पुनरपि ताप्यते, अमात्यं भणति–त्वं पण्डितोऽसि, स भणति–घटयाम्यन्तःपुरिकाणामाभरणानि, पुनर्गतः प्रतिष्ठानमिति, पश्चात् पुनः सान्तःपुरिको निर्वाहयति, तस्मिन्निष्ठिते शालवाहन आहूतः, नास्ति दातव्यं, स विनष्टः, नष्टं नगरमपि गृहीतं, एषा द्रव्यप्रणिधिः। भावप्रणिधावुदाहरणं–भृगुकच्छे जिनदेवो नामाचार्यः, भदन्तमित्रः कुणालश्च तच्चनिकौ द्वावपि भ्रातरौ वादिनौ, ताभ्यां पटहको निष्काशितः, जिनदेवः चैत्यवन्दनार्थं गतः श्रृणोति, वारितः, राजकुले वादो जातः, पराजितौ द्वावपि, पश्चात्तौ विचिन्तयतः–विनैतेषां सिद्धान्तेन न एतेषामुत्तरं दातुं शक्यते, पश्चात् मातृस्थानेन तेषां पार्श्वे प्रव्रजितौ, विभाषा पश्चात् पठतोरुपगतं, भावतः प्रतिपन्नौ, २ सालिवाहणो * खड्डिमोत्ति

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

साहू जाया, एसा भावपणिहित्ति। पणिहित्ति गयं १८। जहा इयाणिं सुविहित्ति, सुविहीए जोगा संगहिया, विधिरनुज्ञा विधी जस्स इट्ठा, शोभनो विधिः सुविधिः, तत्रोदाहरणं जहा सामाइयनिज्जुत्तीए अणुकंपाए अक्खाणगं—

बारवई वेयरणी धन्नंतरि भविय अभविए विज्जे। कहणा य पुच्छियंमि य गइनिद्देसे य संबोही ॥ १३०५ ॥
सो वानरजूहवई कंतारे सुविहियाणुकंपाए। भासुरवरबोंदिधरो देवो वेमाणिओ जाओ (८४७) ॥ १३०६ ॥

जाव साहू साहरिओ साहूण समीवं। सुविहित्ति गयं १९। इयाणिं संवरेत्ति, संवरेण जोगा संगहिज्जंति, तत्थ पडिवक्खेणं उदाहरणगाहा—

वाणारसी य कोट्ठे पासे गोवालभद्दसेणे य। नंदसिरी पउमसिरी रायगिहे सेणिए वीरो ॥ १३०७ ॥

व्याख्या कथानकादवसेया, तच्चेदं—रायगिहे सेणिएण वद्धमाणसामी पुच्छिओ, एगा देवी णट्टविहिं उवदंसेत्ता गया का एसा?, सामी भणइ–वाणारसीए भद्दसेणो जुन्नसेट्ठी, तस्स भज्जा नंदा, तीए धूया नंदसिरी वरगविवज्जिया,

---

१ साधू जातौ, एषा भावप्रणिधिरिति। प्रणिधिरिति गतं, इदानीं सुविधिरिति, सुविधिना योगाः संगृह्यन्ते, विधिर्यथा यस्येष्टः, यथा सामायिकनिर्युक्तौ अनुकम्पायामाख्यानकं–द्वारवती वैतरणिः धन्वन्तरिर्भव्योऽभव्यश्च वैद्यौ। कथनं च पृष्टे च गतिनिर्देशश्च संबोधिः ॥ १ ॥ स वानरयूथपतिः कान्तारे सुविहितानुकम्पया। भासुरवरबोन्दीधरो देवो वैमानिको जातः ॥ २ ॥ यावत् साधुः संहृतः साधूनां समीपं सुविधिरिति गतं। इदानीं संवर इति, संवरेण योगाः संगृह्यन्ते, तत्र प्रतिपक्षेणोदाहरणगाथा। राजगृहे श्रेणिकेन वर्धमानस्वामी पृष्टः, एका देवी नृत्यविधिमुपदर्श्य गता कैषा?, स्वामी भणति–वाराणस्यां भद्रसेनो जीर्णश्रेष्ठी, तस्य भार्या नन्दा, तस्या दुहिता नन्दश्रीरिति, वरविवर्जिता

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२६]

तत्थ कोट्ठए चेइए पासस्सामी समोसढो, नंदसिरी पव्वइया, गोवालीए सिस्सिणिया दिण्णा, पुव्वं उग्गेण विहरित्ता पच्छा ओसन्ना जाया, हत्थे पाए धोवेइ, जहा दोवती विभासा, वारिज्जंती उट्ठेऊणं विभत्ताए वसहीते ठिया, तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंता चुल्लहिमवंते पउमदहे सिरी जाया देवगणिया, एतीए संवरो न कओ, पडिवक्खो सो न कायव्वो, अण्णे भणंति–हत्थिणियारूवेण वाउक्काएइ, ताहे सेणिएण पुच्छिओ, संवरेत्ति गयं २०। इयाणिं 'अत्तदोसोवसंहारे'त्ति अत्तदोसोवसंहारो कायव्वो, जइ किंचि कहामि तो दुगुणो बंधो होहिति, तत्थ उदाहरणगाहा—

बारवइ अरहमित्ते अणुद्धरी चेव तहय जिणदेवो। रोगस्स य उप्पत्ती पडिसेहो अत्तसंहारो ॥ १३०८ ॥

व्याख्या कथानकादवसेया, तच्चेदं—बारवतीए अरहमित्तो सेट्ठी, अणुद्धरी भज्जा, सावयाणि, जिणदेवो पुत्तो, तस्स रोगा उप्पण्णा, न तीरइ तिगिंच्छिउं, वेज्जो भणइ–मंसं खाहि, नेच्छइ, सयणपरियणो अम्मापियरो य पुत्तणेहेणाणुजाणंति, निब्बंधेवि कहं सुचिरं रक्खियं वयं भंजामि, उक्तं च–"वरं प्रवेष्टुं ज्वलितं हुताशनं, न चापि भग्नं चिरसञ्चितं व्रतम्"

---

१ तत्र कोष्ठके चैत्ये पार्श्वस्वामी समवसृतः, नन्दश्रीः प्रव्रजिता, गोपाल्यै शिष्या दत्ता, पूर्वमुग्रेण विहृत्य पश्चादवसन्ना जाता, हस्तौ पादौ प्रक्षालयति, यथा द्रौपदी विभाषा, वार्यमाणोत्थाय विभक्तायां वसतौ स्थिता, तस्य स्थानस्यानालोचितप्रतिक्रान्ता क्षुल्लकहिमवति पद्मह्रदे श्रीर्जाता देवगणिका, एतया संवरो न कृतः, प्रतिपक्षः स न कर्त्तव्यः, अन्ये भणन्ति–हस्तिनीरूपेण वातमुद्गिरति, (रावान् करोति), तदा श्रेणिकेन पृष्टः, संवर इति गतं, इदानीमात्मदोषोपसंहारेति आत्मदोषोपसंहारः कर्त्तव्यः, यदि किञ्चित् करिष्यामि तर्हि द्विगुणो बन्धो भविष्यतीति, तत्रोदाहरणगाथा–द्वारवत्यां अर्हन्मित्रः श्रेष्ठी, अनुद्धरी भार्या, श्रावकौ, जिनदेवः पुत्रः, तस्य रोगा उत्पन्नाः, न शक्यन्ते चिकित्सितुं, वैद्यो भणति–मांसं खादय, नेच्छति, स्वजनपरिजनो मातापितरौ च पुत्रस्नेहेनानुजानन्ति, निर्बन्धेऽपि कथं सुचिरं रक्षितं व्रतं भनज्मि,

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७१४॥

अत्तदोसोवसंहारो कओ, मरामित्ति सवं सावज्जं पच्चक्खायं, कहवि कम्मक्खओवसमेणं पउणो, तहावि पच्चक्खायं चेव, पवज्जं कयाइओ, सुहज्झवसाणस्स णाणमुप्पण्णं जाव सिद्धो। अत्तदोसोवसंहारोत्ति गयं, २१। इयाणिं सवकामविरत्तयत्ति, सवकामेसु विरंचियवं, तत्रोदाहरणगाथा—

उज्जेणिदेवलासुय अणुरत्ता लोयणा य पउमरहो। संगयओ मणुमइया असियगिरी अद्धसंकासा ॥ १३०९ ॥

व्याख्या कथानकादवसेया, तच्चेदं—उज्जेणीए नयरीए देवलासुओ राया, तस्स भज्जा अणुरत्ता लोयणा नाम, अन्नया सो राया सेज्जाए अच्छइ, देवी वाले वीयरेइ, पलियं दिट्ठं, भणइ–भट्टारगा! दूओ आगओ, सो ससंभमं भयहरिसाइओ उट्ठिओ, कहिं सो?, पच्छा सा भणइ–धम्मदूओत्ति, सणियं अंगुलीए वेढित्ता उक्खयं, सोवण्णे थाले खोमजुयलेण वेढित्ता णयरे हिंडाविओ, पच्छा अधितिं करेइ–अजाए पलिए अम्ह पुवया पवयंति, अहं पुण न पवइओ, पउमरहं रज्जे ठवेऊण पवइओ, देवीवि, संगओ दासो मणुमइया दासी ताणिवि अणुरागेण पवइयाणि, सवाणिवि असियगिरितावसासमं तत्थ

४ प्रतिक्र-मणाध्य० योगसं० २१आत्मदोषोप जिनदेवो० २२सर्वकाम०

॥७१४॥

१ आत्मदोषोपसंहारः कृतः, म्रिय इति सर्वं सावद्यं प्रत्याख्यातं, कथमपि कर्मक्षयोपशमेन प्रगुणः तथापि प्रत्याख्यातमेव, प्रव्रज्यां कृतवान्, शुभाध्यवसायस्य ज्ञानमुत्पन्नं यावत् सिद्धः। आत्मदोषोपसंहार इति गतं, इदानीं सर्वकामविरक्ततेति, सर्वकामेषु विरक्तव्यं,। उज्जयिन्यां नगर्यां देवलासुतो राजा तस्य भार्याऽनुरक्ता लोचना नाम्नी, अन्यदा स राजा शय्यायां तिष्ठति, देवी वालान् वीणयति (शोधयति), देव्या वाले पलितं दृष्टं, भणति–भट्टारक! दूत आगतः, स ससंभ्रमं भयहर्षवान् उत्थितः, क सः?, पश्चात् सा भणति–धर्मदूत इति, शनैरङ्गुल्या वेष्टयित्वोत्खातं, सौवर्णे स्थाले क्षौमयुगलेन वेष्टयित्वा नगरे हिण्डितः, पश्चादधृतिं करोति–अजाते पलितेऽस्माकं पूर्वजाः प्राव्रजिषुः, अहं पुनर्न प्रव्रजितः, पद्मरथं राज्ये स्थापयित्वा प्रव्रजितः, देव्यपि, संगतो दासो मनुमतिका दासी तावप्यनुरागेण प्रव्रजितौ, सर्वेऽप्यसितगिरितापसाश्रमस्तत्र

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

[1]गयाणि, संगयओ मणुमतिगा य केणइ कालंतरेण उप्पव्वइयाणि, देवीएवि गब्भो नक्खाओ पुव्वं रण्णो, वड्ढिउमारद्धो, राया अधिति पगओ–अयसो जाओत्ति अहं, तावसओ पच्छन्नं सारवेइ, सुकुमाला देवी वियायंती मया, तीए दारिया जाया, सा अन्नाणं तावसीणं थणयं पियइ, संवड्ढिया, ताहे से अद्धसंकासत्ति नामं कयं, सा जोव्वणत्था जाया, सा पियरं अडवीओ आगयं विस्सामेइ, सो तीए जोव्वणे अज्झोववन्नो, अज्जं हिज्जो लएमित्ति अच्छइ, अण्णया पहाविओ गिण्हामित्ति उडगकट्ठे आवडिओ, पडिओ चिंतेइ–धिद्धी इहलोए फलं परलोए न नज्जइ किं होतित्ति संबुद्धो, ओहिनाणं, भणइ–भवियव्वं भो खलु सव्वकामविरत्तेणं अज्झयणं भासइ, धूया विरत्तेण संजतीण दिण्णा, सोवि सिद्धो। एवं सव्वकामविरज्जिएण जोगा संगहिया भवंति। सव्वकामविरत्तयत्ति गयं २२, इयाणिं पच्चक्खाणित्ति, पच्चक्खाणं च दुविहं–मूलगुणपच्चक्खाणं उत्तरगुणपच्चक्खाणं च, मूलगुणपच्चक्खाणे उदाहरणगाहा—

---

१ गताः, संगतो मनुमतिका च केनचित्कालान्तरेणोत्प्रव्रजितौ, देव्याऽपि गर्भो नाख्यातः पूर्वं राज्ञः, वर्धितुमारब्धः, राजाऽधृतिं प्रगतः अयशा जातोऽहं, तापसात् प्रच्छन्नं संरक्षति, सुकुमाला देवी प्रजनयन्ती मृता, तस्या दारिका जाता, साऽन्यासां तापसीनां स्तनं पिबति, संवर्धिता, तदा तस्या अर्धसंकाशेति नाम कृतं, सा यौवनस्था जाता, सा पितरमटवीत आगतं विश्रमयति, स तस्या यौवनेऽध्युपपन्नः, अद्य श्वो लास्यामीति तिष्ठति, अन्यदा प्रधावितो गृह्णामीति उटजकाष्ठे आपतितः, पतितश्चिन्तयति–धिग् धिग् इहलोके फलं परलोके न ज्ञायते किं भविष्यतीति संबुद्धः, अवधिज्ञानं, भणति–भवितव्यं भोः खलु सर्वकामविरक्तेन अध्ययनं भाषते, दुहिता विरक्तेन संयतीभ्यो दत्ता, सोऽपि सिद्धः। एवं सर्वकामविरक्तेन योगाः संगृहीता भवन्ति। सर्वकामविरक्तेति गतं, इदानीं प्रत्याख्यानमिति, प्रत्याख्यानं च द्विविधं–मूलगुणप्रत्याख्यानमुत्तरगुणप्रत्याख्यानं च, मूलगुणप्रत्याख्याने उदाहरणगाथा—

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

कोडीवरिसचिलाए जिणदेवे रयणपुच्छ कहणा य। साएए सत्तुंजे वीरकहणा य संबोही ॥ १३१० ॥

व्याख्या कथानकादवसेया, तच्चेदं—साएए[1] सत्तुंजए राया, जिणदेवो सावगो, सो दिसाजत्ताए गओ कोडीवरिसं, ते मिच्छा, तत्थ चिलाओ राया, तेण तस्स रयणाणि अण्णागारे पोत्ताणि मणी य जाणि तत्थ नत्थि ताणि ढोइयाणि, सो चिलाओ पुच्छइ–अहो रयणाणि रूवियाणि, कहिं एयाणि रयणाणि ?, साहइ–अम्ह रज्जे, चिंतेइ–जइ नाम संबुज्झेज्जा, सो राया भणइ–अहंपि जामि रयणाणि पेच्छामि, तुज्झं तणगस्स रण्णो बीहेमि, जिणदेवो भणइ–मा बीहेहि, ताहे तस्स रण्णो लेहं पेसेइ, तेण भणिओ–एउत्ति, आणिओ सावगेण, सामी समोसढो, सेत्तुंजओ निग्गओ सपरिवारो महया इड्डीए, सयणसमूहो निग्गओ, चिलाओ पुच्छइ–जिणदेवो! कहिं जणो जाइ !, सो भणइ–एस सो रयणवाणियओ, भणइ–तो जामो पेच्छामोत्ति, दोवि जणा निग्गया, पेच्छंति सामिस्स छत्ताइछत्तं सीहासणं, विभासा, पुच्छइ–कहं रयणाइं, ताहे

---

१ साकेते शत्रुञ्जयो राजा, जिनदेवः श्रावकः, स दिग्यात्रया गतः कोटीवर्षं, ते म्लेच्छाः, तत्र चिलातो राजा, तेन तस्मै रत्नानि विचित्राकाराणि वस्त्राणि मणयश्च यानि तत्र न सन्ति तानि ढौकितानि, स चिलातः पृच्छति–अहो रत्नानि सुरूपाणि, क्वैतानि रत्नानि ?, कथयति–अस्माकं राज्ये, चिन्तयति–यदि नाम संबुध्येत, स राजा भणति–अहमप्यायामि रत्नानि प्रेक्षे, परं त्वदीयात् राज्ञो बिभेमि, जिनदेवो भणति–मा भैषीः, तदा तस्मै राज्ञे लेखं ददाति, तेन भणितं–आयात्विति, आनीतः श्रावकेण, स्वामी समवसृतः, शत्रुञ्जयो निर्गतः सपरीवारो महत्या ऋद्ध्या, स्वजनसमूहो निर्गतः, चिलातः पृच्छति–जिनदेव ! क्व जनो याति ?, स भणति–एष रत्नवणिक् सः, भणति–तर्हि यावः प्रेक्षावहे, द्वावपि जनौ निर्गतौ, प्रेक्षेते–स्वामिनश्छत्रातिच्छत्रं सिंहासनं, विभाषा, पृच्छति–कथं रत्नानि ?, तदा

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

सामी[1] भावरयणाणि दव्वरयणाणि य पण्णवेइ, चिलाओ भणइ–मम भावरयणाणि देहित्ति भणिओ रयहरणगोच्छगाइ साहिज्जंति, पव्वइओ, एयं मूलगुणपच्चक्खाणं, इयाणिं उत्तरगुणपच्चक्खाणं, तत्रोदाहरणगाहा—

वाणारसी य णयरी अणगारे धम्मघोस धम्मजसे। मासस्स य पारणए गोउलगंगा व अणुकंपा ॥ १३११ ॥

व्याख्या कथानकादवसेया, तच्चेदं–वाणारसीए दुवे अणगारा वासावासं ठिया–धम्मघोसो धम्मजसो य, ते मासं खमणेण अच्छंति, चउत्थपारणाए मा णियावासो होहितित्ति पढमाए सज्झायं बीयाए अत्थपोरिसी तइयाए उग्गाहेत्ता पहाविया, सारइएणं उण्हेणं अज्झाहया तिसाइया गंगं उत्तरंता मणसावि पाणियं न पत्थेंति, उत्तिण्णा, गंगादेवया आउट्टा, गोउलाणि विउव्वित्ता सपाणीया गोवग्गा दधिविभासा, ताहे सद्दावेइ–एह साहू भिक्खं गेण्ह, ते उवउत्ता दट्ठूण ताण रूवं, सा तेहिं पडिसिद्धा पहाविया, पच्छा ताए अणुकंपाए वासवद्दलं विउव्वियं, भूमी उल्ला, सियलेण वाएण अप्पाइया गामं

---

१ स्वामी भावरत्नानि द्रव्यरत्नानि च प्रज्ञापयति, चिलातो भणति–मम भावरत्नान्यर्पयत इति भणितो रजोहरणगोच्छकादि दर्शयन्ति, प्रव्रजितः, एतत् मूलगुणप्रत्याख्यानं, इदानीमुत्तरगुणप्रत्याख्यानं, तत्रोदाहरणगाथा–वाराणस्यां द्वावनगारौ वर्षावासं स्थितौ–धर्मघोषो धर्मयशाश्च, तौ मासक्षपणमासक्षपणेन तिष्ठतः, चतुर्थपारणके मा नित्यवासिनौ भूवेति प्रथमायां स्वाध्यायं द्वितीयस्यामर्थपौरुषीं (कृत्वा) तृतीयस्यामुद्ग्राह्य प्रधावितौ, शारदिकेनौष्ण्येनाभ्याहतौ तृषार्दितौ गङ्गामुत्तरन्तौ मनसाऽपि पानीयं न प्रार्थयतः, उत्तीर्णौ, गङ्गादेवताऽऽवर्जिता, गोकुलानि विकुर्व्य सपानीयान् गोवर्गान् दधि विभाषा, तदा शब्दयति–आयातं साधू! भिक्षां गृह्णीतं, तावुपयुक्तौ दृष्ट्वा तेषां रूपं, सा ताभ्यां प्रतिषिद्धा प्रधाविता, पश्चात् तयाऽनुकम्पया वर्षद्दर्दलकं विकुर्वितं, भूमिरार्द्रा (जाता), शीतलेन वायुनाऽऽप्यायितौ ग्रामं

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७१६॥

पेत्ता, भिक्खं गहियं, एवं उत्तरगुणा न भग्गा। एयं उत्तरगुणपच्चक्खाणं २३, पच्चक्खाणित्ति गयं २३। इयाणिं विउस्सग्गोत्ति, विउस्सग्गो दुविहो–दव्वओ भावओ य, तत्थ दव्वविउस्सग्गे करकंडादओ उदाहरणं, तथाऽऽह भाष्यकारः—

करकंडु कलिंगेसु, पंचालेसु य दुम्मुहो। नमीराया विदेहेसु, गंधारेसु य णग्गती ॥ २०५ ॥ (भा०)॥

वसभे य इंदकेऊ वलए अंबे य पुप्फिए बोही। करकंडुदुम्मुहस्सा, नमिस्स गंधाररन्नो य ॥ २०६ ॥ (भा०)॥

इमीए वक्खाणं–चंपाए दहिवाहणो राया, चेडगधूया पउमावई देवी, तीसे डोहलो–किहऽहं रायनेवत्थेण नेवत्थिया उज्जाणकाणणाणि विहरेज्जा?, ओलुग्गा, रायापुच्छा, ताहे राया य सा य देवी जयहत्थिमि, राया छत्तं धरेइ, गया उज्जाणं, पढमपाउसो य वट्टइ, सो हत्थी सीयलएण मट्टियागंधेण अब्भाहओ वणं संभरिऊण वियट्टो वणाभिमुहो पयाओ, जणो न तरइ ओलग्गिउं, दोवि अडविं पवेसियाणि, राया वडरुक्खं पासिऊण देविं भणइ–एयस्स वडस्स हेट्ठेण जाहिति तो तुमं सालं गेण्हिज्जासित्ति, सुसंजुत्ता अच्छ, तहत्ति पडिसुणेइ, राया दच्छो तेण साला गहिया, इदरी हिया, सो उइण्णो,

१ प्राप्तौ, भैक्षं गृहीतं, एवमुत्तरगुणा न भग्नाः, एतदुत्तरगुणप्रत्याख्यानं। प्रत्याख्यानमिति गतं, इदानीं व्युत्सर्ग इति, व्युत्सर्गो द्विविधः–द्रव्यतो भावतश्च, तत्र द्रव्यव्युत्सर्गे करकण्ड्वादय उदाहरणं, तत्राह–अनयोर्व्याख्यानं–चम्पायां दधिवाहनो राजा, चेटकदुहिता पद्मावती देवी, तस्या दौहृदं–कथमहं राजनेपथ्येन नेपथ्यितोद्यानकाननानि विहरेयं, क्षीणा, राजपृच्छा, तदा राजा सा च देवी जयहस्तिनि, राजा छत्रं धारयति, गतोद्यानं, प्रथमप्रावृट् च वर्त्तते, स हस्ती शीतलेन मृत्तिकागन्धेनाभ्याहतो वनं स्मृत्वा मत्तो वनाभिमुखं प्रयातः, जनो न शक्तोऽवलगितुं, द्वावपि अटवीं प्रवेशितौ, राजा वटवृक्षं दृष्ट्वा देवीं भणति–एतस्य वटस्याधस्तात् यास्यति ततस्त्वं शाखां गृह्णीया इति, सुसंयुक्ता तिष्ठ, तथेति प्रतिशृणोति, राजा दक्षस्तेन शाखा गृहीता, इतरा हृता, सोऽवतीर्णः,

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० २३ प्रत्याख्यानं २४ व्युत्सर्गे करकंड्वाद्याः

॥७१६॥

मूल संपादने मुद्रणदोष संभवात् अत्र भाष्य क्रम २०५ एवं २०६ द्विवारान् मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

निराणंदो गओ चंपं णयरिं, सावि इत्थिगा नीया णिम्माणुसं अडविं जाव तिसाइओ पेच्छइ दहं महइमहालयं, तत्थ उइण्णो, अभिरमइ हत्थी, इमावि सणिइमोइत्ता उत्तिण्णा, दहाओ दिसा अयाणंती एगाए दिसाए सागारं भत्तं पच्चक्खाइत्ता पहाविया, जाव दूरं पत्ता ताव तावसो दिट्ठो, तस्स मूलं गया, अभिवादिओ, तत्थ गच्छइ, तेण पुच्छिया–कओ अम्मो! इहागया ?, ताहे कहेइ सब्भावं, चेडगस्स धूया, जाव हत्थिणा आणिया, सो य तावसो चेडगस्स नियल्लओ-तेण आसासिया–मा बीहिहित्ति, ताहे वणफलाइं देइ, अच्छावेत्ता कइवि दियहे अडवीए निप्फेडित्ता एत्तोहिंतो अम्हाणं अगइविसओ, एत्तो वरं हलवाहिया भूमी, तं न कप्पइ मम अतिक्कमिउं, जाहि एस दंतपुरस्स विसओ, दंतचक्को राया, निग्गया तओ अडवीओ, दंतपुरे अज्जाण मूले पव्वइया, पुच्छियाए गब्भो नाइक्खिओ, पच्छा नाए मयहारियाए आलोवेइ, सा वियाता समाणी सह णाममुद्दियाए कंबलरयणेण य वेढिउं सुसाणे उज्झेइ, पच्छा मसाणपालो पाणो, तेण गहिओ,

---

१ निरानन्दो गतश्चम्पां नगरीं, साऽपि स्त्री नीता निर्मानुषामटवीं यावत्तृषार्दितः प्रेक्षते ह्रदं महातिमहालयं, तत्रावतीर्णः, अभिरमते हस्ती, इयमपि शनैर्विमुच्योत्तीर्णा, दश दिशोऽजानन्ती एकस्यां दिशि साकारं भक्तं प्रत्याख्याय प्रधाविता, यावद्दूरं गता तावत्तापसो दृष्टः, तस्य मूलं गता, अभिवादितः, तत्र गच्छति, तेन पृष्टा–कुतोऽम्ब! इहागता ?, तदा कथयति सद्भावं, चेटकस्य दुहिता, यावद्धस्तिनाऽऽनीता, स च तापसश्चेटकस्य निजकः, तेनाश्वसिता–मा भैषीरिति तदा वनफलानि ददाति, स्थापयित्वा कतिचिद्दिवसान् अटवीतो निष्काश्यैतोऽस्माकमविषयो गतेः अतः परं हलकृष्टा भूमिः, तत् न कल्पतेऽस्माकमतिक्रान्तुं याहि दन्तपुरस्य विषय एषः, दन्तचक्रो राजा, निर्गता ततोऽटव्याः, दन्तपुरे आर्याणां मूले प्रव्रजिता, पृष्टया गर्भो नाख्यातः, ज्ञाते पश्चान्महत्तरिकाया आलोचयति, सा प्रजनयन्ती सन्ती सह नाममुद्रया रत्नकम्बलेन च वेष्टयित्वा श्मशाने उज्झति, पश्चात् श्मशानपालः पाणस्तेन गृहीतः,

मूल संपादने मुद्रणदोष संभवात् अत्र भाष्य क्रम २०५ एवं २०६ द्विवारान् मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७१७॥

४ प्रतिक्र-मणाध्य० योगसं० २४व्युत्सर्गे करकण्ड्वाद्याः

तेणं अप्पणो भज्जाए समप्पिओ, सा अज्जा तीए पाणीए सह मेत्तियं घडेइ, सा य अज्जा संजतीहिं पुच्छिया–किं गब्भो ?, भणइ–मयगो जाओ, तो मए उज्झिओत्ति, सोवि संवड्डइ, ताहे दारगेहिं समं रमंतो डिंभाणि भणइ–अहं तुब्भं राया मम तुब्भे करं देह, सो सुक्ककच्छूए गहिए, ताणि भणइ–ममं कंडुयह, ताहे करकंडुत्ति नामं कयं, सो य तीए संजतीए अणुरत्तो, सा से मोदगे देइ, जं वा भिक्खं लहइ, संवड्डिओ मसाणं रक्खइ, तत्थ य दो संजया केणइ कारणेण तं मसाणं गया, जाव एगत्थ वंसीकुडंगे दंडगं पेच्छंति, तत्थेगो दंडलक्खणं जाणइ, सो भणइ–जो एयं दंडगं गेण्हइ सो राया हवई, किंतु पडिच्छियव्वो जाव अण्णाणि चत्तारि अंगुलाणि वड्डइ, ताहे जोगोत्ति, तेण मायंगेण एगेण य धिज्जाइएण सुयं, ताहे सो मरुगो अप्पसागारिए तं चउरंगुलं खणिऊण छिंदइ, तेण य चेडेण दिट्ठो, उद्दालिओ, सो तेण मरुएण करणं णीओ, भणइ–देहि मे दंडगं, सो भणइ–न देमि, मम मसाणे, धिज्जाइओ भणइ–अण्णं गिण्ह, सो नेच्छइ, मम एएण कज्जं, सो

१ तेनात्मनो भार्यायै समर्पितः, सा आर्या तया पाण्या सह मैत्रीं घटयति, सा चार्या संयतीभिः पृष्टा–क गर्भः ?, भणति–मृतको जातस्ततो मयोज्झित इति, सोऽपि संवर्धते, तदा दारकैः समं रममाणो डिम्भान् भणति–अहं भवतां राजा मह्यं यूयं करं दत्त, स शुष्ककण्ड्वा गृहीतः, तान् भणति–मां कण्डूयत, तदा करकण्डूरिति नाम कृतं, स च तस्यां संयत्यां अनुरक्तः, सा तस्मै मोदकान् ददाति, यां वा भिक्षां लभते, संवृद्धः श्मशानं रक्षति, तत्र च द्वौ साधू केनचित्कारणेन तत् श्मशानं गतौ, यावदेकत्र वंशीकुडङ्गे दण्डं प्रेक्षेते, तत्रैको दण्डलक्षणं जानाति, स भणति–य एनं दण्डकं गृह्णाति स राजा भवति, किंतु प्रतीक्षितव्यो यावदन्यान् चतुरोऽङ्गुलान् वर्धते, तदा योग्य इति, तत्तेन मातङ्गेनैकेन च धिग्जातीयेन श्रुतं, तदा स ब्राह्मणोऽल्पसागारिके तं चतुरङ्गुलं खनित्वा छिनत्ति, तेन च चेटेन दृष्टः, उद्दालितः, स तेन ब्राह्मणेन करणं (न्यायालयं) नीतः, भणति–देहि मह्यं दण्डकं, स भणति–न ददामि, मम श्मशाने, धिग्जातीयो भणति–अन्यं गृहाण, स नेच्छति, ममैतेन कार्यं, स

॥७१७॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

दारओ पुच्छिओ-किं न देसि ?, भणइ-अहं एयस्स दंडगस्स पहावेणं राया भविस्सामि, ताहे कारणिया हसिऊण भणंति-जया तुमं राया भविज्जासि तया एयस्स मरुयस्स गामं देज्जाहि, पडिवण्णं तेण, मरुएण अण्णे मरुया बितिज्जा गहिया जहा मारेमो तं, तस्स पिउणा सुयं, ताणि तिण्णिवि नट्ठाणि जाव कंचणपुरं गयाणि, तत्थ राया मरइ, रज्जारिहो अण्णो नत्थि, आसो अहिवासिओ, सो तस्स सुत्तगस्स मूलमागओ पयाहिणं काऊण ठिओ, जाव लक्खणपाढएहि दिट्ठो लक्खणजुत्तोत्ति जयसद्दो कओ, नंदितूराणि आहयाणि, इमोवि वियंभंतो वीसत्थो उट्ठिओ, आसे विलग्गो, मायंगोत्ति धिज्जाइया न देंति पवेसं, ताहे तेण दंडरयणं गहियं, जलिउमारद्धं, भीया ठिया, ताहे तेण वाडहाणगा हरिएसा धिज्जाइया कया, उक्तं च-दधिवाहनपुत्रेण, राज्ञा तु करकण्डुना। वाटहानकवास्तव्याश्चाण्डाला ब्राह्मणीकृताः ॥ १ ॥ तस्स पिइघरनामं अवइन्नगोत्ति, पच्छा से तं चेडगरूवकयं नामं पइट्ठियं, करकंडुत्ति, ताहे सो मरुगो आगओ, भणइ-देह

---

१ दारकः पृष्टः-किं न ददासि ?, भणति-अहमेतस्य दण्डकस्य प्रभावेण राजा भविष्यामि, तदा कारणिका हसित्वा भणन्ति-यदा त्वं राजा भवेस्तदै-तस्मै ब्राह्मणाय ग्रामं दद्याः, प्रतिपन्नं तेन, मरुकेण अन्ये ब्राह्मणाः साहाय्यका गृहीता यथा मारयामस्तं, तस्य पित्रा श्रुतं, ते त्रयोऽपि नष्टाः यावत् काञ्चनपुरं गताः,तत्र राजा मृतः, राज्यार्होऽन्यो नास्ति, अश्वोऽधिवासितः, स तस्य सुप्तस्य पार्श्वमागतः प्रदक्षिणां कृत्वा स्थितो, यावल्लक्षणपाठकैर्दृष्टो लक्षणयुक्त इति जयशब्दः कृतः, नन्दीतूर्याण्याहतानि, अयमपि विजृम्भमाणो विश्वस्त उत्थितः, अश्वे विलग्नः, मातङ्ग इति धिग्जातीया न ददति प्रवेशं, तदा तेन दण्डरत्नं गृहीतं, ज्वलितुमारब्धं, भीताः स्थिताः, तदा तेन वाटधानवास्तव्या हरिकेशा धिग्जातीयाः कृताः। तस्य पितृगृहनामावकीर्णक इति, पश्चात्तस्य तत् चेटककृतं नाम प्रतिष्ठितं, करकण्डूरिति, तदा स ब्राह्मण आगतः, भणति-देहि

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥७१८॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० २४ व्युत्सर्गे करकंड्वाद्याः

[1]मम गामंति, भणइ–जं ते रुच्चइ तं गेण्ह, सो भणइ–ममं चंपाए घरं तहिं देहि, ताहे दहिवाहणस्स लेहं देइ, देहि मम एगं गामं अहं तुज्झ जं रुच्चइ गामं वा णयरं वा तं देमि, सो रुट्ठो–दुट्ठमायंगो न जाणइ अप्पयं तो मम लेहं देइत्ति, दूएण पडियागएण कहियं, करकंडुओ रुट्ठो, गओ रोहिज्जइ, जुद्धं च वट्टइ, तीए संजतीए सुयं, मा जणक्खओ होउत्ति करकंडुं ओसारेत्ता रहस्सं भिंदइ–एस तव पियत्ति, तेण ताणि अम्मापियराणि पुच्छियाणि, तेहिं सब्भावो कहिओ, नाममुद्दा कंबलरयणं च दावियं, भणइ, माणेण–ण ओसरामि, ताहे सा चंपं अइगया, रण्णो घरमतेंती णाया, पायवडियाओ दासीओ परुण्णाओ, रायाएवि सुयं, सोवि आगओ वंदित्ता आसणं दाऊण तं गब्भं पुच्छइ, सा भणइ–एस तुमं जेण रोहिओत्ति, तुट्ठो निग्गओ, मिलिओ, दोवि रज्जाइं दहिवाहणो तस्स दाऊण पव्वइओ, करकंडू महासासणो जाओ, सो य किर गोउलप्पिओ, तस्स अणेगाणि गोउलाणि, अण्णया सरयकाले एगं गोवच्छगं गोरगत्तं सयं पेच्छइ, भणइ–एयस्स

---

१ मह्यं ग्राममिति, भणति–यत्ते रोचते तं गृहाण, स भणति–मम चम्पायां गृहं तत्र देहि, तदा दधिवाहनाय लेखं ददाति, देहि मे एकं ग्रामं अहं तव यो रोचते ग्रामो वा नगरं वा तं ददामि, स रुष्टः–दुष्टमातङ्गो न जानाति आत्मानं ततो मह्यं लेखं ददातीति, दूतेन प्रत्यागतेन कथितं, करकण्डू रुष्टः, गतो रोधयति, युद्धं च वर्त्तते, तया संयत्या श्रुतं, मा जनक्षयो भूदिति करकण्डूमपसार्य रहस्यं भिनत्ति–एष तव पितेति, तेन तौ मातापितरौ पृष्टौ, ताभ्यां सद्भावः कथितः, नाममुद्रा कम्बलरत्नं च दर्शिते, भणति मानेन–नापसरामि, तदा सा चम्पामतिगता, राज्ञो गृहमायान्ती ज्ञाता, पादपतिता दास्यो रोदितुं लग्नाः, राज्ञाऽपि श्रुतं, सोऽपि आगतो वन्दित्वाऽऽसनं दत्वा तं गर्भं पृच्छति, सा भणति–एष त्वं येन रुद्ध इति, तुष्टो निर्गतः, मिलितौ, द्वे अपि राज्ये दधिवाहनस्तस्मै दत्वा प्रव्रजितः, करकण्डूर्महाशासनो जातः, स च किल गोकुलप्रियः, तस्यानेकानि गोकुलानि, अन्यदा शरत्काले एकं गोवत्सकं गौरगात्रं स्वयं प्रेक्षते, भणति–एतस्य

॥७१८॥

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२६]

मायरं मा दुहेज्जह, जया वड्ढिओ होइ तया अन्नाणं गावीणं दुद्धं पाएज्जह, तो गोवाला पडिसुणेंति, सोवि उच्चत्तविसाणो खंधवसहो जाओ, राया पेच्छइ, सो जुद्धिक्कओ कओ, पुणो कालेण आगओ पेच्छइ महाकायं वसहं पड्डुएहिं घडिज्जंतं, गोवे पुच्छइ–कहिं सो वसहोत्ति ?, तेहिं दाविओ, पेच्छंतो तओ विसण्णो चिंतेंतो संबुद्धो, तथा चाह भाष्यकारः—

सेयं सुजायं सुविभत्तसिंगं, जो पासिया वसभं गोट्ठमज्झे।
रिद्धिं अरिद्धिं समुपेहिया णं, कलिंगरायावि समिक्ख धम्मं ॥ २०७ ॥ (भा०) ॥
गोट्ठंगणस्स मज्झे ढेक्कियसद्देण जस्स भज्जंति। दित्तावि दरियवसहा सुतिक्खसिंगा *सरीरेण ॥ २०८ ॥ (भा०) ॥
पोराणयगयदप्पो गलंतनयणो चलंतवसभोट्ठो। सो चेव इमो वसहो पड्डुयपरिघट्टणं सहइ ॥ २०९ ॥ (भा०) ॥

गाथात्रयस्य व्याख्या—श्वेतं–शुक्लं सुजातं–गर्भदोषविकलं (सुविभक्त) शृङ्गं–विभागस्थसमशृङ्गं यं राजा दृष्ट्वा–अभिसमीक्ष्य वृषभं–प्रतीतं गोष्ठमध्ये–गोकुलान्तः पुनश्च तेनैवानुमानेन ऋद्धिं–समृद्धिं सम्पदं विभूतिमित्यर्थः, तद्विपरीतां चाऋद्धिं च संप्रेक्ष्य–असारतयाऽऽलोच्य कलिङ्गा–जनपदास्तेषु राजा कलिङ्गराजः, असावपि समीक्ष्य धर्मं–पर्यालोच्य धर्मं सम्बुद्ध इति वाक्यशेषः। किं चिन्तयन् ?–‘गोट्ठंगणस्स मज्झे’ त्ति गोष्ठाङ्गणस्यान्तः ढेक्कितशब्दस्य यस्य भग्न-

---

१ मातरं मा दोग्ध, यदा वर्धितो भवेत् तदाऽन्यासां गवां दुग्धं पाययेत, ततो गोपालाः प्रतिशृण्वन्ति, सोऽप्युच्चतमविषाणः स्कन्धवृषभो जातः, राजा प्रेक्षते, स युद्धीयः कृतः, पुनः कालेनागतः प्रेक्षते महाकायं वृषभं महिषीवत्सैर्घट्टयमानं, गोपान् पृच्छति–क स वृषभ इति, तैर्दर्शितः, प्रेक्षमाणस्ततो विषण्णश्चिन्तयन् संबुद्धः। * समत्थाइ प्र०

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२६]

वन्तः, के ?–दीसा अपि–रोषणा अपीत्यर्थः, दर्पितवृषभा–बलोन्मत्तबलीवर्दा इत्यर्थः, सुतीक्ष्णशृङ्गा अपि शारीरेण बलेन। पौराणः गतदर्पः गलन्नयनः चलद्वृषभोष्ठः, स एवायं वृषभोऽधुना पड्डुगपरिघट्टणं सहइ, धिगसारः संसार इति, सर्वप्राणभृतां चैवेयं वार्तेति तस्मादलमनेनेति, एवं सम्बुद्धो, जातीसरणं, निग्गओ, विहरइ। इओ पंचालेसु जणवएसु कंपिल्ले णयरे दुम्मुहो राया, सोवि इंदकेउं पासइ लोएण महिज्जंतं अणेयकुडभीसहस्सपडिमंडियाभिरामं, पुणोवि लुप्पंतं, पडियं च अमेज्झमुत्ताणमुवरिं, सो संबुद्धो, तथाऽऽह भाष्यकारः—

जो इंदकेउं समलंकियं तु, दट्ठुं पडंतं पविलुप्पमाणं।
रिद्धिं अरिद्धिं समुपेहिया णं, पंचालराया वि समिक्ख धम्मं ॥ २१० ॥ (भा०)

निगदसिद्धैव, विहरइ। इओ य विदेहाजणवए महिलाए णयरीए नमी राया, गिलाणो जाओ, देवीओ चंदणं घसंति तस्स दाहपसमणनिमित्तं, वलयाणि खलखलंति, सो भणइ–कन्नाघाओ, न सहामि, एक्केक्के अवणीए जाव एक्केको अच्छइ,

॥७१९॥

---

१ एवं संबुद्धः, जातेः स्मरणं, निर्गतः, विहरति। इतश्च पाञ्चालेषु जनपदेषु काम्पील्ये नगरे दुर्मुखो राजा, सोऽपि इन्द्रकेतुं पश्यति लोकेन मह्यमानं अनेकलघुपताकासहस्रपरिमण्डिताभिरामं, पुनरपि लुप्यमानं, पतितं चामेध्यमूत्राणामुपरि, स संबुद्धः, विहरति। इतश्च विदेहजनपदे मिथिलायां नगर्यां नमी राजा, ग्लानो जातः, देव्यश्चन्दनं घर्षयन्ति तस्य दाहप्रशमननिमित्तं, वलयानि शब्दयन्ति, स भणति–कर्णाघातः, न सहे, एकैकस्मिन्नपनीते यावदेकैकस्तिष्ठति,

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

सद्दो[1] नत्थि, राया भणइ–ताणि वलयाणि न खलखलेंति ?, अवणीयाणि, सो तेण दुक्खेण अब्भाहओ परलोगाभिमुहो चिंतेइ–बहुयाण दोसो एगस्स न दोसो, संबुद्धो, तथा चाह–

बहुयाण सद्दयं सोचा, एगस्स य असद्दयं । वलयाणं नमीराया, निक्खंतो मिहिलाहिवो ॥ २११ ॥ (भा०)

कण्ठ्या, विहरइ । इओ य गंधारविसए पुरिमपुरे णयरे नग्गई राया, सो अन्नया अणुजत्तं निग्गओ, पेच्छइ चूयं कुसुमियं, तेण एगा मंजरी गहिया, एवं खंधावारेण लयंतेण कट्ठावसेसो कओ, पडिनियत्तो पुच्छइ–कहिं सो चूयरुक्खो ?, अमच्चेण कहियं–एस सोत्ति, कहं कट्ठाणि कओ ?, तओ भणइ–जं तुब्भेहिं मंजरी गहिया पच्छा सव्वेण खंधावारेण गहिया, सो चिंतेइ–एवं रज्जसिरित्ति, जाव ऋद्धी ताव सोहेइ, अलाहि एयाए, संबुद्धो । तथा चाह–

जो चूयरुक्खं तु मणाहिरामं, समंजरिं पल्लवपुप्फचित्तं ।
रिद्धिं अरिद्धिं समुपेहिया णं, गंधाररायावि समिक्ख धम्मं ॥ २१२ ॥ (भा०)॥

---

१ शब्दो नास्ति, राजा भणति–तानि वलयानि न शब्दयन्ति ?, अपनीतानि, स तेन दुःखेनाभ्याहतः परलोकाभिमुखश्चिन्तयति–बहूनां दोषो नैकस्य दोषः, संबुद्धः । विहरति, इतश्च गान्धारविषये पुरिमपुरे नगरे नग्गती राजा, सोऽन्यदाऽनुयात्रायै निर्गतः, प्रेक्षते चूतं कुसुमितं, तेनैका मञ्जरी गृहीता, एवं स्कन्धावारेण गृह्णता काष्ठावशेषः कृतः, प्रतिनिवृत्तः पृच्छति–क्व स चूतवृक्षः ?, अमात्येन कथितं–स एष इति, कथं काष्ठीकृतः, ?, ततो भणति–यत्त्वया मञ्जरी गृहीता पश्चात् सर्वेण स्कन्धावारेण गृहीता, स चिन्तयति–एवं राज्यश्रीरिति, यावदृद्धिस्तावत् शोभते, अलमनया, संबुद्धः ।

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया ||७२०||

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० २४व्युत्सर्गे करकंड्वाद्याः

कण्ठ्या । एवं सो विहरइ। ते चत्तारि विहरमाणा खिइपइट्ठियणयरमज्झे चउद्दारं देवउलं, पुव्वेण करकंडू पविट्ठो, दक्खिणेणं दुम्मुहो, एवं सेसावि, किह साहुस्स अन्नहामुहो अच्छामित्ति तेण दक्खिणेणावि मुहं कयं, नमी अवरेण, तओवि मुहं, गंधारो उत्तरेण, तओ वि मुहं कयंति । तस्स य करकंडुस्स बहुसो कंडू, सा अत्थि चेव तेण कंडूयणगं गहाय मसिणं मसिणं कण्णो कंडूइओ, तं तेण एगत्थ संगोवियं, तं दुम्मुहो पेच्छइ,-'जया रज्जं च रट्ठं च, पुरं अंतेउरं तहा । सव्वमेयं परिच्चज्ज, संचयं किं करेसिमं? ॥ १ ॥ सिलोगो कंठो जाव करकंडू पडिवयणं न देइ ताव नमी वयणमिमं भणइ-जया ते पेइए रज्जे, कया किच्चकरा बहू । तेसिं किच्चं परिच्चज्ज, अन्नकिच्चकरो भवं? ॥ २ ॥ सिलोगो कंठो, किं तुमं एयस्स आउत्तिगोत्ति । गंधारो भणइ-जया सव्वं परिच्चज्ज मोक्खाय घडसी भवं । परं गरिहसी कीस?, अत्तनीसेसकारए ॥ ३ ॥ सिलोगो कंठो, तं करकंडू भणइ-मोक्खमग्गं पवण्णाणं, साहूणं बंभयारिणं । अहियत्थं निवारन्ते, न दोसं वत्तुमरिहसि ॥ ४ ॥ सिलोगो-'रूसउ वा परो मा वा, विसं वा परिअत्तउ । भासियव्वा हिया भासा, सपक्खगुणकारिणी ॥ ५ ॥ सिलोगो, श्लोकद्वयमपि कण्ठ्यं । तथा—

||७२०||

१ एवं स विहरति । ते चत्वारो विहरन्तः क्षितिप्रतिष्ठितनगरमध्ये चतुर्द्वारं देवकुलं (तत्र) पूर्वेण करकण्डुः प्रविष्टः, दक्षिणेन दुर्मुखः, एवं शेषा-अपि, कथं साधोरन्यतोमुखस्तिष्ठामीति तेन दक्षिणस्यामपि मुखं कृतं, नमिरपरेण, तस्यामपि मुखं, गान्धार उत्तरेण, तस्यामपि मुखं कृतमिति । तस्य च करकण्डोर्बह्वी कण्डूः, साऽस्त्येव, तेन कण्डूयनं गृहीत्वा मसृणं मसृणं कर्णः कण्डूयितः, तत् तेनैकत्र संगोपितं, तत् दुर्मुखः प्रेक्षते, श्लोकः कण्ठ्यः यावत् करकण्डुः प्रतिवचनं न ददाति तावत् नमिर्वचनमिदं भणति । श्लोकः कण्ठ्यः, किं त्वमेतस्याऽऽयुक्तक इति?, गान्धारो भणति-श्लोकः कण्ठ्यः, तं करकण्डुर्भणति-श्लोकः, श्लोकः,

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

जहा जलंताइ(त) कट्ठाइं, उवेहाइँ न चिरं जले। घट्टिया घट्टिया झत्ति, तम्हा सहह घट्टणं ॥ १३१२ ॥
सुचिरंपि वंकुडाइं होहिंति अणुपमज्जमाणाइं। करमद्दिदारुयाइं गयंकुसागारवेंटाइं ॥ १३१३ ॥

इदमपि गाथाद्वयं कण्ठ्यमेव, ताणं सव्वाण दव्वविउस्सग्गो, जं रज्जाणि उज्झियाणि, भावविउस्सग्गो कोहादीणं, विउस्सग्गेत्ति गयं २५, इयाणिं अप्पमाएत्ति, ण पमाओ अप्पमाओ, तत्थोदाहरणगाहा—

रायगिहमगहसुंदरि मगहसिरी पउमसत्थपक्खेवो। परिहरियअप्पमत्ता नट्टं गीयं नवि य चुक्का ॥ १३१४ ॥

इमीए वक्खाणं–रायगिहे णयरे जरासंधो राया, तस्स सव्वप्पहाणाओ दो गणियाओ–मगहसुंदरी मगहसिरी य, मगहासिरी चिंतेइ–जइ एस न होज्जा ता मम अन्नो माणं न खंडेज्जा, राया य करयलत्थो होज्जत्ति, सा य तीसे छिद्दाणि मग्गइ, ताहे मगहासिरी नट्टदिवसंमि कण्णियारेसु सोवन्नियाओ संवलियाओ विसधूवियाओ सूचीओ केसरसरिसियाओ खित्ताओ, ताओ पुण तीसे मगहसुंदरीए मयहरियाए ऊहियाओ, कहं भमरा कण्णियाराणि न अल्लियंति चूएसु निलेंति?,

---

१ तेषां सर्वेषां द्रव्यव्युत्सर्गः, यत् राज्यान्युज्झितानि, भावव्युत्सर्गः क्रोधादीनां। व्युत्सर्ग इति गतं, इदानीमप्रमाद इति, न प्रमादोऽप्रमादः, तत्रोदाहरणगाथा। अस्या व्याख्यानं–राजगृहे नगरे जरासन्धो राजा, तस्य सर्वप्रधाने द्वे गणिके–मगधसुन्दरी मगधश्रीश्च, मगधश्रीश्चिन्तयति, यद्येषा न भवेत् तदा मम नान्यो मानं खण्डयेत्, राजा च करतलस्थो भवेदिति, सा च तस्याश्छिद्राणि मार्गयति, तदा मगधश्रीर्नृत्यदिवसे कर्णिकारेषु सौवर्णिका मञ्जर्यः विषक्तसिताः सूचयः केशरसदृशाः क्षेपितवती, ताः पुनस्तस्या मगधसुन्दर्या महत्तरिकया ज्ञाताः, कथं भ्रमराः कर्णिकारेषु नागच्छन्ति? चूतेषु लगन्ति

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

[1]नूणं सदोसाणि पुप्फाणि, जइ य भणीहामि एएहिं पुप्फेहिं अच्चणिया अचोक्खा विसभावियाणि वा ता गामेल्लगत्तणं होहित्ति उवाएणं वारेमित्ति, सा य रंगओइण्णिया, अण्णया मंगलं गिज्जइ, सा इमं गीतियं पगीया—

पत्ते वसंतमासे आमोअ पमोअए पवत्तंमि। मुत्तूण कण्णिआरए भमरा सेवंति चूअकुसुमाइं ॥ १३१५ ॥

गीतिं, इमा निगदसिद्धैव, सो चिंतेइ–अपुवा गीतिया, तीए णायं–सदोसा कणियारत्ति परिहरंतीए गीयं नच्चियं च सविलासं, न य तत्थ छलिया, परिहरिय अप्पमत्ता नट्टं गीयं न कीर चुक्का, एवं साहुणावि पंचविहे पमाए रक्खंतेणं जोगा संगहिया २६। इयाणिं लवालवेत्ति, सो य अप्पमाओ लवे अद्धलवे वा पमायं न जाइयवं, तत्थोदाहरणगाहा—

भरुयच्छंमि य विजए नडपिडए वासवासनागघरे। ठवणा आयरियस्स (उ) सामायारीपउंजणया ॥१३१६॥

इमीए वक्खाणं–भरुअच्छे णयरे एगो आयरिओ, तेण विजओ नाम सीसो उज्जेणी कज्जेण पेसिओ, सो जाइ, तस्स गिलाणकज्जेण केणइ वक्खेवो, सो अंतरा अकालवासेण रुद्धो, अंडगतणउज्झियंति नडपिडए गामे वासावासं ठिओ, सो

---

१ नूनं सदोषाणि पुष्पाणि, यदि चाभणिष्यं एतैः पुष्पैरर्चनिकाऽचोक्षा विषभावितानि वा तदा ग्रामेयकत्वमभविष्यदिति उपायेन वारयामि इति, सा च रङ्गावतीर्णाऽन्यदा मङ्गलं गायति, सेमां गीतिं प्रगीतवती–गीतिः इयं, स चिन्तयति-अपूर्वा गीतिः, तया ज्ञातं–सदोषाणि कर्णिकाराणि इति परिहरन्त्या गीतं नर्तितं च सविलासं, न च तत्र छलिता, परिहृत्य (तानि), अप्रमत्ता नृत्ये गीते च न किल स्खलिता, एवं साधुनाऽपि पञ्चविधान् प्रमादान् रक्षयता योगाः संगृहीताः। इदानीं लवालव इति, स चाप्रमादः लवेऽर्धलवे वा प्रमादं न यातव्यं, तत्रोदाहरणगाथा–अस्या व्याख्यानं–भृगुकच्छे नगरे एक आचार्यः, तेन विजयो नाम शिष्य उज्जयिनीं कार्येण प्रेषितः, स याति, तस्य ग्लानकार्येण केनचिद् व्याक्षेपः, सोऽन्तराऽकालवर्षेण रुद्धः, अण्डकतृणोज्झितमिति नटपेटके ग्रामे वर्षावासं स्थितः, स

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

चिंतेई–गुरुकुलवासो न जाओ, इहंपि करेमि जो उवएसो, तेण ठवणायरिओ कओ, एवमावासगमादीचक्कवालसामायारी सवा विभासियवा, एवं किल सो सवत्थ न चुक्को, खणे २ उवजुज्जइ–किं मे कयं ?, एवं किर साहुणा कायवं, एवं तेण जोगा संगहिया भवंति २७। लवालवेत्ति गयं, इयाणिं झाणसंवरजोगेत्ति, झाणेण जोगा संगहिया, तत्थोदाहरणं—

णयरं च सिंबवद्धण मुंडिम्बयअज्जपूसभूई य। आयाणपूसमित्ते सुहुमे झाणे विवादो य॥ १३१७॥

इमीए वक्खाणं—सिंबवद्धणे णयरे मुंडिम्बगो राया, तत्थ पूसभूई आयरिया बहुस्सुया, तेहिं सो राया उवसामिओ सड्ढो जाओ, ताण सीसो पूसमित्तो बहुस्सुओ ओसण्णो अण्णत्थ अच्छइ, अण्णया तेसिं आयरियाणं चिंता–सुहुमं झाणं पविस्सामि, तं महापाणसमं; तं पुण जाहे पविसइ ताहे एवं जोगसंनिरोहं करेइ ज न किंचिह चेएइ, तेसिं च जे मूले ते अगीयत्था, तेसिं पूसमित्तो सद्दाविओ, आगओ, कहियं, स तेण पडिवन्नं, ताहे एगत्थ उवयरए निव्वाघाए झाएंति, सो तेसिं ढोयं न

१ चिन्तयति–गुरुकुलवासो न जातः, इहापि करोमि य उपदेशः, तेन स्थापनाचार्यः कृतः, एवमावश्यकादिचक्रवालसामाचारी सर्वा विभाषितव्या, एवं किल स सर्वत्र न स्खलितः, क्षणे क्षणे उपयुज्यते–किं मे कृतं ?, एवं किल साधुना कर्त्तव्यं, एवं तेन योगाः संगृहीता भवन्ति। लवालव इति गतं, इदानीं ध्यानसंवरयोग इति, ध्यानेन योगाः संगृहीताः, तत्रोदाहरणं। अस्या व्याख्यानं–शिम्बावर्धने नगरे मुण्डिकाम्रको राजा, तत्र पुष्पभूतय आचार्या बहुश्रुताः, तैः स राजोपशमितः श्राद्धो जातः, तेषां शिष्यः पुष्पमित्रो बहुश्रुतोऽवसन्नोऽन्यत्र तिष्ठति, अन्यदा तेषामाचार्याणां चिन्ता–सूक्ष्मं ध्यानं प्रविशामि, तत् महाप्राणसमं, तत् पुनर्यदा प्रविशति तदैवं योगसंनिरोधः क्रियते यथा न किञ्चित् [illegible], तेषां च ये पार्श्वे तेऽगीतार्थाः, तैः पुष्यमित्रः शब्दितः, आगतः, कथितं, स (तत्) तेन प्रतिपन्नं, तदैकत्रापवरके निर्व्याघाते ध्यायन्ति, स तेषामागन्तुं न

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७२२॥

दें, भणइ–एत्तो ठियगा वंदह, आयरिया वाउला, अण्णया ते अवरोप्परं मंतंति–किं मण्णे होज्जा गवेसामोत्ति, एगो ओवरगबारे ठिओ निवन्नेइ, चिरं च ठिओ, आयरिओ न चलइ न भासइ न फंदइ ऊसासनिस्सासोवि नत्थि, सुहुमो किर तेसिं भवइ, सो गंतूण कहेइ अण्णोसिं, ते रुट्ठा, अज्जो ! तुमं आयरिए कालगएवि न कहेसि ?, सो भणइ–न कालगयत्ति, झाणं झायइत्ति, मा वाघायं करेहित्ति, अण्णे भणंति–पव्वइओ एसो लिंगी मन्ने वेयालं साहेउकामो लक्खणजुत्ता आयरिया तेण ण कहेइ, अज्ज रत्तिं पेच्छहिह, ते आरद्धा तेण समं भंडिउं, तेण वारिया, ताहे ते राया ऊस्सारेऊण कहित्ता आणीओ, आयरिया कालगया सो लिंगी न देइ नीणेउं, सोवि राया पिच्छइ, तेणवि पत्तीयं कालगओत्ति, पूसमित्तस्स ण पत्तियइ, सीया सज्जीया, ताहे णिच्छयो णायो, विणासिया होहिंति, पुव्वं भणिओ सो आयरिएहिं–जाहे अगणी अन्नो वा अच्चओ होज्जत्ति ताहे मम अंगुट्ठए छिवेज्जाहि, छिन्नो, पडिवुद्धो भणइ–किं अज्जो ! वाघाओ कओ ?, पिच्छह

४ प्रतिक्रमणाध्य० योगसं० २८ ध्याना संवरयोगः

---

१ ददाति, भणति–अत्र स्थिता वन्दध्वं, आचार्या व्यापृताः, अन्यदा ते परस्परं मन्त्रयन्ते–किं मन्ये भवेद् गवेषयाम इति, एकोऽपवरकद्वारे स्थितो निभालयति, चिरं च स्थितः, आचार्यो न चलति न भाषते न स्पन्दते उच्छ्वासनिःश्वासावपि न स्तः, सूक्ष्मौ किल तेषां भवतः, स गत्वा कथयति अन्येषां, ते रुष्टा, आर्य ! त्वमाचार्यान् कालं गतानऽपि न कथयसि, स भणति–न कालगता इति, ध्यानं ध्यायन्ति, मा व्याघातं कार्षीरिति, अन्यान् भणन्ति–प्रव्रजित एष लिङ्गी मन्ये वैतालं साधयितुकामो लक्षणयुक्ता आचार्यास्तेन न कथयति, अद्य रात्रौ प्रेक्षध्वं, ते आरब्धास्तेन समं भण्डयितुं, तेन वारिताः, तदा ते राजानमपसार्य कथयित्वाऽऽनीतवन्तः, आचार्याः कालगताः स लिङ्गी न ददाति निष्काशयितुं, सोऽपि राजा प्रेक्षते, तेनापि प्रत्ययितं कालगत इति, पुष्यमित्राय न प्रत्याययति शिबिका सज्जिता, तदा निश्चयो ज्ञातो, विनाशिता भविष्यन्ति, पूर्वं भणितः स आचार्यैः–यदाऽग्निरन्यो वाऽत्ययो भवेद् तदा ममाङ्गुष्ठः स्प्रष्टव्यः, स्पृष्टः, प्रतिबुद्धो भणति–किमार्य ! व्याघातः कृतः ?, प्रेक्षध्वमेतै–

॥७२२॥

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२६]

एएहिं सीसेहिं तुज्झ कयंति, अंबाडिया, एरिसयं किर झाणं पविसियव्वं, तो जोगा संगहिया भवंति २८। झाणसंवरजोगे यत्ति गयं, इयाणिं उदए मारणंतिएत्ति, उदए जइ किर उदओ मारणंतिओ मारणंती वेयणा वा तो अहियासेयव्वं, तत्थोदाहरणगाहा—

रोहीडगं च नयरं ललिआ गुट्ठी अ रोहिणी गणिआ। धम्मरुइ कडुअदुद्धियदाणाययणे अ कंमुदए ॥१३१८॥

इमीए वक्खाणं—रोहिडए णयरे ललियागोट्ठी रोहिणी जुण्णगणिया अण्णं जीवणिउवायं अलभंती तीसे गोट्ठीए भत्तं परंधिया, एवं कालो वच्चइ, अण्णया तीए कडुयदोद्धियं गहियं, तं च बहुसंभारसंभियं उवक्खडियं विण्णस्सइ जाव मुहे ण तीरइ काउं, तीए चिंतियं–खिंसीया होमि गोट्ठीएत्ति अण्णं उवक्खडेइ, एयं भिक्खचराण दिज्जहित्ति, मा दव्वमेवं चेव णासउ, जाव धम्मरुई णाम अणगारो मासक्खमणपारणए पविट्ठो, तस्स दिन्नं, सो गओ उवस्सयं, आलोएइ गुरूणं, तेहि भायणं गहियं, खारगंधो य णाओ, अंगुलिए विण्णासियं, तेहि चिंतियं–जो एयं आहारेइ सो मरइ, भणिओ

---

१ युष्माकं शिष्यैः कृतमिति, निर्भर्त्सिताः, ईदृशं किल ध्यानं प्रवेष्टव्यं, ततो योगाः संगृहीता भवन्ति। ध्यानसंवरयोगा इति गतं, इदानीमुदयो मारणान्तिक इति, यदि किलोदयो मारणान्तिको मारणान्तिकी वेदना वा तदाऽध्यासितव्यं तत्रोदाहरणगाथा। अस्या व्याख्यानं–रोहिडके नगरे ललितागोष्ठी रोहिणी जीर्णगणिका अन्यं आजीविकोपायमलभमाना तस्या गोष्ठ्या भक्तं प्रराद्धवती, एवं कालो व्रजति, अन्यदा तया कटुकं दौग्धिकं गृहीतं, तच्च बहुसंभारसंभृतमुपस्कृतं विनश्यति यावत् मुखे न शक्यते कर्तुं, तया चिन्तितं–निन्दिता भविष्यामि गोष्ठ्यां इति, अन्यदुपस्करोति, एतत् भिक्षाचरेभ्यो दीयते इति, मा द्रव्यमेवमेव विनङ्क्षीद्, यावत् धर्मरुचिरनगारो मासक्षपणपारणके प्रविष्टः, तस्मै दत्तं, स गत उपाश्रयं, आलोचयति गुरून्, तैर्भाजनं गृहीतं, विषगन्धश्च ज्ञातः, अङ्गुल्या जिज्ञासितं, तैश्चिन्तितं–य एनमाहारयति स म्रियते, भणितः–

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७२३॥

४ प्रतिक्र-मणाध्य० योगसं० २९ उदयो-मारणान्तिकः ३० सङ्गपरिज्ञा

[1]विगिंचेहित्ति, सो तं गहाय अडविं गओ, एगत्थ रुक्खदड्ढच्छायाए विगिंचामि, पत्ताबंधं मुयंतस्स हत्थो लित्तो, सो तेण एगत्थ फुसिओ, तेण गंधेण कीडियाओ आगयाओ, जा जा खाइ सा सा मरइ, तेण चिंतियं–मए एगेण समप्पउ मा जीवघाओ होउत्ति एगत्थ थंडिले आलोइयपडिक्कंतेणं मुहाणंतगं पडिलेहित्ता अणिंदंतेण आहारियं, वेयणा य तिव्वा जाया अहियासिया, सिद्धो, एवं अहियासेयव्वं, उदए मारणंतियत्तिगयं २९। इयाणिं संगाणं च परिहरणंति, संगो नाम 'षञ्जी सङ्गे' भावतोऽभिष्वङ्गः स्नेहगुणतो रागः भावो उ अभिसंगो येनास्य सङ्गेन भयमुत्पद्यते तं जाणणापरिण्णाए णाऊण पच्चक्खाणपरिण्णाए पच्चक्खाएयव्वं, तत्थोदाहरणगाहा—

नयरी य चंपनामा जिणदेवो सत्थवाहअहिछत्ता। अडवी य तेण अगणी सावयसंगाण वोसिरणा ॥१३१९॥

इमीए वक्खाणं—चंपाए जिणदेवो नाम सावगो सत्थवाहो उग्घोसेत्ता अहिछत्तं वच्चइ, सो सत्थो पुलिंदएहिं विलोलिओ, सो सावगो नासंतो अडविं पविट्ठो जाव पुरओ अग्गिभयं मग्गओ वग्घभयं दुहओ पवायं, सो भीओ, असरणं

१ त्यजेति, स तं गृहीत्वाऽटवीं गतः, एकत्र दग्धवृक्षच्छायायां त्यजामीति, पात्रबन्धं मुञ्चतो हस्तो लिप्तः, स तेनैकत्र स्पृष्टः, तेन गन्धेन कीटिका आगताः, या या खादति सा सा म्रियते, तेन चिन्तितं–मयैकेन समाप्यतां मा जीवघातो भूदिति एकत्र स्थण्डिले मुखानन्तकं प्रतिलिख्य आलोचितप्रतिक्रान्तेनानिन्दयताहारितं, वेदना च तीव्रा जाताऽध्यासिता, सिद्धः, एवमध्यासितव्यं, उदयो मारणान्तिक इति गतं, इदानीं सङ्गानां च परिहरणमिति, सङ्गो नाम, भावस्वभिष्वङ्गः स ज्ञानपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याख्यातव्यः, तत्रोदाहरणगाथा। अस्या व्याख्यानं–चम्पायां जिनदेवो नाम श्रावकः सार्थवाह उद्घोष्याहिच्छत्रां व्रजति, स सार्थः पुलिन्द्रैर्विलोलितः, स श्रावको नश्यन् अटवीं प्रविष्टो यावत् पुरतोऽग्निभयं पृष्ठतो व्याघ्रभयं द्विधातः प्रपातं, स भीतः, अशरणं

॥७२३॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

णाऊण सयमेव भावलिंगं पडिवज्जित्ता कयसामाइओ पडिमं ठिओ, सावएहिं खइओ, सिद्धो, एवं संगपरिण्णाए जोगा संगहिया भवंति ३०। संगाणं च परिण्णत्ति गयं, इयाणिं पायच्छित्तकरणन्ति, जहाविहीए दत्तस्स, विही नाम जहा सुत्ते भणियं जो जित्तिएण सुज्झइ तं सुट्ठु उवउंजिउं देंतेण जोगा संगहिया भवंति दोण्हवि करेंतदेंतयाणं, तत्थोदाहरणं प्रति गाथापूर्वार्धमाह—

पायच्छित्तपरूवण आहरणं तत्थ होइ धणगुत्ता ।

इमस्स वक्खाणं—एगत्थ णयरे धणगुत्ता आयरिया, ते किर पायच्छित्तं जाणंति दाउं छउमत्थगावि होंतगा जहा एत्तिएण सुज्झइ वा नवत्ति, इंगिएण जाणइ, जो ताण मूले वहइ ताहे सो सुहेण णित्थरइ तं चाइयारं ठिओ य सो होइ अब्भहियं च निज्जरं पावेइ, तहा कायव्वं, एवं दाणे य करणे य जोगा संगहिया भवंति, पायच्छित्तकरणेत्ति गयं ३१। इयाणिं आराहणा य मारणंतित्ति, आराहणाए मरणकाले योगाः सङ्गृह्यन्ते, तत्रोदाहरणं प्रति गाथापश्चार्धमाह—

---

१ ज्ञात्वा स्वयमेव भावलिङ्गं प्रतिपद्य कृतसामायिकः प्रतिमां स्थितः, श्वापदैः खादितः, सिद्धः, एवं सङ्गपरिज्ञया योगाः संगृहीता भवन्ति । सङ्गानां च परिज्ञेति गतं । इदानीं प्रायश्चित्तकरणमिति यथाविधि दत्तस्य, विधिर्नाम यथा सूत्रे भणितं यो यावता शुध्यति तं सुष्ठु उपयुज्य ददता योगाः संगृहीता भवन्ति द्वयोरपि कुर्वद्ददतोः, तत्रोदाहरणं । अस्य व्याख्यानं–एकत्र नगरे धनगुप्ता आचार्याः, ते किल प्रायश्चित्तं जानन्ति दातुं छद्मस्था अपि सन्तो यथैयता शुध्यति वा नवेति, इङ्गितेन जानाति, यस्तेषां मूले वहति तदा स सुखेन निस्तरति तं चातिचारं, स्थिरश्च भवति सः अभ्यधिकां च प्राप्नोति निर्जरां, तथा कर्त्तव्यं, एवं दाने करणे च योगाः संगृहीता भवन्ति, प्रायश्चित्तकरणमिति गतं । इदानीमाराधना च मारणान्तिकीति, आराधनया मरणकाले योगाः संगृह्यन्ते,

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२६]

आराहणाएँ मरुदेवा ओसप्पिणीए पढम सिद्धो ॥ १३२० ॥

अस्य व्याख्या—विंणीयाए णयरीए भरहो राया, उसहसामिणो समोसरणं, प्राकारादिः सर्वः समवसरणवर्णकोऽभिधातव्यो यथा कल्पे,–सा मरुदेवा भरहं विभूसियं दट्ठूण भणइ–तुज्झ पिया एरिसिं विभूतिं चइत्ता एगो समणो हिंडइ, भरहो भणइ–कत्तो मम तारिसा विभूई जारिसा तातस्स?, जइ न पत्तियसि तो एहि पेच्छामो, भरहो निग्गओ सव्वबलेण, मरुदेवावि निग्गया, एगंमि हत्थिंमि विलग्गा, जाव पेच्छइ छत्ताइछत्तं सुरसमूहं च ओवयंतं, भरहस्स वत्थाभरणाणि ओमिलायंताणि दिट्ठाणि, दिट्ठा पुत्तविभूई ? कओ मम एरिसत्ति, सा तोसेण चिंतिउमारद्धा, अपुव्वकरणमणुपविट्ठा, जाती नत्थि, जेण वणस्सइकाएहिंतो उवट्टित्ता, तत्थेव हत्थिवरगयाए केवलनाणं उप्पण्णं, सिद्धा, इमीए ओसप्पिणीए पढमसिद्धो । एवमाराधनां प्रति योगसङ्ग्रहः कर्तव्य इति ३२ ।

---

१ विनीतायां नगर्यां भरतो राजा, ऋषभस्वामिनः समवसरणं, सा मरुदेवी भरतं विभूषितं दृष्ट्वा भणति–तव पितेदृशीं विभूतिं त्यक्त्वैकः श्रमणो हिण्डते, भरतो भणति–कुतो मम तादृशी विभूतिर्यादृशी तातस्य ?, यदि न प्रत्येषि तदेहि प्रेक्षावहे, भरतो निर्गतः सर्वबलेन, मरुदेव्यपि निर्गता, एकस्मिन् हस्तिनि विलग्ना, यावत् प्रेक्षते छत्रातिच्छत्रं सुरसमूहं चावपतन्तं, भरतस्य वस्त्राभरणान्यवम्लायमानानि दृष्टानि, दृष्टा पुत्रविभूतिः ? कुतो ममेदृशी ? इति, सा तोषेण चिन्तयितुमारब्धा, अपूर्वकरणमनुप्रविष्टा, जातिस्मृतिर्नास्ति येन वनस्पतिकायिकादुद्वृत्ता, तत्रैव वरहस्तिस्कन्धगतायाः केवलज्ञानमुत्पन्नं, सिद्धा, अस्यामवसर्पिण्यां प्रथमः सिद्धः ।

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२७]

तेत्तीसाए आसायणाहिं (सूत्रं)

त्रयस्त्रिंशद्भिराशातनाभिः, क्रिया पूर्ववत्, आयः–सम्यग्दर्शनाद्यवाप्तिलक्षणः तस्या शातना, तदुपदर्शनायाह सङ्ग्रहणिकारः—

पुरओ पक्खासन्ने गंता चिट्ठणनिसीयणायमणे । आलोयणपडिसुणणा पुव्वालवणे य आलोए ॥ १ ॥
तह उवदंसनिमंतण खद्धाईयाण तह अपडिसुणणे । खद्धंति य तत्थ गए किं तुम तज्जाइ णो सुमणे ॥ २ ॥
णो सरसि कहं छेत्ता परिसं भित्ता अणुट्ठियाइ कहे । संथारपायघट्टण चिट्ठे उच्चासणाईसु ॥ ३ ॥

आसां व्याख्या—इहाकारणे रत्नाधिकस्याऽऽचार्यादेः शिक्षकेणाऽऽशातनाभीरुणा सामान्येन पुरतो गमनादि न कार्यं, कारणे तु मार्गादिपरिज्ञानादौ ध्यामलदर्शनादौ च विपर्ययः अत्र सामाचार्यनुसारेण स्वबुद्ध्याऽऽलोचनीयः, तत्र पुरतः–अग्रतो गन्ताऽऽशातनावानेव, तथाहि–अग्रतो न गन्तव्यमेव, विनयभङ्गादिदोषात्, 'पक्ख'त्ति पक्षाभ्यामपि गन्ताऽऽशातनावानेव, अतः पक्षाभ्यामपि न गन्तव्यमुक्तदोषप्रसङ्गादेव, आसन्नः पृष्ठतोऽप्यासन्नं गन्तैवमेव वक्तव्यः, तत्र निःश्वासक्षुतश्लेष्मकणपातादयो दोषाः, ततश्च यावता भूभागेन गच्छत एते न भवन्ति तावता गन्तव्यमिति, एवमक्षरगमनिका कार्या, असम्मोहार्थं तु दशासूत्रैरेव प्रकटार्थैर्व्याख्यायन्ते, तद्यथा–'पुरओ'त्ति सेहे रायणियस्स पुरओ गंता भवइ आसायणा सेहस्स १, पक्खत्ति सेहे राइणियस्स पक्खे गंता भवइ आसायणा सेहस्स २, आसण्णत्ति सेहे राइणियस्स णिसीययस्स

१ पुरत इति शैक्षो रात्निकस्य पुरतो गन्ता भवत्याशातना शैक्षस्य १, पक्षेति शैक्षो रात्निकस्य पक्षयोर्गन्ता भवत्याशातना शैक्षस्य, २ आसन्नमिति शैक्षो रत्नाधिकस्य निषीदत

अथ आशातनायाः ३३ भेदाः सविस्तर वर्णयते

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२७]

आवश्यक-हारिभद्रीया ||७२५||

४ प्रतिक्रमणाध्य० ३३ आशातनाः

आसन्नं गंता भवइ आसायणा सेहस्स ३, चिट्ठत्ति सेहे रायणियस्स पुरओ चिट्ठेत्ता भवइ आसायणा सेहस्स ४, सेहे राइणियस्स पक्खं चिट्ठेत्ता भवइ आसायणा सेहस्स ५, सेहे राइणियस्स आसण्णं चिट्ठेत्ता भवइ आसायणा सेहस्स ६, निसीयणत्ति सेहे रायणियस्स पुरओ निसीइत्ता भवइ आसायणा सेहस्स ७, सेहे राइणियस्स सपक्खं निसीइत्ता भवइ आसायणा सेहस्स ८, सेहे राइणियस्स आसण्णं निसीयित्ता भवइ आसायणा सेहस्स ९, 'आयमणे'त्ति सेहे राइणिएणं सद्धिं बहिया विचारभूमीं निक्खंते समाणे तत्थ सेहे पुव्वतरायं आयामति पच्छा रायणिए आसायणा सेहस्स १०, 'आलोयणे'त्ति सेहे रायणिएणं सद्धिं बहिया विचारभूमीं निक्खंते समाणे तत्थ सेहं पुव्वतरायं आलोएइ आसायणा सेहस्स, 'गमणागमणे'त्ति भावणा ११ 'अपडिसुणणे'ति सेहे राइणियस्स राओ वा वियाले वा वाहरमाणस्स अज्जो ! के सुत्ते के जागरइ ?, तत्थ सेहे जागरमाणे रायणियस्स अपडिसुणेत्ता भवइ आसायणा सेहस्स १२, 'पुव्वालवणे'त्ति केइ रायणियस्स पुव्वसंलत्तए सिया तं सेहे पुव्वतरायं आलवइ पच्छा रायणिए आसायणा सेहस्स १३, आलोएइत्ति असणं वा ४ पडिग्गाहेत्ता तं

१ आसन्नं गन्ता भवति आशातना शैक्षस्य ३, 'चिट्ठ'त्ति शैक्षो रत्नाधिकस्य पुरतः स्थाता भवति आशातना शैक्षस्य ४, शैक्षो रत्नाधिकस्य पार्श्वे स्थाता भवत्याशातना शैक्षस्य ५, शैक्षो रत्नाधिकस्यासन्नं स्थाता भवत्याशातना शैक्षस्य ६, 'निषदन'मिति शैक्षो रत्नाधिकस्य पुरतो निषीदयिता भवत्याशातना शैक्षस्य ७, शैक्षो रत्नाधिकस्य पार्श्वे निषीदयिता भवत्याशातना शैक्षस्य ८, शैक्षो रत्नाधिकस्यासन्नं निषीदयिता भवत्याशातना शैक्षस्य ९,'आचमन'मिति शैक्षो रत्नाधिकेन सार्धं बहिर्विचारभूमिं निष्क्रान्तः सन् तत्र शैक्षः पूर्वमेवाचामति पश्चाद् रात्निकः आशातना शैक्षस्य १०, 'आलोचने'ति शैक्षो रात्निकेन सार्धं बहिर्विचारभूमिं निष्क्रान्तः सन् तत्र शैक्षः पूर्वमेवालोचयति आशातना शैक्षस्य, गमनागमनमिति भावना ११, अप्रतिश्रवणमिति शैक्षो रत्नाधिके रात्रौ वा विकाले वा व्याहरति आर्य ! कः सुप्तो कः जागर्त्ति ?, तत्र शैक्षो जागरन् रात्निकस्याप्रतिश्रोता भवत्याशातना शैक्षस्य १२, 'पूर्वालपन'मिति कश्चित् रत्नाधिकस्य पूर्वसंलप्तः स्यात् तं शैक्षः पूर्वमेवालपति पश्चात् रात्निकः आशातना शैक्षस्य १३, 'आलोचयती'ति अशनं वा ४ प्रतिगृह्य तत्

||७२५||

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२७]

पुव्वामेव सेहतरागस्स आलोएति पच्छा रायणियस्स आसायणा सेहस्स १४, 'उवदंसे'त्ति सेहे असणं वा ४ पडिग्गाहेत्ता तं पुव्वामेव सेहतरागस्स उवदंसेइ पच्छा रायणियस्स आसायणा सेहस्स १५, निमंतणेत्ति सेहे असणं वा ४ पडिग्गाहेत्ता पुव्वामेव सेहतरागं निमंतेइ पच्छा राइणियं आसायणा सेहस्स १६, खद्धत्ति सेहे राइणिएण सद्धिं असणं वा ४ पडिग्गाहेत्ता तं राइणियं अणापुच्छित्ता जस्स जस्स इच्छइ तस्स २ खद्धं खद्धं दलयइ आसायणा सेहस्स १७, 'आइयण'त्ति सेहे असणं वा ४ पडिगाहित्ता राइणिएण सद्धिं भुंजमाणे तत्थ सेहे खद्धं २ दायं २ ऊसढं २ रसियं २ मणुण्णं २ मणामं २ णिद्धं २ लुक्खं २ आहरेत्ता भवइ आसायणा सेहस्स, इहं च खद्धंति वड्डुवड्डेणं लंबणेणं डायं डायंति पत्रशाकः वाइंगणचिब्भडगएत्तिगादि ऊसढंति वन्नगंधरसफरिसोववेयं रसियंति रसालं रसियं दाडिमंबादि 'मणुण्णं'ति मणसो इट्ठं, 'मणामं'ति २ मणसा मण्णं मणामं 'निद्धं'ति २ नेहावगाढं 'लुक्खं'ति नेहवज्जियं १८,'अप्पडिसुणणे'त्ति सेहे राइणियस्स वाहरमाणस्स अपडिसुणेत्ता भवइ आसायणा सेहस्स, सामान्येन दिवसओ अपडिसुणेत्ता भवइ १९ 'खद्धंति य'त्ति सेहे राइणियस्स खद्धं

---

१ पूर्वमेवावमरात्निकस्य आलोचयति पश्चाद्रात्निकस्याशातना शैक्षस्य १४, 'उपदर्शन'मिति शैक्षोऽशनं वा ४ प्रतिगृह्य तत् पूर्वमेवावमरात्निकायोपदर्शयति पश्चाद्रात्निकायाशातना शैक्षस्य १५, निमन्त्रणमिति शैक्षोऽशनं वा ४ प्रतिगृह्य पूर्वमेवावमरात्निकं निमन्त्रयते पश्चाद् रात्निकं आशातना शैक्षस्य १६ 'खद्द'मिति शैक्षो रात्निकेन सार्धमशनं वा ४ प्रतिगृह्य तत् रात्निकमनापृच्छ्य यो य इच्छति तं तं प्रचुरं प्रचुरं ददाति आशातना शैक्षस्य १७, 'अदन'मिति शैक्षोऽशनं वा ४ प्रतिगृह्य रात्निकेन सार्धं भुञ्जानस्तत्र शैक्षः प्रचुरं २ शाकं २ संस्कृतं रस्यं मनोज्ञं मनआपं स्निग्धं रूक्षं२ आहारयिता भवति आशातना शैक्षस्य, इह च खद्धंति बृहता बृहता लम्बनेन ऊसढमिति वर्णगन्धरसस्पर्शोपेतं रसितमिति रसयुक्तं दाडिमाम्रादि 'मनोज्ञ'मिति मनस इष्टं 'मनोऽम'मिति मनसा मन्यं मनामं, स्निग्धमिति स्नेहावगाढं 'रूक्षमिति स्नेहवर्जितं, १८ अप्रतिश्रवणमिति शैक्षकः रात्निके व्याहरति अप्रतिश्रोता भवति आशातना शैक्षकस्य, सामान्येन दिवसेऽप्रतिश्रोता भवति १९, खद्धेति चेति शैक्षो रात्निकं खद्धं

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२७]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७२६॥

४ प्रतिक्र-मणाध्य० ३२ आशा-तनाः

खद्धं वत्ता भवइ आसायणा सेहस्स, इमं च खद्धं–वड्डुसद्देणं खरकक्कसनिट्ठुरं भणइ २०, 'तत्थ गए'त्ति सेहे राइणिए वाहरिए जत्थ गए सुणइ तत्थ गए चेव उल्लावं देइ आसायणा सेहस्स २१, 'किंति'त्ति सेहे राइणिएण आहूए किंति वत्ता भवइ आसायणा सेहस्स, किंति–किं भणसित्ति भणइ, मत्थएण वंदामोत्ति भणियव्वं २२, 'तुमं'ति सेहे राइणियं तुमंति वत्ता भवइ आसायणा सेहस्स, को तुमंति चोएत्तए, २३ 'तज्जाए'त्ति सेहे राइणियं तज्जाएणं पडिहणित्ता भवति आसायणा सेहस्स, 'तज्जाएणं'ति कीस अज्जो ! गिलाणस्स न करेसि ?, भणइ–तुमं कीस न करेसि ?, आयरिओ भणइ–तुमं आलसिओ, सो भणइ–तुमं चेव आलसिओ इत्यादि २४, 'णो सुमणो'त्ति सेहे राइणियस्स कहं कहेमाणस्स नो सुमणसो भवइ आसायणा सेहस्स, इह नो सुमणसेत्ति ओहयमणसंकप्पे अच्छइ न अणुवूहइ कहं अहो सोहणं कहियंति २५, 'णो सरसि'त्ति सेहे राइणियस्स कहं कहेमाणस्स णो समरसित्ति वत्ता भवई आसायणा सेहस्स, इह च 'णो सुमरसि'त्ति न सुमरसि तुमं एयं अत्थं,

१ खद्धं वक्ता भवति आशातना शैक्षस्य, इदं च खद्धं–बृहच्छब्देन खरकर्कशनिष्ठुरं भणति २०, 'तत्र गते' इति शैक्षो रात्निकेन व्याहृतो यत्र गतः शृणोति तत्र गत एवोल्लापं ददाति आशातना शैक्षस्य २१, 'कि' मितीति शैक्षो रात्निकेनाहूतः किमिति वक्ता भवत्याशातना शैक्षस्य, किमिति किं भणसीति भणति, मस्तकेन वन्द इति भणितव्यं २२, 'त्व'मिति शैक्षो रात्निकं त्वमिति वक्ता भवति आशातना शैक्षस्य, कस्त्वमिति नोदयिता २३, 'तज्जात' इति शैक्षो रात्निकं तज्जातेन प्रतिहन्ता भवत्याशातना शैक्षस्य, तज्जातेनेति कथमार्य ! ग्लानस्य न करोषि ?, भणति-त्वं कथं न करोषि ?, आचार्यो भणति–त्वमलसः, स भणति–त्वमेवालस इत्यादि २४, 'न सुमना' इति शैक्षो रात्निके कथां कथयति नो सुमना भवत्याशातना शैक्षस्य, इह न सुमना इति उपहतमनःसंकल्पस्तिष्ठति नानुबृंहति कथां अहो शोभनं कथितमिति २५, न स्मरसीति शैक्षो रात्निके कथां कथयति न स्मरसीतिवक्ता भवति आशातना शैक्षस्य, इह च न स्मरसीति न स्मरसि त्वमेनमर्थं

॥७२६॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२७]

[1]न एस एवं भवइ २६, कहं छेत्त'त्ति रायणियस्स कहं कहेमाणस्स तं कहं अच्छिदित्ता भवइ आसायणा सेहस्स, अच्छिंदित्ता भवइत्ति भणइ अहं कहेमि २७, 'परिसं भेत्ते'ति रायणियस्स कहं कहेमाणस्स परिसं भेत्ता भवति आसायणा सेहस्स, इह च परिसं भेत्तत्ति एवं भणइ–भिक्खावेला समुद्दिसणवेला सुत्तत्थपोरिसिवेला, भिंदइ वा परिसं २८, 'अणुट्ठियाए कहेइ' राइणियस्स कहं कहेमाणस्स तीए परिसाए अणुट्ठियाए अवोच्छिन्नाए अवोगडाए दोच्चंपि तच्चंपि कहं कहेत्ता भवइ आसायणा सेहस्स, इह तीसे परिसाए अणुट्ठियाएत्ति–निविट्ठाए चेव अवोच्छिन्नाएत्ति–जावेगोवि अच्छइ अवोगडाएत्ति अविसंसारियत्ति भणियं होइ, दोच्चंपि तच्चंपि–बिहिं तिहिं चउहिं तमेवत्ति जो आयरिएण कहिओ अत्थो तमेवाहिगारं विगप्पइ, अयमवि पगारो अयमवि पगारो तस्सेवेगस्स सुत्तस्स २९, 'संथारपायघट्टण'त्ति सेज्जासंथारगं पाएण संघट्टेत्ता हत्थेण ण अणुण्णवित्ता भवइ आसायणा सेहस्स, इह च सेज्जा–सव्वंगिया संथारो–अड्ढाइज्जहत्थो जत्थ वा

---

१ नैष एवं भवति २६, कथां छेत्तेति रात्निके कथां कथयति तां कथां छेदयति आशातना शैक्षस्य, आच्छेत्ता भवतीति भणति–अहं कथयामि २७, पर्षदं भेत्तेति रात्निके कथां कथयति पर्षदो भेत्ता भवति आशातना शैक्षस्य, इह च पर्षदो भेत्तेति एवं भणति–भिक्षावेला भोजनवेला सूत्रार्थपौरुषीवेला, भिनत्ति वा पर्षदं २८, अनुत्थितायां कथयति रात्निके कथां कथयति तस्यां पर्षदि अनुत्थितायामव्युच्छिन्नायामव्याकृतायां (असंविप्रकीर्णायां) द्विरपि त्रिरपि कथायाः कथयिता भवत्याशातना शैक्षस्य, इह तस्यां पर्षदि अनुत्थितायामिति निविष्टायामेव अव्युच्छिन्नायामिति यावदेकोऽपि तिष्ठति, अव्याकृतायामिति अविसंसृतायामिति भणितं भवति, द्विरपि त्रिरपि–द्विकृत्वस्त्रिकृत्वः चतुर्भिः तमेवेति य आचार्येण कथितोऽर्थस्तमेवाधिकारं विकल्पयति, अयमपि प्रकारः अयमपि प्रकारः तस्यैवैकस्य सूत्रस्य २९, संस्तारपादघट्टनमिति शय्यासंस्तारकौ पादेन संघट्टयित्वा हस्तेन नानुज्ञापयिता भवति आशातना शैक्षस्य, इह च शय्या–सर्वाङ्गिकी संस्तारकः–अर्धतृतीयहस्तः यत्र वा

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२७]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७२७॥

४ प्रतिक्र-मणाध्य० ३३ आशा-तनाः

ठाणे अच्छइ संथारो बिदलकट्ठमओ वा, अहवा सेज्जा एव संथारओ तं पाएण संघट्टेइ, णाणुजाणावेइ–न खामेइ, भणियं च–'संघट्टेत्ताण काएणे' त्यादि ३०, 'चेट्ठ'त्ति सेहे राइणियस्स सेज्जाए संथारे वा चिट्ठित्ता वा निसिइत्ता वा तुयट्टित्ता वा भवइ आसायणा सेहस्स ३१, 'उच्च'त्ति सेहे राइणियस्स उच्चासणं चिट्ठित्ता वा निसिइत्ता वा भवइ आसायणा सेहस्स ३२, 'समासणे यावि'त्ति सेहे राइणियस्स समासणं चिट्ठित्ता वा निसीइत्ता वा तुयट्टित्ता वा भवइ आसायणा सेहस्सत्ति ३३ गाथात्रितयार्थः ॥ ॥ सूत्रोक्ताशातनासम्बन्धाभिधित्सयाह सङ्ग्रहणिकारः—

अहवा-अरहंताणं आसायणादि सज्झाएँ किंचिणाहीयं । जा कंठसमुद्दिट्ठा तेत्तीसासायणा एया ॥ १ ॥ प्रतिक्रमणसङ्ग्रहणी समाप्ता ॥

व्याख्या—अथवा–अयमन्यः प्रकारः, 'अर्हतां' तीर्थकृतामाशातना, आदिशब्दात्सिद्धादिग्रहः यावत्स्वाध्याये किञ्चिन्नाधीतं 'सज्झाए ण सज्झाइयंति वुत्तं भवइ,' एताः 'कण्ठसिद्धाः' निगदसिद्धा एवेत्यर्थः, त्रयस्त्रिंशदाशातना इति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं सूत्रोक्ता एव त्रयस्त्रिंशद्व्याख्यायन्ते, तत्र—

॥७२७॥

---

१ स्थाने तिष्ठति संस्तारको द्विदलकाष्ठमयो वा, अथवा शय्यैव संस्तारकः तं पादेन संघट्टयति, नानुज्ञापयति–न क्षमयति, भणितं च 'कायेन संघट्टयित्वेत्यादि ३०, स्थातेति शैक्षो रात्निकस्य शय्यायां संस्तारके वा स्थाता वा निषीदयिता वा त्वग्वर्त्तयिता वा भवत्याशातना शैक्षस्य ३१, उच्च इति शैक्षो रात्निकासनात् उच्च आसने स्थाता निषीदयिता वा भवत्याशातना शैक्षस्य ३२, समासने चापीति शैक्षो रात्निकासनस्य सम आसने स्थाता वा निषीदयिता वा त्वग्वर्त्तयिता वा भवत्याशातना शैक्षस्येति ।

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२८]

अरिहंताणं आसायणाए सिद्धाणं आसायणाए आयरियाणं आसायणाए उवज्झायाणं आसायणाए साहूणमासायणाए साहुणीणं आसायणाए सावगाणं आसायणाए सावियाणं आसायणाए देवाणं आसायणाए देवीणं आसायणाए इहलोगस्सासायणाए परलोगस्स आसायणाए केवलिपन्नत्तस्स धम्मस्स आसायणाए सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स आसायणाए सव्वपाणभूयजीवसत्ताणं आसायणाए कालस्स आसायणाए सुयस्स आसायणाए सुयदेवयाए आसायणाए वायणायरियस्स आसायणाए (सूत्रं)

अर्हतां—प्राग्निरूपितशब्दार्थानां सम्बन्धिन्याऽऽशातनया यो मया दैवसिकोऽतिचारः कृतस्तस्य मिथ्या दुष्कृतमिति क्रिया, एवं सिद्धादिपदेष्वपि योज्यते, इत्थं चाभिदधतोऽर्हतामाशातना भवति–नत्थी अरहंतत्ती जाणंतो कीस भुंजई भोए। पाहुडियं उवजीवे एव वयंतुत्तरं इणमो ॥ १ ॥ भोगफलं निव्वत्तियपुण्णपगडीणमुदयबाहुल्ला । भुंजइ भोए एवं पाहुडियाए इमं सुणसु ॥ २ ॥ णाणाइअणवरोहकअघातिसुहपायवस्स वेयाए। तित्थंकरनामाए उदया तह वीयरायत्ता ॥ ३ ॥ सिद्धानामाशातनया, क्रिया पूर्ववत्–सिद्धाणं आसायण एव भणंतस्स होइ मूढस्स। नत्थी निच्चेट्ठा

१ न सन्ति अर्हन्त इति जानानो वा कथं भुनक्ति भोगान्?। प्राभृतिकां (समवसरणादिकं) उपजीवति कथं? एवं वदत उत्तरमिदम् ॥ १ ॥ निर्वर्तितभोगफलपुण्यप्रकृतीनामुदयबाहुल्यात्। भुनक्ति भोगान् एवं प्राभृतिकायां इदं शृणु ॥ २ ॥ ज्ञानाद्यनवरोधकाघातिसुखपादपस्य वेदनाय। तीर्थकरनाम्न उदयात् तथा वीतरागत्वात् ॥ ३ ॥ सिद्धानामाशातना एवं भणतो भवति मूढस्य। न सन्ति निश्चेष्टा

सूत्रोक्त अरिहंत आदि ३३ आशातनायाः व्याख्यानं

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२८]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७२८॥

वा सइवावी अहव उवओगे ॥ १ ॥ रागद्दोसधुवत्ता तहेव अण्णन्नकालमुवओगो । दंसणणाणाणं तू होइ असव्वण्णुया चेव ॥ २ ॥ अण्णोण्णावरणभ(ता)वा एगत्तं वावि णाणदंसणओ । भण्णइ नवि एएसिं दोसो एगोवि संभवइ ॥ ३ ॥ अत्थित्ति नियम सिद्धा सद्दाओ चेव गम्मए एवं । निच्चिट्ठावि भवंती वीरियक्खयओ न दोसो हु ॥४॥ रागद्दोसो न भवे सव्वकसायाण निरवसेसखया । जियसाभवा ण जुगवमुवओगो नयमयाओ य ॥ ५ ॥ न पिहूआवरणाओ दव्वट्ठिनयस्स वा मयेणं तु । एगत्तं वा भवई दंसणणाणाण दोण्हंपि ॥ ६ ॥ णाणणय दंसणणए पडुच्च णाणं तु सव्वमेवेयं । सव्वं च दंसणंती एवमसव्वण्णुया का उ ? ॥ ७ ॥ पासणयं व पडुच्चा जुगवं उवओग होइ दोण्हंपि । एवमसव्वण्णुत्ता एसो दोसो न संभवइ ॥ ८ ॥ आचार्याणामाशातना, क्रिया पूर्ववत्, आशातना तु–डहरो अकुलीणोत्ति य दुम्मेहो दमगमंदबुद्धित्ति । अवियप्पलाभलद्धी सीसो परिभवइ आयरिए ॥ १ ॥ अहवावि वए एवं उवएस परस्स देंति एवं तु । दसविहवेयावच्चं कायव्व

४ प्रतिक्रमणाध्य० अर्हदाद्याशातनाः१९

---

१ वा सदा वाऽपि उपयोगेऽथवा ॥ १ ॥ ध्रुवरागद्वेषत्वात्तथैवान्यान्यकाल उपयोगात् । दर्शनज्ञानयोस्तु भवत्यसर्वज्ञतैव ॥ २ ॥ अन्योऽन्यावारकता वा एकत्वं वाऽपि ज्ञानदर्शनयोः । भण्यते नैवैतेषां दोष एकोऽपि संभवति ॥ ३ ॥ सन्तीति नियमतः सिद्धाः शब्दादेव गम्यन्ते एवम् । निश्चेष्टा अपि भवन्ति वीर्यक्षयतो नैव दोषः ॥ ४ ॥ रागद्वेषौ न स्यातां सर्वकषायाणां निरवशेषक्षयात् । जीवस्वाभाव्यात् नोपयोगयौगपद्यं नयमताच्च ॥ ५ ॥ न पृथगावरणात् (ऐक्यं) द्रव्यार्थिकनयस्य वा मतेन तु । एकत्वं वा भवति ज्ञानदर्शनयोर्द्वयोरपि ॥ ६ ॥ ज्ञाननयं प्रतीत्य सर्वमेवेदं ज्ञानं दर्शननयं प्रतीत्य सर्वमेवेदं दर्शनमिति एवमसर्वज्ञता का तु? ॥ ७ ॥ पश्यत्तां वा प्रतीत्य युगपदुपयोगो भवति द्वयोरपि । एवमसर्वज्ञता एष दोषो न संभवति ॥ ८ ॥ बालोऽकुलीन इति च दुर्मेधा द्रमको मन्दबुद्धिरिति । अपि चात्मलाभलब्धिः शिष्यः परिभवत्याचार्यान् ॥ १ ॥ अथवाऽपि वदत्येवं–उपदेशं परस्मै ददति एवं तु । दशविधं वैयावृत्यं कर्त्तव्यं

॥७२८॥

सयं न कुव्वंति ॥ २ ॥ डहरोवि णाणवुड्ढो अकुलीणोत्ति य गुणालओ किह णु ? । दुम्मेहाईणिवि एवं भणंतऽसंताइ दुम्मेहो ॥ ३ ॥ जाणंति नविय एवं निद्धम्मा मोक्खकारणं णाणं । निच्चं पगासयंता वेयावच्चाइ कुव्वंति ॥ ४ ॥ उपाध्यायानामाशातनया, क्रिया पूर्ववत्, आशातनाऽपि साक्षेपपरिहारा यथाऽऽचार्याणां नवरं सूत्रप्रदा उपाध्याया इति, साधूनामाशातनया, क्रिया पूर्ववत्,–जोऽमुणियसमयसारो साहुसमुद्दिस्स भासए एवं। अविसहणातुरियगई भंडणमामुंडणा चेव ॥ १ ॥ पाणसुणया व भुंजंति एगओ तह विरूवनेवत्था । एमाइ वयइ वण्णं मूढो न मुणेइ एयं तु ॥ २ ॥ अविसहणादिसमेया संसारसहावजाणणा चेव । साहू चेवऽकसाया जओ पभुंजंति ते तहवि ॥ ३ ॥ साध्वीनामाशातनया, क्रिया पूर्ववत्,– कलहणिया बहुउवही अहवावि समणुवद्दवो समणी। गणियाण पुत्तभण्डा दुमवेलि जलस्स सेवालो ॥ १ ॥ अत्रोत्तरं– कलहंति नेव नाऊण कसाए कम्मबंधबीए उ । संजलणाणमुदयओ ईसिं कलहेवि को दोसो? ॥ २ ॥ उवही य बहुविगप्पो बंभवयरक्खणत्थमेयासिं । भणिओ जिणेहि जम्हा तम्हा उवहिंमि नो दोसो ॥ ३ ॥ समणाण नेय एया उवद्दवो

---

१ स्वयं न कुर्वन्ति ॥ २ ॥ बालोऽपि ज्ञानवृद्धोऽकुलीन इति गुणालयः कथं नु ? । दुर्मेधआदीन्यपि एवं भणति असन्ति दुर्मेधः ॥ ३ ॥ जानन्ति नापि चैवं च निर्धर्माणो मोक्षकारणं ज्ञानं। नित्यं प्रकाशयन्तो वैयावृत्त्यादि कुर्वन्ति ॥४॥ योऽज्ञातसमयसारः साधून् समुद्दिश्य भाषते एवम्। अविषहणा अत्वरितगतय भण्डनमामुण्डनं चैव ॥ १ ॥ पाणा इव श्वान इव भुञ्जन्ति एकतस्तथा विरूपनेपथ्याः । एवमादि वदत्यवर्णं मूढो न जानात्येतत्तु ॥ २ ॥ अविषहणादिसमेताः संसारस्वभावज्ञानादेव । साधव एवाकषाया यतोऽतः प्रभुञ्जन्ति ते तथैव ॥ ३ ॥ कलहकारिका बहूपधिका अथवाऽपि श्रमणोपद्रवः श्रमणी । गणिकानां पुत्रभाण्डा द्रुमस्य वल्ली जलस्य शैवालः ॥ १ ॥ कषायान् कर्मबन्धबीजानि ज्ञात्वा नैव कलहयन्ति । संज्वलनानामुदयात् ईषत् कलहेऽपि को दोषः ? ॥ २ ॥ उपधिश्च बहुविकल्पो ब्रह्मव्रतरक्षणार्थमेतासाम् । भणितो जिनैर्यस्मात् तस्मादुपधौ न दोषः ॥ ३ ॥ श्रमणानां नैता उपद्रवः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२८]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७२९॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० अर्हदाद्याशातनाः१९

सम्ममणुसरंताणं । आगमविहिं महत्थं जिणवयणसमाहियप्पाणं ॥ ४॥ श्रावकाणामाशातनया, क्रिया तथैव, जिनशासनभक्ता गृहस्थाः श्रावका उच्यन्ते, आशातना तु--लद्धूण माणुसत्तं नाऊणवि जिणमयं न जे विरइं । पडिवज्जंति कहं ते धण्णा वुच्चंति लोगंमि ? ॥ १ ॥ सावगसुत्तासायणमत्थुत्तरं कम्मपरिणइवसाओ । जइवि पवज्जंति न तं तहावि धण्णत्ति मग्गठिया ॥ २ ॥ सम्यग्दर्शनमार्गस्थितत्वेन गुणयुक्तत्वादित्यर्थः, श्राविकाणामाशातनया, क्रियाऽऽक्षेपपरिहारौ पूर्ववत्, देवानामाशातनया, क्रिया तथैव, आशातना तु--कामपसत्ता विरईए वज्जिया अणिमिसया (२)निच्चिट्ठा। देवा सामत्थंमिवि न य तित्थस्सुन्नइकरा य ॥ १ ॥ एत्थ पसिद्धी मोहणियसायवेयणियकम्मउदयाओ । कामपसत्ता विरई कम्मोदयउ च्चिय न तेसिं ॥ २ ॥ अणिमिस देवसहावा णिच्चिट्ठाणुत्तरा उ कयकिच्चा । कालाणुभावा तित्थुन्नईवि अन्नत्थ कुव्वंति ॥ ३ ॥ देवीनामाशातनया, क्रियाक्षेपपरिहारौ प्राग्वत् । इहलोकस्याऽऽशातनया, क्रिया प्राग्वत् । इहलोको–मनुष्यलोकः, आशातना तस्य वितथप्ररूपणादिना, परलोकस्याऽऽशातनया, प्राग्वत्, परलोकः–नारकतिर्यगमराः, आशातना तस्य वितथप्ररूपणादिनैव, द्वितयेऽप्याक्षेपपरिहारौ स्वमत्या कार्यौ । केवलिप्रज्ञप्तस्य धर्मस्याऽऽशातनया, क्रिया प्राग्वत्, स च धर्मो ॥७२९॥

---

१ सम्यगनुसरतां। आगमविधिं महार्थं जिनवचनसमाहितात्मना ॥ ४ ॥ लब्ध्वा मानुष्यं ज्ञात्वाऽपि जिनवचनं न ये विरतिं। प्रतिपद्यन्ते कथं ते धन्या उच्यन्ते लोके? ॥ १ ॥ श्रावकाशातनासूत्रमत्रोत्तरं कर्मपरिणतिवशात् । यद्यपि न तां प्रतिपद्यन्ते तथापि धन्या मार्गस्थिता इति ॥ २ ॥ कामप्रसक्ता विरत्या वर्जिता अनिमेषा निश्चेष्टाश्च । देवाः सामर्थ्येऽपि न च तीर्थोन्नतिकारकाश्च ॥ १ ॥ अत्रोत्तरं मोहनीयसातवेदनीयकर्मोदयात् । कामप्रसक्ता विरतिश्च कर्मोदयत एव न तेषाम् ॥ २ ॥ अनिमेषा देवस्वाभाव्यात् निश्चेष्टा अनुत्तरास्तु कृतकृत्याः । कालानुभावात् तीर्थोन्नतिमपि अन्यत्र कुर्वन्ति ॥ ३ ॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२८]

द्विविधः–श्रुतधर्मश्चारित्रधर्मश्च, आशातना तु–पायय सुत्तनिबद्धं को वा जाणेइ पणीय केणेयं ?। किं वा चरणेणं तू दाणेण विणा उ हवइत्ति ॥१॥ उत्तरं—"बालस्त्रीमूढ(मन्द)मूर्खाणां, नृणां चारित्रकाङ्क्षिणाम्। अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः, सिद्धान्तः प्राकृतः कृतः ॥ १ ॥" निपुणधर्मप्रतिपादकत्वाच्च सर्वज्ञप्रणीतत्वमिति, चरणमाश्रित्याह—'दानमौरभ्रिकेणापि, चाण्डालेनापि दीयते। येन वा तेन वा शीलं, न शक्यमभिरक्षितुम् ॥ १ ॥ दानेन भोगानाप्नोति, यत्र यत्रोपपद्यते। शीलेन भोगान् स्वर्गं च, निर्वाणं चाधिगच्छति ॥ २ ॥ तथाऽभयदानदाता चारित्रवान्नियत एवेति। सदेवमनुष्यासुरस्य लोकस्याऽऽशातनया, क्रिया प्राग्वत्, आशातना तु वितथप्ररूपणादिना, आह च भाष्यकारः—

देवादीयं लोयं विवरीयं भणइ सत्तदीवुदही। तह कइ पयावईणं पयईपुरिसाण जोगो वा ॥ २१३ ॥

उत्तरं–सत्तसु परिमियसत्ता मोक्खो सुण्णत्तणं पयावइ य। केण कउत्तऽणवत्था पयडीएँ कहं पवित्तित्ति? ॥२१४॥

जमचेयणत्ति पुरिसत्थनिमित्तं किल पवत्तती सा य। तीसे च्चिय अपवित्ती परोत्ति सव्वं चिय विरुद्धं ॥२१५॥ (भा०)

सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वानामाशातनया, क्रिया प्राग्वत्, तत्र प्राणिनः–द्वीन्द्रियादयः व्यक्तोच्छ्वासनिःश्वासा अभूवन् भवन्ति भविष्यन्ति चेति भूतानि–पृथिव्यादयः जीवन्ति जीवा–आयुःकर्मानुभवयुक्ताः सर्व एवेत्यर्थः सत्त्वाः–सांसारिकसंसा-

---

१ प्राकृतः सूत्रनिबन्ध इति को वा जानाति केनेदं प्रणीतमिति। किं वा चारित्रेणैव दानेन विना भवति तु ॥ १ ॥ देवादिकं लोकं विपरीतं वदति सप्त द्वीपोदधयः। तथा कृतिः प्रजापतेः प्रकृतिपुरुषयोः संयोगो वा ॥ १ ॥ उत्तरं–सप्तसु परिमिताः सत्त्वा अमोक्षः शून्यत्वं वा प्रजापतिश्च। केन कृत इत्यनवस्था प्रकृतेः कथं प्रवृत्तिरिति? ॥ २ ॥ यदचेतनेति पुरुषार्थनिमित्तं किल प्रवर्त्तते सा च। तस्या एवाप्रवृत्तावितरोऽपि सर्वमेवैवं विरुद्धम् ॥ ३ ॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२८]

रातीतभेदाः, एकार्थिका वा ध्वनय इति, आशातना तु विपरीतप्ररूपणादिनैव, तथाहि—अङ्गुष्ठपर्वमात्रो द्वीन्द्रियाद्यात्मेति, पृथिव्यादयस्त्वजीवा एव, स्पन्दनादिचैतन्यकार्यानुपलब्धेः, जीवाः क्षणिका इति, सत्त्वाः संसारिणोऽङ्गुष्ठपर्वमात्रा एव भवन्ति, संसारातीता न सन्त्येव, अपि तु प्रध्यातदीपकल्पोपमो मोक्ष इति, उत्तरं—देहमात्र एवात्मा, तत्रैव सुखदुःखादितत्कार्योपलब्धेः, पृथिव्यादीनां त्वल्पचैतन्यत्वात् कार्यानुपलब्धिर्नाजीवत्वादिति, जीवा अप्येकान्तक्षणिका न भवन्ति, निरन्वयनाशे उत्तरक्षणस्यानुत्पत्तेर्निर्हेतुकत्वादेकान्तनष्टस्यासदविशेषत्वात्, सत्त्वाः संसारिणः (देहप्रमाणाः), प्रत्युक्ता एव संसारातीता अपि विद्यन्त एवेति, जीवस्य सर्वथा विनाशाभावात्, तथाऽन्यैरप्युक्तं—"नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः। उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १ ॥" इत्यादि। कालस्याऽऽशातनया, क्रिया पूर्ववत्, आशातना तु नास्त्येव काल इति कालपरिणतिर्वा विश्वमिति, तथा च दुर्नयः—"कालः पचति भूतानि, कालः संहरते प्रजाः। कालः सुप्तेषु जागर्ति, कालो हि दुरतिक्रमः ॥ १ ॥" इत्यादि, उत्तरं—कालोऽस्ति, तमन्तरेण बकुलचम्पकादीनां नियतः पुष्पादिप्रदानभावो न स्यात्, न च तत्परिणतिर्विश्वं, एकान्तनित्यस्य परिणामानुपपत्तेः। श्रुतस्याऽऽशातनया, क्रिया पूर्ववत्, आशातना तु—[1]को आउरस्स कालो? मइलंबरधोवणे य को कालो?। जइ मोक्खहेउ नाणं को कालो तस्सऽकालो वा? ॥ १ ॥ इत्यादि, उत्तरं—जोगो जोगो जिणसासणंमि दुक्खक्खया पउंजंतो। अण्णोण्णमबाहाए ॥७३०॥

१ क आतुरस्य (औषधादाने) कालो मलिनाम्बरप्रक्षालने च कः कालः। यदि मोक्षहेतुर्ज्ञानं कस्तस्य कालोऽकालो वा?, ॥ १ ॥ दुःखक्षयकारणात् प्रयुज्यमानो योगो जिनशासने योग्यः। अन्योऽन्याबाधया

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

असवत्तो होइ कायवो ॥ २ ॥ प्राग् धर्मद्वारेण श्रुताशातनोक्ता इह तु स्वतन्त्रविषयेति न पुनरुक्तं । श्रुतदेवताया आशातनया, क्रिया पूर्ववत्, आशातना तु श्रुतदेवता न विद्यतेऽकिञ्चित्करी वा, उत्तरं—न ह्यनधिष्ठितो मौनीन्द्रः खल्वागमः अतोऽसावस्ति, न चाकिञ्चित्करी, तामालम्ब्य प्रशस्तमनसः कर्मक्षयदर्शनात् । वाचनाचार्यस्याऽऽशातनया, क्रिया पूर्ववत्, तत्र वाचनाचार्यो ह्युपाध्यायसंदिष्टो य उद्देशादि करोति, आशातना त्वियं—निर्दुःखसुखः प्रभूतान् वारान् वन्दनं दापयति, उत्तरं—श्रुतोपचार एषः क इव तस्यात्र दोष इति—

जं वाइद्धं वच्चामेलियं हीणक्खरियं अच्चक्खरियं पयहीणं विणयहीणं घोसहीणं जोगहीणं सुट्ठुदिन्नं दुट्ठु पडिच्छियं अकाले कओ सज्झाओ काले न कओ सज्झाओ असज्झाए सज्झाइयं सज्झाए न सज्झाइयं तस्स मिच्छामि दुक्कडं (सूत्रं)

एए चोद्दस सुत्ता पुव्विल्लिया य एगूणवीसंति एए तेत्तीसमासायणसुत्तत्ति । एतानि चतुर्दश सूत्राणि श्रुतक्रियाकालगोचरत्वान्न पुनरुक्तभाञ्जीति, तथा दोषदुष्टपदं श्रुतं यदधीतं, तद्यथा—व्याविद्धं विपर्यस्तरत्नमालावद्, अनेन प्रकारेण याऽऽशातना तया हेतुभूतया योऽतिचारः कृतस्तस्य मिथ्यादुष्कृतमिति क्रिया, एवमन्यत्रापि योज्या, व्यत्याम्रेडितं कोलिकपायसवत्, हीनाक्षरम्—अक्षरन्यूनम्, अत्यक्षरम्—अधिकाक्षरं, पदहीनं—पदेनैवोनं, विनयहीनम्—अकृतोचितविनयं, घोषहीनम्—उदात्तादिघोषरहितं, योगरहितं—सम्यगकृतयोगोपचारं, सुष्ठुदत्तं गुरुणा दुष्ठु प्रतीच्छितं कलुषितान्तरात्मनेति, अकाले कृतः स्वाध्यायो—यो यस्य श्रुतस्य कालिकादेरकाल इति, काले न कृतः स्वाध्यायः—यो यस्याऽऽत्मीयोऽ-

१ असपत्नो भवति कर्त्तव्यः ॥ २ ॥ एतानि चतुर्दश सूत्राणि पूर्वाणि चैकान्नविंशतिः, एतानि त्रयस्त्रिंशदाशातनासूत्राणि

श्रुत संबंधी तथा श्रुतकाल संबंधी दोषा: वर्णयते

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७३१॥

ध्ययनकाल उक्त इति, अस्वाध्यायिके स्वाध्यायितं ॥ किमिदमस्वाध्यायिकमित्यनेन प्रस्तावेनाऽऽयाताऽस्वाध्यायिकनिर्यु- क्तिरित्यस्यामेवाऽऽद्यद्वारगाथा—

४ प्रतिक्रमणाध्य० अस्वाध्यायिकनि०

असज्झाइयनिज्जुत्ती वुच्छामी धीरपुरिसपण्णत्तं । जं नाऊण सुविहिया पवयणसारं उवलहंति ॥ १३२१ ॥

असज्झायं तु दुविहं आयसमुत्थं च परसमुत्थं च । जं तत्थ परसमुत्थं तं पंचविहं तु नायव्वं ॥ १३२२ ॥

व्याख्या—आ अध्ययनमाध्ययनमाध्यायः शोभन आध्यायः स्वाध्यायः स एव स्वाध्यायिकं न स्वाध्यायिकमस्वाध्यायिकं तत्कारणमपि च रुधिरादि कारणे कार्योपचारात् अस्वाध्यायिकमुच्यते, तदस्वाध्यायिकं द्विविधं–द्विप्रकारं, मूलभेदापेक्षया द्विविधमेव, द्वैविध्यं प्रदर्शयति–'आयसमुत्थं च परसमुत्थं च' आत्मनः समुत्थं–स्वव्रणोद्भवं रुधिरादि, चशब्दः स्वगतानेकभेदप्रदर्शकः, परसमुत्थं–संयमघातकादि, चः पूर्ववत्, तत्थ जं परसमुत्थं–परोद्भवं तं पञ्चविधं तु–पञ्चप्रकारं 'मुणेयव्वं' ज्ञातव्यमिति गाथार्थः ॥ १३२१–१३२२ ॥ तत्र बहुवक्तव्यत्वात् परसमुत्थमेव पञ्चविधमादावुपदर्शयति—

संजमघाउवघाए सादिव्वे वुग्गहे य सारीरे । घोसणयमिच्छरण्णो कोई छलिओ पमाएणं ॥ १३२३ ॥

व्याख्या—'संयमघातकं' संयमविनाशकमित्यर्थः, तच्च महिकादि, उत्पातेन निर्वृत्तमौत्पातिकं, तच्च पांशुपातादि, सह दिव्यैः सादिव्यं तच्च गन्धर्वनगरादि दिव्यकृतं सदिव्यं वेत्यर्थः, व्युद्ग्रहश्चेति व्युद्ग्रहः–सङ्ग्रामः, असावप्यस्वाध्यायिकनिमित्तत्वात् तथोच्यते, शारीरं तिर्यग्मनुष्यपुद्गलादि, एयंमि पंचविहे असज्झाए सज्झायं करेंतस्स आयसंजमविराहणा, ॥७३१॥

१ एतस्मिन् पञ्चविधेऽस्वाध्यायिके स्वाध्यायं कुर्वत आत्मसंयमविराधना,

अथ अस्वाध्याय निर्युक्ति: प्रस्तुयते

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

तत्थ दिट्ठंतो, घोसणयमिच्छ इत्यादेर्गाथाशकलस्यार्थः कथानकादवसेय इति गाथासमुदायार्थः, अधुना गाथापश्चार्धावयवार्थप्रतिपादनायाह—

मिच्छभयघोसण निवे हियसेसा ते उ दंडिया रण्णा । एवं दुहओ दंडो सुरपच्छित्ते इह परे य ॥ १३२४ ॥

व्याख्या—खिइपइट्ठियं णयरं, जियसत्तू राया, तेण सविसए घोसावियं जहा मेच्छो राया आगच्छइ, तो गामकूलणयराणि मोत्तुं समासन्ने दुग्गे ठायह, मा विणस्सिहिह, जे ठिया रण्णो वयणेण दुग्गादिसु ते ण विणट्ठा, जे पुण ण ठिया ते मिच्छया(पाई)हि विलुत्ता, ते पुणो रण्णा आणाभंगो मम कओत्ति जंपि कंपि हियसेसं तंपि दंडिया, एवमसज्झाए सज्झायं करेंतस्स उभओ दंडो, सुरत्ति देवया पछलइ पच्छित्तेत्ति–पायच्छित्तं च पावइ 'इह'त्ति इहलोए 'परे'त्ति परलोए णाणादि विफलत्ति गाथार्थः ॥ १३२४ ॥ (१९५००) इमो दिट्ठंतोवणओ—

राया इह तित्थयरो जाणवया साहू घोसणं सुत्तं । मेच्छो य असज्झाओ रयणधणाइं च नाणाई ॥ १३२५ ॥

व्याख्या—जहा राया तहा तित्थयरो, जहा जाणवया तहा साहू, जहा घोसणं तहा सुत्तं–असज्झाइए सज्झायपडि-

---

१ तत्र दृष्टान्तः । क्षितिप्रतिष्ठितं नगरं जितशत्रू राजा, तेन स्वविषये घोषितं यथा म्लेच्छो राजा आगच्छति ततो ग्रामकूलनगरादीनि मुक्त्वा समासन्ने दुर्गे तिष्ठत, मा विनङ्क्षत, ये स्थिता राज्ञो वचनेन दुर्गादिषु ते न विनष्टाः, ये पुनर्न स्थितास्ते म्लेच्छपत्तिभिर्विलुप्ताः, ते पुना राज्ञा आज्ञाभङ्गो मम कृत इति यदपि किमपि हृतशेषं तदपि दण्डिताः, एवमस्वाध्यायिके स्वाध्यायं कुर्वत उभयतो दण्डः, सुर इति देवता प्रच्छलति, प्रायश्चित्तमिति प्रायश्चित्तं च प्राप्नोति, इहेति इहलोके पर इति परलोके ज्ञानादीनि विफलानीति । अयं दृष्टान्तोपनयः यथा राजा तथा तीर्थकरो यथा जानपदास्तथा साधवो यथा घोषणं तथा सूत्रं अस्वाध्यायिके स्वाध्यायप्रति–

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२९]

सेहंगति, जहा मेच्छो तहा असज्झाओ महिगादि, जहा रयणधणाइ तहा णाणादीणि महिगादीहि अविहीकारिणो हीरंति गाथार्थः ॥ १३२५ ॥

थोवावसेसपोरिसिमज्झयणं वावि जो कुणइ सो उ । णाणाइसाररहियस्स तस्स छलणा उ संसारो ॥ १३२६ ॥

व्याख्या—'थोवावसेसपोरिसि' कालवेलत्ति जं भणियं होइ, एवं सो उत्ति संबंधो, अज्झयणं–पाठो अविसद्दाओ वक्खाणं वावि जो कुणइ आणादिलंघणे णाणाइसाररहियस्स तस्स छलणा उ संसारोत्ति–णाणादिवेफलत्तणओ चेव गाथार्थः ॥ १३२६ ॥ तत्राऽऽद्यद्वारावयवार्थप्रतिपादनायाह—

महिया य भिन्नवासे सच्चित्तरए य संजमे तिविहं । दव्वे खित्ते काले जहियं वा जच्चिरं सव्वं ॥ १३२७ ॥

व्याख्या—'महिय'त्ति धूमिगा 'भिन्नवासे य'त्ति बुद्बुदादौ 'सच्चित्तरए'त्ति अरण्णे वाउद्धुयपुढविरएत्ति भणियं होइ, संजमघाइयं एवं तिविहं होइ, इमं च 'दव्वे'त्ति तं चेव दव्वं महिगादि 'खेत्ते काले जहिं वे'ति जहिं खेत्ते महिगादि पडइ

---

१ षेधकमिति, यथा म्लेच्छस्तथाऽस्वाध्यायो महिकादिः, यथा रत्नधनादि तथा ज्ञानादीनि महिकादिभिरविधिकारिणो ह्रियन्ते । स्तोकावशेषा पौरुषीति कालवेलेति यद्भणितं भवति, एवं स त्वितिसम्बन्धः, अध्ययनं पाठः अपिशब्दात् व्याख्यानं वापि यः करोति आज्ञाद्युल्लङ्घने ज्ञानादिसाररहितस्य तस्य-छलना तु संसार इति ज्ञानादेर्वैफल्यादेव । महिकेति धूमिका भिन्नवर्षमिति बुद्बुदादौ सति सचित्तं रज इति अरण्ये वातोद्धूतं पृथ्वीरज इति भणितं भवति, संयमघातकमेवं त्रिविधं भवति, इदं च द्रव्य इति तदेव द्रव्यं महिकादि क्षेत्रे काले यत्रैवेति-यत्र क्षेत्रे महिकादि पतति

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

जच्चिरं कालं 'सव्वं'ति भावओ ठाणभासादि परिहरिज्जइ इति गाथासमुदायार्थः ॥ १३२७ ॥ अवयवार्थं तु भाष्यकारः स्वयमेव व्याचष्टे, इह पञ्चविधासज्झाइयस्स, तं कहं परिहरियव्वमिति ?, तप्पसाहगो इमो दिट्ठंतो–

दुग्गाइतोसियनिवो पंचण्हं देइ इच्छियपयारं। गहिए य देइ मुल्लं जणस्स आहारवत्थाई ॥ १३२८ ॥

व्याख्या—एगस्स रण्णो पंच पुरिसा, ते बहुसमरलद्धविजया, अण्णया तेहिं अच्चंतविसमं दुग्गं गहियं, तेसिं तुट्ठो राया इच्छियं नगरे पयारं देइ, जं ते किंचि असणाइ वा वत्थाइगं च जणस्स गिण्हंति तस्स वेयणयं सव्वं राया पयच्छइ इति गाथार्थः ॥ १३२८ ॥

इक्केण तोसियतरो गिहमगिहे तस्स सव्वहिं वियरे। रत्थाईसु चउण्हं एवं पढमं तु सव्वत्थ ॥ १३२९ ॥

व्याख्या—तेसिं पंचण्हं पुरिसाणं एगेण तोसिययरो तस्स गिहावणट्ठाणेसु सवत्थ इच्छियपयारं पयच्छइ, जो एते दिण्णपयारे आसाएज्जा तस्स राया दंडं करेइ, एस दिट्ठंतो, इमो उवसंहारो–जहा पंच पुरिसा तहा पंचविहासज्झाइयं, जहा सो एगो अब्भहियतरो पुरिसो एवं पढमं संजमोवघाइयं सवं तत्थ ठाणासणादि, तंमि वट्टमाणे ण सज्झाओ नेव

---

१ यावन्तं कालं (वा पतति) सर्वमिति भावतः स्थानभाषादि परिह्रियते। इह पञ्चविधास्वाध्यायिकस्य, तत् कथं परिहर्त्तव्यमिति ?, तत्प्रसाधकोऽयं दृष्टान्तः–एकस्य राज्ञः पञ्च पुरुषाः, ते बहुसमरलब्धविजयाः, अन्यदा तैरत्यन्तविषमो दुर्गो गृहीतः, तेभ्यस्तुष्टो राजा ईप्सितं नगरे प्रचारं ददाति, यत्ते किञ्चिदशनादि वा वस्त्रादिकं वा जनस्य गृह्णन्ति तस्य वेतनं सर्वं राजा प्रयच्छति। तेषां पञ्चानां पुरुषाणामेकेन तोषिततरः, तस्मै गृहापणस्थानेषु सर्वत्रेप्सितं प्रचारं प्रयच्छति, य एतान् दत्तप्रचारान् आशातयेत् तस्य राजा दण्डं करोति, एष दृष्टान्तोऽयमुपसंहारः–यथा पञ्च पुरुषास्तथा पञ्चविधास्वाध्यायिकं, यथा स एकोऽभ्यधिकतरः पुरुष एवं प्रथमं संयमोपघातिकं सर्वं तत्र स्थानासनादि, तस्मिन् वर्त्तमाने न स्वाध्यायो नैव

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२९]

पॅडिलेहणादिकावि चेट्ठा कीरइ, इयरेसु चउसु असज्झाइएसु जहा ते चउरो पुरिसा रत्थाइसु चेव अणासाइणिज्जा तहा तेसु सज्झाओ चेव न कीरइ, सेसा सव्वा चेट्ठा कीरइ आवस्सगादि उक्कालियं च पढिज्जइ । महियाइतिविहस्स संजमोवघाइस्स इमं वक्खाणं—

महिया उ गब्भमासे सच्चित्तरओ अ ईसिआयंबो । वासे तिन्नि पयारा बुब्बुअ तव्वज्ज फुसिए य ॥२१६॥(भा०)

व्याख्या—'महिय'त्ति धूमिया, सा य कत्तियमग्गसिराइसु गब्भमासेसु हवइ, सा य पडणसमकालं चेव सुहुमत्तणओ सवं आउकायभावियं करेति, तत्थ तक्कालसमयं चेव सव्वचेट्ठा निरुंभंति, ववहारसच्चित्तो पुढविक्काओ अरण्णो वाउब्भूओ आगओ रओ भन्नइ, तस्स सचित्तलक्खणं वण्णओ ईसिं आयंबो दिसंतरे दीसइ, सोवि निरंतरपाएण तिण्हं-तिदिणाणं परओ सवं पुढवीकायभावियं करेति, तत्रोत्पातशङ्कासंभवश्च । भिन्नवासं तिविहं–बुब्बुदादि, जत्थ वासे पडमाणे उदगे बुब्बुदा भवन्ति तं बुब्बुयवरिसं, तेहिं वज्जियं तवज्जं, सुहुमफुसारेहिं पडमाणेहिं फुसियवरिसं, एतेसिं जहासंखं

१ प्रतिलेखनादिकाऽपि चेष्टा क्रियते, इतरेषु चतुर्षु अस्वाध्यायिकेषु यथा ते चत्वारः पुरुषा रथ्यादिष्वेवानाशातनीयास्तथा तेषु स्वाध्याय एव न क्रियते शेषा सर्वा चेष्टा क्रियते आवश्यकादि उत्कालिकं च पठ्यते । महिकादित्रिविधस्य संयमोपघातिकस्येदं व्याख्यानं–महिकेति धूमिका, सा च कार्त्तिकमार्गशिरआदिषु गर्भमासेषु भवति, सा च पतनसमकालमेव सूक्ष्मत्वात् सर्वमप्कायभावितं करोति, तत्र तत्कालसमयमेव सर्वां चेष्टां निरुणद्धि, व्यवहारसचित्तः पृथ्वीकाय आरण्यं वायूद्धूतं आगतं रजो भण्यते, तस्य सचित्तलक्षणं वर्णत ईषदाताम्रं दिगन्तरे दृश्यते, तदपि निरन्तरपातेन त्रिदिन्याः परतः सर्वं पृथ्वीकायभावितं करोति । भिन्नवर्षः त्रिविधः, यत्र वर्षे पतति उदके बुद्बुदा भवन्ति स बुद्बुदवर्षः, तैर्वर्जितः तद्वर्जः, सूक्ष्मैर्बिन्दुभिः पतद्भिः बिन्दुवर्षः । एतेषां यथासंख्यं

पञ्चविधः अस्वाध्यायिकम् दर्शयते

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२९]

तिंण्हपंचसत्तदिणपरओ सवं आउकायभावियं भवइ ॥ १३२९ ॥ संजमघायस्स सवभेदाणं इमो चउविहो परिहारो–'दवे खेत्ते' पच्छद्धं, अस्य व्याख्या—

दव्वे तं चिय दव्वं खिं*त्ते जहियं तु जच्चिरं कालं । ठाणाइभास भावे मु+त्तुं उस्सासउम्मेसे ॥ २१७ ॥ (भा०)

व्याख्या—दवओ तं चेव दवं महिया सच्चित्तरओ भिण्णवासं वा परिहरिज्जइ। खेत्ते जहिं पडइत्ति–जहिं खेत्ते तं महियाइ पडइ तहिं चेव परिहरिज्जइ, 'जच्चिरं काल'न्ति पडणकालाओ आरब्भ जच्चिरं कालं भवति 'ठाणाइभास भावे'त्ति भावओ 'ठाणे'त्ति काउस्सग्गं न करेति, न य भासइ, आइसद्दाओ गमणपडिलेहणसज्झायादि न करेति, 'मोत्तुं उस्सासउम्मेसे'त्ति 'मोत्तुं' ति ण पडिसिज्झंति उस्सासादिया, अशक्यत्वात् जीवितव्याघातकत्वाच्च, शेषाः क्रियाः सर्वा निषिध्यन्ते, एस उस्सग्गपरिहारो, आइण्णं पुण सच्चित्तरए तिण्णि भिण्णवासे तिण्णि पंच सत्त दिणा, अओ परं सज्झायादि

---

१ त्रिपञ्चसप्तदिनेभ्यः परतः सर्वं अप्कायभावितं भवति, संयमघातकानां सर्वभेदानामयं चतुर्विधः परिहारः–द्रव्यतस्तदेव द्रव्यं महिका सचित्तरजो भिन्नवर्षो वा परिह्रियते, क्षेत्रे यत्र पतति–यत्र क्षेत्रे तत् महिकादि पतति तत्रैव परिह्रियते, यावच्चिरं कालमिति पतनकालादारभ्य यावच्चिरं कालं भवति, स्थानादिभाषा भाव इति भावतः स्थानमिति कायोत्सर्गं न करोति, न च भाषते, आदिशब्दात् गमनप्रतिलेखनास्वाध्यायादि न करोति, मुक्त्वोच्छ्वासोन्मेषानिति मुक्त्वेति न प्रतिषिध्यन्ते उच्छ्वासादयः। एष उत्सर्गपरिहारः, आचरणा पुनः सचित्तरजसि त्रीणि भिन्नवर्षे त्रीणि पञ्च सप्त दिनानि, अतः परं स्वाध्यायादि

* "खेत्ते जहिं पडइ जच्चिरं कालं" इत्यपि पुस्तकान्तरे। + "मोत्तुं उस्सासउम्मेसं" इति पाठान्तरं।

प्रत
सूत्रांक
[सू.]
दीप
अनुक्रम
[२९]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ||७३४||

सव्वं न करेति, अण्णे भणंति--बुब्बुयवरिसे बुब्बुयवज्जिए य अहोरत्ता पंच, फुसियवरिसे सत्त, अओ परं आउकाय-भाविए सव्वा चेट्ठा निरुंभंतित्ति गाथार्थः ॥ २१७ ॥ कहं ?—

४ प्रतिक्र-मणाध्य० पञ्चविधा-स्वाध्यायिकं

वासत्ताणावरिया निक्कारण ठंति कज्जि जयणाए। हत्थत्थंगुलिसन्ना पुत्तावरिया व भासंति ॥ १३३० ॥

व्याख्या—निक्कारणे वासाकप्पं--कंबली(ता)ए पाउया निहुया सव्वब्भंतरे चिट्ठंति, अवस्सकायव्वे वत्तव्वे वा कज्जे इमा जयणा-हत्थेण भमुहादिअच्छिवियारेण अंगुलीए वा सन्नत्ति-इमं करेहित्ति, अह एवं णावगच्छइ, मुहपोत्तीयअंतरियाए जयणाए भासंति, गिलाणादिकज्जे वासाकप्पपाउया गच्छंति त्ति ॥ १३३० ॥ संजमघाएत्ति दारं गयं। इयाणिं उप्पाएत्ति, तत्थ—

पंसू अ मंसरुहिरे केससिलावुट्ठि तह रउग्घाए। मंसरुहिरे अहोरत्त अवसेसे जच्चिरं सुत्तं ॥ १३३१ ॥

व्याख्या—-धूलीवरिसं मंसवरिसं रुहिरवरिसं 'केस'त्ति केसवरिसं करगादि सिलावरिसं रयुग्घायपडणं च, एएसिं इमो

१ सर्वं न करोति, अन्ये भणन्ति-बुद्बुदवर्षे बुद्बुदवर्जिते च अहोरात्राणि पञ्च बिन्दुवर्षे सप्त, अतः परमप्कायभावितत्वात् सर्वाश्चेष्टा निरुणद्धि। कथं। निष्कारणे वर्षाकल्पः--कम्बलः तेन प्रावृता निभृताः सर्वाभ्यन्तरे तिष्ठन्ति, अवश्यकर्त्तव्ये अवश्यवक्तव्ये वा कार्ये इयं यतना-हस्तेन भ्रकुट्याद्यक्षिविकारेणाङ्गुल्या वा संज्ञयन्ति-इदं कुर्विति, अथैवं नावगच्छति मुखवस्त्रिकयाऽन्तरितया यतनया भाषन्ते, ग्लानादिकार्ये वर्षाकल्पप्रावृता गच्छन्तीति। संयमघातक इति द्वारं गतं। इदानीमौत्पातिकमिति, तत्र धूलिवर्षो मांसवर्षो रुधिरवर्षः केशेति केशवर्षः करकादिः शिलावर्षः रजउद्घातपतनं च, एतेषामयं

||७३४||

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२९]

परिहारो–मंसरुहिरे अहोरत्तं सज्झाओ न कीरइ, अवसेसा पंसुमाइया जच्चिरं कालं पडंति तत्तियं कालं सुत्तं नंदिमाइयं न पढंतित्ति गाथार्थः ॥ १३३१ ॥ पंसुरयुग्घायाण इमं वक्खाणं—

पंसू अचित्तरओ रयस्सिलाओ दिसा रउग्घाओ । तत्थ सवाए निव्वायए य सुत्तं परिहरंति ॥ १३३२ ॥

व्याख्या—धूमागारो आपंडुरो रओ अचित्तो य पंसू भणइ, महास्कन्धावारगमनसमुद्भूत इव विश्रसापरिणामतः समन्ताद्रेणुपतनं रजउद्घातो भण्यते, अहवा एस रओ उग्घाडउ पुण पंसुरिया भण्णइ । एएसु वायसहिएसु निवाएसु वा सुत्तपोरिसिं न करेतित्ति गाथार्थः ॥ १३३२ ॥ किं चान्यत्—

साभाविय तिन्नि दिणा सुगिम्हए निक्खिवंति जइ जोगं। तो तंमि पडंतंमी करंति संवच्छरज्झायं ॥ १३३३ ॥

व्याख्या—एए पंसुरउउग्घाया साभाविया हवेज्जा असाभाविया वा, तत्थ असब्भाविया जे णिग्घायभूमिकंपचंदोपरागादिदिव्वसहिया, एरिसेसु असाभाविएसु कएवि उस्सग्गे न करेंति सज्झायं, 'सुगिम्हए'त्ति यदि पुण चित्तसुद्धपक्खदसमीए अवरण्हे जोगं निक्खिवंति दसमीओ परेण जाव पुण्णिमा एत्थंतरे तिण्णि दिणा उवरुवरिं अचित्तरउग्घाडावणं

१ परिहारः–मांसरुधिरयोरहोरात्रं स्वाध्यायो न क्रियते, अवशेषाः पांश्वादिका यावच्चिरं कालं पतन्ति तावन्तं कालं सूत्रं–नन्द्यादिकं न पठन्तीति । पांशुरजउद्घातयोरिदं व्याख्यानं–धूमाकार आपाण्डुश्च रजः अचित्तश्च पांशुर्भण्यते अथवैष रज उद्घातस्तु पुनः पांशुरिका भण्यते, एतेषु वातसहितेषु निवातेषु वा सूत्रपौरुषीं न करोतीति । एतौ पांशुरजउद्घातौ स्वाभाविकौ भवेतामस्वाभाविकौ वा, तत्रास्वाभाविकौ यौ निर्घातभूमिकम्पचन्द्रोपरागादिदिव्यसहितौ, ईदृशयोरस्वाभाविकयोः कृतेऽपि कायोत्सर्गे न कुर्वन्ति स्वाध्यायं, सुग्रीष्मक इति यदि पुनश्चैत्रशुद्धपक्षदशम्या अपराह्णे योगं निक्षिपन्ति दशमीतः परतः यावत् पूर्णिमा अत्रान्तरे त्रीन् दिवसान् उपर्युपरि अचित्तरजउद्घातनार्थं

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७३५॥

४ प्रतिक्र-मणाध्य० पञ्चविधा-स्वाध्यायिकं

काउस्सग्गं करेंति तेरसिमादीसु वा तिसु दिणेसु तो साभाविगे पडंतेऽवि संवच्छरं सज्झायं करेति, अह उस्सग्गं न करेंति तो साभाविए य पडंते सज्झायं न करेतित्ति गाथार्थः ॥ १३३३ ॥ उप्पाएत्ति गयं, इदाणिं सादिव्वेत्ति दारं, तच्च—

गंधव्वदिसाविज्जुक्कगज्जिए जूअजक्खआलित्ते। इक्किक्क पोरिसी गज्जियं तु दो पोरसी हणइ ॥ १३३४ ॥

व्याख्या—गंधर्व-नगरविउव्वणं, दिसादाहकरणं विज्जुभवणं उक्कापडणं गज्जियकरणं, जूवगो वक्खमाणलक्खणो, जक्खादित्तं-जक्खुद्दित्तं आगासे भवइ। तत्थ गंधव्वनगरं जक्खुद्दित्तं च एए नियमा दिव्वकया, सेसा भयणिज्जा, जेण फुडं न नज्जंति तेण तेसिं परिहारो, एए पुण गंधव्वाइया सव्वे एक्केक्कं पोरिसिं उवहणंति, गज्जियं तु दो पोरिसी उवहणइत्ति गाथार्थः ॥ १३३४ ॥

दिसिदाह छिन्नमूलो उक्क सरेहा पगासजुत्ता वा। संझाछेयावरणो उ जूवओ सुक्कि दिण तिन्नि ॥ १३३५ ॥

व्याख्या—अन्यतमदिगन्तरविभागे महानगरप्रदीप्तमिवोद्योतः किन्तूपरि प्रकाशोऽधस्तादन्धकारः ईदृक् छिन्नमूलो दिग्दाहः, उक्कालक्खणं-सदेहवण्णं रेहं करेंती जा पडइ सा उक्का, रेहविरहिया वा उज्जोयं करेंती पडइ सावि उक्का।

॥७३५॥

१ कायोत्सर्गं कुर्वन्ति त्रयोदश्यादिषु वा त्रिषु दिवसेषु तदा स्वाभाविकयोः पततोरपि संवत्सरं स्वाध्यायं कुर्वन्ति, अथोत्सर्गं न कुर्वन्ति तदा स्वाभाविके पतति स्वाध्यायं न करोति। औत्पातिकमिति गतं, इदानीं सादिव्यमिति द्वारं, तच्च-गान्धर्वं नगरविकुर्वणं दिग्दाहकरणं विद्युद्भवनं उल्कापतनं गर्जितकरणं यूपको-वक्ष्यमाणलक्षणः यक्षादीप्तं-यक्षोद्दीप्तमाकाशे भवति, तत्र गान्धर्वनगरं यक्षोद्दीप्तं च एते नियमात् देवकृते, शेषाणि भजनीयानि, येन स्फुटं न ज्ञायन्ते तेन तेषां परिहारः। एते गान्धर्वादिकाः पुनः सर्वे एकैकां पौरुषीमुपघ्नन्ति, गर्जितं तु द्वे पौरुष्यावुपहन्ति। उल्कालक्षणं-स्वदेहवर्णां रेखां कुर्वन्ती या पतति सोल्का रेखाविरहिता वोद्योतं कुर्वन्ती पतति साप्युल्का।

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२९]

जूंवगो'त्ति संझप्पहा चंदप्पहा य जेणं जुगवं भवंति तेण जूवगो, सा य संझप्पहा चंदप्पभावरिया णिप्फिडंती न नज्जइ सुक्कपक्खपडिवगादिसु दिणेसु, संझाछेयए अणज्जमाणे कालवेलं न मुणंति तओ तिन्नि दिणे पाउसियं कालं न गेण्हंति–तिसु दिणेसु पाउसियसुत्तपोरिसिं न करेंति त्ति गाथार्थः ॥ १३३५ ॥

केसिंचि हुंतिऽमोहा उ जूवओ ता य हुंति आइन्ना । जेसिं तु अणाइन्ना तेसिं किर पोरिसी तिन्नि ॥ १३३६ ॥

व्याख्या—जगस्स सुभासुभकम्मनिमित्तुप्पाओ अमोहो–आइच्चकिरणविकारजणिओ, आइच्चमुदयत्थमआयंतो(बो) किण्हसामो वा सगडुद्धिसंठिओ दंडो अमोहत्ति स एव जुवगो, सेसं कंठं ॥ १३३६ ॥ किं चान्यत्—

चंदिमसूरुवरागे निग्घाए गुंजिए अहोरत्तं । संझा चउ पाडिएया जं जहिं सुगिम्हए नियमा ॥ १३३७ ॥

व्याख्या—चंदसूरूवरागो गहणं भन्नइ–एयं वक्खमाणं, साभ्रे निरभ्रे वा गगने व्यन्तरकृतो महागर्जितसमो ध्वनि-र्निर्घातः, तस्यैव वा विकारो गुञ्जावद्गुञ्जितो महाध्वनिर्गुञ्जितं । सामण्णओ एएसु चउसुवि अहोरत्तं सज्झाओ न कीरइ, निग्घायगुंजिएसु विसेसो–बितियदिणे जाव सा वेला णो अहोरत्तछेएण छिज्जइ जहा अन्नेसु असज्झाएसु, 'संझा चउ'त्ति

---

१ यूपक इति सन्ध्याप्रभा चन्द्रप्रभा च येन युगपद् भवतस्तेन यूपकः, सा च सन्ध्याप्रभा चन्द्रप्रभावृता गच्छन्ती न ज्ञायते शुक्लपक्षप्रतिपदादिषु, दिनेषु, सन्ध्याच्छेदेऽज्ञायमाने कालवेलां न जानन्ति ततस्त्रीन् दिवसान् प्रादोषिकं कालं न गृह्णन्ति त्रिषु दिवसेषु प्रादोषिकसूत्रपौरुषीं न कुर्वन्तीति । जगतः शुभाशुभकर्मनिमित्त उत्पातोऽमोघः–आदित्यकिरणविकारजनितः आदित्योद्गमनास्तमयने आताम्रः कृष्णश्यामो वा शकटोर्द्धिसंस्थितो दण्डोऽमोघ इति स एव यूपक इति, शेषं कण्ठ्यं । चन्द्रसूर्योपरागो ग्रहणं भण्यते, एतत् वक्ष्यमाणं, सामान्यत एतेषु चतुर्ष्वपि अहोरात्रं स्वाध्यायो न क्रियते, निर्घातगुञ्जितयोर्वि-शेषः–द्वितीयदिने यावत् सा वेला नाहोरात्रच्छेदेन छिद्यते यथाऽन्येष्वस्वाध्यायिकेषु, 'सन्ध्याचतुष्क'मिति

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७२६॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० पञ्चविधास्वाध्यायिकं

अणुदिए सूरिए मज्झण्हे अत्थमणे अड्ढरत्ते य, एयासु चउसु सज्झायं न करेंति पुव्वुत्तं, 'पाडिवए'त्ति चउण्हं महामहाणं चउसु पाडिवएसु सज्झायं न करेंतित्ति, एवं अन्नंपि जंति–महं जाणेज्जा जहिंति–गामनगरादिसु तंपि तत्थ वज्जेज्जा, सुगिम्हए पुण सव्वत्थ नियमा असज्झाओ भवति, एत्थ अणागाढजोगा निक्खिवंति नियमा आगाढा न निक्खिवंति, न पढंतित्ति गाथार्थः ॥ १३३७ ॥ के य ते पुण महामहाः ?, उच्यन्ते—

आसाढी इंदमहो कत्तिय सुगिम्हए य बोद्धव्वे । एए महामहा खलु एएसिं चेव पाडिवया ॥ १३३८ ॥

व्याख्या—आसाढी–आसाढपुन्निमा, इह लाडाण सावणपुन्निमाए भवति, इंदमहो आसोयपुन्निमाए भवति, 'कत्तिय'त्ति कत्तियपुन्निमाए चेव सुगिम्हओ–चेत्तपुण्णिमा, एए अंतिमदिवसा गहिया, आई उ पुण जत्थ जत्थ विसए जओ दिवसाओ महमहा पवत्तंति तओ दिवसाओ आरब्भ जाव अंतदिवसो ताव सज्झाओ न कायव्वो, एएसिं चेव पुण्णिमाणंतरं जे बहुलपडिवया चउरो तेवि वज्जियत्ति गाथार्थः ॥ १३३८ ॥ पडिसिद्धकाले करेंतस्स इमे दोसा—

---

१ अनुदिते सूर्ये मध्याह्ने अस्तमयने अर्धरात्रे च, एतासु चतसृषु स्वाध्यायं न कुर्वन्ति पूर्वोक्तं, 'प्रतिपद' इति चतुर्णां महामहानां चतसृषु प्रतिपत्सु स्वाध्यायं न कुर्वन्तीति, एवमन्यमपि यमिति महं जानीयात् यत्रेति ग्रामनगरादिषु तमपि तत्र वर्जयेत्, सुग्रीष्मके पुनः सर्वत्र नियमादस्वाध्यायो भवति, अत्रानागाढयोगा निक्षिप्यन्ते नियमात् आगाढान् न निक्षिपन्ति, न पठन्तीति । के च पुनस्ते महामहाः ?, उच्यन्ते–आषाढी आषाढपूर्णिमा इह लाटान श्रावणपूर्णिमायां भवति, इन्द्रमह अश्वयुक्पूर्णिमायां भवति, कार्त्तिक इति कार्त्तिकपूर्णिमायामेव सुग्रीष्मकः–चैत्रपूर्णिमा, एतेऽन्त्यदिवसा गृहीताः आदिस्तु पुनर्यत्र यत्र देशे यतो दिवसात् महामहाः प्रवर्त्तन्ते ततो दिवसादारभ्य यावदन्त्यो दिवसस्तावत् स्वाध्यायो न कर्त्तव्यः, एतासामेव पूर्णिमानामनन्तरा याः कृष्णप्रतिपदश्चतस्रस्ता अपि वर्जिता इति । प्रतिषिद्धकाले कुर्वत इमे दोषाः—

॥७२६॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

कामं सुओवओगो तवोवहाणं अणुत्तरं भणियं । पडिसेहियंमि काले तहावि खलु कम्मबंधाय ॥ १३३९ ॥
छलया व सेसएणं पाडिवएसुं छणाणुसज्जंति । महवाउलत्तणेणं असारिआणं च संमाणो ॥ १३४० ॥
अन्नयरपमायजुयं छलिज्ज अप्पिड्ढिओ न उण जुत्तं । अद्धोदहिट्ठिइ पुण छलिज्ज जयणोवउत्तंपि ॥ १३४१ ॥

व्याख्या—[1]सरागसंजओ सरागसंजयत्तणओ इंदियविसयाअन्नयरपमायजुत्तो हविज्ज स विसेसओ महामहेसु तं पमायजुत्तं पडणीया देवया छलेज्ज । अप्पिड्ढिया खेत्तादि छलणं करेज्ज, जयणाजुत्तं पुण साहुं जो अप्पिड्ढिओ देवो अद्धोदहीओ ऊणठिईओ न चए छलेउं, अद्धसागरोवमठितीओ पुण जयणाजुत्तंपि छलेज्जा । अत्थि से सामत्थं जं तंपि पुव्वावरसंबंधसरणओ कोइ छलेज्जत्ति गाथार्थः ॥ १३३९-१३४०-१३४१ ॥ 'चंदिमसूरुवरागत्ति' अस्या व्याख्या—

उक्कोसेण दुवालस चंदु जहन्नेण पोरिसी अट्ठ । सूरो जहन्न बारस पोरिसि उक्कोस दो अट्ठ ॥ १३४२ ॥

व्याख्या—चंदो उदयकाले गहिओ संदूसियराईए चउरो अण्णं च अहोरत्तं एवं दुवालस, अहवा उप्पायगहणे सव्वराइयं गहणं सग्गहो चेव निबुड्डो संदूसियराईए चउरो अण्णं च अहोरत्तं एवं बारस । अहवा अजाणओ,

१ सरागसंयतः सरागसंयतत्वादिन्द्रियविषयाद्यन्यतरप्रमादयुक्तो भवेत् स विशेषतो महामहेषु तं प्रमादयुक्तं प्रत्यनीका देवता छलेत्-अल्पर्द्धिका क्षिप्तादिच्छलनां कुर्यात्, यतनायुक्तं पुनः साधुं योऽल्पर्द्धिको देवोऽर्धोदधित ऊनस्थितिको न शक्नोति छलयितुं, अर्धसागरोपमस्थितिकः पुनर्यतनायुक्तमपि छलेत्, अस्ति तस्य सामर्थ्यं यत्तमपि पूर्वापरसम्बन्धस्मरणतः कश्चित् छलेदिति। चन्द्र उदयकाले गृहीतः संदूषितरात्रेश्चत्वारः अन्यच्चाहोरात्रमेवं द्वादश, अथवा उत्पातग्रहणे सर्वरात्रिकं ग्रहणं, सग्रह एव ब्रूडितः संदूषितरात्रेश्चत्वारः अन्यच्चाहोरात्रमेवं द्वादश, अथवा अजानतः–

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७३७॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० पञ्चविधास्वाध्यायिकं

अब्भछण्णे संकाए न नज्जइ, केवलं ग्रहणं, परिहरिया राई पहाए दिट्ठं सग्गहो निबुडो अण्णं च अहोरत्तं एवं दुवालस। एवं चंदस्स, सूरस्स अत्थमणगहणे सग्गहनिब्बुडो, उवहयरादीए चउरो अण्णं च अहोरत्तं एवं बारस। अह उदयंतो गहिओ तो संदूसिए अहोरत्ते अट्ठ अण्णं च अहोरत्तं परिहरइ एवं सोलस, अहवा उदयवेलाए गहिओ उप्पाइयगहणेण सबं दिणं गहणं होउं सग्गहो चेव निब्बुडो, संदूसियस्स अहोरत्तस्स अट्ठ अण्णं च अहोरत्तं एवं सोलस। अहवा अब्भच्छन्ने न नज्जइ, केवलं होहिति गहणं, दिवसओ संकाए न पढियं, अत्थमणवेलाए दिट्ठं गहणं सग्गहो निब्बुडो, संदूसियस्स अट्ठ अण्णं च अहोरत्तं एवं सोलसत्ति गाथार्थः ॥ १३४२ ॥

सग्गहनिब्बुड एवं सूराई जेण हुंतिऽहोरत्ता। आइन्नं दिणमुक्के सुच्चिय दिवसो अ राई य ॥ १३४३ ॥

व्याख्या—सग्गहनिबुडे एगं अहोरत्तं उवहयं, कहं ?, उच्यते, सूरादी जेण होंतिऽहोरत्तं, सूरउदयकालाओ जेण अहोरत्तस्स आदी भवति तं परिहरितुं संदूसिअं अण्णंपि अहोरत्तं परिहरियबं। इमं पुण आइन्नं—चंदो रातीए गहिओ राई

१ अभ्रच्छन्ने शङ्कायां न ज्ञायते, केवलं ग्रहणं, परिहृता रात्रिः, प्रभाते दृष्टं, सग्रहो ब्रूडितः, अन्यच्चाहोरात्रमेवं द्वादश, एवं चन्द्रस्य, सूर्यस्य तु अस्तमयनग्रहणे सग्रहो ब्रूडितः, उपहतराज्याश्चत्वारोऽन्यच्चाहोरात्रमेवं द्वादश, अथोद्गच्छन् गृहीतः ततः संदूषिताहोरात्रस्याष्टौ अन्यच्चाहोरात्रं परिह्रियते एवं षोडश, अथवोदयवेलायां गृहीतः औत्पातिकग्रहणेन, सर्वं दिनं ग्रहणं भूत्वा सग्रह एव ब्रूडितः, संदूषितस्याहोरात्रस्याष्टौ अन्यच्चाहोरात्रमेवं षोडश, अथवाऽभ्रच्छन्ने न ज्ञायते केवलं भविष्यति ग्रहणं, दिवसे शङ्कया न पठितं, अस्तमयनवेलायां दृष्टं ग्रहणं सग्रहो ब्रूडितः, संदूषितस्याष्ट अन्यच्चाहोरात्रमेवं षोडशेति। सग्रहे ब्रूडिते एकमहोरात्रमुपहतं, कथं ? उच्यते, सूर्यादीनि येन भवन्त्यहोरात्राणि—सूर्योदयकालात् येनाहोरात्रस्यादिर्भवति, तत् परिहृत्य संदूषितमन्यदप्यहोरात्रं परिहर्त्तव्यं, इदं पुनराचीर्णं—चन्द्रो रात्रौ गृहीतो रात्रा—

॥७३७॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

चेवं मुक्को तीसे राईइ सेसं वज्जणीयं, जम्हा आगामिसूरुदए अहोरत्तसमत्ती, सूरस्सवि दियागहिओ दिया चेव मुक्को तस्सेव दिवसस्स मुक्कसेसं राई य वज्जणिज्जा। अहवा सग्गहनिब्बुडे एवं विही भणिओ, तओ सीसो पुच्छइ–कहं चंदे दुवालस सूरे सोलस जामा ?, आचार्य आह–सूरादी जेण होंतिऽहोरत्ता, चंदस्स नियमा अहोरत्तद्धे गए गहणसंभवो, अण्णं च अहोरत्तं, एवं दुवालस, सूरस्स पुण अहोरत्तादीए संदूसिएयरं अहोरत्तं परिहरिज्जइ एए सोलसत्ति गाथार्थः ॥१३४३॥ सादेवत्ति गयं, इयाणिं वुग्गहेत्ति दारं, तत्थ—

वोग्गह दंडियमादी संखोभे दंडिए य कालगए। अणरायए य सभए जच्चिर निद्दोचऽहोरत्तं ॥ १३४४ ॥

अस्या एव व्याख्यानान्तरगाथा—

सेणाहिवई भोइय मयहरपुंसित्थिमल्लजुद्धे य। लोट्टाइभंडणे वा गुज्झग उड्डाहमचियत्तं ॥ १३४५ ॥

इमाण दोण्हवि वक्खाणं—दंडियस्स वुग्गहो, आदिसद्दाओ सेणाहिवस्स, दोण्हं भोइयाणं दोण्हं मयहराणं दोण्हं

---

१ चेव मुक्तस्तस्या रात्रेः शेषं वर्जनीयं, यस्मादागामिनि सूर्योदयेऽहोरात्रसमाप्तिः, सूर्यस्यापि दिवा गृहीतो दिवैव मुक्तस्तस्यैव दिवसस्य मुक्तशेषं रात्रिश्च वर्जनीया। अथवा सग्रहे ब्रूडिते एवं विधिर्भणितः, ततः शिष्यः पृच्छति–कथं चन्द्रे द्वादश सूर्ये षोडश यामाः ?, सूर्यादीनि येनाहोरात्राणि भवन्ति, चन्द्रस्य नियमादहोरात्रेऽर्धे गते ग्रहणसंभवः अन्यच्चाहोरात्रमेवं द्वादश, सूर्यस्य पुनरहोरात्रादित्वात् संदूषितेतरे अहोरात्रे परिह्रियेते, एते षोडश। सादिव्यमिति गतं, इदानीं व्युद्ग्रह इति द्वारं, तत्र-अनयोर्द्वयोरपि व्याख्यानं–दण्डिकस्य व्युद्ग्रहः, आदिशब्दात् सेनाधिपतेः, द्वयोर्भौजिकयोर्द्वयोर्महत्तरयोर्द्वयोः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ||७३८||

४ प्रतिक्र-मणाध्य० पञ्चविधा-स्वाध्यायिकं ||७३८||

पुरिसाणं दोण्हं इत्थियाणं दोण्हं मल्लाणं वा जुद्धं, पिट्ठायगलोट्टभंडणे वा, आदिसद्दाओ विसयप्पसिद्धासु भंसलासु। विग्रहाः प्रायो व्यन्तरबहुलाः। तत्थ पमत्तं देवया छलेज्जा, उड्डाहो निद्दुक्खत्ति, जणो भणेज्जा–अम्हं आवइपत्ताणं इमे सज्झायं करेंति, अचियत्तं हवेज्जा, विसहसंखोहो परचक्कागमे, दंडिओ कालगओ भवति, 'अणरायए'त्ति रण्णा कालगए निब्भएवि जाव अन्नो राया न ठविज्जइ, 'सभए'त्ति जीवंतस्सवि रण्णो वोहिगेहिं समंतओ अभिदुयं, जच्चिरं भयं तत्तियं कालं सज्झायं न करेंति, जद्दिवसं सुयं निद्दोच्चं तस्स परओ अहोरत्तं परिहरइ। एस दंडिए कालगए विहित्ति गाथार्थः ॥१३४५॥ सेसेसु इमो विही—

तद्दिवसभोइआई अंतो सत्तण्ह जाव सज्झाओ। अणहस्स य हत्थसयं दिट्ठि विवित्तंमि सुद्धं तु ॥ १३४६ ॥

अस्या एव व्याख्यानगाथा—

मयहरपगए बहुपक्खिए य सत्तघर अंतरमए वा। निद्दुक्खत्ति य गरिहा न पढंति सणीयगं वावि ॥ १३४७॥

इमीण दोण्हवि वक्खाणं–गामभोइए कालगए तद्दिवसंति–अहोरत्तं परिहरंति, आदिसद्दाओ गामरट्ठमयहरो अहिगार-

---

१ पुरुषयोर्द्वयोः स्त्रियोर्द्वयोर्मल्लयोर्वा युद्धं, पृष्ठायतलोष्टभण्डने वा, आदिशब्दाद्विषयप्रसिद्धासु भंसलासु (कलहविशेषेषु)। तत्र प्रमत्तं देवता छलयेत्। उड्डाहो निर्दुःखा इति, जनो भणेत्–अस्मासु आपत्प्राप्तेषु इमे स्वाध्यायं कुर्वन्ति, अप्रीतिकं भवेत्, वृषभसंक्षोभः परचक्रागमे, दण्डिकः कालगतो भवति, राज्ञि कालगते निर्भयेऽपि यावत् अन्यो राजा न स्थाप्यते, सभय इति जीवतोऽपि राज्ञो बोधिकैः समन्ततोऽभिद्रुतं, यावच्चिरं भयं तावन्तं कालं स्वाध्यायं न कुर्वन्ति, यद्दिवसे श्रुतं निर्दौत्यं तस्मात्परतोऽहोरात्रं परिह्रियते। एष दण्डिके कालगते विधिः। शेषेष्वयं विधिः। अनयोर्द्वयोर्व्याख्यानं–ग्रामभोजिके कालगते तद्दिवसमिति अहोरात्रं परिहरन्ति, आदिशब्दात् ग्रामराष्ट्रमहत्तरोऽधिकार–

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२९]

निंउत्तो बहुसम्मओ य पगओ वहुपक्खिउत्ति–वहुसयणो, बाडगरहिए अहिवे सेज्जायरे अण्णंमि वा अण्णयरघराओ आरब्भ जाव सत्तघरंतरं एएसु मएसु अहोरत्तं सज्झाओ न कीरइ, अह करेंति निद्दुक्खत्तिकाउं जणो गरहति अक्को-सेज्ज वा निच्छुब्भेज्ज वा, अप्पसद्देण वा सणियं करेंति अणुपेहंति वा, जो पुण अणाहो मरति तं जइ उब्भिण्णं हत्थ-सयं वज्जेयव्वं, अणुब्भिन्नं असज्झायं न हवइ तहवि कुच्छियंतिकाउं आयरणाओऽवट्ठियं हत्थसयं वज्जिज्जइ। विवित्तंमि–परिट्ठवियंमि 'सुद्धं तु' तं ठाणं सुद्धं भवइ, तत्थ सज्झाओ कीरइ, जइ य तस्स न कोइ परिठवेंतओ ताहे ॥ १३४७ ॥

सागारियाइ कहणं अणिच्छ रत्तिं वसहा विगिंचंति ।
विक्किन्ने व समंता जं दिट्ठ सढेयरे सुद्धा ॥ १३४८ ॥

व्याख्या—जदि नत्थि परिट्ठवेंतओ ताहे सागारियस्स आइसद्दाओ पुराणसड्ढस्स अहाभद्दगस्स इमं छड्डेह अम्ह

---

१ नियुक्तो बहुसंमतश्च प्रकृतः, बहुपाक्षिक इति बहुस्वजनो, वाटकरहितेऽधिपे वा शय्यातरे अन्यस्मिन् वा अन्यतरगृहादारभ्य यावत् सप्तगृहान्तरं एतेषु मृतेषु अहोरात्रं स्वाध्यायो न क्रियते, अथ कुर्वन्ति निर्दुःखा इतिकृत्वा जनो गर्हते आक्रोशेद्वा निष्काशेद्वा, अल्पशब्देन वा शनैः कुर्वन्ति अनुप्रेक्षन्ते वा, यः पुनरनाथो म्रियते तस्य यदि पुनरुद्भिन्नं हस्तशतं वर्जयितव्यं, अनुद्भिन्नं अस्वाध्यायिकं न भवति तथापि कुत्सितमितिकृत्वा आचरणातोऽवस्थितं हस्त-शताद् वर्जयितव्यं, विविक्ते–परिष्ठापिते शुद्धमिति तत् स्थानं शुद्धं भवति–तत्र स्वाध्यायः क्रियते, यदि च तस्य न कोऽपि परिष्ठापकस्तदा–यदि नास्ति परिष्ठापकस्तदा सागारिकस्य आदिशब्दात् पुराणश्राद्धस्य यथाभद्रकस्येमं त्यज अस्माकं

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७३९॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० अस्वाध्यायिकनि.शारीरास्वा०

संज्झाओ न सुज्झइ, जदि तेहिं छड्डिओ सुद्धो, अह न छड्डेंति ताहे अण्णं वसहिं मग्गंति, अह अण्णा वसही न लब्भइ ताहे वसहा अप्पसागारिए विगिंचंति। एस अभिण्णे विही, अह भिन्नं ढंकमादिएहिं समंता विक्किण्णं दिट्ठंमि विवित्तंमि सुद्धा, अदिट्ठे ताव गवेसंतेहिं जं दिट्ठं तं सव्वं विवित्तंति छड्डियं, इयरंमि अदिट्ठंमि तत्थत्थेवि सुद्धा–सज्झायं करेंताणवि न पच्छित्तं, एत्थ एयं पसंगओ भणियंति गाथार्थः ॥ १३४८ ॥ वुग्गहेत्ति गयं, इयाणिं सारीरेत्ति दारं, तत्थ—

सारीरंपिय दुविहं माणुस तेरिच्छियं समासेणं। तेरिच्छं तत्थ तिहा जलथलखहजं चउद्धा उ ॥ १३४९ ॥

व्याख्या—सारीरमवि असज्झाइयं दुविहं–माणुससरीररुहिरादि तेरिच्छं असज्झाइयं च। एत्थ माणुसं ताव चिट्ठउ, तेरिच्छं ताव भणामि, तं तिविहं–मच्छादियाण जलजं गवाइयाण थलजं मयूराइयाण खहयरं। एएसिं एक्केक्कं दव्वाइयं चउव्विहं, एक्केक्कस्स वा दव्वादिओ इमो चउद्धा परिहारोत्ति गाथार्थः ॥ १३४९ ॥

पंचिंदियाण दव्वे खेत्ते सट्ठिहत्थ पुग्गलाइन्नं। तिकुरत्थ महंतेगा नगरे बाहिं तु गामस्स ॥ १३५० ॥

---

१ स्वाध्यायो न शुध्यति, यदि तैस्त्यक्तः शुद्धः, अथ न त्यजन्ति तदाऽन्यां वसतिं मार्गयन्ति, अथान्या वसतिर्न लभ्यते तदा वृषभा अल्पसागारिके त्यजन्ति, एषोऽभिन्ने विधिः, अथ भिन्नं ढङ्कादिभिः समन्तात् विकीर्णं दृष्टे विविक्ते शुद्धाः अदृष्टे तावत् गवेषयद्भिर्यद्दृष्टं तत् सर्वं परिष्ठापितं, इतरस्मिन्–अदृष्टे तत्रस्थेऽपि शुद्धाः–स्वाध्यायं कुर्वतामपि न प्रायश्चित्तं, अत्रैतत् प्रसङ्गतो भणितं। व्युद्ग्रह इति गतं, इदानीं शारीरमिति द्वारं तत्र–शारीरमपि अस्वाध्यायिकं द्विविधं–मानुष्यशरीररुधिरादि तैरश्चमस्वाध्यायं च, अत्र मानुष्यं तावत्तिष्ठतु तैरश्चं तावद्भणामि–तत्त्रिविधं–मत्स्यादीनां जलजं गवादीनां स्थलजं मयूरादीनां खचरजं, एतेषामेकैकं द्रव्यादिकं चतुर्विधं, एकैकस्य वा द्रव्यादिकोऽयं चतुर्धा परिहार इति।

॥७३९॥

व्याख्या—'पंचिंदियाण रुहिराइदव्वं असज्झाइयं, खेत्तओ सट्ठिहत्थब्भंतरे असज्झाइयं, परओ न भवइ, अहवा खेत्तओ पोग्गलादिण्णं–पोग्गलं मंसं तेण सव्वं आकिण्णं–व्याप्तं, तस्सिमो परिहारो–तिहिं कुरत्थाहिं अंतरियं सुज्झइ, आरओ न सुज्झइ, अणंतरं दूरट्ठियं न सुज्झइ। महंतरत्था–रायमग्गो जेण राया बलसमग्गो गच्छइ देवजाणरहो वा विविहा य आसवाहणा गच्छंति, सेसा कुरत्था, एसा नगरे विही, गामस्स नियमा बाहिं, एत्थ गामो अविसुद्धणेगमनयदरिसणेण सीमापज्जंतो, परगामे सीमाए सुज्झइत्ति गाथार्थः ॥ १३५० ॥

काले तिपोरसिऽट्ठ व भावे सुत्तं तु नंदिमाईयं। सोणिय मंसं चम्मं अट्ठी विय हुंति चत्तारि ॥ १३५१ ॥

व्याख्या—तिरियमसज्झायं संभवकालाओ जाव तइया पोरुसी ताव असज्झाइयं परओ सुज्झइ, अहवा अट्ठ जामा असज्झाइयंति–ते जत्थाघायणट्ठाणं तत्थ भवंति। भावओ पुण परिहरंति सुत्तं, तं च नंदिमणुओगदारं तंदुल-

---

१ पञ्चेन्द्रियाणां रुधिरादिद्रव्यं अस्वाध्यायिकं, क्षेत्रतः षष्टिहस्ताभ्यन्तरेऽस्वाध्यायिकं, परतो न भवति, अथवा क्षेत्रतः पुद्गलाकीर्णं–पुद्गलं–मांसं तेन सर्वमाकीर्णं, तस्यायं परिहारः–तिसृभिः कुरथ्याभिरन्तरितं शुध्यति, आरात् न शुध्यति, अनन्तरं दूरस्थितेऽपि न शुध्यति, महद्रथ्या–राजमार्गः येन राजा बलसमग्रो गच्छति देवयानरथो वा विविधान्यश्ववाहनानि गच्छन्ति, शेषाः कुरथ्याः, एष नगरे विधिः, ग्रामात् नियमतो बहिः, अत्र ग्रामोऽविशुद्धनैगमनयदर्शनेन सीमापर्यन्तः, परग्रामे सीमनि शुध्यति। तैरश्चमस्वाध्यायिकं संभवकालात् यावत्तृतीया पौरुषी तावदस्वाध्यायिकं परतः शुध्यति, अथवा अष्ट यामान् अस्वाध्यायिकमिति–ते यत्राघातस्थानं तत्र भवन्ति, भावतः पुनः परिहरन्ति सूत्रं, तच्च नन्दी अनुयोगद्वाराणि तन्दुल-

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभद्रीया

॥७४०॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० अस्वाध्यायिकनि.शारीरास्वा०

वेयालियं चंदगविज्झयं पोरुसिमंडलमादी, अहवा असज्झायं चउव्विहं इमं–मंसं सोणियं चम्मं अट्ठि यत्ति गाथार्थः ॥ १३५१ ॥ मंसासिणा उक्खित्ते मंसे इमा विही—

अंतो बहिं च धोअं सट्ठीहत्थाउ पोरिसी तिन्नि । महकाएँ अहोरत्तं रद्धे वुड्ढे अ सुद्धं तु ॥ १३५२ ॥

व्याख्यानगाथा—

बहिधोयरद्धपक्के अंतो धोए उ अवयवा हुंति । महकाय विरालाई अविभिन्ने केइ इच्छंति ॥ १३५३ ॥

इमीणं वक्खाणं–साहु वसहीओ सट्ठीहत्थाणं अंतो बहिं च धोअन्ति भंगदर्शनमेतत्, अंतोधोयं अंतो पक्कं, अंतोधोयं बहिपक्कं बाहिं धोयं अंतो पक्कं, अंतग्गहणाउ पढमबितिया भंगा बहीग्गहणाउ ततिओ भंगो, एएसु तिसुवि असज्झाइयं, जंमि पएसे धोयं आणेत्तु वा रद्धं सो पएसो सट्ठिहत्थेहिं परिहरियव्वो, कालओ तिन्नि पोरुसिओ। तथा द्वितीयगाथायां पूर्वार्द्धेन यदुक्तं 'बहिधोयरद्धपक्के' एस चउत्थभंगो, एरिसं जइ सट्ठीए हत्थाणं अब्भंतरे आणीयं तहावि तं असज्झाइयं न भवइ, पढमबितियभंगेसु

---

१ वैचारिकं चन्द्रावेध्यकं पौरुषीमण्डलादि, अथवा अस्वाध्यायिकं चतुर्विधमिदं–मांसं शोणितं चर्म अस्थि चेति । मांसाशिनोत्क्षिप्ते मांसेऽयं विधिः, अनयोर्व्याख्यानं–साधु वसतेः षष्टिहस्तानामन्तर्बहिश्च धौतमिति, अन्तर्धौतं अन्तःपक्वं अन्तर्धौतं बहिः पक्वं बहिर्धौतमन्तः पक्वं, अन्तर्ग्रहणात् प्रथमद्वितीयौ भङ्गौ गृहीतौ बहिर्ग्रहणात्तु तृतीयो भङ्गः । एतेषु त्रिष्वप्यस्वाध्यायिकं, यस्मिन् प्रदेशे धौतं आनीय वा राद्धं स प्रदेशः षष्टिहस्ताभ्यन्तरे परिहर्त्तव्यः, कालतस्तिस्रः पौरुषीः, बहिर्धौतपक्वं, एष चतुर्थो भङ्गः, ईदृशं यदि षष्टेर्हस्तेभ्योऽन्तरमानीतं तथाऽपि तदस्वाध्यायिकं न भवति, प्रथमद्वितीयभङ्ग-

॥७४०॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

अंतो धोवित्तु तीए रद्धे वा तंमि ठाणे अवयवा पडंति तेण असज्झाइयं, तइयभंगे बहिं धोवित्तु अंतो पणीए मंसमेव असज्झाइयंति, तं च उक्खित्तमंसं आइण्णपोग्गलं न भवइ, जं कालसाणादीहिं अणिवारियविप्पइन्नं निज्जइ तं आइन्नपोग्गलं भाणियव्वं। 'महाकाए'त्ति, अस्या व्याख्या–जो पंचिंदिओ जत्थ हओ तं आघायठाणं वज्जेयव्वं, खेत्तओ सट्ठिहत्था, कालओ अहोरत्तं, एत्थ अहोरत्तछेओ सूरुदएण, रद्धं पक्कं वा मंसं असज्झाइयं न हवइ, जत्थ य धोयं तेण पएसेण महंतो उदगवाहो वूढो तं तिपोरिसिकाले अपुन्नेवि सुद्धं, आघायणं न सुज्झइ, 'महाकाए'त्ति अस्य व्याख्या—महाकाएत्ति पच्छद्धं, मूसगादि महाकाओ सोऽवि बिरालाइणा आहओ, जदि तं अभिन्नं चेव गलिउं घेत्तुं वा सट्ठीए हत्थाणं बाहिं गच्छइ तं केइ आयरिया असज्झाइयं नेच्छंति। गाथायां तु यदुक्तं केइ इच्छंति, तत्र स्वाध्यायोऽभिसंबध्यते, थेरपक्खो पुण असज्झाइयं चेवत्ति गाथार्थः ॥ १३५३ ॥ अस्यैवार्थस्य प्रकटनार्थमाह भाष्यकारः—

---

१ योरन्तः प्रक्षाल्य तत्र राद्धे वा तस्मिन् स्थानेऽवयवाः पतन्ति तेनास्वाध्यायिकं, तृतीयभङ्गे बहिः प्रक्षाल्यान्तरानीते मांसमेवास्वाध्यायिकमिति, तच्चोत्क्षिप्तमांसं आकीर्णपुद्गलं न भवति, यत् कालश्वादिभिरनिवारितं विप्रकीर्णं नीयते तत् आकीर्णपुद्गलं भणितव्यं। महाकाय इति, यः पञ्चेन्द्रियो यत्र हतस्तत् आघातस्थानं वर्जयितव्यं, क्षेत्रतः षष्टेर्हस्तेभ्यः कालतोऽहोरात्रं, अत्राहोरात्रच्छेदः सूर्योद्गमेन, राद्धं पक्वं वा मांसं अस्वाध्यायिकं न भवति, यत्र च धौतं तेन प्रदेशेन महान् उदकप्रवाहो व्यूढस्तर्हि त्रिपौरुषीकालेऽपूर्णेऽपि शुद्धं, आघातनं न शुध्यति, महाकाय इत्यस्य व्याख्या–महाकाय इति पश्चार्धं, मूषकादिर्महाकायः सोऽपि मार्जारादिनाऽऽहतः यदि तमभिन्नमेव गृहीत्वा गिलित्वा वा षष्टेर्हस्तेभ्यो बहिर्गच्छति तत् केचिदाचार्या अस्वाध्यायिकं नेच्छन्ति। केचिदिच्छन्ति स्थविरपक्षः पुनरस्वाध्यायिकमेवेति।

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७४१॥

मूसाइ महाकायं मज्जाराईहयाघयण केई। अविभिन्ने गिण्हेउं पढंति एगे जइऽपलोओ ॥ २१८ ॥ (भा०) ॥

गतार्थैवेयं ॥ ¹तिरियमसज्झाइयाहियागार एव इमं भन्नइ—

अंतो बहिं च भिन्नं अंडग बिंदू तहा विआया य। रायपह वूढ सुद्धे परवयणे साणमादीणं ॥ १३५४ ॥ दारं ॥

व्याख्या त्वस्या भाष्यकार एव प्रतिपदं करिष्यति। लाघवार्थं त्विह न व्याख्यायते 'अंतो बहिं च भिन्नं अंडग बिंदु'त्ति अस्य गाथाशकलस्य व्याख्या—

अंडगमुज्झियकप्पे न य भूमि खणंति इहरहा तिन्नि। असज्झाइयपमाणं मच्छियपाओ जहिं न बुड्डे ॥२१९॥ (भा०)

साहुवसहीए सट्ठीए हत्थाणंतो भिन्ने अंडए असज्झाइयं बहिभिन्ने न भवइ। अहवा साहुस्स वसहिए अंतो बहिं च अंडयं भिन्नंति वा उज्झियंति वा एगट्ठं, तं च कप्पे वा उज्झियं भूमीए वा, जइ कप्पे तो कप्पं सट्ठीए हत्थाणं बाहिं नीणेऊण धोवंति तओ सुद्धं, अह भूमीए भिन्नं तो भूमी खणेउं ण छड्डिज्जइ, न शुध्यतीत्यर्थः। 'इयरह'त्ति तत्थत्थे सट्ठिहत्था तिन्नि य पोरुसीओ परिहरिज्जइ, 'असज्झाइयस्स पमाणं'ति, किं बिंदुपरिमाणमेत्तेण हीणेण अहिययरेण वा असज्झाओ भवइ ?, पुच्छा, उच्यते, मच्छियाए पाओ जहिं [न] बुड्डइ तं असज्झाइयपमाणं। 'इयाणिं वियायत्ति' तत्थ—

४ प्रतिक्रमणाध्य० अस्वाध्यायिकनि.शारीरास्वा०

॥७४१॥

१ तैरश्चास्वाध्यायिकाधिकार एवेदं भण्यते। साधुवसतेः षष्टेर्हस्तेभ्योऽर्वाग् भिन्नेऽण्डेऽस्वाध्यायिकं बहिर्भिन्ने न भवति, अथवा साधोर्वसतेरन्तर्बहिर्वाऽण्डं भिन्नमिति वोज्झितं वैकार्थौ, तच्च कल्पे वोज्झितं भूमौ वा, यदि कल्पे तर्हि कल्पं षष्टेर्हस्तेभ्यो बहिः नीत्वा धोवन्ति ततः शुद्धं, अथ भूमौ भिन्नं तर्हि भूमिः खनित्वा न त्यज्यते। इतरथेति तत्रस्थे षष्टिर्हस्ताः तिस्रश्च पौरुष्यः परिह्रियन्ते, अस्वाध्यायिकस्य प्रमाणमिति–किं बिन्दुमात्रपरिमाणेन हीनेनाधिकतरेण वाऽस्वाध्यायो भवति ?, पृच्छा, उच्यते, मक्षिकायाः पादो यत्र न बूडते तदस्वाध्यायिकप्रमाणं। इदानीं प्रसूतेति, तत्र।

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

अजराउ तिन्नि पोरिसि जराउआणं जरे पडे तिन्नि। रायपह बिंदु पडिए कप्पइ वूढे पुणऽन्नत्थ॥ २२०॥ (भा०)

व्याख्या—जरुं जेसिं न भवति तेसिं पसूयाणं वग्गुलिमाइयाणं, तासिं पसूइकालाओ आरब्भ तिण्णि पोरुसीओ असज्झाओ मुत्तुमहोरत्तं छेदं, आसन्नपसूयाएवि अहोरत्तछेदेण सुज्झइ, गोमादिजराउजाणं पुण जाव जरुं लंबइ ताव असज्झाइयं 'जरे पडिए'त्ति जाहे जरुं पडियं भवइ ताहे ताओ पडणकालाओ आरब्भ तिन्नि पहरा परिहरिज्जंति । 'राय-पह वूढ सुद्धे'त्ति अस्या व्याख्या—'रायपह बिंदु' पच्छद्धं साहुवसही आसण्णेण गच्छमाणस्स तिरियस्स जदि रुहिरबिंदु गलिया ते जइ रायपहंतरिया तो सुद्धा, अह रायपहे चेव बिंदू पडिओ तहावि सज्झाओ कप्पतित्तिकाउं, अह अण्णपहे अण्णत्थ वा पडियं तो जइ उदगवुड्ढवाहेण हियं तो सुद्धो, 'पुणो'त्ति विशेषार्थप्रतिपादकः, पलीवणगेण वा दड्ढे सुज्झइत्ति गाथार्थः ॥ २२० ॥ मूल गाथायां 'परवयणं साणमादीणि'त्ति परोत्ति चोयगो तस्स वयणं जइ साणो पोग्गलं समुद्दिसित्ता जाव साहुवसहीसमीवे चिट्ठइ ताव असज्झाइयं, आदिसद्दाओ मंजारादी । आचार्य आह—

---

१ जरायुर्येषां न भवति तेषां प्रसूतानां वल्गुल्यादीनां, तासां प्रसूतिकालात् आरभ्य तिस्रः पौरुषीरस्वाध्यायः, मुक्त्वाऽहोरात्रच्छेदं–आसन्नप्रसूतानामपि अहोरात्रच्छेदेन शुध्यति, गवादीनां जरायुजानां पुनर्यावत् जरायुर्लंबते तावदस्वाध्यायिकं जरायौ पतिते इति यदा जरायुः पतितो भवति तदा तस्मात् पतनकालात् आरभ्य त्रयः प्रहराः परिह्रियन्ते । राजपथव्यूढे शुद्धमिति राजपथे बिन्दवः । पश्चार्धं । साधुवसतेरासन्नेन गच्छतस्तिरश्चो यदि रुधिरबिन्दवो गलितास्ते यदि राजपथान्तरितास्तर्हि शुद्धाः अथ राजपथ एव बिन्दुः पतितः तथापि स्वाध्यायः कल्पते इतिकृत्वा, अथान्यपथेऽन्यत्र वा पतितः तर्हि यद्युदकवेगेन व्यूढं तर्हि शुद्धः, प्रदीपनकेन वा दग्धे शुध्यतीति । पर इति नोदकः तस्य वचनं यदि श्वा पुद्गलं भुक्त्वा यावत् साधुवसतिसमीपे तिष्ठति तावदस्वाध्यायिकं, आदिशब्दात् मार्जारादयः ।

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२९]

जइ फुसइ तहिं तुंडं अहवा लिच्छारिएण संचिक्खे ।
इहरा न होइ चोयग! वंतं वा परिणयं जम्हा ॥ २२१ ॥ (भा०)

व्याख्या—साणो भोत्तुं मंसं लिच्छारिएण मुहेण वसहिआसण्णेण गच्छंतो तस्स जइ तोंडं रुहिरेण लित्तं खोडादिसु फुसति तो असज्झाइयं, अहवा लेच्छारियतुंडो वसहिआसन्ने चिट्ठइ तहवि असज्झाइयं, 'इयरह'त्ति आहारिएण चोयग! असज्झाइयं ण भवति, जम्हा तं आहारियं वंतं अवंतं वा आहारपरिणामेण परिणयं, आहारपरिणयं च असज्झाइयं न भवइ, अण्णपरिणामओ, मुत्तपुरीसादिवत्ति गाथार्थः ॥ २२१ ॥ तेरिच्छसारीरयं गयं, इयाणिं माणुससरीरं, तत्थ—

माणुस्सयं चउद्धा अट्ठिं मुत्तूण सयमहोरत्तं । परिआवन्नविवन्ने सेसे तियसत्त अट्ठेव ॥ १३५५ ॥

व्याख्या—तं माणुस्ससरीरं असज्झाइयं चउव्विहं चंमं मंसं रुहिरं अट्ठियं च, (तत्थ अट्ठियं) मोत्तुं सेसस्स तिविहस्स इमो परिहारो–खेत्तओ हत्थसयं, कालओ अहोरत्तं, जं पुण सरीराओ चेव वणादिसु आगच्छइ परियावण्णं विवण्णं वा

---

१ श्वा भुक्त्वा मांसं लिप्तेन मुखेन वसत्यासन्नेन गच्छन् (स्यात्), तस्य मुखं यदि रुधिरेण लिप्तं स्तम्भकोणादिषु स्पृशति तदाऽस्वाध्यायिकं, अथवा लिप्तमुखो वसत्यासन्ने तिष्ठति तथापि अस्वाध्यायः, इतरथेति आहारितेन चोदक ! अस्वाध्यायिकं न भवति, यस्मात् तदाहारितं वान्तमवान्तं वाऽऽहारपरिणामेन परिणतं, आहारपरिणामपरिणतं चास्वाध्यायिकं न भवति, अन्यपरिणामात्, मूत्रपुरीषादिवत् । तैरश्चं शारीरं गतं, इदानीं मानुषशरीरं, तत्र–तत् मानुषशारीरमस्वाध्यायिकं चतुर्विधं–चर्म मांसं रुधिरं अस्थि च, तत्रास्थि मुक्त्वा शेषस्य त्रिविधस्यायं परिहारः–क्षेत्रतो हस्तशतं कालतोऽहोरात्रं, यत् पुनः शरीरादेव व्रणादिष्वागच्छति पर्यापन्नं विवर्णं वा

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

[1]तं असज्झाइयं न होति, परियावण्णं जहा रुहिरं चेव पूयपरिणामेणं ठियं, विवण्णं खइरकक्कसमाणं रसिगाइयं, सेसं असज्झाइयं हवइ। अहवा सेसं अगारीउ संभवति तिण्णि दिणा, वियाए वा जो सावो सो सत्त वा अट्ठ वा दिणे असज्झाओ भवतित्ति। पुरुसपसूयाए सत्त, जेण सुक्कुकडा तेण तस्स सत्त, जं पुण इत्थीए अट्ठ एत्थ उच्यते॥ १३५५॥

रत्तुक्कडा उ इत्थी अट्ठ दिणा तेण सत्त सुक्कहिए। तिन्नि दिणाण परेणं अणोउगं तं महोरत्तं ॥ १३५६ ॥

व्याख्या—निसेगकाले रत्तुक्कडयाए इत्थिं पसवइ, तेण तस्स अट्ठ दिणा परिहरणिज्जा, सुक्काहियत्तणओ पुरुसं पसवइ तेण तस्स सत्त दिणा। जं पुण इत्थीए तिण्हं रिउदिणाणं परओ भवइ तं सरोगजोणित्थीए अणोउयं तं महोरत्तं परओ भण्णइ, तस्सुस्सग्गं काउं सज्झायं करेंति। एस रुहिरे विहित्ति गाथार्थः॥१३५६॥ जं पुव्वुत्तं 'अट्ठिं मोत्तूणं'ति तस्सेदाणीं विही भण्णइ—

दंते दिट्ठि विगिंचण सेसट्ठी बारसेव वासाइं। झामिय वूढे सीआण पाणरुद्दे य मायहरे ॥ १३५७ ॥

व्याख्या—जइ दंतो पडिओ सो पयत्तओ गवेसियव्वो, जइ दिट्ठो तो हत्थसया उपरि विगिंचिज्जइ, अह न दिट्ठो

---

१ तत् अस्वाध्यायिकं न भवति, पर्यापन्नं यथा रुधिरं पूयपरिणामेन स्थितं, विवर्णं खदिरकल्कसमानं रसिकादिकं, शेषमस्वाध्यायिकं भवति, अथवा शेषमगारिणीतः संभवति त्रीन् दिवसान् प्रसूतायां वा यः श्रावः स सप्ताष्टौ वा दिनान् अस्वाध्यायिकं (करोतीति)। पुरुषे प्रसूते सप्त, येन शुक्रोत्कटा तेन तस्य सप्त, यत् पुनः स्त्रिया अष्ट, अत्रोच्यते—निषेककाले रक्तोत्कटतायां स्त्रिं प्रसूते, तेन तस्या अष्टौ दिनाः परिह्रियन्ते, शुक्राधिकत्वात् पुरुषं प्रसूते तेन तस्य सप्त दिनाः। यत् पुनः स्त्रियास्त्रिभ्यः ऋतुदिनेभ्यः परतो भवति तत् सरोगयोनिकायाः स्त्रिया अनृतुकं तत् अहोरात्रं परतो भण्यते तस्योत्सर्गं कृत्वा स्वाध्यायं कुर्वन्ति, एष रुधिरे विधिरिति। यत्पूर्वमुक्तं 'अस्थि मुक्त्वे'ति तस्येदानीं विधिः—यदि दन्तः पतितः स प्रयत्नेन गवेषणीयो यदि दृष्टस्तर्हि हस्तशतात् उपरि त्यज्यते, अथ न दृष्ट-

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७४३॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० अस्वाध्यायिकनि.शारीरास्वा०

तो उग्घाडकाउस्सग्गं काउं सज्झायं करेंति । सेसट्ठिएसु जीवमुक्कदिणाऽऽरब्भ उ हत्थसतब्भंतरठिएसु बारसवरिसे असज्झाइयं, गाथापूर्वार्द्धं, पश्चार्द्धस्य तु भाष्यकार एव व्याख्यां कुर्वन्नाह,—

सीयाणे जं दिट्ठं तं तं मुत्तूणऽनाहनिहयाणि । आडंबरे य रुद्दे माइसु हिट्ठट्ठिया बारे ॥ २२२ ॥ (भा०) ॥

व्याख्या—'सीयाणे'त्ति सुसाणे जाणिऽट्ठियाणि दड्ढाणि उदगवाहेण वूढाणि न ताणि अट्ठियाणि असज्झाइयं करेंति, जाणि पुण तत्थ अण्णत्थ वा अणाहकडेवराणि परिट्ठवियाणि सणाहाणि वा इंधणादिअभावे 'निहय'त्ति निक्खित्ताणि ते असज्झाइयं करेंति । पाणत्ति मायंगा, तेसिं आडंबरो जक्खो हिरिमेक्कोऽवि भण्णइ, तस्स हेट्ठा सज्जोमयट्ठीणि ठविज्जंति, एवं रुद्दघरे मादिघरे य, ते कालओ बारस वरिसा, खेत्तओ हत्थसयं परिहरणिज्जा इति गाथार्थः ॥ २२२ ॥

आवासियं च वूढं सेसे दिट्ठंमि मग्गण विवेगो । सारीरगाम वाडग साहीइ न नीणियं जाव ॥ १३५८ ॥

एताए पुव्वद्धस्स इमा विभासा—

असिवोमाघयणेसुं बारस अविसोहियंमि न करंति । झामिय वूढे कीरइ आवासिय सोहिए चेव ॥ १३५९ ॥

---

१ स्तदोद्घाटकायोत्सर्गं कृत्वा स्वाध्यायं कुर्वन्ति । शेषास्थिषु जीवमोचनदिनादारभ्य तु हस्तशताभ्यन्तरस्थितेषु द्वादश वर्षाण्यस्वाध्यायिकं, सीयाणमिति श्मशाने यान्यस्थीनि दग्धानि उदकवाहेन व्यूढानि न तान्यस्थीनि अस्वाध्यायिकं कुर्वन्ति, यानि पुनस्तत्रान्यत्र वाऽनाथकलेवराणि परिष्ठापितानि सनाथानि वा इन्धनाद्यभावे निक्षिप्तानि तान्यस्वाध्यायिकं कुर्वन्ति । पाणा इति मातङ्गास्तेषामाडम्बरो यक्षो ह्रीमैकोऽपि भण्यते, तस्याधस्तात् सद्यो मृतास्थीनि स्थाप्यन्ते, एवं रुद्रगृहे मातृगृहे च, तानि कालतो द्वादश वर्षाणि, क्षेत्रतो हस्तशतं परिहरणीयानि । एतस्याः पूर्वार्धस्येयं विभाषा ।

॥७४३॥

अस्य गाथाद्वयस्य व्याख्या— [1]जं सीयाणं जत्थ वा असिवोमे मताणि बहूणि छड्डियाणि, 'आघातणं'ति जत्थ वा महासंगामे मया बहू, एएसु ठाणेसु अविसोहिएसु कालओ बारस वरिसे, खेत्तओ हत्थसयं परिहरंति, सज्झायं न करंतीत्यर्थः । अह एए ठाणा दवग्गिमाइणा दड्ढा उदगवाहो वा तेणंतेण बूढो गामनगरेण वा आवासंतेण अप्पणो घरट्ठाणा सोहिया, सेसंपि जं गिहीहिं न सोहियं, पच्छा तत्थ साहू ठिया अप्पणो वसही समंतेण मग्गिन्ता जं दिट्ठं तं विगिंचित्ता अदिट्ठे वा तिण्णि दिणा उग्घाडणकाउस्सग्गं करेत्ता असढभावा सज्झायं करेंति । 'सारीरगाम' पच्छद्धं, इमा विभासा सरीरेत्ति मयस्स सरीरयं जाव डहरग्गामे ण निप्फिडियं ताव सज्झायं ण करेंति, अह नगरे महंते वा गामे तत्थ वाडगसाहीउ जाव न निप्फेडियं ताव सज्झायं परिहरंति, मा लोगो निद्दुक्खत्ति भणेज्जा ॥ तथा चाह भाष्यकारः—

डहरगगाममए वा न करेंति जाव ण नीणियं होइ। पुरगामे व महंते वाडगसाही परिहरंती ॥ २२३ ॥ (भा०)॥

---

१ यत् श्मशानं यत्र वाऽशिवावमयोर्मृतकानि बहूनि त्यक्तानि, आघातनमिति यत्र वा महासङ्ग्रामे मृतानि बहूनि, एतेषु स्थानेष्वविशोधितेषु कालतो द्वादश वर्षाणि क्षेत्रतो हस्तशतं परिहरन्ति–स्वाध्यायं न कुर्वन्तीत्यर्थः । अथैतानि स्थानानि दवाग्न्यादिना दग्धानि उदकवाहो वा तेनाध्वना व्यूढः ग्रामनगरेण वाऽऽवसताऽऽत्मनो गृहस्थानानि शोधितानि शेषमपि यद्गृहस्थैर्न शोधितं पश्चात् तत्र साधवः स्थिताः, आत्मनो वसतिः समन्तात् मार्गयन्तो यद्दृष्टं तत् त्यक्त्वाऽदृष्टे वा त्रीन् दिवसान् उद्घाटनकायोत्सर्गं कृत्वाऽशठभावाः स्वाध्यायं कुर्वन्ति । शारीरग्राम पश्चार्धं, इयं विभाषा–शरीरमिति मृतस्य शरीरं यावल्लघुग्रामे न निष्काशितं तावत् स्वाध्यायं न कुर्वन्ति, अथ नगरे महति वा ग्रामे तत्र वाटकात् शाखाया वा यावन्न निष्काशितं तावत् स्वाध्यायं परिहरन्ति, मा लोको निर्दुःखा इति भणेत् ।

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२९]

उक्तार्थेयं, चोदक आह—साहुवसहिसमीवेण मयसरीरस्स निज्जमाणस्स जइ पुप्फवत्थादि पडइ असज्झाइयं, आचार्य आह—

निज्जंतं मुत्तूणं परवयणे पुप्फमाइपडिसेहो। जम्हा चउप्पगारं सारीरमओ न वज्जंति ॥ १३६० ॥

व्याख्या—मयसरीरं उभओ वसहीए हत्थसतब्भंतरं जाव निज्जइ ताव तं असज्झाइयं, सेसा परवयणभणिया पुप्फाई पडिसेहियव्वा—असज्झाइयं न भवति, जम्हा सारीरमसज्झाइयं चउविहं—सोणियं मंसं चम्मं अट्ठियं च तओ तेसु सज्झाओ न वज्जणिज्जो इति गाथार्थः ॥ १३६० ॥

एसो उ असज्झाओ तव्वज्जिउऽज्झाउ तत्थिमा मेरा। कालपडिलेहणाए गंडगमरुएहिं दिट्ठंतो ॥ १३६१ ॥

व्याख्या—एसो संजमघाताइओ पंचविहो असज्झाओ भणिओ, तेहिं चेव पंचहिं वज्जिओ सज्झाओ भवति, 'तत्थ'त्ति तंमि सज्झायकाले 'इमा' वक्ष्यमाणा 'मेर'त्ति सामाचारी–पडिक्कमित्तु जाव वेला न भवति ताव कालपडिलेहणाए कयाए

---

१ साधुवसतेः समीपे मृतकशरीरस्य नीयमानस्य यदि पुष्पवस्त्रादि पतेत् अस्वाध्यायिकं, मृतकशरीरं वसतेरुभयतः हस्तशताभ्यन्तरं यावन्नीयते तावत्तदस्वाध्यायिकं, शेषाः परवचनभणिताः पुष्पादयः प्रतिषेद्धव्याः–अस्वाध्यायिकं न भवति, यस्मात् शरीरमस्वाध्यायिकं चतुर्विधं–शोणितं मांसं चर्म अस्थि च, ततस्तेषु स्वाध्यायो न वर्जनीयः ॥ एतत् संयमघातादिकं पञ्चविधमस्वाध्यायिकं भणितं, तैरेव पञ्चभिर्वर्जितः स्वाध्यायो भवति, तत्रेति तस्मिन् स्वाध्यायकाले इयं–वक्ष्यमाणा मेरेति–समाचारी–प्रतिक्रम्य यावद्वेला न भवति तावत् कालप्रतिलेखनायां कृतायां

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२९]

ग्रहणकाले पत्ते गंडगदिट्ठंतो भविस्सइ, गहिए सुद्धे काले पट्ठवणवेलाए मरुयगदिट्ठंतो भविस्सतित्ति गाथार्थः ॥ १३६१ ॥ व्याद्युक्तिः—किमर्थं कालग्रहणम् ?, अत्रोच्यते—

पंचविहअसज्झायस्स जाणणट्ठाय पेहए कालं । चरिमा चउभागवसेसियाइ भूमिं तओ पेहे ॥ १३६२ ॥

व्याख्या—पंचविधः संयमघातादिकोऽस्वाध्यायः तत्परिज्ञानार्थं प्रेक्षते (कालं) कालवेलां, निरूपयतीत्यर्थः । कालो निरूपणीयः, कालनिरूपणमन्तरेण न ज्ञायते पञ्चविधसंयमघातादिकं । जइ अघेत्तुं करेंति ता चउलहुगा, तम्हा कालपडिलेहणाए इमा सामाचारी–दिवसचरिमपोरिसीए चउभागावसेसाए कालग्गहणभूमिओ ततो पडिलेहियव्वा, अहवा तओ उच्चारपासवणकालभूमीयत्ति गाथार्थः ॥ १३६२ ॥

अहियासियाइं अंतो आसन्ने चेव मज्झि दूरे य । तिन्नेव अणहियासी अंतो छ छच्च बाहिरओ ॥ १३६३ ॥

व्याख्या—'अंतो'त्ति निवेसणस्स तिन्नि–उच्चारअहियासियथंडिले आसण्णे मज्झे दूरे य पडिलेहेइ, अणहियासियाथंडिलेवि अंतो एवं चेव तिण्णि पडिलेहेति, एवं अंतो थंडिला छ, बाहिं पि निवेसणस्स एवं चेव छ भवंति, एत्थ अहियासिया दूरयरे अणहियासिया आसन्नयरे कायव्वा ॥ १३६३ ॥

---

१ ग्रहणकाले प्राप्ते गण्डकदृष्टान्तो भविष्यति, गृहीते शुद्धे च काले प्रस्थापनवेलायां मरुकदृष्टान्तो भविष्यतीति । यद्यगृहीत्वा कुर्वन्ति तर्हि चतुर्लघुकं, तस्मात् कालप्रतिलेखनायामियं सामाचारी–दिवसचरमपौरुष्यां चतुर्भागावशेषायां कालग्रहणभूमयस्तिस्रः प्रतिलेखितव्याः, अथवा तिस्रः–उच्चारप्रश्रवणकालभूमयः । अन्तरिति–निवेशनस्य त्रीणि उच्चारस्याध्यासितस्थण्डिलानि आसन्ने मध्ये दूरे च प्रतिलेखयति, अनध्यासितस्थण्डिलान्यपि अन्तरेवमेव त्रीणि प्रतिलेखयन्ति, एवमन्तःस्थण्डिलानि षट्, बहिरपि निवेशनादेवमेव षट् भवन्ति, अत्राध्यासितानि दूरतरे अनध्यासितानि आसन्नतरे कर्त्तव्यानि।

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७४५॥

४ प्रतिक्र-मणाध्य० अस्वाध्या-यकनिर्यु-क्तौ काल-ग्रहविधिः ॥७४५॥

एमेव य पासवणे बारस चउवीसतिं तु पेहेत्ता । कालस्स य तिन्नि भवे अह सूरो अत्थमुवयाई ॥ १३६४ ॥

व्याख्या—पासवणे एएणेव कमेणं बारस एवं चउवीसं अतुरियमसंभंतं उवउत्तो पडिलेहेत्ता पच्छा तिन्नि कालगहणथंडिले पडिलेहेति । जहण्णेणं हत्थंतरिए, 'अह'त्ति अनंतरं थंडिलपडिलेहाजोगाणंतरमेव सूरो अत्थमेति, ततो आवस्सगं करेइ ॥ १३६४ ॥ तस्सिमो विही—

अह पुण निव्वाघाओ आवासं तो करंति सव्वेऽवि । सड्ढाइकहणवाघाययाइ पच्छा गुरू ठंति ॥ १३६५ ॥

व्याख्या—अथेत्यानन्तर्ये सूरत्थमणाणंतरमेव आवस्सयं करेंति, पुनर्विशेषणे, दुविहमावस्सगकरणं विसेसेइ–निव्वाघायं वाघाइमं च, जदि निव्वाघायं ततो सवे गुरुसहिया आवस्सयं करेंति, अह गुरू सड्ढेसु धम्मं कहेंति तो आवस्सगस्स साहूहिं सह करणिज्जस्स वाघाओ भवति, जंमि वा काले तं करणिज्जं तं हासेंतस्स वाघाओ भन्नइ, तओ गुरू निसिज्जहरो य पच्छा चरित्तातियारजाणणट्ठा काउस्सग्गं ठाहिंति ॥ १३६५ ॥

---

१ प्रश्रवणेऽनेनैव क्रमेण द्वादश, एवं चतुर्विंशतिमत्वरितम संभ्रममुपयुक्तः प्रतिलिख्य पश्चात् त्रीणि कालग्रहणस्थण्डिलानि प्रतिलेखयन्ति, जघन्येन हस्तान्तरिते, अथेत्यनन्तरं स्थण्डिलप्रतिलेखनायोगानन्तरमेव सूर्योऽस्तमेति, तत आवश्यकं कुर्वन्ति । तस्यायं विधिः–सूर्यास्तमयनानन्तरमेवावश्यकं कुर्वन्ति, द्विविधमावश्यककरणं विशेषयति–निर्व्याघातं व्याघातवच्च, यदि निर्व्याघातं ततः सर्वे गुरुसहिताः आवश्यकं कुर्वन्ति, अथ गुरुः श्राद्धानां धर्मं कथयति तदाऽऽवश्यकस्य साधुभिः सह करणीयस्य व्याघातो भवति, यस्मिन् वा काले तत् कर्त्तव्यं तं ह्रासयतो व्याघातो भण्यते, ततो गुरुर्निषद्याधरश्च पश्चात् चारित्रातिचारज्ञानार्थं कायोत्सर्गं स्थास्यतः ।

काल ग्रहण संबंधे शास्त्रिय विधि:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

सेसा उ जहासत्तिं आपुच्छित्ताण ठंति सट्ठाणे । सुत्तत्थकरणहेउं आयरिएँ ठियंमि देवसियं ॥ १३६६ ॥

व्याख्या—सेसा साहू गुरुं आपुच्छित्ता गुरुगणस्स मग्गओ आसन्ने दूरे आधाराइणियाए जं जस्स ठाणं तं सठाणं, तत्थ पडिकमंताणं इमा ठवणा । गुरू पच्छा ठायंतो मज्झेण गंतुं सठाणे ठायइ, जे वामओ ते अणंतर सव्वेण गंतुं सठाणे ठायन्ति, जे दाहिणओ अणंतरसव्वेण गंतुं ठायंति, तं च अणागयं ठायंति सुत्तत्थसरणहेउं, तत्थ य पुव्वामेव ठायंता करेमि भंते ! सामाइयमिति सुत्तं करेंति, पच्छा जाहे गुरू सामाइयं करेत्ता वोसिरामित्ति भणित्ता ठिया उस्सग्गं, ताहे देवसियाइयारं चिंतंति, अन्ने भणंति—जाहे गुरू सामाइयं करेंति ताहे पुवट्ठियावि तं सामाइयं करेंति, सेसं कंठं ॥ १३६६ ॥

जो हुज्ज उ असमत्थो बालो वुड्ढो गिलाण परितंतो । सो विकहाइ विरहिओ अच्छिज्जा निज्जरापेही ॥ १३६७ ॥

व्याख्या—परिस्संतो—पाहुणगादि सोवि सज्झायझाणपरो अच्छति, जाहे गुरू ठंति ताहे तेवि बालादिया ठायंति एएण विहिणा ॥ १३६७ ॥

---

१ शेषाः साधवो गुरुमापृच्छ्य गुरुस्थानस्य पृष्ठत आसन्ने दूरे यथारात्निकतया यस्य यत् स्थानं तत् स्वस्थानं, तत्र प्रतिक्राम्यतामियं स्थापना—गुरुः पश्चात् तिष्ठन् मध्येन गत्वा स्वस्थाने तिष्ठति, ये वामतस्तेऽनन्तरं सव्येन गत्वा स्वस्थाने तिष्ठन्ति, ये दक्षिणतोऽनन्तरापसव्येन गत्वा तिष्ठन्ति, तत्र चानागतं तिष्ठन्ति सूत्रार्थस्मरणहेतोः, तत्र च पूर्वमेव तिष्ठन्तः करोमि भदन्त ! सामायिकमिति सूत्रं कर्षयन्ति, पश्चाद्यदा गुरवः सामायिकं कृत्वा व्युत्सृजामीति भणित्वा स्थिता उत्सर्गे तदा दैवासिकातिचारं चिन्तयन्ति, अन्ये भणन्ति—यदा गुरवः सामायिकं कुर्वन्ति तदा पूर्वं स्थिता अपि तत् सामायिकं कुर्वन्ति शेषं कण्ठ्यम् । परिश्रान्तः—प्राघूर्णकादिः सोऽपि स्वाध्यायध्यानपरस्तिष्ठति, यदा गुरवस्तिष्ठन्ति तदा तेऽपि बालाद्यास्तिष्ठन्ति एतेन विधिना ।

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७४६॥

४ प्रतिक्र-मणाध्य० अस्वाध्या-यकनिर्यु-क्तौ काल-ग्रहविधिः

आवासगं तु काउं जिणोवइट्ठं गुरूवएसेणं । तिण्णि थुई पडिलेहा कालस्स इमा विही तत्थ ॥ १३६८ ॥

व्याख्या—जिणेहिं गणहराणं उवइट्ठं ततो परंपरएण जाव अम्हं गुरूवएसेण आगयं तं काउं आवस्सयं अण्णे तिण्णि थुतीओ करिंति, अहवा एगा एगसिलोगिया, बितिया बिसिलोइया ततिया [त] तियसिलोगिया, तेसिं समत्तीए कालपडिलेहणविही कायवा ॥ १३६८ ॥ अच्छउ ताव विही इमो, कालभेओ ताव वुच्चइ

दुविहो उ होइ कालो वाघाइम एतरो य नायव्वो । वाघातो घंघसालाएँ घट्टणं सड्ढकहणं वा ॥ १३६९ ॥

व्याख्या—पुवद्धं कंठं, पच्छद्धस्स व्याख्या–जा अतिरित्ता वसही कप्पडिगसेविया य सा घंघसाला, ताए अतिंताणं घट्टणपडणाइ वाघायदोसो, सड्ढकहणेण य वेलाइक्कमणदोसोत्ति । एवमादि ॥ १३६९ ॥

वाघाए तइओ सिं दिज्जइ तस्सेव ते निवेएंति । इयरे पुच्छंति दुवे ओगं कालस्स घेच्छामो ॥ १३७० ॥

व्याख्या—तंमि वाघातिमे दोण्णि जे कालपडियरगा ते निगच्छंति, तेसिं ततिओ उवज्झायादि दिज्जइ, ते काल-

---

१ जिनैर्गणधरेभ्य उपदिष्टं ततः परम्परकेण यावदस्माकं गुरूपदेशेन आगतं तत् कृत्वाऽऽवश्यकं अन्ये तिस्रः स्तुतीः कुर्वन्ति, अथवा एका एकश्लोकिका द्वितीया द्विश्लोकिका तृतीया त्रिश्लोकिका, तासां समाप्तौ कालप्रतिलेखनाविधिः कर्त्तव्यः । तिष्ठतु तावत् विधिरयं, कालभेदस्तावदुच्यते । पूर्वार्धं कण्ठ्यं, पश्चार्धस्य व्याख्या–याऽतिरिक्ता वसतिः कार्पटिकासेविता च सा घंघशाला तस्यां प्रविशतां घट्टनपतनादिर्व्याघातदोषः, श्राद्धकथनेन च वेलातिक्रमणदोष इति, एवमादि । तस्मिन् व्याघातवति द्वौ यौ कालप्रतिचारकौ तौ निर्गच्छतः, तयोस्तृतीय उपाध्यायादिर्दीयते, तौ काल-

॥७४६॥

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२९]	

१गाहिणो आपुच्छण संदिसावण कालपवेयणं च सधं तस्सेव करेंति, एत्थ गंडगदिट्ठंतो न भवइ, इयरे उवउत्ता चिट्ठंति, सुद्धे काले तत्थेव उवज्झायस्स पवेएंति। ताहे दंडधरो बाहिं कालपडिचरगो चिट्ठइ, इयरे दुयगावि अंतो पविसंति, ताहे उवज्झायस्स समीवे सवे जुगवं पट्ठवेंति, पच्छा एगो नीति दंडधरो अतीति, तेण पट्ठविए सज्झायं करेंति, ॥ १३७० ॥ निवाघाए पच्छद्धं अस्यार्थः—

आपुच्छण किइकम्मे आवासिय पडियरिय वाघाते। इंदिय दिसा य तारा वासमसज्झाइयं चेव ॥ १३७१ ॥

व्याख्या—निवाघाते दोन्नि जणा गुरुं आपुच्छंति कालं घेच्छामो, गुरुणा अणुण्णाया 'कितिकम्मं'ति वंदणं काउं दंडगं घेत्तुं उवउत्ता आवासियमासज्जं करेन्ता पमज्जन्ता य निग्गच्छंति, अंतरे य जइ पक्खलंति पडंति वा वत्थादि वा विलग्गति कितिकम्मादि किंचि वितहं करेंति ततो कालवाघाओ, इमा काल भूमीपडियरणविही, इंदिएहिं उवउत्ता पडियरंति, 'दिस'त्ति जत्थ चउरोवि दिसा दीसंति, उडुंमि जइ तिन्नि तारा दीसंति, जइ पुण न उवउत्ता अणिट्ठो

---

१ ग्राहिणौ आपृच्छासंदिशनकालप्रवेदनानि सर्वं तस्मै एव कुरुतः, अत्र गण्डगदृष्टान्तो न भवति, इतरे उपयुक्तास्तिष्ठन्ति, शुद्धे काले तत्रैवोपाध्यायाय प्रवेदयतः, तदा दण्डधरो बहिः कालं प्रतिचरन् तिष्ठति, इतरौ द्वावपि अन्तः प्रविशतः, तदोपाध्यायस्य समीपे सर्वे युगपत् प्रस्थापयन्ति, पश्चादेको निर्गच्छति दण्डधर आगच्छति, तेन प्रस्थापिते स्वाध्यायं कुर्वन्ति। निर्व्याघाते द्वौ जनौ गुरुमापृच्छेते कालं ग्रहीष्यावः, गुरुणाऽनुज्ञातौ कृतिकर्मेति वन्दनं कृत्वा दण्डकं गृहीत्वोपयुक्तौ आवश्यिकीमा शय्यां कुर्वन्तौ प्रमार्जयन्तौ च निर्गच्छतः, अन्तरा च यदि प्रस्खलतः पततो वा वस्त्रादि वा विलगति कृतिकर्मादि वा किञ्चिद्वितथं कुरुतस्तदा काल व्याघातः, अयं कालभूमिप्रतिचरणविधिः, इन्द्रियेषूपयुक्तौ प्रतिचरतः, दिश इति यत्र चतस्रोऽपि दिशो दृश्यन्ते, ऋतौ यदि तिस्रस्तारका दृश्यन्ते, यदि पुनर्नोपयुक्तौ अनिष्टो

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७४७॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० अस्वाध्यायकनिर्युक्तौ कालग्रहविधिः

वा इंदियविसओ 'दिस'त्ति दिसामोहो दिसाओ वा तारगाओ वा न दीसंति वासं वा पडइ, असज्झाइयं वा जायं तो कालवहोत्ति गाथार्थः ॥ १३७१ ॥ किं च—

जइ पुण गच्छंताणं छीयं जोइं ततो नियत्तेंति । निव्वाघाए दोण्णि उ अच्छंति दिसा निरिक्खंता ॥ १३७२ ॥

व्याख्या—तेसिं चेव गुरुसमीवा कालभूमी गच्छंताणं अंतरे जइ छीतं जोति वा फुसइ तो नियत्तंति । एवमाइकारणेहिं अवाहया ते दोवि निव्वाघाएण कालभूमी गया, संडासगादिविहीए पमजित्ता निसन्ना उद्धट्ठिया वा एक्केको दो दिसाओ निरिक्खंतो अच्छइत्ति गाथार्थः॥ १३७२ ॥ किं च–तत्थ कालभूमिए ठिया–

सज्झायमचिंतंता कणगं दट्ठूण पडिनियत्तंति । पत्ते य दंडधारी मा बोलं गंडए उवमा ॥ १३७३ ॥

व्याख्या—तत्थ सज्झायं (अ) करेंता अच्छन्ति, कालवेलं च पडियरेइ, जइ गिम्हे तिण्णि सिसिरे पंच वासासु सत्त कणगा-रंति (पडंति) पेच्छेज्ज तहा विनियत्तंति, अह निव्वाघाएणं पत्ता काल ग्गहणवेला ताहे जो दंडधारी सो अंतो पविसित्ता भणइ–बहुपडिपुण्णा कालवेला मा बोलं करेह, एत्थ गंडगोवमा पुव्वभणिया कज्जइत्ति गाथार्थः ॥ १३७३ ॥

१ वेन्द्रियविषयो दिगिति दिग्मोहो दिशो वा तारका वा न दृश्यन्ते वर्षा वा पतति अस्वाध्यायिकं वा जातं तर्हि कालवधः । तयोरेव गुरुसमीपात् कालभूमिं गच्छतोरन्तरा यदि क्षुतं ज्योतिर्वा स्पृशति तदा निवर्त्तेते, एवमादिकारणैरव्याहतौ तौ द्वावपि निर्व्याघातेन कालभूमिं गतौ संदंशकादिविधिना प्रमृज्य निषण्णौ ऊर्ध्वस्थितौ वा एकैको द्वे दिशौ निरीक्षमाणस्तिष्ठति, तत्र कालभूमौ स्थितौ । तत्र स्वाध्यायं कुर्वन्तौ तिष्ठतः कालवेलां च प्रतिचरतः, यदि ग्रीष्मे त्रीन् शिशिरे पञ्च वर्षासु सप्त कणकान् पश्येतां पततस्तदा विनिवर्त्तेते, अथ निर्व्याघातेन प्राप्ता कालग्रहणवेला तदा यो दण्डधरः सोऽन्तः प्रविश्य भणति–बहुप्रतिपूर्णा कालवेला मा बोलं कुरुत, अत्र गण्डकोपमा पूर्वभणिता क्रियते ।

॥७४७॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

आघोसिए बहूहिं सुयंमि सेसेसु निवडए दंडो । अह तं बहूहिं न सुयं दंडिज्जइ गंडओ ताहे ॥ १३७४ ॥

व्याख्या—जहा लोए गामादिदंडगेण आघोसिए बहूहिं सुए थेवेहिं असुए गामादिठिइं अकरेंतस्स दंडो भवति, बहूहिं असुए गंडस्स दंडो भवति, तहा इहंपि उवसंहारेयव्वं। ततो दंडधरे निग्गए कालग्गही उट्ठेइत्ति गाथार्थः ॥ १३७४ ॥ सो य इमेरिसो—

पियधम्मो दढधम्मो संविग्गो चेव वज्जभीरू य । खेअण्णो य अभीरू कालं पडिलेहए साहू ॥ १३७५ ॥

व्याख्या—पियधम्मो दढधम्मो य, एत्थ चउभंगो, तत्थिमो पढमभंगो, निच्चं संसारभउव्विग्गो संविग्गो, वज्जं–पावं तस्स भीरू–जहा तं न भवति तहा जयइ, एत्थ कालविहीजाणगो खेदण्णो, सत्तवंतो अभीरू। एरिसो साहू कालपडिलेहओ, प्रतिजागरकश्च ग्राहकश्चेति गाथार्थः ॥ १३७५ ॥ ते य तं वेलं पडियरंता इमेरिसं कालं तुलेंति

कालो संझा य तहा दोवि समप्पंति जह समं चेव। तह तं तुलेंति कालं चरिमं च दिसं असज्झाए॥ १३७६॥

व्याख्या—संझाए धरंतीए कालग्गहणमाढत्तं तं कालग्गहणं सञ्झाए य जं सेसं एते दोवि समं जहा समप्पंति तहा तं

---

१ यथा लोके ग्रामादिदण्डकेनाघोषिते बहुभिः श्रुते स्तोकैरश्रुते ग्रामादिस्थितिमकुर्वतो दण्डो भवति, बहुभिरश्रुते गण्डकस्य दण्डो भवति तथेहाप्युपसंहारयितव्यं, ततो दण्डधरे निर्गते कालग्राह्युत्तिष्ठति। स च ईदृशः–प्रियधर्मा दृढधर्मा च, अत्र चत्वारो भङ्गाः, तत्रायं प्रथमो भङ्गः, नित्यं संसारभयोद्विग्नः संविग्नः, वर्ज्यं–पापं तस्माद् भीरुः–यथा तन्न भवति तथा यतते, अत्र कालविधिज्ञायकः खेदज्ञः, सत्त्ववानभीरुः, ईदृशः साधुः कालप्रतिचरकः, तौ च तां वेलां प्रतिचरन्तौ ईदृशं कालं तोलयतः, सन्ध्यायां विद्यमानायां कालग्रहणमादत्तं, तत् कालग्रहणं सन्ध्यायाश्च यत् शेषं एते द्वे अपि समं यथा समाप्नुतस्तथा तां

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभद्रीया

॥७४८॥ कालवेलं तुलंति, अहवा तिसु उत्तरादियासु संझाए गिण्हंति 'चरिमं'ति अवराए अवगयसंझाएवि गेण्हंति तहावि न दोसोत्ति गाथार्थः ॥ १३७६ ॥ सो कालग्गाही वेलं तुलेत्ता कालभूमीओ संदिसावणनिमित्तं गुरुपायमूलं गच्छति । तत्थेमा विही—

आउत्तपुव्वभणियं अणपुच्छा खलियपडियवाघाओ। भासंत मूढसंकिय इंदियविसए तु अमणुण्णे ॥ १३७७ ॥

व्याख्या—जहा निग्गच्छमाणो आउत्तो निग्गतो तहा पविसंतोवि आउत्तो पविसति, पुव्वनिग्गओ चेव जइ अणापुच्छाए कालं गेण्हति, पविसंतोवि जइ खलइ पडइ जम्हा एत्थवि कालुव उग्घाओ, अहवा घाउत्ति लेट्ठुइंगालादिणा। 'भासंत मूढसंकिय इंदियविसए अमणुण्णे' इत्यादि पच्छद्धं सांन्यासिकमुपरि वक्ष्यमाणं । अहवा इत्थवि इमो अत्थो भाणियव्वो—वंदणं देंतो अन्नं भासंतो देइ वंदणदुगं उवओगेण उ न ददाति किरियासु वा मूढो आवत्तादीसु वा संका कया न कयत्ति वंदणं देंतस्स इंदियविसओ वा अमणुण्णमागओ ॥ १३७७ ॥

४प्रतिक्रमणाध्य० अस्वाध्यायकनिर्युक्तौ कालग्रहविधिः

---

१ कालवेलां तोलयतः, अथवोत्तरादिषु तिसृषु सन्ध्यायां गृह्णन्ति चरमामिति अपरस्यामपगतसन्ध्यायामपि गृह्णन्ति, तथापि न दोष इति । स कालग्राही वेलां तोलयित्वा कालभूमिसंदिशननिमित्तं गुरुपादमूले गच्छति, तत्रायं विधिः यथा निर्गच्छन्नायुक्तो निर्गतस्तथा प्रविशन्नपि आयुक्तः प्रविशति, पूर्वनिर्गत एव यद्यनापृच्छ्य कालं गृह्णाति प्रविशन्नपि यदि स्खलति पतति यस्मादत्रापि काल इवोद्घातः, अथवा घात इति लेष्ट्वङ्गारादिना, भाषमाणेत्यादि, अथवाऽत्रा-प्ययमर्थो भणितव्यः–वन्दनं ददद् अन्यद् भाषमाणो ददाति वन्दनद्विकमुपयोगेन न ददाति क्रियासु वा मूढ आवर्त्तादिषु वा शङ्का कृता न कृता वेति वन्दनं ददतोऽमनोज्ञो वेन्द्रियविषय आगतः ॥७४८॥

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२९]

निसीहिया नमुक्कारे काउस्सग्गे य पंचमंगलए। किइकम्मं च करिन्ता बीओ कालं तु पडियरइ ॥ १३७८ ॥

व्याख्या—पैविसंतो तिण्णि निसीहियाओ करेइ नमोखमासमणाणं च नमुक्कारं करेइ, इरियावहियाए पंचउस्सासकालियं उस्सग्गं करेइ, उस्सारिए नमोअरहंताणं पंचमंगलं चेव कहइ, ताहे 'कितिकम्मं'ति बारसावत्तं वंदणं देइ, भणइ य-संदिसह पाउसियं कालं गेण्हामो, गुरुवयणं गेण्हहत्ति, एवं जाव कालग्गाही संदिसावेत्ता आगच्छइ ताव बितिओ दंडधरो सो कालं पडियरइ, गाथार्थः ॥ १३७८ ॥ पुणो पुव्वुत्तेण विहिणा निग्गओ कालग्गाही—

थोवावसेसियाए संझाए ठाति उत्तराहुत्तो। चउवीसगदुमपुप्फियपुव्वगमेक्केक्कि अ दिसाए ॥ १३७९ ॥

व्याख्या—'उत्तराहुत्तो' उत्तरामुखः दंडधारीवि वामपासे ऋजुतिरियदंडधारी पुव्वाभिमुहो ठाति, कालगहणनिमित्तं च अट्ठुस्सासकालियं काउस्सग्गं करेइ, अण्णे पंचुस्सासियं करेइ, उस्सारिते चउवीसत्थयं दुमपुप्फियं सामण्णपुव्वं च, एते तिण्णि अक्खलिए अणुपेहेत्ता पच्छा पुव्वाए एते चेव अणुपेहेति, एवं दक्खिणाए अवराए इति गाथार्थः ॥ १३७९ ॥ गेण्हंतस्स इमे उवघाया जाणियव्वा—

---

१ प्रविशन् तिस्रो नैषेधिकीः करोति क्षमाश्रमणांश्च नमस्करोति ईर्यापथिक्यां पञ्चोच्छ्वासकालिकमुत्सर्गं करोति, उत्सारिते नमोऽर्हद्भ्यः (कथयित्वा) पञ्चमङ्गलमेव कथयति, तदा कृतिकर्मेति द्वादशावर्त्तं वन्दनं ददाति, भणति च-संदिशत प्रादोषिकं कालं गृह्णामि, गुरुवचनं गृह्णीतेति, एवं यावत् कालग्राही संदिश्यागच्छति तावद्द्वितीयो दण्डधरः स कालं प्रतिचरति, पुनः पूर्वोक्तेन विधिना निर्गतः कालग्राही। दण्डधार्यपि वामपार्श्वे ऋजुतिर्यग्दण्डधारी पूर्वाभिमुखः तिष्ठति, कालग्रहणनिमित्तमष्टोच्छ्वासकालिकं कायोत्सर्गं करोति, अन्ये (भणन्ति)-पञ्चोच्छ्वासिकं करोति, उत्सारिते चतुर्विंशतिस्तवं द्रुमपुष्पिकां श्रामण्यपूर्वकं च, एतानि त्रीण्यस्खलितान्यनुप्रेक्ष्य पश्चात् पूर्वस्यामेतान्येवानुप्रेक्षते एवं दक्षिणस्यामपरस्यां। गृह्णत इमे उपघाता ज्ञातव्याः–

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७४९॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० अस्वाध्यायकनिर्युक्तौ कालग्रहविधिः ॥७४९॥

बिंदू छीए[य] परिणय सगणे वा संकिए भवे तिण्हं । भासंत मूढ संकिय इंदियविसए य अमणुण्णे ॥१३८०॥

व्याख्या—गेण्हंतस्स अंगे जइ उदगबिंदू पडेज्जा, अहवा अंगे पासओ वा रुधिरबिंदू, अप्पणा परेण वा जदि छीयं, अज्झयणं वा करेंतस्स जइ अन्नओ भावो परिणओ, अनुपयुक्त इत्यर्थः, 'सगणे'त्ति सगच्छे तिण्हं साहूणं गज्जिए संका, एवं विज्जुच्छीयाइसुवि, ॥ १३८० ॥ 'भासंत' पच्छद्धस्स पूर्वन्यस्तस्य वा विभासा—

मूढो व दिसिज्झयणे भासंतो यावि गिण्हति न सुज्झे । अन्नं च दिसज्झयणे संकंतोऽनिट्ठविसए वा ॥ १३८१ ॥

व्याख्या—दिसामोहो से जाओ अहवा मूढो दिसं पडुच्च अज्झयणं वा, कहं ?, उच्यते, पढमे उत्तराहुत्तेण ठायव्वं सो पुण पुव्वहुत्तो ठायति, अज्झयणेसुवि पढमं चतुवीसत्थओ सो पुण मूढत्तणओ दुमपुप्फियं सामण्णपुव्वयं कड्ढति । फुडमेव वंजणाभिलावेण भासंतो वा कड्ढति, बुडुबुडेंतो वा गिण्हइ, एवं न सुज्झति, 'संकंतो'त्ति पुव्वं उत्तराहुत्तेण ठातियव्वं, ततो पुव्वहुत्तेण ठातव्वं, सो पुण उत्तराउ अवराहुत्तो ठायति, अज्झयणेसु वि चउवीसत्थयाउ अन्नं चेव खुड्डियायारगादि

१ गृह्णतोऽङ्गे यद्युदकबिन्दुः पतेत् अथवाऽङ्गे पार्श्वयोर्वा रुधिरबिन्दुः, आत्मना परेण वा यदि क्षुतं, अध्ययनं वा कर्षतो यद्यन्यतो भावः परिणतः, स्वगच्छे त्रयाणां साधूनां गर्जिते शङ्का, एवं विद्युत्क्षुतादिष्वपि, भाषमाण–पश्चार्धस्य विभाषा । दिग्मोहस्तस्य जातोऽथवा मूढो दिशं प्रतीत्याध्ययनं वा, कथं ?, उच्यते, प्रथममुत्तरोन्मुखेन स्थातव्यं स पुनः पूर्वोन्मुखस्तिष्ठति, अध्ययनेष्वपि प्रथमं चतुर्विंशतिस्तवः स पुनर्मूढत्वात् द्रुमपुष्पिकं श्रामण्यपूर्वकं वा कथयति । स्फुटमेव व्यञ्जनाभिलापेन भाषमाणो वा कथयति, बुडबुडायमानो वा गृह्णाति, एवं न शुध्यति, शङ्कमान इति पूर्वमुत्तरोन्मुखेन स्थातव्यं ततः पूर्वोन्मुखेन स्थातव्यं स पुनरुत्तरस्या अपरोन्मुखस्तिष्ठति, अध्ययनेष्वपि चतुर्विंशतिस्तवादन्यदेव क्षुल्लकाचारादि–

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

अज्झयणं संकमइ, अहवा संकइ किं अमुगिए दिसाए ठिओ ण वत्ति, अज्झयणेवि किं कड्डियं णवित्ति। 'इंदियविसए य अमणुण्णे'त्ति अणिट्ठो पत्तो, जहा सोइंदिएण रुइयं वंतरेण वा अट्टट्टहासं कयं, रूवे विभीसिगादि विकृतरूपं दृष्टं, गंधे कलेवरादिगन्धो रसस्तत्रैव स्पर्शोऽग्निज्वालादि, अहवा इट्ठेसु रागं गच्छइ, अणिट्ठेसु इंदियविसएसु दोसन्ति गाथार्थः ॥ १३८१ ॥ एवमादिउवघायवज्जियं कालं घेत्तुं कालनिवेयणाए गुरुसमीवं गच्छंतस्स इमं भण्णइ—

जो गच्छंतंमि विही आगच्छंतंमि होइ सो चेव। जं एत्थं णाणत्तं तमहं वोच्छं समासेणं ॥ १३८२ ॥

व्याख्या—एसा भद्दबाहुकया गाहा-तीसे अतिदेसे कएवि सिद्धसेणखमासमणो पुव्वद्धभणियं अतिदेसं वक्खाणेइ—

निसीहिआ आसज्जं अकरणे खलिय पडिय वाघाए।
अपमज्जिय भीए वा छीए छिन्ने व कालवहो ॥ १ ॥ (प्र० सिद्ध०) ॥

व्याख्या—जदि णिंतो आवस्सियं न करेइ, पविसंतो निसीहियं करेइ अहवा करणमिति (आसज्जं अकरणे इति)

---

१ अध्ययनं संक्राम्यति, अथवा शङ्कते किममुकस्यां दिशि स्थितो नवेति, अध्ययनेऽपि किं कृष्टं नवेति, इन्द्रियविषयश्चामनोज्ञ इत्यनिष्टः प्राप्तः यथा श्रोत्रेन्द्रियेण रुदितं व्यन्तरेण वाऽट्टट्टहासं कृतं रूपे बिभीषिकादि विकृतं रूपं दृष्टं गन्धे कलेवरादिगन्धः। अथवेष्टेषु रागं गच्छति अनिष्टेष्विन्द्रियविषयेषु द्वेषमिति। एवमाद्युपघातवर्जितं कालं गृहीत्वा कालनिवेदनाय गुरुसमीपं गच्छत इदं भण्यते। एषा भद्रबाहुकृता गाथा एतस्यां अतिदेशे कृतेऽपि सिद्धसेनक्षमाश्रमणः पूर्वार्धभणितं अतिदेशं व्याख्यानयति। यदि निर्गच्छन्त आवश्यिकीं न कुर्वन्ति प्रविशन्तो नैषेधिकीं (न) कुर्वन्ति अथवाऽऽशय्यमकरणे

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७५०॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० अस्वाध्यायकनिर्युक्तौ कालग्रहविधिः

आसज्जं न करेइ । कालभूमीव गुरुसमीवं पट्ठवियस्स(पट्ठियस्स) जइ अंतरेण साणमज्जाराई छिंदंति, सेसपदा पुव्वभणिया, एएसु सव्वेसु कालवधो भवति ॥ १ ॥

गोणाइ कालभूमीइ हुज्ज संसप्पगा व उट्ठिज्जा ।
कविहसिअ विज्जुयंमी गज्जिय उक्काइ कालवहो ॥ २ ॥ (प्र० सिद्ध०) ॥

व्याख्या—पढमयाए आपुच्छित्ता गुरू कालभूमिं गओ, जइ कालभूमिए गोणं निसन्नं संसप्पगादि वा उट्ठि(ट्ठि)यादि पेच्छेज्ज तो नियत्तए, जइ कालं पडिलेहंतस्स गिण्हंतस्स वा निवेयणाए वा गच्छंतस्स कविहसियादि, तेहिं कालवहो भवति, कविहसियं नाम आगासे विकृतं मुखं वानरसरिसं हासं करेज्जा । सेसा पया गतार्था इति गाथार्थः ॥ २ ॥

कालग्गाही णिव्वाघातेण गुरुसमीवमागतो—

इरियावहिया हत्थंतरेऽवि मंगल निवेयणा दारे । सव्वेहि वि पट्ठविए पच्छा करणं अकरणं वा ॥ १३८३ ॥

व्याख्या—जदिवि गुरुस्स हत्थंतरमेत्ते कालो गहिओ तहावि कालपवेयणाए इरियावहिया पडिक्कमियव्वा, पंचुस्सास-

---

१–आशय्यं न करोति कालग्रहणभूमेः प्रस्थितस्य गुरुसमीपं यद्यन्तरा श्वमार्जारादि छिन्दन्ति, शेषाणि पदानि पूर्वं भणितानि, एतेषु सर्वेषु कालवधो भवति । प्रथमतया आपृच्छ्य गुरुं कालभूमिं गतः यदि कालभूमौ गां निषण्णं संसर्पकादि वा उत्थिता(ष्ठा)दि पश्येत् तर्हि निवर्त्तेत, यदि कालं प्रतिलिखतो गृह्णतः निवेदने वा गच्छतः कपिहसितादि, तैः कालवधो भवति, कपिहसितं नामाकाशे वानरसदृशं विकृतं मुखं हासं कुर्यात्, शेषाणि पदानि गतार्थानि । कालग्राही गुरुसमीपे निर्व्याघातेनागतः । यद्यपि गुरोर्हस्तान्तरमात्रे कालो गृहीतस्तथापि कालप्रवेदने ऐर्यापथिकी प्रतिक्रान्तव्या, पञ्चोच्छ्वास–

॥७५०॥

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२९]

मेत्तकालं उस्सग्गं करेंति, उस्सारिएऽवि पंचमंगलयं कड्ढंति, ताहे वंदणं दाउं निवेएंति–सुद्धो पाओसिओ कालोत्ति, ताहे डंडधरं मोत्तुं सेसा सबे जुगवं पट्ठवेंति, किं कारणम् ?, उच्यते, पुबुत्तं जं मरुगदिट्ठंतोत्ति ॥ १३८३ ॥

सन्निहियाण वडारो पट्ठविय पमादि णो दए कालं । बाहि ठिए पडियरए विसई ताएऽवि दंडधरो ॥ १३८४ ॥

व्याख्या—वडो वंटगो विभागो एगट्ठं, आरिओ आगारिओ सारिओ वा एगट्ठं, वडेण आरिओ वडारो, जहा सो वडारो सन्निहियाण मरुगाण लब्भइ न परोक्खस्स तहा देसकहादिपमादिस्स पच्छा कालं न देंति, 'दारे'ति अस्य व्याख्या 'बाहि ठिए' पच्छद्धं कंठं ॥ १३८४ ॥ सबेहिवि पच्छद्धं अस्य व्याख्या—

पट्ठविय वंदिए वा ताहे पुच्छंति किं सुयं ? भंते ! । तेवि य कहेंति सव्वं जं जेण सुयं व दिट्ठं वा ॥ १३८५ ॥

व्याख्या—दंडधरेण पट्ठविए वंदिए, एवं सबेहि वि पट्ठविए वंदिए पुच्छा भवइ–अज्जो ! केण किं दिट्ठं सुयं वा ?

---

१ मात्रकालमुत्सर्गं कुर्वन्ति, उत्सारितेऽपि पञ्चमङ्गलं कथयन्ति, ततो वन्दनं दत्त्वा निवेदयतः–प्रादोषिकः कालः शुद्ध इति, तदा दण्डधरं मुक्त्वा शेषाः सर्वे युगपत् स्वाध्यायं प्रस्थापयन्ति, किं कारणं ?, उच्यते, पूर्वमुक्तं यस्मात् मरुकदृष्टान्त इति । वाटो वण्टको विभागः एकार्थाः, आरिक आगारिकः सारिक इति एकार्थाः । वाटेनारिको वाटारः, यथा स वाटारः सन्निहितैर्मरुकैर्लभ्यते न परोक्षेण, तथा देशादिविकथाप्रमादवतः पश्चात् कालं न ददति । द्वारमित्यस्य व्याख्या–बाह्यस्थितः पश्चार्धं, कण्ठ्यं । सर्वैरपि पश्चार्धं । दण्डधरेण प्रस्थापिते वन्दिते, एवं सर्वैरपि प्रस्थापिते वन्दिते पृच्छा भवति–आर्य ! केनचित् किञ्चिद् दृष्टं श्रुतं वा ?,

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक- हारिभ- द्रीया

॥७५१॥

दंडधरो पुच्छइ अण्णो वा, तेवि सच्चं(वं)कहेंति, जति सवेहिवि भणियं–न किंचि सुयं दिट्ठं वा, तो सुद्धे करेंति सज्झायं । अह एगेणवि किंचि विज्जुमादि फुडं दिट्ठं गज्जियादि वा सुयं तो असुद्धे न करेंतित्ति गाथार्थः ॥ १३८५ ॥ अह संकियं—

इक्कस्स दोण्ह व संकियंमि कीरइ न कीरती तिण्हं । सगणंमि संकिए परगणं तु गंतुं न पुच्छंति ॥ १३८६ ॥

व्याख्या—जदि एगेण संदिद्धं–दिट्ठं सुयं वा, तो कीरइ सज्झाओ, दोण्हवि संदिद्धे कीरति, तिण्हं विज्जुमादि एगसंदेहे ण कीरइ सज्झाओ, तिण्हं अण्णाण्णसंदेहे कीरइ, सगणंमि संकिए परवयणाओऽसज्झाओ न कीरइ । खेत्तविभागेण तेसिं चेव असज्झाइयसंभवो ॥ १३८६ ॥ 'जं एत्थं णाणत्तं तमहं वोच्छं समासेणं'ति—अस्यार्थः

कालचउक्के णाणत्तगं तु पाओसियंमि सव्वेवि । समयं पट्ठवयंती सेसेसु समं च विसमं वा ॥ १३८७ ॥

व्याख्या—एयं सवं पाओसियकाले भणियं, इयाणिं चउसु कालेसु किंचि सामण्णं किंचि विसेसियं भणामि

१ दण्डधरः पृच्छति अन्यो वा, तेऽपि सत्यं कथयन्ति, यदि सर्वैरपि भणितं–न किञ्चित् दृष्टं श्रुतं वा, तदा शुद्धे कुर्वन्ति स्वाध्यायं, अथैकेनापि किञ्चिद्विद्युदादि स्फुटं दृष्टं गर्जितादि वा श्रुतं तदाऽशुद्धे न कुर्वन्ति । अथ शङ्कितं–यद्येकेन संदिग्धं–दृष्टं श्रुतं वा, तर्हि क्रियते स्वाध्यायः, द्वयोरपि संदेहे क्रियते, त्रयाणां विद्युदादिके एक (समान) संदेहे न क्रियते स्वाध्यायः, त्रयाणामन्यान्यसंदेहे क्रियते, स्वगणे शङ्किते परवचनात् अस्वाध्यायो न क्रियते, क्षेत्रविभागेन तेषामेवास्वाध्यायिकसंभवः । यदत्र नानात्वं तदहं वक्ष्ये समासेनेति । एतत् सर्वं प्रादोषिककाले भणितं, इदानीं चतुर्ष्वपि कालेषु किञ्चित् सामान्यं किञ्चित् विशेषितं भणामि–

४ प्रतिक्रमणाध्य० अस्वाध्यायनिर्युक्तिः

॥७५२॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

पाओसियं दंडधरं एक्कं मोत्तुं सेसा सव्वे जुगवं पट्ठवेंति, सेसेसु तिसु अद्धरत्त वेरत्तिय पाभाइए य समं वा विसमं वा पट्ठवेंति ॥ १३८७ ॥ किं चान्यत्—

इंदियमाउत्ताणं हणंति कणगा उ तिन्नि उक्कोसं । वासासु य तिन्नि दिसा उउबद्धे तारगा तिन्नि ॥ १३८८ ॥

व्याख्या—सुट्ठु इंदियउवओगउवउत्तेहिं सव्वकाला पडिजागरियव्वा–घेत्तव्वा, कणगेसु कालसंखाकओ विसेसो भण्णइ–तिण्णि गिम्हे उवहणंतित्ति, तेण उक्कोसं भण्णइ, चिरेण उवघाउत्ति, तेण सत्त(तिण्णि)जहण्णं सेसं मज्झिमं, अस्य व्याख्या—

कणगा हणंति कालं ति पंच सत्तेव गिम्हि सिसिरवासे। उक्का उ सरेहागा रेहारहितो भवे कणओ ॥ १३८९ ॥

व्याख्या—कणगा गिम्हे तिन्नि सिसिरे पंच वासासु सत्त उवहणंति, उक्का पुणेगावि, अयं चासिं विसेसो–कणगो सण्हरेहो पगासरहिओ य, उक्का महंतरेहा पकासकारिणी य, अहवा रेहारहिओ विप्फुलिंगो पभाकरो उक्का चेव ॥१३८९॥ 'वासासु तिण्णि दिसा' अस्य व्याख्या—

वासासु य तिन्नि दिसा हवंति पाभाइयंमि कालंमि। सेसेसु तीसु चउरो उडुंमि चउरो चउदिसिंपि ॥ १३९० ॥

१ प्रादोषिकं दण्डधरमेकं मुक्त्वा शेषाः सर्वे युगपत् प्रस्थापयन्ति, शेषेषु त्रिषु अर्धरात्रिके वैरात्रिके प्राभातिके च समं वा वियुक्ता वा प्रस्थापयन्ति । सुष्ठु इन्द्रियोपयोगोपयुक्तैः सर्वे कालाः प्रतिजागरितव्या–ग्रहीतव्याः, कनकविषये कालकृतः संख्याविशेषो भण्यते–त्रयो ग्रीष्मे उपघ्नन्तीति तेनोत्कृष्टं भण्यते चिरेणोपघात इति, तेन सप्त जघन्यतः शेषं मध्यमं । कनका ग्रीष्मे त्रयः शिशिरे पञ्च वर्षासु सप्तोपघ्नन्ति, उल्का पुनरेकापि, अयं चानयोर्विशेषः–कनकः श्लक्ष्णरेखः प्रकाशरहितश्च, उल्का महद्रेखा प्रकाशकारिणी च, अथवा रेखारहितो विस्फुलिङ्गः प्रभाकर उल्कैव । वर्षासु तिस्रो दिशः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

॥७५२॥

व्याख्या—जत्थ ठिओ वासाकाले तिन्निवि दिसा पेक्खइ तत्थ ठिओ पाभाइयं कालं गेण्हइ, सेसेसु तिसुवि कालेसु वासासु (उडुबद्धे सवेसु) जत्थ ठिओ चउरोवि दिसाभागे पेच्छइ तत्थ ठिओऽवि गेण्हइ ॥ १३९० ॥ 'उडुबद्धे तारगा तिन्नि' अस्य व्याख्या—

तिसु तिन्नि तारगाओ उडुंमि पाभातिए अदिट्ठेऽवि । वासासु [य] तारगाओ चउरो छन्ने निविट्ठोऽवि ॥१३९१॥

व्याख्या—तिसु कालेसु पाओसिए अड्ढरत्तिए वेरत्तिए, जति तिन्नि ताराओ जहण्णेण पेच्छंति तो गिण्हंति, उडुबद्धे चेव अब्भादिसंथडे जइवि एक्कंपि तारं न पिच्छंति तहावि पाभाइयं कालं गेण्हंति, वासाकाले पुण चउरोवि काला अब्भाइसंथडे तारासु अदीसंतासुवि गेण्हंति ॥ १३९१ ॥ 'छन्ने निविट्ठो'त्ति अस्य व्याख्या—

ठाणासइ बिंदूसु अ गिण्हं चिट्ठोवि पच्छिमं कालं । पडियरइ बहिं एक्को एक्को [य] अंतट्ठिओ गिण्हे ॥१३९२॥

व्याख्या—जदिवि वसहिस्स बाहिं कालग्गाहिस्स ठाओ नत्थि ताहे अंतो छण्णे उद्धट्ठिओ गेण्हति, अह उद्धट्ठियस्सवि अंतो ठाओ नत्थि ताहे छण्णे चेव निविट्ठो गिण्हइ, बाहिट्ठिओत्ति एक्को पडियरइ, वासबिंदुसु पडंतीसु नियमा अंतोठिओ

॥७५२॥

---

१ यत्र स्थितो वर्षारात्रकाले तिस्रोऽपि दिशः प्रेक्षते तत्र स्थितः प्राभातिकं कालं गृह्णाति, शेषेषु त्रिष्वपि कालेषु वर्षासु यत्र स्थितश्चतुरो दिग्विभागान् प्रेक्षते तत्र स्थितोऽपि गृह्णाति । ऋतुबद्धे तारकास्तिस्रः । त्रिषु कालेषु प्रादोषिके अर्धरात्रिके वैरात्रिके यदि तिस्रस्तारका जघन्येन प्रेक्षेत तदा गृह्णीयात्, ऋतुबद्धे एव अभ्राद्याच्छादिते यद्यपि एकामपि तारिकां न पश्यन्ति तथापि प्राभातिकं कालं गृह्णन्ति, वर्षाकाले पुनश्चत्वारोऽपि काला अभ्राद्याच्छादिते तारास्वदृश्यमानास्वपि गृह्णन्ति । छन्ने निविष्ट इति । यद्यपि वसतेर्बहिः कालग्राहिणः स्थानं नास्ति तदाऽन्तश्छन्ने ऊर्ध्वस्थितो गृह्णाति, अथोर्ध्वस्थितस्याप्यन्तः स्थानं नास्ति तदा छन्ने एव निविष्टो गृह्णाति, बहिःस्थितोऽप्येकः प्रतिचरति, वर्षाबिन्दुषु पतत्सु नियमादन्तःस्थितो

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

गिण्हइ, तत्थवि उद्धट्ठिओ निसण्णो वा, नवरं पडियरगोवि अंतो ठिओ चेव पडियरइ, एस पाभाइए गच्छुवग्गहट्ठा अववायविही, सेसा काला ठाणासति न घेत्तवा, आइण्णतो वा जाणियवं ॥ १३९२ ॥ कस्स कालस्स कं दिसमभिमुहेहिं ठायवमिति भाष्यते—

पाओसि अड्ढरत्ते उत्तरदिसि पुव्व पेहए कालं। वेरत्तियंमि भयणा पुव्वदिसा पच्छिमे काले ॥ १३९३ ॥

व्याख्या—पाओसिए अड्ढरत्तिए नियमा उत्तराभिमुहो ठाइ, 'वेरत्तिए भयण'त्ति इच्छा उत्तराभिमुहो पुवाभिमुहो वा, पाभाइए नियमा पुवामुहो ॥ १३९३ ॥ इयाणिं कालग्गहणपरिमाणं भण्णइ—

कालचउक्कं उक्कोसएण जहन्न तियं तु बोद्धव्वं। बीयपएणं तु दुगं मायामयविप्पमुक्काणं ॥ १३९४ ॥

व्याख्या—उस्सग्गे उक्कोसेणं चत्तारि काला घेप्पंति, उस्सग्गे चेव जहण्णेण तिगं भवति, 'बितियपए'त्ति अववाओ, तेण कालदुगं भवति, अमायाविनः कारणे अगृह्यमाणस्येत्यर्थः, अहवा उक्कोसेणं चउक्कं भवति, जहण्णेण हाणिपदे तिगं

१ गृह्णाति, तत्राप्यूर्ध्वस्थितो निषण्णो वा, नवरं प्रतिचरकोऽपि अन्तःस्थित एव प्रतिचरति, एष प्राभातिके गच्छोपग्रहार्थायापवादविधिः, शेषाः कालाः स्थानेऽसति न ग्रहीतव्याः, आचरणातो वा ज्ञातव्यं। कस्मिन् काले कां दिशमभिमुखैः स्थातव्यमिति। प्रादोषिके अर्धरात्रिके नियमादुत्तरोन्मुखस्तिष्ठति, वैरात्रिके भजनेति इच्छा उत्तराभिमुखः पूर्वाभिमुखो वा, प्राभातिके नियमात् पूर्वोन्मुखः। इदानीं कालग्रहणपरिमाणं भण्यते–उत्सर्गे उत्कृष्टतश्चत्वारः काला गृह्यन्ते, उत्सर्गे एव जघन्येन त्रिकं भवति, द्वितीयपदमिति अपवादः, तेन कालद्विकं भवति। अथवोत्कृष्टतश्चतुष्कं भवति, जघन्येन हानिपदे त्रिकं

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७५३॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० अस्वाध्यायनिर्युक्तिः

भवति, एक्कंमि अगहिए इत्यर्थः, बितिए हाणिपदे कए दुगं भवति, द्वयोरग्रहणत इत्यर्थः, एवममायाविणो तिन्नि वा अगिण्हंतस्स एक्को भवति, अहवा मायाविमुक्तस्य कारणे एकमपि कालमगृह्णतो न दोषः, प्रायश्चित्तं न भवतीति गाथार्थः ॥ १३९४ ॥ कहं पुण कालचउक्कं ?, उच्यते—

फिडियंमि अद्धरत्ते कालं घित्तुं सुवंति जागरिया । ताहे गुरू गुणंती चउत्थि सव्वे गुरू सुअइ ॥ १३९५ ॥

व्याख्या—पादोसियं कालं घेत्तुं सवे सुत्तपोरिसिं काउं पुन्नपोरिसीए सुत्तपाढी सुवंति, अत्थचिंतया उक्कालियपाढिणो य जागरंति, जाव अद्धरत्तो, ततो फिडिए अद्धरत्ते कालं घेत्तुं जागरिया सुयंति, ताहे गुरू उट्ठेत्ता गुणेंति, जाव चरिमो पत्तो, चरिमजामे सवे उट्ठित्ता वेरत्तियं घेत्तुं सज्झायं करेंति, ताहे गुरू सुवंति । पत्ते पाभाइयकाले जो पाभाइयं कालं घेच्छिहिति सो कालस्स पडिक्कमिउं पाभाइयकालं गेण्हइ, सेसा कालवेलाए पाभाइयकालस्स पडिक्कमंति, ततो आवस्सयं करेंति, एवं चउरो काला भवंति ॥ १३९५ ॥ तिण्णि कहं ?, उच्यते, पाभाइए अगहिए सेसा तिन्नि, अहवा—

गहियंमि अद्धरत्ते वेरत्तिय अगहिए भवइ तिन्नि । वेरत्तिय अद्धरत्ते अइ उवओगा भवे दुण्णि ॥ १३९६ ॥

१ भवति, एकस्मिन्नगृहीते । द्वितीयस्मिन् हानिपदे कृते द्विकं भवति, एवममायाविनस्त्रीन् वाऽगृह्णत एको भवति, अथवा, कथं पुनः कालचतुष्कं ? । प्रादोषिकं कालं गृहीत्वा सर्वे सूत्रपौरुषीं कृत्वा पूर्णायां पौरुष्यां सूत्रपाठिनः स्वपन्ति, अर्थचिन्तका उत्कालिकपाठकाश्च जागरन्ति यावदर्धरात्रः, ततः स्फिटितेऽर्धरात्रे कालं गृहीत्वा जागरिताः स्वपन्ति, तदा गुरव उत्थाय गुणयन्ति यावच्चरमः प्राप्तः, चरमे यामे सर्वे उत्थाय वैरात्रिकं गृहीत्वा स्वाध्यायं कुर्वन्ति, तदा गुरवः स्वपन्ति, प्राप्ते प्राभातिककाले यः प्राभातिकं कालं ग्रहीष्यति स कालं प्रतिक्रम्य प्राभातिककालं गृह्णाति, शेषाः कालवेलायां प्राभातिककालस्य प्रतिक्राम्यन्ति, तत आवश्यकं कुर्वन्ति, एवं चत्वारः काला भवन्ति, त्रयः कथं ?, उच्यते, प्राभातिकेऽगृहीते शेषास्त्रयः, अथवा–

॥७५३॥

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[२९]

पडिजग्गियंमि पढमे बीयविवज्जा हवंति तिन्नेव । पाओसिय वेरत्तिय अइउवओगा उ दुण्णि भवे ॥ १३९७ ॥

गाथाद्वयस्यापि व्याख्या—वेरत्तिए अगहिए सेसेसु तिसु गहिएसु तिण्णि, अड्ढरत्तिए वा अगहिए तिण्णि, दोण्णि कहं ?, उच्यते, पाउसियअड्ढरत्तिएसु गहिएसु सेसेसु अगहिएसु दोण्णि भवे, अहवा पाउसियवेरत्तिए गहिए य दोन्नि, अहवा पाउसियपाभाइएसु अगहिएसु दोण्णि, एत्थवि कप्पे पाउसिए चेव अणुवहएण उवओगओ सुपडियग्गिएण सव्वकालेण पढंति न दोसो, अहवा वेरतिय अड्ढरत्तियेऽगहिए दोण्णि अहवा अड्ढरत्तियपाभाइयगहिएसु दोण्णि अहवा वेरत्तियपाभाइएसु गहिएसु, जदा एक्को तदा अण्णतरं गेण्हइ । कालचउक्ककारणा इमे कालचउक्के गहणं उस्सग्गविही चेव, अहवा पाओसिए गहिए उवहए अड्ढरत्तं घेत्तुं सज्झायं करेंति, पाभाइओ दिवसट्ठा घेतव्वो चेव, एवं कालचउक्कं दिट्ठं, अणुवहए पाओसिए सुपडियग्गिए सव्वं राइं पढंति, अड्ढरत्तिएणवि वेरत्तियं पढंति, वेरत्तिएणवि अणुवहएण सुपडियग्गिएण पाभाइय असुद्धे उद्दिट्ठं दिवसओवि पढंति। कालचउक्के अग्गहणकारणा इमे—पाउसियं न गिण्हंति असिवादिकारणओ न सुज्झति वा, अड्ढरत्तियं न गिण्हंति

१ वैरात्रिकेऽगृहीते शेषेषु त्रिषु गृहीतेषु त्रयः, अर्धरात्रिके वाऽगृहीते त्रयः, द्वौ कथं ?, उच्यते, प्रादोषिकार्धरात्रिकयोर्गृहीतयोः शेषयोरगृहीतयोर्द्वौ भवतः, अथवा प्रादोषिकवैरात्रिकयोर्गृहीतयोर्द्वौ च अथवा प्रादोषिकप्राभातिकयोरगृहीतयोर्द्वौ, अत्रापि कल्पे प्रादोषिकेणानुपहतेनैवोपयोगतः सुप्रतिजागरितेन सर्वकालेषु पठति न दोषः, अथवा वैरात्रिके अर्धरात्रिकेऽगृहीते द्वौ अथवा अर्धरात्रिकप्राभातिकयोर्गृहीतयोर्द्वौ, अथवा वैरात्रिकप्राभातिकयोर्गृहीतयोर्द्वौ, यदैकस्तदाऽन्यतरं गृह्णाति । कालचतुष्ककारणानीमानि—कालचतुष्कग्रहणं उत्सर्गविधिरेव, अथवा प्रादोषिके गृहीते उपहतेऽर्धरात्रं गृहीत्वा स्वाध्यायं कुर्वन्ति, प्राभातिको दिवसार्थं ग्रहीतव्य एव, एवं कालचतुष्कं दृष्टं, अनुपहते प्रादोषिके सुप्रतिजागरिते सर्वां रात्रिं पठन्ति, अर्धरात्रिकेणापि वैरात्रिके पठन्ति, वैरात्रिकेणाप्यनुपहतेन सुप्रतिजागरितेन प्राभातिके कालेऽशुद्धे उद्दिष्टं दिवसतोऽपि पठन्ति । कालचतुष्केऽग्रहणकारणानीमानि—प्रादोषिकं न गृह्णन्ति अशिवादिकारणतः न शुध्यति वा, अर्धरात्रिकं न गृह्णन्ति

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७५४॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० अस्वाध्यायनिर्युक्तिः

कारणतो णं सुज्झति वा पाओसिएण वा सुपडियग्गिएण पढंति न गेण्हंति, वेरत्तियं कारणओ न गिण्हंति न सुज्झइ वा, पाओसिय अड्ढरत्तेण वा पढंति, तिन्नि वा णो गेण्हंति, पाभाइयं कारणओ न गिण्हइ न सुज्झइ वा वेरत्तिएणेव दिवसओ पढंति ॥ १३९७ ॥ इयाणिं पाभाइयकालग्गहणविहिं पत्तेयं भणामि—

पाभाइयकालंमि उ संचिक्खे तिन्नि छीयरुन्नाणि । परवयणे खरमाई पावासुय एवमादीणि ॥ १३९८ ॥

व्याख्या त्वस्या भाष्यकारः स्वयमेव करिष्यति । तत्थ पाभाइयंमि काले गहणविही पट्ठवणविही य, तत्थ गहणविही इमा—

नवकालवेलसेसे उवग्गहियअट्ठया पडिक्कमइ । न पडिक्कमइ वेगो नववारहए धुवमसज्झाओ ! ॥(भा०२२४)॥

व्याख्या—दिवसओ सज्झायविरहियाण देसादिकहासंभववज्जणट्ठा मेहावीतराण य पलिभंगवज्जणट्ठा, एवं सव्वेसिमणुग्गहट्ठा नवकालग्गहणकाला पाभाइए अणुण्णाया, अओ नवकालग्गहणवेलाहिं सेसाहिं पाभाइयकालग्गाही

॥७५४॥

---

१ कारणतो न शुध्यति वा, प्रादोषिकेण वा सुप्रतिजागरितेन पठन्ति न गृह्णन्ति, वैरात्रिकं कारणतो न गृह्णन्ति न शुध्यति वा, प्रादोषिकार्धरात्रिकाभ्यामेव पठन्ति, त्रीन् वा न गृह्णन्ति, प्राभातिकं कारणतो न गृह्णाति न शुध्यति वा, वैरात्रिकेणैव दिवसे पठन्ति । इदानीं प्राभातिककालग्रहणविधिं पृथक् भणामि–तत्र प्राभातिके काले ग्रहणविधिः प्रस्थापनविधिश्च–तत्र ग्रहणविधिरयं- दिवसे स्वाध्यायविरहितानां देशादिकथासंभववर्जनाय मेधाविनामितरेषां च विघ्नवर्जनार्थं, एवं सर्वेषामनुग्रहार्थाय नवकालग्रहणकालाः प्राभातिकेऽनुज्ञाताः, अतो नवकालग्रहणवेलासु शेषासु प्राभातिककालग्राही

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

कालस्स पडिक्कमति, सेसावि तं वेलं पडिक्कमंति वा न वा, एगो नियमा न पडिक्कमइ, जइ छीयरुदिदादीहिं न सुज्झइ तो सो चेव वेरत्तिओ सुपडियग्गिओ होहितित्ति। सोवि पडिक्कंतेसु गुरुणो कालं निवेदित्ता अणुदिए सूरिए कालस्स पडिक्कमति, जइ घेप्पंतो नववारे उवहओ कालो तो नज्जइ धुवमसज्झाइयमत्थित्ति न करेंति सज्झायं ॥ २२४ ॥
नववारगहणविही इमो–'संचिक्खे तिण्णि छीतरुण्णाणि'त्ति अस्य व्याख्या—

इक्कि तिन्नि वारे छीयाइहयंमि गिण्हए कालं।
चोएइ खरो बारस अणिट्ठविसए अ कालवहो ॥ २२५ ॥ (भा०) ॥

व्याख्या—एक्कस्स गिण्हओ छीयरुदादिहए संचिक्खइत्ति ग्रहणाद्विरमतीत्यर्थः, पुणो गिण्हइ, एवं तिण्णि वारा, तओ परं अण्णो अण्णंमि थंडिले तिण्णि वाराउ, तस्सवि उवहए अण्णो अण्णंमि थंडिले तिण्णि वारा, तिण्हं असई दोण्णि जणा णव वाराओ पूरेइ, दोण्हवि असतीए एक्को चेव णववाराओ पूरेइ, थंडिलेसुवि अववाओ, तिसु दोसु वा

१ कालस्य प्रतिक्राम्यति, शेषास्तु तस्यां वेलायां प्रतिक्राम्यन्ति वा न वा, एको नियमान्न प्रतिक्राम्यति, यदि क्षुतरोदनादिभिर्न शुध्यति तदा स एव वैरात्रिकः सुप्रतिजागरितो भविष्यतीति। सोऽपि प्रतिक्राम्य गुरोः कालं निवेद्यानुदिते सूर्ये कालात् प्रतिक्राम्यति, यदि गृह्यमाणो नववारानुपहतः कालस्तर्हि ज्ञायते ध्रुवमस्वाध्यायिकमस्ति इति न कुर्वन्ति स्वाध्यायं। नववारग्रहणविधिरयं–एकस्मिन् गृह्णति क्षुतरुदितादिभिर्हते प्रतीक्षते। पुनर्गृह्णाति, एवं त्रीन् वारान्, ततः परमन्योऽन्यस्मिन् स्थण्डिले त्रीन् वारान्, तस्याप्युपहतेऽन्योऽन्यस्मिन् स्थण्डिले त्रीन् वारान्, त्रिष्वसत्सु द्वौ जनौ नव वारान् पूरयतः, द्वयोरप्यसतोरेक एव नव वारान् पूरयति, स्थण्डिलेष्वप्यसत्सु अपवादः, त्रिषु द्वयोर्वा

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७५५॥

४ प्रतिक्रमणाध्य० अस्वाध्यायनिर्युक्तिः

एक्कंमि वा गिण्हंतीति ॥ २२५॥ 'परवयणे खरमाई' अस्य व्याख्या'चोएइ खरो पच्छद्धं' चोदक आह–जदि रुदतिमणिट्ठे कालवहो ततो खरेण रडिते बारह वरिसे उवहंमउ, अण्णेसुवि अणिट्ठइंदियविसएसु एवं चेव कालवहो भवतु?, आचार्य आह—

चोअग माणुसऽणिट्ठे कालवहो सेसगाण उ पहारो । पावासुआइ पुव्विं पन्नवणमणिच्छ उग्घाडे ॥२२६(भा०)॥

व्याख्या—माणुससरे अणिट्ठे कालवहो 'सेसग'त्ति तिरिया तेसिं जइ अणिट्ठो पहारसद्दो सुबइ तो कालवधो, 'पावासिय'त्ति मूलगाथायां योऽवयवः अस्य व्याख्या—'पावासुयाय' पच्छद्धं, जइ पाभाइयकालग्गहणवेलाए पावासियभज्जा पइणो गुणे संभरंती दिवे दिवे रोएती, रुवणवेलाए पुव्वयरो कालो घेत्तव्वो, अहवा सावि पच्चुसे रोवेज्जा ताहे दिवा गंतुं पण्णविज्जइ, पण्णवणमनिच्छाए उग्घाडणकाउस्सग्गो कीरइ ॥ २२६ ॥ 'एवमादीणि'त्ति अस्यावयवस्य व्याख्या—

वीसरसद्दरुअंते अव्वत्तगडिंभगंमि मा गिण्हे । गोसे दरपट्ठविए छीए छीए तिगी पेहे ॥ २२७ (भा०)॥

व्याख्या—अच्चायासेण रुयंतं वीरसं भन्नइ, तं उवहणए, जं पुण महुरसद्दं घोलमाणं च तं न उवहणति, जावमजंपिरं

॥७५५॥

१ एकस्मिन् वा गृह्णन्ति । चोदयति खरः पश्चार्धं, यदि रोदत्यनिष्टे कालवधो रटिते ततः खरेण द्वादश वर्षाण्युपहव्यतां,(कालं)अन्येष्वपि अनिष्टेन्द्रियविषये ष्वप्येवमेव कालवधो भवतु । मनुष्यस्वरेऽनिष्टे कालवधः शेषाः–तिर्यञ्चस्तेषां यदि अनिष्टः प्रहारशब्दः श्रूयते तर्हि कालवधः, यदि प्राभातिककालग्रहणवेलायां प्रोषितपतिका स्त्री पत्युर्गुणान् स्मरन्ती दिवसे २ रोदिति, रोदनवेलायाः पूर्वमेव कालो ग्रहीतव्यः, अथ च साऽपि प्रत्युषसि रुद्यात् तदा दिवसे गत्वा प्रज्ञाप्यते, प्रज्ञापनामनिच्छन्त्यां उद्घाटनकायोत्सर्गः क्रियते । अत्यायासेन रोदनं तत् विरसं भण्यते, तदुपहन्ति, यत् पुनर्घोलमानं मधुरशब्दं च तन्नोपहन्ति यावदजल्पाकं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

तामवत्तं, तं अप्पेणवि वीसरेण उवहणइ, महंतं उस्सुंभरोवणेण उवहणइ, पाभाइयकालग्गहणविही गया, इयाणिं पाभाइयपट्ठवणविही, 'गोसे दर' पच्छद्धं, 'गोसि'त्ति, उदितमादिच्चे, दिसालोयं करेत्ता पट्ठवेंति, 'दरपट्ठविए'त्ति अद्ध-पट्ठविए जइ छीतादिणा भग्गं पट्ठवणं अण्णो दिसालोयं करेत्ता तत्थेव पट्ठवेति, एवं ततियवाराए। दिसावलोयकरणे इमं कारणं—

आइन्न पिसिय महिया पेहित्ता तिन्नि तिन्नि ठाणाइं। नववारहए काले हउत्ति पढमाइ न पढंति ॥ १३९९ ॥

व्याख्या—'आइण्णा पिसिय'त्ति आइण्णं–पोग्गलं तं कागमादीहिं आणियं होज्जा, महिया वा पडिउमारद्धा, एवमाई एगठाणे ततो वारा उवहए हत्थसयबाहिं अण्णं ठाणं गंतुं पेहंति–पडिलेहेंति, पट्ठविंतित्ति वुत्तं भवति, तत्थवि पुव्वुत्त-विहिणा तिन्नि वारा पट्ठवेंति, एवं बितियठाणेवि असुद्धे तओवि हत्थसयं अन्नं ठाणं गंतुं तिन्नि वारा पुव्वुत्तविहाणेण

१ तावदव्यक्तं, तदल्पेनापि विस्वरेणोपहन्ति, महान् उदश्रुभररोदनेनोपहन्ति, प्राभातिककालग्रहणविधिर्गतः, इदानीं प्राभातिकप्रस्थापनविधिः– उदिते आदित्ये दिगवलोकं कृत्वा प्रस्थापयन्ति, अर्धप्रस्थापिते यदि क्षुतादिना भग्नं प्रस्थापनं अन्यो दिगवलोकं कृत्वा तत्रैव प्रस्थापयति, एवं तृतीयवारायामपि, दिगवलोककरणे इदं पुनः कारणं। आकीर्ण–पुद्गलं तत् काकादिभिरानीतं भवेत् महिका वा पतितुमारब्धा, एवमादिभिरेकस्थाने उपहते त्रीन् वारान् हस्तशतात् बहिरन्यस्मिन् स्थाने गत्वा प्रतिलेखयन्ति प्रस्थापयन्ति इत्युक्तं भवति, तत्रापि पूर्वोक्तविधिना तिस्रो वाराः प्रस्थापयन्ति, एवं द्वितीयस्थानेऽप्यशुद्धे ततोऽपि हस्तशतात्परतोऽन्यस्मिन् स्थाने गत्वा त्रीन् वारान् पूर्वोक्तविधानेन

प्रत सूत्रांक [सू.]
दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७५६॥

पट्ठवेंति, जइ सुद्धं तो करेंति सज्झायं, नववारहए खुताइणा णियमा हओ, (ततो)पढमाए पोरिसीए न करेंति सज्झायमिति गाथार्थः ॥ १३९९ ॥

पट्ठविर्यमि सिलोगे छीए पडिलेह तिन्नि अन्नत्थ । सोणिय मुत्तपुरीसे घाणालोअं परिहरिज्जा ॥ १४०० ॥

व्याख्या—जदा पट्ठवणाए तिन्नि अज्झयणा समत्ता, तदा उवरिमेगो सिलोगो कड्ढियव्वो, तंमि समत्ते पट्ठवणं समप्पइ, बितियपादो गयत्थो 'सोणिय'त्ति अस्य व्याख्या—

आलोअंमि चिलमिणी गंधे अन्नत्थ गंतु पकरंति । वाघाइयकालंमी दंडग मरुआ नवरि नत्थि ॥ १४०१ ॥

व्याख्या—जत्थ सज्झायं करेंतेहिं सोणियवच्चिगा दीसंति तत्थ न करेंति सज्झायं, कडगं चिलिमिलिं वा अंतरे दातुं करेंति, जत्थ पुण सज्झायं चेव करेन्ताण मुत्तपुरीसकलेवरादीयाण गंधे अण्णंमि वा असुभगंधे आगच्छंते तत्थ सज्झायं न करेंति, अण्णंपि बंधणसेहणादिआलोयं परिहरेज्जा, एयं सव्वं निव्वाघाए काले भणियं ॥ वाघाइमकालोऽपि एवं चेव, नवरं गंडगमरुगदिट्ठंता न संभवंति ॥ १४०१ ॥

१ प्रस्थापयन्ति, यदि शुद्धं तर्हि कुर्वन्ति स्वाध्यायं, नववारहते क्षुतादिना नियमात् हतस्ततः प्रथमायां पौरुष्यां न कुर्वन्ति स्वाध्यायं। यदि प्रस्थापने त्रीण्यध्ययनानि समाप्तानि तदोपर्येकः श्लोकः कथयितव्यः, तस्मिन् समाप्ते प्रस्थापनं समाप्यते, द्वितीयपादो गतार्थः, यत्र स्वाध्यायं कुर्वद्भिः शोणितवर्चिका दृश्यन्ते तत्र न कुर्वन्ति स्वाध्यायं, कटकं चिलिमिलिं वाऽन्तरा दत्त्वा कुर्वन्ति, यत्र पुनः स्वाध्यायमेव कुर्वतां मूत्रपुरीषादिकलेवरादिकानां गन्धोऽन्यो वा गन्धोऽशुभ आगच्छति तत्र स्वाध्यायं न कुर्वन्ति, अन्यमपि बन्धनसेधनाद्यालोकं परिहरेत्, एतत् सर्वं निर्व्याघाते काले भणितं, व्याघातकालोऽप्येवमेव, नवरं गण्डगमरुकदृष्टान्तौ न संभवतः ।

४ प्रतिक्रमणाध्य० अस्वाध्यायनिर्युक्तिः ॥७५६॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

एएसामन्नयरेऽसज्झाए जो करेइ सज्झायं। सो आणाअणवत्थं मिच्छत्त विराहणं पावे ॥ १४०२ ॥

व्याख्या—निगदसिद्धा ॥ १४०२ ॥ 'असज्झाइयं तु दुविहं' इत्यादिमूलद्वारगाथायां परसमुत्थमस्वाध्यायिकद्वारं सप्रपञ्चं गतं, इदानीमात्मसमुत्थास्वाध्यायिकद्वारावयवार्थप्रतिपादनायाह—

आयसमुत्थमसज्झाइयं तु एगविध होइ दुविहं वा। एगविहं समणाणं दुविहं पुण होइ समणीणं ॥ १४०३ ॥

व्याख्या—पूर्वार्द्धं कण्ठ्यं, पश्चार्द्धव्याख्या त्वियं–एगविहं समणाणं तच्च व्रणे भवति, समणीणं दुविहं–व्रणे ऋतुसंभवे चेति गाथार्थः ॥ १४०३ ॥ एवं व्रणे विधानं—

धोयंमि उ निप्पगले बंधा तिन्नेव हुंति उक्कोसं। परिगलमाणे जयणा दुविहंमि य होइ कायव्वा ॥ १४०४ ॥

व्याख्या—पढमं चिय वणो हत्थसय बाहिं धोवित्तु निप्पगलो कओ, ततो परिगलंते तिण्णि बंधा जाव उक्कोसेणं गालंतो वाएइ, तत्थ जयणा वक्खमाणलक्खणा, 'दुविह'मिति दुविहं वणसंभवं उउयं च। दुविहेऽवि एवं पट्टग-जयणा कायव्वा ॥ १४०४ ॥

समणो उ वणिव्व भगंदरिव्व बंधं करित्तु वाएइ। तहवि गलंते छारं दाउं दो तिन्नि बंधा उ ॥ १४०५ ॥

---

१ एकविधं श्रमणानां तच्च व्रणे भवति, श्रमणीनां द्विविधं। एवं व्रणे विधानं–प्रथममेव व्रणो हस्तशतात् बहिः प्रक्षाल्य निष्प्रगलः कृतः, ततः परिगलति त्रयो बन्धाः यावदुत्कृष्टेन गलनान्वितो वाचयति, तत्र यतना वक्ष्यमाणलक्षणा, द्विविधं व्रणसंभवमार्त्तवं च, द्विविधेऽप्येवं पट्टकयतना कर्त्तव्या,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७५७॥ | ४ प्रतिक्र-मणाध्य०

व्याख्या—१वणे धोवंमि निप्पगले हत्थसय बाहिरओ पट्टगं दाउं वाएइ, परिगलमाणेण भिन्ने तंमि पट्टगे तस्स उवरिं छारं दाउं पुणो पट्टगं देइ वाएइ य, एवं तइयंपि पट्टगं बंधेज्ज वायणं देज्जा, तओ परं गलमाणे हत्थसय बाहिरं गंतुं व्रण-पट्टगे य धोविय पुनरनेनैव क्रमेण वाएइ। अहवा अण्णत्थ पढंति ॥ १४०५ ॥

एमेव य समणीणं वणंमि इअरंमि सत्त बंधा उ। तहविय अठायमाणे धोएउं अहव अन्नत्थ ॥ १४०६ ॥

व्याख्या—इयरं तु-उतुतं, तत्थवि एयं चेव नवरं सत्त बंधा उक्कोसेणं कायवा, तहवि अट्ठायंते हत्थसय बाहिरओ धोवेउं पुणो वाएति। अहवा अण्णत्थ पढंति ॥ १४०६ ॥

एएसामन्नयरेऽसज्झाए अप्पणो उ सज्झायं। जो कुणइ अजयणाए सो पावइ आणमाईणि ॥ १४०७ ॥

व्याख्या—निगदसिद्धा ॥ १४०७ ॥ न केवलमाज्ञाभङ्गादयो दोषा भवन्ति, इमे य—

सुअनाणंमि अभत्ती लोअविरुद्धं पमत्तछलणा य। विज्जासाहणवइगुन्नधम्मया एव मा कुणसु ॥ १४०८ ॥

व्याख्या—सुयणाणे अणुपयारओ अभत्ती भवति, अहवा सुयणाणभत्तिराएण असज्झाइए सज्झायं मा कुणसु,

---

१ व्रणे धौते निष्प्रगले हस्तशतात् बहिः पट्टकं दत्त्वा वाचयति, परिगलता भिन्ने तस्मिन् पट्टके तस्योपरि भस्म दत्त्वा पुनः पट्टकं ददाति वाचयति च, एवं तृतीयमपि पट्टकं बध्नीयात् वाचनां च दद्यात्, ततः परं गलति हस्तशतात् बहिर्गत्वा व्रणं पट्टकांश्च धावित्वा वाचयति, अथवाऽन्यत्र पठन्ति। इतरस्त्वार्त्तवं, तत्राप्येतदेव नवरं सप्त बन्धाः उत्कृष्टेन कर्त्तव्याः, तथाप्यतिष्ठति हस्तशताद्बहिर्धाविस्वा पुनर्वाचयति, अथवाऽन्यत्र पठन्ति, इमे च। श्रुतज्ञानेऽनुपचारतोऽभक्तिर्भवति, अथवा श्रुतज्ञानभक्तिरागेणास्वाध्यायिके स्वाध्यायं मा कार्षीः, ॥७५७॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

उवएसो एस, जंपि लोयधम्मविरुद्धं च तं न कायवं, अविहीए पमत्तो लब्भइ, तं देवया छलेज्जा, जहा विज्जासाहणवइगुणयाए विज्जा न सिज्झइ तहा इहंपि कम्मक्खओ न होइ। वैगुण्यं–वैधर्म्यं विपरीतभाव इत्यर्थः। धम्मयाते सुयधम्मस्स एस धम्मो जं असज्झाइए सज्झाइयवज्जणं, करंतो य सुयणाणायारं विराहेइ, तम्हा मा कुणसु ॥ १४०८ ॥ चोदक आह–जइ दंतमंससोणियाए असज्झाओ नणु देहो एयमओ एव, कहं तेण सज्झायं कुणह ?, आचार्य आह—

कामं देहावयवा दंताई अवजुआ तहवि वज्जा। अणवजुआ न वज्जा लोए तह उत्तरे चेव ॥ १४०९ ॥

व्याख्या—कामं चोदकाभिप्रायअणुमयत्थे सच्चं तम्मओ देहो, तहवि जे सरीराओ अवजुत्तत्ति–पृथग्भूताः ते वज्जणिज्जा। जे पुण अणवज्जुत्ता–तत्थत्था ते नो वज्जणिज्जा, इत्युपदर्शने। एवं लोके दृष्टं लोकोत्तरेऽप्येवमेवेत्यर्थः ॥ १४०९ ॥ किं चान्यत्—

अब्भितरमललित्तोवि कुणइ देवाण अच्चणं लोए। बाहिरमललित्तो पुण न कुणइ अवणेइ य तओ णं ॥ १४१० ॥

---

१ उपदेश एषः, यदपि लोकधर्मविरुद्धं च तन्न कर्त्तव्यं, अविधौ प्रमत्तो जायते, तं देवता छलयेत्, यथा विद्यासाधनवैगुण्यतया विद्या न सिध्यति तथेहापि कर्मक्षयो न भवति। धर्मतया–श्रुतधर्मस्यैष धर्मो यदस्वाध्यायिके स्वाध्यायस्य वर्जनं, कुर्वंश्च श्रुतज्ञानाचारं विराधयति, तस्मात् मा कार्षीः। यदि दन्तमांसशोणितादिष्वस्वाध्यायिकं ननु देह एतन्मय एव, कथं तेन स्वाध्यायं कुरुत ?, चोदकाभिप्रायानुमतार्थे, सत्यं तन्मयो देहः, तथापि ये शरीरात् पृथग्भूतास्ते। वर्जनीयाः, ये पुनः तत्रस्थास्ते न वर्जनीयाः।

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७५८॥

४ प्रतिक्र-मणाध्य०

व्याख्या—अभ्यंतरा मूत्रपुरीषादयः, [1]तेहिं चेव बाहिरे उवलित्तो न कुणइ, अणुवलित्तो पुण अब्भिंतरगतेसुवि तेसु अह अच्चणं करेइ ॥ १४१० ॥ किं चान्यत्—

आउट्टियाऽवराहं संनिहिया न खमए जहा पडिमा। इह परलोए दंडो पमत्तछलणा इह सिआ उ ॥ १४११ ॥

व्याख्या—जा पडिमा 'सन्निहिय'त्ति देवयाहिट्ठिया सा जइ कोइ अणाढिएण 'आउट्टिय'त्ति जाणंतो बाहिरमललित्तो तं पडिमं छिवइ अच्चणं व से कुणइ तो ण खमए–खित्तादि करेइ रोगं वा जणेइ मारइ वा, 'इय'त्ति एवं जो असज्झाइए सज्झायं करेइ तस्स णाणायारविराहणाए कम्मबंधो, एसो से परलोए उ दंडो, इहलोए पमत्तं देवया छलेज्जा, स्यात् आणाइ विराहणा धुवा चेव ॥ १४११ ॥ कोई इमेहिं अप्पसत्थकारणेहिं असज्झाइए सज्झायं करेज्जा—

रागेण व दोसेण वऽसज्झाए जो करेइ सज्झायं। आसायणा व का से? को वा भणिओ अणायारो?॥ १४१२ ॥

व्याख्या—रागेण वा दोसेण वा करेज्जा, अहवा दरिसणमोहमोहिओ भणेज्जा–का अमुत्तस्स णाणस्स आसायणा? को वा तस्स अणायारो?, नास्तीत्यर्थः ॥ १४१२ ॥ तेसिमा विभासा—

॥७५८॥

---

१ तैरेव बहिरुपलिप्तो न करोति, अनुपलिप्तः पुनरभ्यन्तरगतेष्वपि तेष्वथार्चनां करोति, या प्रतिमा देवताधिष्ठिता सा यदि कोऽपि अनादरेण जानानो बाह्यमललिप्तस्तां प्रतिमां स्पृशति अर्चनं वा तस्याः करोति तर्हि न क्षमते–क्षिप्तचित्तादिं करोति रोगं वा जनयति मारयति वा, एवं योऽस्वाध्यायिके स्वाध्यायं करोति तस्य ज्ञानाचारविराधनया कर्मबन्धः, एष तस्य पारलौकिकस्तु दण्डः, इहलोके प्रमत्तं देवता छलयेत्, आज्ञादिविराधना ध्रुवैव । कश्चिदेभिरप्रशस्तकारणैरस्वाध्यायिके स्वाध्यायं कुर्यात् । रागेण वा द्वेषेण वा कुर्यात्, अथवा दर्शनमोहमोहितो भणेत्–अमूर्तस्य ज्ञानस्य काऽऽशातना? को वा तस्यानाचारः?, तेषामियं विभाषा

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

गणिसद्दमाइमहिओ रागे दोसंमि न सद्दए सद्दं । सव्वमसज्झायमयं एमाई हुंति मोहाओ ॥ १४१३ ॥

व्याख्या—'महितो'त्ति हृष्टस्तुष्टो नन्दितो वा परेण गणिवायगो वाहरिज्जंतो वा भवति, तदभिलाषी असज्झाइएवि सज्झायं करेइ, एवं रागे, दोसे किं वा गणी वाहरिज्जति वायगो वा, अहंपि अहिज्जामि जेण एयस्स पडिसवत्तीभूओ भवामि, जम्हा जीवसरीरावयवो असज्झाइयं तम्हा असज्झाइयमयं–न श्रद्दधातीत्यर्थः ॥ १४१३ ॥ इमे य दोसा—

उम्मायं च लभेज्जा रोगायंकं व पाउणे दीहं । तित्थयरभासियाओ भस्सइ सो संजमाओ वा ॥ १४१४ ॥

व्याख्या—खेत्तादिगो उम्माओ चिरकालिओ रोगो, आसुघाती आयंको, एतेण वा पावेज्जा, धम्माओ भंसेज्जा–मिच्छदिट्ठी वा भवति, चरित्ताओ वा परिवडइ ॥ १४१४ ॥

इहलोए फलमेयं परलोएँ फलं न दिंति विज्जाओ । आसायणा सुयस्स उ कुव्वइ दीहं च संसारं ॥ १४१५ ॥

व्याख्या—सुयणाणायारविवरीयकारी जो सो णाणावरणिज्जं कम्मं बंधति, तदुदया य विज्जाओ कओवयाराओवि फलं न देंति, न सिध्यन्ति इत्यर्थः । विहीए अकरणं परिभवो, एवं सुयासायणा, अविहीए वट्टंतो नियमा अट्ठ

---

१ परेण गणी वाचको व्याह्रियमाणो वा भवति। अस्वाध्यायिकेऽपि स्वाध्यायं करोति, एवं रागे, द्वेषे किं वा गणी व्याह्रियते वाचको वा, अहमप्यध्येष्ये येनैतस्य प्रतिसपत्नीभूतो भवामि, यस्मात् जीवशरीरावयवोऽस्वाध्यायिकं तस्मादस्वाध्यायिकमयं। इमे च दोषाः–क्षिप्तचित्तादिक उन्मादः चिरकालिको रोग आशुघाती आतङ्कः, एतेन वा प्राप्नुयात्, धर्मात् भ्रश्येत्–मिथ्यादृष्टिर्वा भवेत्, चारित्राद्वा परिपतेत्। श्रुतज्ञानाचारविपरीतकारी यः स ज्ञानावरणीयं कर्म बध्नाति, तदुदयाच्च विद्याः कृतोपचारा अपि फलं न ददति, विधेरकरणं परिभवः एवं श्रुताशातना, अविधौ वर्त्तमानो नियमात् अष्ट

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [२९]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७५२॥

४ प्रतिक्र-मणाध्य०

पगडीओ बंधति हस्सठितियाओ य दीहठितियाओ करेइ मंदाणुभावा य तिव्वाणुभावाओ करेइ, अप्पपदेसाओ बहुपदेसाओ करेइ। एवंकारी य नियमा दीहकालं संसारं निव्वत्तेइ। अहवा नाणायारविराहणाए दंसणविराहणा, णाण-दंसणविराहणाहिं नियमा चरणविराहणा, एवं तिण्ह विराहणाए अमोक्खे, अमोक्खे नियमा संसारो, तम्हा असज्झाइए ण सज्झाइव्वमिति गाथार्थः ॥ १४१५ ॥

असज्झाइयनिज्जुत्ती कहिया भे धीरपुरिसपन्नत्ता। संजमतवड्ढगाणं निग्गंथाणं महरिसीणं ॥ १४१६ ॥

असज्झाइयनिज्जुत्तिं जुंजंता चरणकरणमाउत्ता। साहू खवेंति कम्मं अणेगभवसंचियमणंतं ॥ १४१७ ॥

असज्झाइयनिज्जुत्ती समत्ता ॥

व्याख्या—गाथाद्वयं निगदसिद्धं ॥ १४१६–१४१७ ॥ अस्वाध्यायिकनिर्युक्तिः समाप्ता ॥

तथा सज्झाए न सज्झाइयं 'तस्स मिच्छामिदुक्कडं' तथा स्वाध्यायिके—अस्वाध्यायिकविपर्ययलक्षणे न स्वाध्यायितं। इत्थमाशातनया योऽतिचारः कृतस्तस्य मिथ्यादुष्कृतमिति पूर्ववत्।

एयं सुत्तनिबद्धं अत्थेणऽण्णंपि होति विण्णेयं। तं पुण अव्वामोहत्थमोहओ संपवक्खामि ॥ १ ॥ तेत्तीसाए उवरिं चोत्तीसं बुद्धवयणअतिसेसा। पणतीस वयणअतिसय छत्तीसं उत्तरज्झयणा ॥ २ ॥ एवं जह समवाए जा सयभिसरिक्ख ॥७५९॥

१ प्रकृतीर्बध्नाति ह्रस्वस्थितिकाश्च दीर्घस्थितिकाः करोति मन्दानुभावाश्च तीव्रानुभावाः करोति अल्पप्रदेशाग्रा बहुप्रदेशाग्राः करोति, एवंकारी च नियमात् दीर्घकालिकं संसारं निर्वर्त्तयति, अथवा ज्ञानाचारविराधनायां दर्शनविराधना ज्ञानदर्शनविराधनयोर्नियमाच्चरणविराधना, एवं त्रयाणां विराधनयाऽमोक्षः, अमोक्षे नियमात् संसारः, तस्मादस्वाध्यायिके न स्वध्येयमिति

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [३०]

होइ सततारं । तथा चोक्तं-सयभिसया नक्खत्ते सएगतारे तहेव पण्णत्ते ॥ इय संखअसंखेहिं तहय अणंतेहिं ठाणेहिं ॥ ३ ॥ संजममसंजमस्स य पडिसिद्धादिकरणाइयारस्स । होति पडिक्कमणं तू तेत्तीसेहिं तु ताइं पुण ॥ ४॥ अवराहपदे सुत्तं अंतग्गय होति णियम सव्वेवि । सव्वो वऽइयारगणो दुगसंजोगादि जो एस ॥ ५ ॥ एगविहस्सासंजमस्सऽहव दीहपज्जवसमूहो । एवऽतियारविसोहिं काउं कुणती णमोकारं ॥ ६ ॥

णमो चउवीसाए इत्यादि, अथवा प्राक्तनाशुभसेवनायाः प्रतिक्रान्तः अपुनःकारणाय प्रतिक्रामन् नमस्कारपूर्वकं प्रतिक्रमन्नाह—

नमो चउवीसाए तित्थगराणं उसभादिमहावीरपज्जवसाणाणं (सूत्रम्)

नमश्चतुर्विंशतितीर्थकरेभ्य ऋषभादिमहावीरपर्यवसानेभ्यः, प्राकृते षष्ठी चतुर्थ्यर्थ एव भवति, तथा चोक्तं— "बहुवयणेण दुवयणं छट्ठिविभत्तीऍ भन्नइ चउत्थी । जह हत्था तह पाया नमोऽत्थु देवाहिदेवाणं ॥ १॥" इत्थं नमस्कृतस्य प्रस्तुतस्य व्यावर्णनायाह—

इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं नेआउयं संसुद्धं सल्लगत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं निज्जाणमग्गं निव्वाणमग्गं अवितहमविसंधिं सव्वदुक्खप्पहीणमग्गं, इत्थं ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति (सूत्रं)

१ बहुवचनेन द्विवचनं षष्ठीविभक्त्या भण्यते चतुर्थी । यथा हस्तौ तथा पादौ नमोऽस्तु देवाधिदेवेभ्यः ॥ १ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

अथ निर्ग्रन्थप्रवचनस्य महत्ता वर्णयते

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [३१]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥७६०॥

४ प्रतिक्र-मणाध्य०

'इदमेवे'ति सामायिकादि प्रत्याख्यानपर्यन्तं द्वादशाङ्गं वा गणिपिटकं, निर्ग्रन्थाः—बाह्याभ्यन्तरग्रन्थनिर्गताः साधवः निर्ग्रन्थानामिदं नैर्ग्रन्थ्यं 'प्रावचन'मिति प्रकर्षेणाभिविधिनोच्यन्ते जीवादयो यस्मिन् तत्प्रावचनम्, इदमेव नैर्ग्रन्थ्यं प्रावचनं किमत आह—सतां हितं सत्यं, सन्तो—मुनयो गुणाः पदार्था वा सद्भूतं वा सत्यमिति, नयदर्शनमपि स्वविषये सत्यं भवत्यत आह—'अणुत्तरं'ति नास्योत्तरं विद्यत इत्यनुत्तरं, यथावस्थितसमस्तवस्तुप्रतिपादकत्वात् उत्तममित्यर्थः, यदि नामेदमीत्थम्भूतमन्यदप्येवम्भूतं भविष्यतीत्यत आह—'केवलियं' केवलमद्वितीयं नापर-मित्थंभूतमित्यर्थः यदि नामेदमित्थभूतं तथाप्यन्यस्याप्यसंभवादपवर्गप्रापकैर्गुणैः प्रतिपूर्णं न भविष्यतीत्यत आह—'पडिपुन्नं'ति प्रतिपूर्णमपवर्गप्रापकैर्गुणैर्भृतमित्यर्थः, भृतमपि कदाचिदात्मंभरितया न तन्नयनशीलं भवि-ष्यतीत्यत आह—'नेयाउयं'ति नयनशीलं नैयायिकं, मोक्षगमकमित्यर्थः, नैयायिकमप्यसंशुद्धं—सकीर्णं नाक्षेपेण नैयायिकं भविष्यति इत्यत आह—'संसुद्धं'ति सामस्त्येन शुद्धं संशुद्धं, एकान्ताकलङ्कमित्यर्थः, एवंभूतमपि कथ-ञ्चित्तथास्वाभाव्यान्नालंभवति बन्धननिकृन्तनाथ (इदमपि तथा) भविष्यतीत्यत आह—'सल्लगत्तणं'ति कृन्ततीति कर्त्तनं शल्यानि—मायादीनि तेषां कर्त्तनं, भवनिबन्धनमायादिशल्यच्छेदकमित्यर्थः, परमतनिषेधार्थं त्वाह— ॥७६०॥ 'सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं' सेधनं सिद्धिः—हितार्थप्राप्तिः सिद्धेर्मार्गः सिद्धिमार्गः, मोचनं मुक्तिः—अहितार्थकर्म-विच्युतिस्तस्या मार्गो मुक्तिमार्ग इति, मुक्तिमार्गं—केवलज्ञानादिहितार्थप्राप्तिद्वारेणाहितकर्मविच्युतिद्वारेण च मोक्ष-साधकमिति भावना, अनेन च केवलज्ञानादिविकलाः सकर्मकाश्च मुक्ता इति दुर्नयनिरासमाह, विप्रतिपत्तिनिरा-

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [३१]

सार्थमाह–'निज्जाणमग्गं निव्वाणमग्गं' यान्ति तदिति यानं 'कृत्यल्युटो बहुलं' (पा०३–३–११३) इति वचनात् कर्मणि ल्युट्, निरुपमं यानं निर्यानं, ईषत्प्राग्भाराख्यं मोक्षपदमित्यर्थः, तस्य मार्गो निर्याणमार्ग इति, निर्याणमार्गः–विशिष्टनिर्वाणप्राप्तिकारणमित्यर्थः, अनेनानियतसिद्धिक्षेत्रप्रतिपादनपरदुर्णयनिरासमाह, निर्वृतिर्निर्वाणं–सकलकर्मक्षयजमात्यन्तिकं सुखमित्यर्थः, निर्वाणस्य मार्गो निर्वाणमार्ग इति, निर्वाणमार्गः परमनिर्वृतिकारणमिति हृदयं, अनेन च निःसुखदुःखा मुक्तात्मान इति प्रतिपादनपरदुर्णयनिरासमाह, निगमयन्नाह–इदं च "अवितहमविसंधिं सव्वदुक्खप्पहीणमग्गं" अवितथं–सत्यं अविसन्धि–अव्यवच्छिन्नं, सर्वदा अवरविदेहादिषु भावात्, सर्वदुःखप्रहीणमार्गं–सर्वदुःखप्रहीणो–मोक्षस्तत्कारणमित्यर्थः, साम्प्रतं परार्थकरणद्वारेणास्य चिन्तामणित्वमुपदर्शयन्नाह–"एत्थट्ठि (इत्थंट्ठि) या जीवा 'सिज्झंति'त्ति 'अत्र' नैर्ग्रन्थे प्रवचने स्थिता जीवाः सिध्यन्तीत्यणिमादिसंयमफलं प्राप्नुवन्ति 'बुज्झंती'ति बुध्यन्ते केवलिनो भवन्ति 'मुच्चंति'त्ति मुच्यन्ते भवोपग्राहिकर्मणा 'परिनिव्वायंति'त्ति परि–समन्तात् निर्वान्ति, किमुक्तं भवति ?–'सव्वदुक्खाणमंतं करिंति'त्ति सर्वदुःखानां शारीरमानसभेदानां अन्तं–विनाशं कुर्वन्ति–निर्वर्त्तयन्ति । इत्थमभिधायाधुनाऽत्र चिन्तामणिकल्पे कर्ममलप्रक्षालनसलिलौघं श्रद्धानमाविष्कुर्वन्नाह—

● तं धम्मं सद्दहामि पत्तियामि रोएमि फासेमि अणुपालेमि, तं धम्मं सद्दहंतो पत्तिअंतो रोयंतो फासंतो अणुपालंतो तस्स धम्मस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए असंजमं परिआणामि संजमं उवसंपज्जामि अबंभं परिआणामि बंभं उवसंपज्जामि अकप्पं परियाणामि कप्पं उवसंपज्जामि

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

निर्ग्रन्थप्रवचन लक्षण धर्मस्य श्रद्धा, रुचि आदे: कथनं

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [३२]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७६१॥

४ प्रतिक्रमणाध्य०

अण्णाणं परिआणामि नाणं उवसंपज्जामि अकिरियं परियाणामि किरियं उवसंपज्जामि मिच्छत्तं परियाणामि सम्मत्तं उवसंपज्जामि अबोहिं परियाणामि बोहिं उवसंपज्जामि अमग्गं परियाणामि मग्गं उवसंपज्जामि (सूत्रं)

य एष नैर्ग्रन्थ्यप्रावचनलक्षणो धर्म उक्तः तं धर्मं श्रद्ध्महे (धे) सामान्येनैवमयमिति 'पत्तियामि'त्ति प्रतिपद्यामहे (द्ये) प्रीतिकरणद्वारेण 'रोएमि'त्ति रोचयामि, अभिलाषातिरेकेणासेवनाभिमुखतया, तथा प्रीती रुचिश्च भिन्ने एव, यतः क्वचिद्ध्यादौ प्रीतिसद्भावेऽपि न सर्वदा रुचिः, 'फासेमि'त्ति स्पृशामि आसेवनाद्वारेणेति 'अणुपालेमि' अनुपालयामि पौनःपुन्यकरणेन 'तं धम्मं सद्दहंतो' इत्यादि, तं धर्मं श्रद्दधानः प्रतिपद्यमानः रोचयन् स्पृशन् अनुपालयन् 'तस्स धम्मस्स अब्भुट्ठिओमि आराधनाए'त्ति तस्य धर्मस्य प्रागुक्तस्य अभ्युत्थितोऽस्मि आराधनायाम्–आराधनविषये 'विरतोमि विराधनाए'त्ति विरतोऽस्मि–निवृत्तोऽस्मि विराधनायां–विराधनाविषये, एतदेव भेदेनाह–'असंजमं परियाणामि, संजमं उवसंपज्जामि' असंयमं–प्राणातिपातादिरूपं प्रतिजानामीति ज्ञपरिज्ञया विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याख्यामीत्यर्थः, तथा संयमं–प्रागुक्तस्वरूपं उपसंपद्यामहे(द्ये),प्रतिपद्याम(हे)इत्यर्थः, तथा 'अबंभं परियाणामि बंभं उवसंपज्जामि' अब्रह्म–बस्त्यनियमलक्षणं विपरीतं ब्रह्म, शेषं पूर्ववत् , प्रधानासंयमाङ्गत्वाच्चाब्रह्मणो निदानपरिहारार्थमनन्तरमिदमाह, असंयमाङ्गत्वादेवाह–'अकप्पं परियाणामि कप्पं उवसंपज्जामि' अकल्पोऽकृत्यमाख्यायते कल्पस्तु कृत्यं इति, इदानीं द्वितीयं बन्धकारणमाश्रित्याह, यत उक्तं [च]–"अस्संजमो य एक्को अण्णाणं अविरई य दुविहं" इत्यादि । 'अण्णाणं परियाणामि नाणं उवसंपज्जामि' अज्ञानं सम्यगूज्ञानादन्यत् ज्ञानं तु भगवद्वचनजं, ॥७६१॥

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [३३]

अज्ञानभेदपरिहरणार्थैवाह–'अकिरियं परियाणामि किरियं उवसंपज्जामि' अक्रिया–नास्तिवादः क्रिया–सम्यग्वादः। तृतीयं बन्धकारणमाश्रित्याह–'मिच्छत्तं परियाणामि सम्मत्तं उवसंपज्जामि' मिथ्यात्वं–पूर्वोक्तं सम्यक्त्वमपि, एतदङ्गत्वादेवाह–'अबोहिं परियाणामि बोहिं उवसंपज्जामि' अबोधिः–मिथ्यात्वकार्यं बोधिस्तु सम्यक्त्वस्येति, इदानीं सामान्येनाह–'अमग्गं परियाणामि मग्गं उवसंपज्जामि' अमार्गो–मिथ्यात्वादिः मार्गस्तु सम्यग्दर्शनादिरिति। इदानीं छद्मस्थत्वादशेषशुद्ध्यर्थमाह—

जं संभरामि जं च न संभरामि जं पडिक्कमामि जं च न पडिक्कमामि तस्स सव्वस्स देवसियस्स अइयारस्स पडिक्कमामि समणोऽहं संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मो अनियाणो दिट्ठिसंपण्णो मायामोसविवज्जिओ।(सूत्रं)

यत् किञ्चित् स्मरामि यच्च छद्मस्थानाभोगान्नेति, तथा 'जं पडिक्कमामि जं च न पडिक्कमामि' यत् प्रतिक्रमामि आभोगादिविदितं यच्च न प्रतिक्रमामि सूक्ष्ममविदितं, अनेन प्रकारेण यः कश्चिदतिचारः कृतः 'तस्स सव्वस्स देवसियस्स अतियारस्स पडिक्कमामि'त्ति कण्ठ्यं, इत्थं प्रतिक्रम्य पुनरकुशलप्रवृत्तिपरिहारायात्मानमालोचयन्नाह–'समणोऽहं संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मो अणियाणो दिट्ठिसंपन्नो मायामोसविवज्जिओ'त्ति श्रमणोऽहं तत्रापि न चरकादिः, किं तर्हि ?, संयतः सामस्त्येन यतः इदानीं, विरतो–निवृत्तः अतीतस्यैष्यस्य च निन्दासंवरणद्वारेण अत एवाह–प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा, प्रतिहतम्–इदानीमकरणतया प्रत्याख्यातमतीतं निन्दया एष्यमकरणतयेति, प्रधानोऽयं दोष इतिकृत्वा तत्शून्यतामात्मनो भेदेन प्रतिपादयन्नाह–'अनिदानो' निदानरहितः, सकलगुणमूलभूतगुणयुक्ततां दर्शयन्नाह–'दृष्टिसंपन्नः' सम्यग्दर्शनयुक्त इत्यर्थः । वक्ष्यमाणद्रव्यवन्दनपरिहारायाह—मायामृषाविवर्जकः (विवर्जितः)–मायागर्भमृषा वादपरिहारीत्युक्तं भवति । एवंभूतः सन् किं ?—

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अतिचार-प्रतिक्रमण अनन्तर आत्मानां आलोचना

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [३४]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७६२॥

अड्डाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पनरससु कम्मभूमीसु जावंति केइ साहू रयहरणगुच्छपडिग्गहधारा पंचमहव्वयधारा। अट्ठारसहस्ससीलंगधारा अक्खयायारचरित्ता ते सव्वे सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि। (सूत्रं)

अर्द्धतृतीयेषु द्वीपसमुद्रेषु-जम्बूद्वीपधातकीखण्डपुष्करार्द्धेषु पञ्चदशसु कर्मभूमिषु-पञ्चभरतपञ्चैरावतपञ्चविदेहाभिधानासु यावन्तः केचन साधवः रजोहरणगुच्छप्रतिग्रहधारिणः, निह्नवादिव्यवच्छेदायाह-पञ्चमहाव्रतधारिणः, पञ्च महाव्रतानि-प्रतीतानि, अतस्तदेकाङ्गविकलप्रत्येकबुद्धसङ्ग्रहायाह-अष्टादशशीलाङ्गसहस्रधारिणः, तथाहि-केचिद् भगवन्तो रजोहरणादिधारिणो न भवन्त्यपि, तानि चाष्टादशशीलाङ्गसहस्राणि दर्श्यन्ते, तत्रेयं करणगाथा-जोए करणे सन्ना इंदिय भोमाइ समणधम्मे य। सीलंगसहस्साणं अट्ठारसगस्स निप्फत्ती ॥ १ ॥

४ प्रतिक्रमणाध्य०

स्थापना त्वियं—

म०	व०	का०							
ण क०	ण का०	ण अ०							
आ०	भ०	मै०	प०						
सो०	च०	घा०	र०	फा०					
पु०	आ०	ते०	वा०	व०	बे०	ते०	च०	पं०	अ०
ख०	मा०	आ०	मु०	त०	सं०	स०	सो०	आ०	बं०

इयं भावना—मणेण ण करेइ आहारसण्णाविप्पजढो सोतिंदियसंवुडो खंतिसंपन्नो पुढवीकायसंरक्खओ १, मणेण ण करेइ आहारसण्णाविप्पजढो सोतिंदियसंवुडो खंतिसंपन्नो आउक्कायसंरक्खओ २ एवं तेउ ३ वाउ ४ वणस्सति ५ बि० ६ ति० ७ च० ८ पं० ९ ॥७६२॥

जे नो करिंति मणसा निज्जियआहारसन्नसोइंदि पुढवीकायारंभे खंतिजुआ ते मुणि वन्दे ॥ १ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

१८००० शिलांगरथस्य वर्णनं

प्रत सूत्रांक ||१,२||

दीप अनुक्रम [३५,३६]

अजीवेसु दस भेदा, एते खंतिपयं अमुयंतेण लद्धा। एवं मद्दवादिसु एक्केक्के दस २ लब्भति, एवं सतं, एते सोतिंदियममुयंतेण लद्धा, एवं चक्खिदियादियेसुवि एक्केक्के सयं २ जाता सता ५००, एतेवि आहारसण्णाऽपरिच्चायगेण लद्धा, भयादिसण्णादिसुवि पत्तेयं २ पंच सया, जाता दो सहस्सा, एते न करेंतित्ति एतेण लद्धा न कारवेदिएतेणवि दो करेंते णाणुजाणति एतेणवि दो सहस्सा २०००, जाता ६ सहस्सा, एते मणेण लद्धा ६०००, वायाएवि ६०००, काएणवि छत्ति ६०००, जाता अट्ठारसत्ति १८०००। 'अक्षताचारचारित्रिणः' अक्षताचार एव चारित्रं, तान् 'सर्वान्' गच्छगतनिर्गतभेदान् 'शिरसा' उत्तमाङ्गेन मनसा–अन्तःकरणेन मस्तकेन वन्दत(वन्दे) इति वाचा, इत्थमभिवन्द्य साधून् पुनरोघतः सकलसत्त्वक्षामणमैत्रीप्रदर्शनायाह—

खामेमि सव्व जीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे। मेत्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणइ ॥ १ ॥

एवमहं आलोइय निन्दिय गरहिय दुगुंछियं सम्मं। तिविहेण पडिक्कंतो वंदामि जिणे चउवीसं ॥ २ ॥ (सूत्रं)

निगदसिद्धा एवेयं, सवे जीवा खमंतु मेत्ति, मा तेषामप्यक्षान्तिप्रत्ययः कर्मबन्धो भवत्विति करुणयेदमाह। समाप्तौ स्वरूपप्रदर्शनपुरःसरं मङ्गलगाहा–एवेत्यादि निगदसिद्धा, एवं दैवसिकं प्रतिक्रमणमुक्तं, रात्रिकमप्येवम्भूतमेव, नवरं यत्रैव दैवसिकातिचारोऽभिहितस्तत्र रात्रिकातिचारो वक्तव्यः। आह–यद्येवं 'इच्छामि पडिक्कमिउं गोयरचरियाए' इत्यादि सूत्रमनर्थकं, रात्रावस्य असंभवादिति, उच्यते, स्वप्नादौ संभवादित्यदोषः। इत्युक्तोऽनुगमः, नयाः प्राग्वत् ॥ इत्याचार्यश्रीमद्धरिभद्रसूरिशक्रविहितायां आवश्यकवृत्तौ शिष्यहितायां प्रतिक्रमणाध्ययनं समाप्तं ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

अत्र अध्ययनं -४- 'प्रतिक्रमणं' परिसमाप्तं

प्रत सूत्रांक [--]

दीप अनुक्रम [३६..]

अथ कायोत्सर्गाध्ययनं

व्याख्यातं प्रतिक्रमणाध्ययनमधुना कायोत्सर्गाध्ययनमारभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः–अनन्तराध्ययने वन्दनाद्यकरणादिना स्खलितस्य निन्दा प्रतिपादिता, इह तु स्खलितविशेषतोऽपराधव्रणविशेषसंभवादेतावताऽशुद्धस्य सतः प्रायश्चित्तभेषजेनापराधव्रणचिकित्सा प्रतिपाद्यते, यद्वा प्रतिक्रमणाध्ययने मिथ्यात्वादिप्रतिक्रमणद्वारेण कर्मनिदानप्रतिषेधः प्रतिपादितः, यथोक्तं–'मिच्छत्तपडिक्कमण' मित्यादि, इह तु कायोत्सर्गकरणतः प्रागुपात्तकर्मक्षयः प्रतिपाद्यते, वक्ष्यते च–“जहं करगओ निकंतइ दारुं जंतो पुणोऽवि वच्चंतो । इय किंतंति सुविहिया काउस्सग्गेण कम्माइं ॥ १ ॥ काउस्सग्गे जह सुट्ठियस्स भज्जंति अंगमंगाइं । इय भिंदंति सुविहिया अट्ठविहं कम्मसंघायं ॥ २ ॥” इत्यादि, अथवा सामायिके चारित्रमुपवर्णितं, चतुर्विंशतिस्तवे त्वर्हतां गुणस्तुतिः, सा च ज्ञानदर्शनरूपा, एवमिदं त्रितयमुक्तं, अस्य च वितथासेवनमैहिकामुष्मिकापायपरिजिहीर्षुणा गुरोर्निवेदनीयं, तच्च वन्दनपूर्वकमित्यतस्तन्निरूपितं, निवेद्य च भूयः शुभेष्वेव स्थानेषु प्रतीपं क्रमणमासेवनीयमित्यनन्तराध्ययने तन्निरूपितं, इह तु तथाऽप्यशुद्धस्यापराधव्रणचिकित्सा प्रायश्चित्तभेषजात् प्रतिपाद्यते, तत्र प्रायश्चित्तभैषजमेव तावद्विचित्रं प्रतिपादयन्नाह—

आलोयण पडिक्कमणे मीस विवेगे तहा विउस्सग्गे । तव छेय मूल अणवठ्ठया य पारंचिए चेव ॥ १४१८ ॥

'आलोयणं'ति आलोचना प्रयोजनतो हस्तशताद् बहिर्गमनागमनादौ गुरोर्विकटना, 'पडिक्कमणे'त्ति प्रतीपं क्रमणं

१ यथा क्रकचो निकृन्तति दारु यान् पुनरपि व्रजन् । एवं कृन्तन्ति सुविहिताः कायोत्सर्गेण कर्माणि ॥ १ ॥ कायोत्सर्गे यथा सुस्थितस्य भज्यन्ते अङ्गोपाङ्गानि । एवं भिन्दन्ति सुविहिता अष्टविधं कर्मसंघातम् ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

- **अत्र अध्ययनं -५- 'कायोत्सर्ग' आरभ्यते**

प्रायश्चित्तस्य दशविधत्वं प्रकाश्यते

प्रत सूत्रांक [--]

दीप अनुक्रम [३६..]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७६४॥

५ कायोत्सर्गाध्ययनं कायनिक्षेपः

प्रतिक्रमणं, सहसाऽसमितादौ मिथ्यादुष्कृतकरणमित्यर्थः,‘मीस’त्ति मिश्रं शब्दादिषु रागादिकरणे, विकटना मिथ्यादुष्कृतं चेत्यर्थः, ‘विवेगे’त्ति विवेकः अनेषणीयस्य भक्तादेः कथञ्चित् गृहीतस्य परित्याग इत्यर्थः, तथा ‘विउस्सग्गे’त्ति तथा व्युत्सर्गः कुस्वप्नादौ कायोत्सर्ग इति भावना, ‘तवे’त्ति कर्म तापयतीति तपः–पृथिव्यादिसंघट्टनादौ निर्विग(कृ)तिकादि, ‘छेदे’त्ति तपसा दुर्दमस्य श्रमणपर्यायच्छेदनमिति हृदयं, ‘मूल’त्ति प्राणातिपातादौ पुनर्व्रतारोपणमित्यर्थः,‘अणवठ्ठया य’त्ति हस्ततालादिप्रदानदोषात् दुष्टतरपरिणामत्वाद् व्रतेषु नावस्थाप्यते इत्यनवस्थाप्यः तद्भावोऽनवस्थाप्यता, ‘पारंचिए चेव’त्ति पुरुषविशेषस्य स्वलिङ्गराजपत्न्याद्यासेवनायां पाराञ्चिकं भवति, पारं–प्रायश्चित्तान्तमञ्चति–गच्छतीति पाराञ्चिकं, न तत ऊर्द्ध्वं प्रायश्चित्तमस्तीति गाथार्थः ॥ १४१८ ॥ एवं प्रायश्चित्तभैषजमुक्तं, साम्प्रतं व्रणः प्रतिपाद्यते, स च द्विभेदः–द्रव्यव्रणो भावव्रणश्च, द्रव्यव्रणः शरीरक्षतलक्षणः, असावपि द्विविध एव, तथा चाह–

दुविहो कायंमि वणो तदुब्भवागंतुओ अ णायव्वो । आगंतुयस्स कारइ सल्लुद्धरणं न इयरस्स ॥ १४१९ ॥
तणुओ अतिक्खतुंडो असोणिओ केवलं तए लग्गो । अवउज्झत्ति सल्लो सल्लो न मलिज्जइ वणो उ॥ १४२० ॥
लग्गुद्धियंमि बीए मलिज्जइ परं अदूरगे सल्ले । उद्धरणमलणपूरण दूरयरगए तइयगंमि ॥ १४२१ ॥ ॥७६४॥
मा वेअणा उ तो उद्धरित्तु गालंति सोणिय चउत्थे । रुज्झइ लहुंति चिट्ठा वारिज्जइ पंचमे वणिणो ॥ १४२२ ॥
रोहेइ वणं छट्ठे हियमियभोई अभुंजमाणो वा । तित्तिअमित्तं छिज्जइ सत्तमए पूइमंसाई ॥ १४२३ ॥
तहविय अठायमाणो गोणसखइयाइ रुप्फए वावि । कीरइ तयंगछेओ सअट्ठिओ सेसरक्खट्ठा ॥ १४२४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

‘व्रण”स्य भेद-प्रभेदानां कथनं

प्रत
सूत्रांक
[--]

दीप
अनुक्रम
[३६..]

मूलुत्तरगुणरूवस्स ताइणो परमचरणपुरिसस्स । अवराहसल्लपभवो भाववणो होइ नायव्वो ॥ १ ॥ (प्र०)॥
भिक्खायरियाइ सुज्झइ अइआरो कोइ वियडणाए उ। बीओ असमिओमित्ति कीस सहसा अगुत्तो वा ?॥१४२५-
सद्दाइएसु रागं दोसं च मणा गओ तइयगंमि । नाउं अणेसणिज्जं भत्ताइविगिंचण चउत्थे ॥ १४२६ ॥
उस्सग्गेणवि सुज्झइ अइआरो कोइ कोइ उ तवेणं । तेणवि असुज्झमाणं छेयविसेसा विसोहिंति ॥ १४२७ ॥

द्विविधो–द्विप्रकारः 'कायंमि वणो'त्ति चीयत इति कायः–शरीरमित्यर्थः तस्मिन् व्रणः–क्षतलक्षणः, द्वैविध्यं दर्शयति–तस्मादुद्भवोऽस्येति तदुद्भवो–गण्डादिः आगन्तुकश्च ज्ञातव्यः, आगन्तुकः कण्टकादिप्रभवः, तत्रागन्तुकस्य क्रियते शल्योद्धरणं नेतरस्य–तदुद्भवस्येति गाथार्थः ॥ यद्यस्य यथोद्ध्रियते–उत्तरपरिकर्म क्रियते द्रव्यव्रण एव तदेतदभिधित्सुराह–'तणुओ अतिक्खतुंडो' इति तनुरेव तनुकं कृशमित्यर्थः, न तीक्ष्णतुण्डमतीक्ष्णमुखमिति भावना, नास्मिन् शोणितं विद्यत इत्यशोणितं केवलं नवरं त्वग्लग्नं, उद्धृत्य 'अवउज्झत्ति सल्लो'त्ति परित्यज्यते शल्यं प्राकृतशैल्या तु पुल्लिङ्गनिर्देशः, 'सल्लो न मलिज्जइ वणो य' न च मृद्यते व्रणः, अल्पत्वात् शल्यस्येति गाथार्थः ॥ प्रथमशल्यजे अयं विधिः, द्वितीयादिशल्यजे पुनरयं–'लग्गुद्धियंमि' लग्नमुद्धृतं लग्नोद्धृतं तस्मिन् द्वितीये कस्मिन् ?–अदूरगते शल्य इति योगः; मनाग् दृढलग्न इति भावना, अत्र 'मलिज्जइ परं'ति मृद्यते यदि परं व्रण इति उद्धरणं शल्यस्य, मर्दनं व्रणस्य, पूरणं कर्णमलादिना तस्यैवैतानि क्रियन्ते दूरगते तृतीये शल्य इति गाथार्थः ॥ 'मा वेयणा उ तो उद्धरेत्तु गालंति सोणिय चउत्थे । रुज्झउ लहुंति चिट्ठा वारिज्जइ' इति मा वेदना भविष्यतीति तत उद्धृत्य शल्यं गालयन्ति शोणितं चतुर्थे शल्य इति, तथा रुह्यतां शीघ्रमिति चेष्टा–परि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [--]

दीप अनुक्रम [३६..]

स्पन्दनादिलक्षणा वार्यते–निषिध्यते, पञ्चमे शल्ये उद्धृते व्रणोऽस्यास्तीति व्रणी तस्य व्रणिनः रौद्रतरत्वाच्छल्यस्येति गाथार्थः॥

'रोहेइ वणं छट्ठे' इति रोहयति व्रणं षष्ठे शल्ये उद्धृते सति हितमितभोजी हितं–पथ्यं मितं–स्तोकं अभुञ्जन्वेति, यावच्छल्येन दूषितं 'तत्तियमित्तं'ति तावन्मात्रं छिद्यते, सप्तमे शल्य उद्धृते किं ?–पूतिमांसादीति गाथार्थः॥ 'तहविय अठाये'ति तथापि च 'अट्ठायमाणे'त्ति अतिष्ठति सति विसर्पतीत्यर्थः, गोनसभक्षितादौ रच्क(रुम्फ)कैवापि क्रियते, तदङ्गच्छेदः सहास्थिकः, शेषरक्षार्थमिति गाथार्थः॥ एवं तावद् द्रव्यव्रणस्तच्चिकित्सा च प्रतिपादिता, अधुना भावव्रणः प्रतिपाद्यते—

'मुलूत्तरगुणरूवस्स' गाहा, इयमन्यकर्तृकी सोपयोगा चेति व्याख्यायते, मूलगुणाः–प्राणातिपातादिविरमणलक्षणाः पिण्डविशुद्ध्यादयस्तु उत्तरगुणाः, एते एव रूपं यस्य स मूलगुणोत्तरगुणरूपस्तस्य, तायिनः, परमश्चासौ चरणपुरुषश्चेति समासः तस्य अपराधाः–गोचरादिगोचराः त एव शल्यानि तेभ्यः प्रभवः–सम्भवो यस्य स तथाविधः भावव्रणो भवति ज्ञातव्य इति गाथार्थः॥ साम्प्रतमस्यानेकभेदभिन्नस्य भावव्रणस्य विचित्रप्रायश्चित्तभैषजेन चिकित्सा प्रतिपाद्यते, तत्र—

'भिक्खायरियाइ' भिक्षाचर्यादिः शुध्यत्यतिचारः कश्चिद्विकटनयैव–आलोचनयैवेत्यर्थः, आदिशब्दाद् विचारभूम्यादिगमनजो गृह्यते, इह चातिचार एव व्रणः २, एवं सर्वत्र योज्यं, 'बितिउ'त्ति द्वितीयो व्रणः अप्रत्युपेक्षिते खेलविवेकादौ-हा असमितोऽस्मीति सहसा अगुप्तो वा मिथ्यादुष्कृतमिति विचिकित्सेत्ययं गाथार्थः॥ 'शब्दादिषु इष्टानिष्टेषु रागं द्वेषं वा मनसा(मनाक्) गतः अत्र 'तइओ' तृतीयो व्रणः मिश्रभैषज्यचिकित्स्यः, आलोचनाप्रतिक्रमणशोध्य इत्यर्थः, ज्ञात्वा अनेषणीयं भक्तादि विगिञ्चना चतुर्थ इति गाथार्थः॥ 'उस्सग्गेणवि सुज्झइ' कायोत्सर्गेणापि शुद्ध्यति अतिचारः कश्चित्, कश्चित्

५ कायोत्सर्गाध्ययनं कायनिक्षेपः

॥७६५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[--]

दीप
अनुक्रम
[३६..]

तपसा पृथिव्यादिसंघट्टनादिजन्यो निर्विंगतिकादिना षण्मासान्तेन, तेनाप्यशुद्ध्यमानस्तथाभूतं गुरुतरं छेदविशेषा विशोधयन्तीति गाथार्थः ॥ १४१९–१४२७ ॥ एवं सप्तप्रकारभावव्रणचिकित्सापि प्रदर्शिता, मूलादीनि तु विषयनिरूपणद्वारेण स्वस्थानादवसेयानि, नेह वितन्यन्ते, इत्युक्तमानुषङ्गिकं, प्रस्तुतं प्रस्तुमः–एवमनेनानेकस्वरूपेण–सम्बन्धेनायातस्य कायोत्सर्गाध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि सप्रपञ्चानि वक्तव्यानि, तत्र नामनिष्पन्ने निक्षेपे कायोत्सर्गाध्ययनमिति कायोत्सर्गः अध्ययनं च, तत्र कायोत्सर्गमधिकृत्य द्वारगाथामाह निर्युक्तिकारः—

निक्खेवे १ गट्ठ २ विहाणमग्गणा ३ काल ४ भेयपरिमाणे ५ ।
असढ ६ सढे ७ विहि ८ दोसा ९ कस्सत्ति १० फलं च ११ दाराइं ॥ १४२८ ॥

'निक्खेवेगट्ठविहाण' निक्खेवेति कायोत्सर्गस्य नामादिलक्षणो निक्षेपः कार्यः 'एगट्ठ'त्ति एकार्थिकानि वक्तव्यानि 'विहाणमग्गण' त्ति विधानं भेदोऽभिधीयते भेदमार्गणा कार्या 'कालभेदपरिमाणे'त्ति कालपरिमाणमभिभवकायोत्सर्गादीनां वक्तव्यं, भेदपरिमाणमुत्सृतादिकायोत्सर्गभेदानां वक्तव्यं यावन्तस्त इति, 'असढसढे'त्ति अशठः शठश्च कायोत्सर्गकर्त्ता वक्तव्यः 'विहि'त्ति कायोत्सर्गकरणविधिर्वाच्यः 'दोस'त्ति कायोत्सर्गदोषा वक्तव्याः 'कस्सत्ति' कस्य कायोत्सर्ग इति वक्तव्यं 'फल'त्ति ऐहिकामुष्मिकभेदं फलं वक्तव्यं 'दाराइं'ति एतावन्ति द्वाराणीति गाथासमासार्थः ॥ १४२८ ॥ व्यासार्थं तु प्रतिद्वारं भाष्यकृदेवाभिधास्यति । तत्र कायस्योत्सर्गः कायोत्सर्ग इति द्विपदं नामेतिकृत्वा कायस्य उत्सर्गस्य च निक्षेपः कार्य इति । तथा चाह भाष्यकारः—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कायोत्सर्गम् अधिकृत्य निक्षेप आदि ११ द्वाराणि वर्णयते

प्रत सूत्रांक [--]

दीप अनुक्रम [३६..]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७६६॥

५ कायोत्सर्गाध्ययनं कायनिक्षेपः ॥७६६॥

काए उस्सग्गंमि य निक्खेवे हुंति दुन्नि उ विगप्पा । एएसिं दुण्हंपी पत्तेय परूवणं वुच्छं ॥ २२८ ॥ (भा०) ॥

'काए उस्सग्गंमि य' काये कायविषयः उत्सर्गे च–उत्सर्गविषयश्च एवं निक्षेपे–निक्षेपविषयौ भवतः द्वौ एव विकल्पौ–द्वावेव भेदौ, अनयोर्द्वयोरपि कायोत्सर्गविकल्पयोः प्रत्येकं प्ररूपणां वक्ष्य इति गाथार्थः ॥ २२८ ॥

कायस्स उ निक्खेवो बारसओ छक्कओ अ उस्सग्गे । एएसिं तु पयाणं पत्तेय परूवणं वुच्छं ॥ १४२९ ॥

नामं ठवणसरीरे गई निकायत्थिकाय दविए य । माउय संगह पज्जव भारे तह भावकाए य ॥ १४३० ॥

काओ कस्सइ नामं कीरइ देहोवि वुचई काओ । कायमणिओवि वुचइ बद्धमवि निकायमाहंसु ॥ १४३१ ॥

अक्खे वराडए वा कट्ठे पुत्थे य चित्तकम्मे य । सब्भावमसब्भावं ठवणाकायं वियाणाहि ॥ १४३२ ॥

लिप्पगहत्थी हत्थित्ति एस सब्भाविया भवे ठवणा । होइ असब्भावे पुण हत्थित्ति निरागिई अक्खो ॥१४३३॥

ओरालियवेउव्वियआहारगतेयकम्मए चेव । एसो पंचविहो खलु सरीरकाओ मुणेयव्वो ॥ १४३४ ॥

चउसुवि गईसु देहो नेरइयाईण जो स गइकाओ । एसो सरीरकाओ विसेसणा होइ गइकाओ ॥ १॥ (प्र०) ॥

जेणुवगहिओ वचइ भवंतरं जचिरेण कालेण । एसो खलु गइकाओ सतेयगं कम्मगसरीरं ॥ १४३५ ॥

नियमहिओ व काओ जीवनिकाओ निकायकाओ य। अत्थित्तिबहुपएसा तेणं पंचत्थिकाया उ॥ १४३६॥

जं तु पुरक्खडभावं दवियं पच्छाकडं व भावाओ । तं होइ दव्वदवियं जह भविओ दव्वदेवाई ॥२२९॥ (भा०)

जइ अत्थिकायभावो अपएसो हुज्ज अत्थिकायाणं । पच्छाकडुव्व तो ते हविज्ज दव्वत्थिकाया व ॥२३०॥(भा०)॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [--]

दीप अनुक्रम [३६..]

तीयमणागयभावं जमत्थिकायाण नत्थि अत्थित्तं। तेन र केवलएसुं नत्थी दव्वत्थिकायत्तं ॥ १४३७ ॥
कामं भवियसुराइसु भावो सो चेव जत्थ वट्टंति। एस्सो न ताव जायइ तेन र ते दव्वदेवुत्ति ॥ १४३८ ॥
दुहओऽणंतररहिया जइ एवं तो भवा अणंतगुणा। एगस्स एगकाले भवा न जुज्जंति उ अणेगा ॥ १४३९ ॥
दुहओऽणंतरभवियं जह चिट्ठइ आउअं तु जं बद्धं। हुज्जियरेसुवि जइ तं दव्वभवा हुज्ज तो तेऽवि ॥ १४४० ॥
संझासु दोसु सूरो अदिस्समाणोऽवि पप्प समईयं। जह ओभासइ खित्तं तहेव एयंपि नायव्वं ॥ १४४१ ॥
माउयपयंति नेयं नवरं अन्नोवि जो पयसमूहो। सो पयकाओ भन्नइ जे एगपए बहू अत्था २३१ ॥ (भा०)॥
संगहकाओऽणेगावि जत्थ एगवयणेण घिप्पंति। जह सालिगामसेणा जाओ वसही (ति) निविट्ठत्ति ॥१४४२॥
पज्जवकाओ पुण हुंति पज्जवा जत्थ पिंडिया बहवे। परमाणुंमिविकंमिवि जह वन्नाई अणंतगुणा ॥ १४४३ ॥
एगो काओ दुहा जाओ एगो चिट्ठइ एगो मारिओ। जीवंतो अ मएण मारिओ तं लव माणव! केण हेउणा? ॥१४४४॥
दुग तिग चउरो पंच व भावा बहुआ व जत्थ वट्टंति। सो होइ भावकाओ जीवमजीवे विभासा उ ॥ १४४५ ॥
काए सरीर देहे बुंदी य चय उवचए य संघाए। उस्सय समुस्सए वा कलेवरे भत्थ तण पाणू ॥ १४४६ ॥

तत्र 'कायस्स उ निक्खेवो' कायस्य तु निक्षेपः कार्य इति 'बारसउ'त्ति द्वादशप्रकारः। 'छकओ य उस्सग्गे' षट्कश्चोत्सर्गविषयः षट्प्रकार इत्यर्थः, पश्चार्द्धं निगदसिद्धं तत्र कायनिक्षेपप्रतिपादनायाह—'नामं ठवणा' नामकायः स्थापनाकायः शरीरकायः गतिकायः निकायकायः अस्तिकायः द्रव्यकायश्च मातृकायः संग्रहकायः पर्यायकायः भार-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [--]

दीप अनुक्रम [३६..]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७६७॥

५ कायोत्सर्गाध्ययनं कायनिक्षेपः

कायः तथा भावकायश्चेति गाथासमासार्थः ॥ व्यासार्थं तु प्रतिद्वारमेव व्याख्यास्यामः, तत्र नामकायप्रतिपादनायाह— 'काओ कस्सवि'त्ति कायः कस्यचित् पदार्थस्य सचेतनाचेतनस्य वा नाम क्रियते स नामकायः, नामाश्रित्य कायो नामकायः, तथा देहोऽपि–शरीरसमुच्छ्रयोऽपि उच्यते कायः, तथा काचमणिरपि कायो भण्यते, प्राकृते तु कायः । तथा बद्धमपि किञ्चिल्लेखादि 'निकायमाहंसु'त्ति निकाचितमाख्यातवन्तः, प्राकृतशैल्या निकायेति गाथार्थः, गतं नामद्वारं, अधुना स्थापनाद्वारं व्याख्यायते—'अक्खे वराडए' अक्षे–चन्दनके वराटके वा–कपर्दके वा काष्ठे–कुट्टिमे पुस्ते वा–वस्त्रकृते चित्रकर्मणि वा प्रतीते, किमित्याह–सतो भावः सद्भावः तथ्य इत्यर्थः तमाश्रित्य,तथा असतोभावः असद्भावः अतथ्य इत्यर्थः, तं चाश्रित्य, किं ?–स्थापनाकायं विजानाहीति गाथार्थ ॥ १४३१ ॥ सामान्येन सद्भावासद्भावस्थापनोदाहरणमाह—'लेप्पगहत्थी' यदिह लेप्यकहस्ती हस्तीति स्थापनायां निवेश्यते 'एस सब्भाविया भवे ठवण'त्ति एषा सद्भावस्थापना भवतीति, भवत्यसद्भावे पुनहस्तोति निराकृतिः–हस्त्याकृतिशून्य एव चतुरङ्गादाविति । तदेवं स्थापनाकायोऽपि भावनीय इति गाथार्थः ॥ १४३२ ॥ शरीरकायप्रतिपादनायाह—'ओरालियवेउव्विय' उदारैः पुद्गलैर्निर्वृत्तमौदारिकं विविधा क्रिया विक्रिया तस्यां भवं वैक्रियं प्रयोजनार्थिना आह्रियत इत्याहारकं तेजोमयं तैजसं, कर्मणा निर्वृत्तं कार्म्मणं, औदारिकं वैक्रियं आहारकं तैजसं कार्मणं चैव एष पञ्चविधः खलु शीर्यन्त इति शरीराणि शरीराण्येव पुद्गलसङ्घातरूपत्वात् कायः शरीरकायः विज्ञातव्य इति गाथार्थः ॥ गतिकायप्रतिपादनायाह— 'चउसुवि गइ' इयमप्यन्यकर्तृकी गाथा सोपयोगेति च व्याख्यायते–चतसृष्वपि गतिषु–नारकतिर्यग्नरामरलक्षणासु ॥७६७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

‘देहो’त्ति शरीरसमुच्छ्रयो नारकादीनां यः स गतौ काय इतिकृत्वा गतिकायो भण्यते, अत्रान्तरे आह चोदकः–‘एसो सरीरकाउ’त्ति नन्वेष शरीरकाय उक्तः, तथाहि–नौदारिकादिव्यतिरिक्ता नारकतिर्यगादिदेहा इति, आचार्य आह–‘विसेसणा होति गतिकाओ’विशेषणाद्–विशेषणसामर्थ्याद् भवति गतिकायः, विशेषणं चात्र गतौ कायो गतिकायः, यथा द्विविधाः संसारिणः–त्रसाः स्थावराश्च, पुनस्त एव स्त्रीपुंनपुंसकविशेषेण भिद्यन्त इत्येवमत्रापीति गाथार्थः॥ अथवा सर्वसत्त्वानामपान्तरालगतौ यः कायः स गतिकायो भण्यते, तथा चाह—‘जेणुवगहिओ’ येनोपगृहीत–उपकृतो व्रजति–गच्छति भवादन्यो भवः भवान्तरं तत् , एतदुक्तं भवति–मनुष्यादिर्मनुष्यभवात् च्युतः येनाश्रयेणा(श्रितोऽ)पान्तराले देवादिभवं गच्छति स गतिकायो भण्यते, तं कालमानतो दर्शयति–यच्चिरेण ‘कालेणं’ति स च यावता कालेन समयादिना व्रजति तावन्तमेव कालमसौ गतिकायो भण्यते एष खलु गतिकायः, स्वरूपेणैव दर्शयन्नाह–‘सतेयगं कम्मगसरीरं’ कार्मणस्य प्राधान्यात् सह तैजसेन वर्तत इति सतैजसं कार्मणशरीरं गतिकायस्तदाश्रयेणापान्तरालगतौ जीवगतेरिति भावनी(यम)यं गाथार्थः॥ निकायकायः प्रतिपाद्यते तत्र—‘नियय’त्ति गाथार्द्धं व्याख्यायते ‘नियमहिओ व काओ जीवनिकाय’त्ति नियतो–नित्यः कायो निकायः, नित्यता चास्य त्रिष्वपि कालेषु भावात् अधिको वा कायो निकायः, यथा अधिको दाहो निदाह इति, आधिक्यं चास्य धर्माधर्मास्तिकायापेक्षया स्वभेदापेक्षया वा,तथाहि–एकादयो यावदसङ्ख्येयाः पृथिवीकायिकास्तावत् कायस्त एव स्वजातीयान्यप्रक्षेपापेक्षया निकाय इति,एवमन्येष्वपि विभाषेत्येवं जीवनिकायसामान्येन निकायकायो भण्यते,अथवा जीवनिकायः पृथिव्यादिभेदभिन्नः षड्विधोऽपि निकायो भण्यते तत्समुदायः, एवं च निकायकाय इति, गतं निकायकायद्वारं। अधुनाऽस्तिकायः प्रतिपाद्यते,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [--]

दीप अनुक्रम [३६..]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥७६८॥

५ कायोत्सर्गाध्ययनं कायनिक्षेपः

तत्रेदं गाथाशकलं 'अत्थित्तिबहुपदेसा तेणं पंचत्थिकाया उ' अस्तीत्ययं त्रिकालवचनो निपातः, अभूवन् भवन्ति भविष्यन्ति चेति भावना, बहुप्रदेशास्तु यतस्तेन पञ्चैवास्तिकायाः तुशब्दस्यावधारणार्थत्वान्न न्यूना नाप्यधिका इति, अनेन च धर्माधर्माकाशानामेकद्रव्यत्वादस्तिकायत्वानुपपत्तिरद्धासमयस्य च ए (अने)कत्वादस्तिकायत्वापत्तिरित्येतत् परिहृतमवगन्तव्यं, ते चामी पञ्च, तद्यथा–धर्मास्तिकायोऽधर्मास्तिकायः आकाशास्तिकायः जीवास्तिकायः पुद्गलास्तिकायश्चेत्यस्तिकाया इति हृदयमयं गाथार्थः ॥ साम्प्रतं द्रव्यकायावसरस्ततस्तत्प्रतिपादनायाह—

'जं तु पुरक्खड'त्ति यद् द्रव्यमिति योगः तुशब्दो विशेषणार्थः किं विशिनष्टि?–जीवपुद्गलद्रव्यं, न धर्म्मास्तिकायादि, ततश्चैतदुक्तं भवति–यद् द्रव्यं–यद् वस्तु पुरस्कृतभावमिति–पुरः–अग्रतः कृतो भावो येनेति समासः, भाविनो भावस्य योग्यमभिमुखमित्यर्थः। 'पच्छाकडं व भावाओ'त्ति वाशब्दस्य व्यवहितः सम्बन्धः, ततश्चैवं प्रयोगः–पश्चात्कृतभावं, वाशब्दो विकल्पवचनः पश्चात् कृतः प्राप्योज्झितो भावः–पर्यायविशेषलक्षणो येन स तथोच्यते, एतदुक्तं भवति–यस्मिन् भावे वर्त्तते द्रव्यं ततो यः पूर्वमासीद् भावः तस्मादपेतं पश्चात्कृतभावमुच्यते, 'तं होति दवदवियं' तदित्थंभूतं द्विप्रकारमपि भाविनो भूतस्य च भावस्य योग्यं 'दवं'ति वस्तु वस्तुवचनो ह्येको द्रव्यशब्दः, किं?–भवति द्रव्यं, भवतिशब्दस्य व्यवहितः सम्बन्धः, इत्थं द्रव्यलक्षणमभिधायाधुनोदाहरणमाह–'जह भविओ दवदेवादि' यथेत्युदाहरणोपन्यासार्थः भव्यो–योग्यः द्रव्यदेवादिरिति, इयमत्र भावना–यो हि पुरुषादिर्मृत्वा देवत्वं प्राप्स्यति बद्धायुष्कः अभिमुखनामगोत्रो वा स योग्यत्वाद् द्रव्यदेवोऽभिधीयते, एवमनुभूतदेवभावोऽपि, आदिशब्दाद् द्रव्यनारकादिग्रहः परमाणुग्रहश्च, तथाहि–असावपि द्व्यणुकादि- ॥७६८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [--]

दीप अनुक्रम [३६..]

काययोग्यो भवत्येव, ततश्चेत्थंभूतं द्रव्यं कायो भण्यत इति गाथार्थः ॥१४३६ ॥ आह–किमिति तुशब्दविशेषणाज्जीवपुद्गलद्रव्यमङ्गीकृत्य धर्मास्तिकायादीनामिह व्यवच्छेदः कृत इति ?, अत्रोच्यते, तेषां यथोक्तप्रकारद्रव्यलक्षणायोगात्, सर्वदैवास्तिकायत्वलक्षणभावोपेतत्वाद्, आह च भाष्यकारः—'जइ अत्थिकायभावो' यद्यस्तिकायभावः अस्तिकायत्वलक्षणः, 'इय एसो होज्ज अत्थिकायाणं' 'इय' एवं यथा जीवपुद्गलद्रव्ये विशिष्टपर्याय इति एष्यन्–आगामी भवेत्, केषाम् ?–अस्तिकायानां–धर्मास्तिकायादीनामिति, व्याख्यानाद् विशेषप्रतिपत्तिः, तथा पश्चात्कृतो वा यदि भवेत् 'तो ते हविज्ज दवत्थिकाय'त्ति ततस्ते भवेयुरिति द्रव्यास्तिकाया इति गाथार्थः यतश्च—'तीयमणागय' अतीतम्–अतिक्रान्तमनागतं भावं यद्–यस्मात् कारणादस्तिकायानां–धर्मास्तिकायादीनां नास्ति–न विद्यते अस्तित्वं–विद्यमानत्वं, कायत्वापेक्षया सदैव योगादिति हृदयं, 'तेण र'त्ति तेन किल केवलं–शुद्धं 'तेषु' धर्मास्तिकायादिषु नास्ति–न विद्यते, किं ?–'दवत्थिकाय'त्ति द्रव्यास्तिकायत्वं, सदैव तद्भावयोगादिति गाथार्थः ॥ १४३७ ॥ आह-यद्येवं द्रव्यदेवाद्युदाहरणोक्तमपि द्रव्यं न प्राप्नोति, सदैव सद्भावयोगात्, तथाहि–स एव तस्य भावो यस्मिन् वर्त्तते इति। अत्र गुरुराह—'कामं भवियसुरादि' काममित्यनुमतं यथा'भवियसुरादिषु' भव्याश्च ते सुरादयश्चेति विग्रहः आदिशब्दात् द्रव्यनारकादिग्रहः तेषु–तद्विषये विचारे भावः स एव यत्र वर्त्तते तदानीं मनुष्यादिभाव इति, किंतु एष्यो–भावी न तावज्जायते तदा, 'तेण र ते दव्वदेव'त्ति तेन ते किल द्रव्यदेवा इति, योग्यत्वाद्, योग्यस्य च द्रव्यत्वात्, न चैतद् धर्मास्तिकायादीनामस्ति, एष्यकालेऽपि तद्भावयुक्तत्वादेवेति गाथार्थः॥१४३८॥यथोक्तं द्रव्यलक्षणमवगम्य तद्भावेऽतिप्रसङ्गं च मनस्याधा-

भा० १२९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [--]

दीप अनुक्रम [३६..]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७६९॥

कायोत्सर्ग-निक्षेपः

याह चोदकः—'दुहओऽणंतररहिया''दुहउ'त्ति वर्त्तमानभावस्थितस्य उभयत एष्यकालेऽतीतकाले च 'अणंतररहिय'त्ति अनन्तरौ एष्यातीतौ अनन्तरौ च तौ रहितौ च वर्त्तमानभवभावेनेति प्रकरणाद् गम्यते अनन्तररहितौ तावपि 'जइ'त्ति यदि तस्योच्यते 'एवं तो भवा अणंतगुण'त्ति एवं सति ततो भवा अनन्तगुणाः, तद्भवद्वयव्यतिरिक्ता वर्त्तमानभवभावेन रहिता एष्या अतिक्रान्ताश्च तेऽप्युच्येरंस्ततश्च तदपेक्षयापि द्रव्यत्वकल्पना स्यात्, अथोच्येत–भवत्वेवमेव का नो हानिरिति ?, उच्यते, एकस्य–पुरुषादेरेककाले–पुरुषादिकाले भवा न युज्यन्ते–न घटन्ते अनेके–बहव इति गाथार्थः ॥१४३९॥ इत्थं चोदकेनोक्ते गुरुराह–'दुहओऽणंतरभवियं''दुहउ'त्ति वर्त्तमानभवे वर्त्तमानस्य उभयतः एष्येऽतीते चानन्तरभविकं,पुरस्कृतपश्चात्कृतभवसम्बन्धीत्युक्तं भवति,यथा तिष्ठति आयुष्कमेव तुशब्दस्यावधारणार्थत्वात्,न शेषं कर्म विवक्षितं यद् बद्धमयं गाथार्थः॥१४४०॥ पुरस्कृतभवसम्बन्धि त्रिभागावशेषायुष्कः सामान्येन तस्मिन्नेव भवे वर्त्तमानो बध्नाति, पश्चात्कृतसम्बन्धि पुनस्तस्मिन्नेव भवे वेदयति । अतिप्रसङ्गनिवृत्त्यर्थमाह–'होज्जियरेसुवि जइ तं दव्वभवा होज्ज ता तेऽवि' भवेत् इतरेष्वपि–प्रभूतेष्वतीतेषु यद् बद्धमनागतेषु च यद् भोक्ष्यते यदि तस्मिन्नेव भवे वर्त्तमानस्य द्रव्यभवा भवेरंस्ततस्तेऽपि, तदायुष्ककर्मसम्बन्धादिति हृदयं, न चैतदस्ति, तस्मादसच्चोदकवचनमिति गाथार्थः ॥१४४१॥ अस्यैवार्थस्य प्रसाधकं लोकप्रतीतं निदर्शनमभिधातुकाम आह—'संझासु दोसु सूरो' सन्ध्या च सन्ध्या च सन्ध्ये तयोः सन्ध्ययोर्द्वयोः प्रत्यूषप्रदोषप्रतिबद्धयोः सूर्य–आदित्यः अदृश्यमानोऽपि–अनुपलभ्यमानोऽपि प्रापणीयं–प्राप्यं समतिक्रान्तं–समतीतं च यथाऽवभासते–प्रकाशयति क्षेत्रं, तद्यथा–प्रत्युषसन्ध्यायां पूर्वविदेहं भरतं च, प्रदोषसन्ध्यायां तु भरतमपरविदेहं च, तथैव–यथा सूर्यः इदमपि प्रक्रान्तं ज्ञातव्यं–विज्ञे-

॥७६९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [--] दीप अनुक्रम [३६..]

यमिति, एतदुक्तं भवति–वर्त्तमानभवे स्थितः पुरस्कृतभवं पश्चात्कृतभवं च आयुष्ककर्म सद्द्रव्यतया स्पृशति, प्रकाशेनादित्यवदिति गाथार्थः ॥ १४४२ ॥ अधुना मातृकाकायः प्रतिपाद्यते, [मातृकेऽपि] मातृकापदानि 'उप्पण्णेति वे'त्यादीनि तत्समूहो मातृकाकायः, अन्योऽपि तथाविधपदसमूहो बह्वर्थ इति, तथाचाह भाष्यकारः—'माउयपयं'ति मातृकापदमिति 'णेमं' 'णेमं'ति चिह्नं, नवरमन्योऽपि यः पदसमूहः–पदसङ्घातः स पदकायो भण्यते मातृकापदकाय इति भावना, विशिष्टः पदसमूहः, किं०?–'जे एगपए बहू अत्था' यस्मिन्नेकपदे बहवः अर्थास्तेषां पदानां यः समूह इति, पाठान्तरं वा 'जस्सेकपदे बहू अत्थ'त्ति गाथार्थः ॥ १४४३ ॥ संग्रहकायप्रतिपादनायाह— 'संगहकाओ णेगा' संग्रहणं संग्रहः स एव कायः, स किंविशिष्ट ? इत्याह–'णेगावि जत्थ एगवयणेण घेप्पंति'त्ति प्रभूता अपि यत्रैकवचनेन दिश्यन्तो गृह्यन्ते, यथा शालिर्ग्रामः सेना जातो वसति निविष्टत्ति, यथासङ्ख्यं, प्रभूतेष्वपि स्तम्बेषु सत्सु जातः शालिरिति व्यपदेशः, प्रभूतेष्वपि पुरुषविलयादिषु वसति ग्रामः, प्रभूतेष्वपि हस्त्यादिषु निविष्टा सेनेति, अयं शाल्यादिरर्थः सङ्ग्रहकायो भण्यते इति गाथार्थः ॥ १४४४ ॥ साम्प्रतं पर्यायकायं दर्शयति—

'पज्जवकाओ' पर्यायकायः पुनर्भवति, पर्याया–वस्तुधर्मा यत्र–परमाण्वादौ पिण्डिता बहवः, तथा च परमाणावपि कस्मिंश्चित् सांव्यवहारिके यथा वर्णगन्धरसस्पर्शा अनन्तगुणाः अन्यापेक्षया, तथा चोक्तम्–"कारणमेव तदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः। एकरसवर्णगन्धो द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गश्च ॥ १ ॥" स चैकस्तिक्तादिरसस्तदन्यापेक्षया तिक्ततरतिक्ततमादिभेदादानन्त्यं प्रतिपद्यते, पञ्चवर्णादिष्वपि विभाषेत्ययं गाथार्थः ॥ अधुना भारकायस्तत्र गाथा—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[--]

दीप
अनुक्रम
[३६..]

आवश्यक-
हारिभ-
द्रीया

॥७७०॥

एक्को काओ दुहा जाओ' एकः कायः-क्षीरकायः द्विधा जातः, घटद्वये न्यासात्, तत्र एकस्तिष्ठति, एको मारितः, जीवन् मृतेन मारितस्तदेतत्कथमिति-ब्रूहि हे मानव ! केन कारणेन ?, कथानकं यथा प्रतिक्रमणाध्ययने परिहरणायामिति गाथार्थः, भारकायश्चात्र क्षीरभृतकुम्भद्वयोपेता कापोती भण्यते, भारश्चासौ कायश्च भारकायः, अण्णे भणंति-भारकायः कापोत्येवोच्यते इति ॥ १४४५ ॥ भावकायप्रतिपादनायाह—

'दुगतिगचउरो' द्वौ त्रयश्चत्वारः पञ्च वा भावा-औदयिकादयः प्रभूता वाऽन्येऽपि 'यत्र' सचेतनाचेतने वस्तुनि विद्यन्ते स भवति भावकायः, भावानां कायो भावकाय इति, 'जीवमजीवे विभासा उ' जीवाजीवयोर्विभाषा खल्वागमानुसारेण कार्येति गाथार्थः ॥ १४४६ ॥ मूलद्वारगाथायां कायमधिकृत्य गतं निक्षेपद्वारम्, अधुनैकार्थिकान्युच्यन्ते, तत्र गाथा—

कायः शरीरं देहः बोन्दी चय उपचयश्च सङ्घात उच्छ्रयः समुच्छ्रयश्च कडेवरं भस्त्रा तनुः पाणुरिति गाथार्थः ॥ २३१ ॥ मूलद्वारगाथायां कायमधिकृत्योक्तान्येकार्थिकानि, अधुना उत्सर्गमधिकृत्य निक्षेपः एकार्थिकानि चोच्यन्ते, तत्र निक्षेपमधिकृत्याह—

नामंठवणादविए खित्ते काले तहेव भावे य। एसो उस्सग्गस्स उ निक्खेवो छव्विहो होइ ॥ १४४७ ॥
दव्वुज्झणा उ जं जेण जत्थ अवकिरइ दव्वभूओ वा। जं जत्थ वावि खित्ते जं जच्चिर जंमि वा काले ॥ १४४८ ॥
भावे पसत्थमियरं जेण व भावेण अवकिरइ जं तु। अस्संजमं पसत्थे अपसत्थे संजमं चयइ ॥ १४४९ ॥
खरफरुसाइसचेयणमचेयणं दुरभिगंधविरसाईं। दवियमवि चयइ दोसेण जेण भावुज्झणा सा उ ॥ १४५० ॥

कायोत्सर्ग-
निक्षेपः

॥७७०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्सर्गं अधिकृत्य षड् निक्षेपाः

प्रत
सूत्रांक
[--]

दीप
अनुक्रम
[३६..]

उस्सग्ग विउस्सरणुज्झणा य अवगिरण छड्डुण विवेगो। वज्जण चयणुम्मुअणा परिसाडण साडणा चेव ॥१४५१॥
उस्सग्गे निक्खेवो चउक्कओ छक्कओ अ कायव्वो । निक्खेवं काऊणं परूवणा तस्स कायव्वा ॥ १ ॥

सो उस्सग्गो दुविहो चिट्ठाए अभिभवे य नायव्वो।
भिक्खायरियाइ पढमो उवसग्गभिजुंजणे बिइओ ॥ १४५२ ॥

'नामंठवणादविए' अर्थमधिकृत्य निगदसिद्धा, विशेषार्थं तु प्रतिद्वारं प्रपञ्चेन वक्ष्यामः, तत्रापि नामस्थापने गतार्थे, द्रव्योत्सर्गाभिधित्सया पुनराह—'दवुज्झणा उ जं जेण' द्रव्योज्झना तु द्रव्योत्सर्गः स्वयमेव 'ज'न्ति यद् द्रव्यमनेषणीयं 'अवकिरति'त्ति योगः अवकिरति–उत्सृजति 'जेणे'ति येन करणभूतेन पात्रादिनोत्सृजति,'जत्थ'त्ति यत्र द्रव्ये उत्सृजति द्रव्यभूतो वा–अनुपयुक्तो वा उत्सृजति एष द्रव्योत्सर्गोऽभिधीयते । क्षेत्रोत्सर्ग उच्यते 'जं जत्थ वावि खेत्ते'त्ति यत्क्षेत्रं दक्षिणदेशाद्युत्सृजति यत्र वाऽपि क्षेत्रे उत्सर्गो व्यावर्ण्यते एष क्षेत्रोत्सर्गः, कालोत्सर्ग उच्यते–'जं जच्चिर जम्मि वा काले'त्ति यत्कालमुत्सृजति यथा भोजनमधिकृत्य रजनीं साधवः 'जच्चिरं'ति यावन्तं कालमुत्सर्गः, यस्मिन् वा काले उत्सर्गो व्यावर्ण्यते एष कालोत्सर्ग इति गाथार्थः ॥ १४४८ ॥ भावोत्सर्गप्रतिपादनायाह—

'भावे पसत्थमियरं' 'भावे'त्ति द्वारपरामर्शः, भावोत्सर्गो द्विधा–प्रशस्तं–शोभनं वस्त्वधिकृत्य 'इतरं'ति अप्रशस्तमशोभनं च, तथा येन भावेनोत्सर्जनीयवस्तुगतेन खरादिना 'अवकिरति जन्तु' उत्सृजति यत् तत्र भावेनोत्सर्ग इति तृतीयासमासः, तत्र असंयमं प्रशस्ते भावोत्सर्गे त्यजति, अप्रशस्ते तु संयमं त्यजतीति गाथार्थः ॥ १४४९ ॥ यदुक्तं येन वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [--]

दीप अनुक्रम [३६..]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७७१॥

भावेनोत्सृजति तत्प्रकटयन्नाह—'खरफरुसाइसचेयण' खरपरुषादिसचेतनं खरं–कठिनं परुषं–दुभाषणोपेतं अचेतनं दुरभिगन्धविरसादि यद् द्रव्यमपि त्यजति दोषेण येन खरादिनैव 'भावुज्झणा सा उ' भावेनोत्सर्ग इति गाथार्थः ॥ १४५० ॥ गतं मूलद्वारगाथायामुत्सर्गमधिकृत्य निक्षेपद्वारम्, अधुनैकार्थिकान्युच्यन्ते, तत्रेयं गाथा—'उस्सग्ग विउस्सरणु' उत्सर्गः व्युत्सर्जना उज्झना च अवकिरणं छर्दनं विवेकः वर्जनं त्यजनं उन्मोचना परिशातना शातना चैवेति गाथार्थः ॥ १४५१ ॥ मूलद्वारगाथायामुक्तान्युत्सर्गैकार्थिकानि, ततश्च कायोत्सर्ग इति स्थितं, कायस्योत्सर्गः कायोत्सर्गः । इदानीं मूलद्वारगाथागतविधानमार्गणाद्वारावयवार्थव्याचिख्यासयाऽऽह—'सो उस्सग्गो दुविहो' स कायोत्सर्गो द्विविधः, 'चेट्ठाए अभिभवे य नायव्वो' चेष्टायामभिभवे च ज्ञातव्यः, तत्र 'भिक्खायरियादि पढमो' भिक्षाचर्यादौ विषये प्रथमः कायोत्सर्गः, तथाहि–चेष्टाविषय एवासौ भवति, 'उवसग्गऽभिउंजणे बिइओ'त्ति उपसर्गा–दिव्यादयस्तैरभियोजनमुपसर्गाभियोजनं तस्मिन्नुपसर्गाभियोजने द्वितीयः–अभिभवकायोत्सर्ग इत्यर्थः, दिव्याद्यभिभूत एव महामुनिस्तद्दैवार्यं करोतीति हृदयम्, अथवोपसर्गाणामभियोजनं–सोढव्या मयोपसर्गास्तद्भयं न कार्यमित्येवंभूतं तस्मिन् द्वितीय इत्यर्थः । इत्थं प्रतिपादिते सत्याह चोदकः, कायोत्सर्गे हि साधुना नोपसर्गाभियोजनं कार्यं—

कायोत्सर्ग-निक्षेपः

इयरहवि ता न जुज्जइ अभिओगो किं पुणाइ उस्सग्गे ? । नणु गव्वेण परपुरं अभिरुज्झइ एवमेयंति(पि)॥१४५३॥ ॥७७१॥
मोहपयडीभयं अभिभवित्तु जो कुणइ काउस्सग्गं तु। भयकारणे य तिविहे णाभिभवो नेव पडिसेहो ॥१४५४॥
आगारेऊण परं रणिव्व जइ सो करिज्ज उस्सग्गं। जुंजिज्ज अभिभवो तो तदभावे अभिभवो कस्स ? ॥ १४५५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [--]

दीप अनुक्रम [३६..]

अट्ठविहंपि य कम्मं अरिभूयं तेण तज्जयट्ठाए। अब्भुट्ठिया उ तवसंजमंमि कुव्वंति निग्गंथा ॥ १४५६ ॥
तस्स कसाया चत्तारि नायगा कम्मसत्तुसिन्नस्स। काउस्सग्गमभग्गं करंति तो तज्जयट्ठाए ॥ १४५७ ॥
संवच्छरमुक्कोसं अंतमुहुत्तं च (त) अभिभवुस्सग्गे। चिट्ठाउस्सग्गस्स उ कालपमाणं उवरि वुच्छं ॥ १४५८ ॥

‘इयरहवि ता ण’ इतरथापि–सामान्यकार्येऽपि तावत् क्वचिदनवस्थानादौ न युज्यतेऽभियोगः कस्यचित् कर्त्तुं, ‘किं पुणाइ उस्सग्गे’ किं पुनः कायोत्सर्गे कर्मक्षयाय क्रियमाणे?, स हि सुतरां गर्वरहितेन कार्यः, अभियोगश्च गर्वो वर्त्तते, नन्वित्यसूयायां गर्वेण–अभियोगेन परपुरं–शत्रुनगरमभिरुध्यते, यथा तद्गर्वकरणमसाधु एवमेतदपि कायोत्सर्गाभियोजनमशोभनमेवेति गाथार्थः ॥ एवं चोदकेनोक्ते सत्याहाचार्यः—‘मोहपयडीभयं’ मोहप्रकृतौ भयं २ अथवा मोहप्रकृतिश्चासौ भयं चेति समासः, मोहनीयकर्मभेद इत्यर्थः, तथाहि–हास्यरत्यरतिभयशोकजुगुप्साषट्कं मोहनीयभेदतया प्रतीतं, तत् अभिभवतु अभिभूय यः कश्चित् करोति कायोत्सर्गं तुशब्दो विशेषणार्थः नान्यं कञ्चन बाह्यमभिभूयेति, ‘भयकारणे तु तिविहे’ बाह्ये भयकारणे त्रिविधे द्रव्यमनुष्यतिर्यग्भेदभिन्ने सति तस्य नाभिभवः, अथेत्थंभूतोऽप्यभियोग इत्यत्रोच्यते–‘नेव पडिसेहो’ इत्थंभूतस्याभियोगस्य नैव प्रतिषेध इति गाथार्थः ॥१४५४॥ किन्तु–‘आगारेऊण परं’ ‘आगारेऊण’त्ति आकार्य रे रे क्व यास्यसि इदानीं एवं परम्–अन्यं कञ्चन ‘रणेव’ संग्रामे इव यदि स कुर्यात् कायोत्सर्गं युज्येत अभिभवः, तदभावे–पराभिभवाभावेऽभिभवः कस्य?, न कस्यचिदिति गाथार्थः ॥ १४५५ ॥ तत्रैतत् स्यात्–भयमपि कर्मांशो वर्त्तते, कर्मणोऽपि चाभिभवः खल्वेकान्तेन नैव कार्य इत्येतच्चायुक्तम्, यतः—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [--]

दीप अनुक्रम [३६..]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७७२॥

कायोत्सर्ग-निक्षेपः

'अट्ठविहंपि य कम्मं' अष्टविधं–अष्टप्रकारमपि, चशब्दो विशेषणार्थः तस्य च व्यवहितः सम्बन्धः, अट्ठविहंपि य कम्मं अरिभूतं च, ततश्चायमर्थः–यस्मात् ज्ञानावरणीयादि अरिभूतं–शत्रुभूतं वर्त्तते भवनिबन्धनत्वाच्चशब्दादचेतनं च तेन कारणेन तज्जयार्थं–कर्मजयनिमित्तं 'अब्भुट्ठिया उ'त्ति आभिमुख्येन उत्थिता एव एकान्तगर्वविकला अपि तपो द्वादशप्रकारं संयमं च सप्तदशप्रकारं कुर्वन्ति निर्ग्रन्थाः–साधव इत्यतः कर्मक्षयार्थमेव तदभिभवनाय कायोत्सर्गः कार्य एवेति गाथार्थः ॥ १४५६ ॥ तथा चाह—तस्स कसाया इति 'तस्य' प्रक्रान्तशत्रुसैन्यस्य कषायाः प्राग्निरूपितशब्दार्थाश्चत्वारः क्रोधादयो नायकाः–प्रधानाः, 'काउस्सग्गमभग्गं करेंति तो तज्जयट्ठाए'त्ति काउस्सग्गं–अभिभवकायोत्सर्गं अभग्नं–अपीडितं कुर्वन्ति साधवस्ततस्तज्जयार्थं–कर्मजयनिमित्तं तपःसंयमवदिति गाथार्थः ॥ १४५७ ॥ गतं मूलद्वारगाथायां विधानमार्गणाद्वारम्, अधुना कालपरिमाणद्वारावसरः, तत्रेयं गाथा— संवत्सरमुत्कृष्टं कालप्रमाणं, तथा च बाहुबलिना संवत्सरं कायोत्सर्गः कृत इति, 'अन्तोमुहुत्तं च' अभिभवकायोत्सर्गे अन्त्यं–जघन्यं कालपरिमाणं, चेष्टाकायोत्सर्गस्य तु कालपरिमाणमनेकभेदभिन्नं 'उवरि वोच्छं'ति उपरिष्टाद् वक्ष्याम इति गाथार्थः ॥ १४५८ ॥ उक्तं तावदोघतः कालपरिमाणद्वारं, अधुना भेदपरिमाणद्वारमधिकृत्याह—

उसिउस्सिओ अ तह उस्सिओ अ उस्सियनिसन्नओ चेव। निसनुस्सिओ निसन्नो निस्सन्नगनिसन्नओ चेव १४५९॥
निवणुस्सिओ निवन्नो निवन्ननिवन्नगो अ नायव्वो। एएसिं तु पयाणं पत्तेय परूवणं वुच्छं ॥ १४६० ॥
उस्सिअनिसन्नग निवन्नगे य इक्किक्कगंमि उ पयंमि। दव्वेण य भावेण य चउक्कभयणा उ कायव्वा ॥ १४६१ ॥ ॥७७२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[--]

दीप
अनुक्रम
[३६..]

'उस्सिउस्सिओ' उच्छ्रितोच्छ्रितः उत्सृतश्च उत्सृतनिषण्णश्चैव निषण्णोत्सृतः निषण्णो निषण्णनिषण्णश्चैवेति गाथार्थः ॥ 'निसंणुस्सिओ निवन्नो' निषण्णोत्सृतः निष(व)ण्णः निषण्ण निषण्णश्च ज्ञातव्यः, एतेषां तु पदानां प्रत्येकं प्ररूपणां वक्ष्य इति गाथासमासार्थः, अवयवार्थं तु उपरिष्टाद्वक्ष्यामः 'उस्सिय' उत्सृतो निषण्णः निषण्णनिषण्णेषु एकैकस्मिन्नेव पदे 'दव्वेण य भावेण य चउक्कभयणा उ कायव्वा' द्रव्यत उत्सृत ऊर्द्धस्थानस्थः भावत उत्सृत धर्मध्यानशुक्लध्यायी, अन्यस्तु द्रव्यत उत्सृतः ऊर्द्धस्थानस्थः न भावतः उत्सृतः ध्यानचतुष्टयरहितः कृष्णादिलेश्यागतपरिणाम इत्यर्थः, अन्यस्तु न द्रव्यत उत्सृतः नोर्द्ध-स्थानस्थः भावत उत्सृतः, शुक्लध्यायी अन्यस्तु न द्रव्यतो नापि भावत इत्ययं प्रतीतार्थ एवमन्यपदचतुर्भङ्गिका अपि वक्तव्याः ॥ १४५९–१४६१ ॥ इत्थं सामान्येन भेदपरिमाणे दर्शिते सत्याह चोदकः, ननु कार्योत्सर्गकरणे कः पुनर्गुण इत्याहाचार्यः–

देहमइजड्डसुद्धी सुहदुक्खतितिक्खया अणुप्पेहा। झायइ य सुहं झाणं एयग्गो काउसग्गंमि ॥ १४६२ ॥

अंतोमुहुत्तकालं चित्तस्सेगग्गया हवइ झाणं। तं पुण अट्टं रुद्दं धम्मं सुक्कं च नायव्वं ॥ १४६३ ॥

तत्थ य दो आइल्ला झाणा संसारवद्धणा भणिया।
दुन्नि य विमुक्खहेऊ तेसिऽहिगारो न इयरेसिं ॥ १४६४ ॥

संवरियासवदारा अव्वाबाहे अकंटए देसे। काऊण थिरं ठाणं ठिओ निसन्नों निवन्नो वा ॥ १४६५ ॥

चेयणमचेयणं वा वत्थुं अवलंबिउं घणं मणसा। झायइ सुअमत्थं वा दवियं तप्पज्जए वावि ॥ १४६६ ॥

तत्थ उ भणिज्ज कोई झाणं जो माणसो परीणामो। तं न हवइ जिणदिट्ठं झाणं तिविहेवि जोगंमि ॥ १४६७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[--]

दीप
अनुक्रम
[३६..]

आवश्यक-
हारिभ-
द्रीया

॥७७३॥

कायोत्सर्ग-
निक्षेपः

वायाईधाऊणं जो जाहे होइ उक्कडो धाऊ। कुविओत्ति सो पवुच्चइ न य इअरे तत्थ दो नत्थि ॥ १४६८ ॥
एमेव य जोगाणं तिण्हवि जो जाहि उक्कडो जोगो। तस्स तहिं निद्देसो इअरे तत्थिक्क दो व नवा ॥ १४६९ ॥
काएविय अज्झप्पं वायाइ मणस्स चेव जह होइ। कायवयमणोजुत्तं तिविहं अज्झप्पमाहंसु ॥ १४७० ॥
जइ एगग्गं चित्तं धारयओ वा निरुंभओ वावि। झाणं होइ नणु तहा इअरेसुवि दोसु एमेव ॥ १४७१ ॥
देसियदंसियमग्गो वच्चंतो नरवई लहइ सद्दं। रायत्ति एस वच्चइ सेसा अणुगामिणो तस्स ॥ १४७२ ॥
पढमिल्लुअस्स उदए कोहस्सिअरे वि तिन्नि तत्थत्थि। नय ते ण संति तहियं न य पाहन्नं तहेयंमि ॥ १४७३ ॥
मा मे एजउ काउत्ति अचलओ काइअं हवइ झाणं। एमेव य माणसियं निरुद्धमणसो हवइ झाणं ॥ १४७४ ॥
जइ कायमणनिरोहे झाणं वायाइ जुज्जइ न एवं। तम्हा वई उ झाणं न होइ को वा विसेसुत्थ ? ॥ १४७५ ॥
मा मे चलउत्ति तणू जह तं झाणं निरेइणो होइ। अजयाभासविवज्जस्स वाइअं झाणमेवं तु ॥ १४७६ ॥
एवंविहा गिरा मे वत्तव्वा एरिसा न वत्तव्वा। इय वेयालियवक्कस्स भासओ वाइयं झाणं ॥ १४७७ ॥
मणसा वावारंतो कायं वायं च तप्परीणामो। भंगिअसुअं गुणंतो वट्टइ तिविहेवि झाणंमि ॥ १४७८ ॥

'देहमतिजड्डसुद्धी'ति देहजाड्यशुद्धिः–श्लेष्मादिप्रहाणतः मतिजाड्यशुद्धिः तथावस्थितस्योपयोगविशेषतः,'सुहदुक्खतितिक्खय'त्ति सुखदुःखतितिक्षा सुखदुःखातिसहनमित्यर्थः, 'अणुप्पेहा' अनित्यत्वाद्यनुप्रेक्षा च तथाऽवस्थितस्य भवति, तथा 'झायइ य सुहं झाणं' ध्यायति च शुभं ध्यानं धर्मशुक्लक्षणं, एकाग्रः–एकचित्तः शेषव्यापाराभावात् कायोत्सर्ग इति,

॥७७३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

'ध्यान' शब्दस्य अर्थ, भेद-आदीनाम वर्णनं

प्रत
सूत्रांक
[--]

दीप
अनुक्रम
[३६..]

इहानुप्रेक्षा ध्यानादौ ध्यानोपरमे भवतीतिकृत्वा भेदेनोपन्यस्तेति गाथार्थः ॥ १४६२ ॥ इह ध्यायति च शुभं ध्यानमित्युक्तं, तत्र किमिदं ध्यानमित्यत आह—'अंतोमुहुत्तकालं' द्विघटिको मुहूर्त्तः भिन्नो मुहूर्त्तोऽन्तर्मुहूर्त इत्युच्यते, अन्तर्मुहूर्त्तकालं चित्तस्यैकाग्रता भवति ध्यानं 'एकाग्रचित्तनिरोधो ध्यान'(तत्त्वार्थे अ० सूत्र ९२७) मितिकृत्वा, तत् पुनरार्त्तं रौद्रं धर्मं शुक्लं च ज्ञातव्यमित्येषां च स्वरूपं यथा प्रतिक्रमणाध्ययने प्रतिपादितं तथैव द्रष्टव्यमिति गाथार्थः ॥१४६२–१४६३॥ 'तत्थ उ दो आइल्ला' गाथा निगदसिद्धा । साम्प्रतं यथाभूतो यत्र यथावस्थितो यच्च ध्यायति तदेतदभिधित्सुराह— 'संवरियासवदार'त्ति संवृतानि–स्थगितानि आश्रवद्वाराणि–प्राणातिपातादीनि येन स तथाविधः, क्व ध्यायति ?– 'अव्याबाधे अकंटए देसे'त्ति' अव्याबाधे–गान्धर्वादिलक्षणभावव्याबाधाविकले अकण्टके–पाषाणकण्टकादिद्रव्यकण्टकविकले 'देशे' भूभागे, कथं व्यवस्थितो ध्यायति ?–'काऊण थिरं ठाणं ठितो निसण्णो निवन्नो वा' कृत्वा स्थिरं–निष्कम्पं [अव]स्थानं–अवस्थितिविशेषलक्षणं स्थितो निषण्णो निवण्णो वेति प्रकटार्थं, चेतनं–पुरुषादि अचेतनं–प्रतिमादि वस्तु अवलम्ब्य–विषयीकृत्त्वा(त्य) घनं–दृढं मनसा–अन्तःकरणेन यत् ध्यायति, किं ? तदाह–'झायति सुयमत्थं वा' ध्यायतीति सम्बध्यते, सूत्रं–गणधरादिभिर्बद्धं अर्थं वा–तद्गोचरं, किंभूतमर्थमत आह–'दविय तप्पज्जवे वावि' द्रव्यं तत्पर्यायान् वा, इह च यदा सूत्रं ध्यायति तदा तदेव स्वगतधर्मैरालोचयति, न त्वर्थं, यदा त्वर्थं न तदा सूत्रमिति गाथार्थः ॥ १४६४–१४६६ ॥ अधुना प्रागुक्तचोद्यपरिहारायाह—तत्र भणेत्–ब्रूयात् कश्चित्, किं ब्रूयादित्याह–'झाणं जो माणसो परीणामो' ध्यानं यो मानसः परीणामः, 'ध्यै चिन्ताया'मित्यस्य चिन्तार्थत्वात्, इत्थमाशङ्क्योत्तरमाह–'तं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [--]

दीप अनुक्रम [३६..]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७७४॥

कायोत्सर्ग निक्षेपः

न भवति जिणदिट्ठं झाणं तिविहेवि जोगंमि' तदेतन्न भवति यत् परेणाभ्यधायि, कुतः ?, यस्माज्जिनैर्दिष्टं ध्यानं त्रिविधेऽपि योगे–मनोवाक्कायव्यापारलक्षण इति गाथार्थः ॥ १४६७ ॥ किं तु ?, कस्यचित् कदाचित् प्राधान्यमाश्रित्य भेदेन व्यपदेशः प्रवर्त्तते, तथा चामुमेव न्यायं प्रदर्शयन्नाह—'वायाईधाऊणं' वातादिधातूनां आदिशब्दात् पित्तश्लेष्मणोर्यो यदा भवत्युत्कटः–प्रचुरो धातुः कुपित इति स प्रोच्यते उत्कटत्वेन प्राधान्यात्, 'न य इतरे तत्थ दो नत्थि'त्ति न चेतरौ तत्र द्वौ न स्त इति गाथार्थः ॥ १४६८ ॥ 'एमेव य जोगाणं' एवमेव च योगानां–मनोवाक्कायानां त्रयाणामपि यो यदा उत्कटो योगस्तस्य योगस्य तदा–तस्मिन् काले निर्देशः, 'इयरे तत्थेक्क दो व णवा' इतरस्तत्रैको भवति द्वौ वा भवतः, न वा भवत्येव, इयमत्र भावना–केवलिनः वाचि उत्कटायां कायोऽप्यस्ति अस्मदादीनां तु मनः कायो न वेति, केवलिनः शैलेश्यवस्थायां काययोगनिरोधकाले स एव केवल इति, अनेन च शुभयोगोत्कटत्वं तथा निरोधश्च द्वयमिति(मपि) ध्यानमित्यावेदित[व्य]मिति गाथार्थः ॥१४६९॥इत्थं य उत्कटो योगः तस्यैवेतरसद्भावेऽपि प्राधान्यात् सामान्येन ध्यान[त्व]मभिधायाधुना विशेषेण त्रिप्रकारमप्युपदर्शयन्नाह— 'काएवि य' कायेऽपि च अध्यात्मं अधि आत्मनि वर्त्तत इति अध्यात्मं ध्यानमित्यर्थः, एकाग्रतया एजनादिनिरोधात्, 'वायाए'त्ति तथा वाचि अध्यात्मं एकाग्रतयैवायतभाषानिरोधात्,'मणस्स चेव जह होइ'त्ति मनसश्चैव यथा भवत्यध्यात्मं एवं कायेऽपि वाचि चेत्यर्थः, एवं भेदनाभिधायाधुनैकादावपि दर्शयन्नाह–कायवाङ्मनोयुक्तं त्रिविधं अध्यात्ममाख्यातवन्त- ॥७७४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[--]

दीप
अनुक्रम
[३६..]

स्तीर्थकरा गणधराश्च, वक्ष्यते च–'भंगिअसुतं गुणंतो वट्टति तिविहेवि झाणंमि'त्ति गाथार्थः ॥ १४७० ॥ पराभ्युपगतध्यानसाम्यप्रदर्शनेनानभ्युपगतयोरपि ध्यानतां प्रदर्शयन्नाह—'जइ एगग्गं' गाहा, हे आयुष्मन् ! यदप्येकाग्रं चित्तं क्वचिद् वस्तुनि धारयतो वा स्थिरतया देहव्यापिविषवत् डंक इति 'निरुंभओ वावि'त्ति निरुन्धानस्य वा तदपि योगनिरोध इव केवलिनः किमित्याह–ध्यानं भवति मानसं यथा ननु तथा इतरयोरपि द्वयोर्वाक्काययोः, एवमेव–एकाग्रधारणादिनैव प्रकारेण तल्लक्षणयोगाद् ध्यानं भवतीति गाथार्थः ॥ १४७१ ॥ इत्थं त्रिविधे ध्याने सति यस्य यदोत्कटत्वं तस्य तदेतरसद्भावेऽपि प्राधान्याद् व्यपदेश इति, लोकलोकोत्तरानुगतश्चायं न्यायो वर्त्तते, तथा चाह—'देसिय' गाहा, देशयतीति देशिकः–अग्रयायी देशिकेन दर्शितो मार्गः–पन्था यस्य स तथोच्यते व्रजन्–गच्छन् नरपती–राजा लभते शब्दं–प्राप्नोति शब्दं, किंभूतमित्याह–'रायत्ति एस वच्चति' राजा एष व्रजतीति, न चासौ केवलः, प्रभूतलोकानुगतत्वात्, न च तदन्यव्यपदेशः, तेषामप्राधान्यात्, तथा चाह–'सेसा अणुगामिणो तस्स'त्ति शेषाः–अमात्यादयः अनुगामिनः–अनुयातारस्तस्य–राज्ञ इत्यतः प्राधान्याद्राजेतिव्यपदेश इति गाथार्थः ॥१४७२॥ अयं लोकानुगतो न्यायः, अयं पुनर्लोकोत्तरानुगतः–'पढमिल्लु' प्रथम एव प्रथमिल्लुकः, प्राथम्यं चास्य सम्यग्दर्शनाख्यप्रथमगुणघातित्वात् तस्य प्रथमिल्लुकस्य उदये, कस्य?, क्रोधस्य अनन्तानुबन्धिन इत्यर्थः 'इतरेवि तिण्णि तत्थत्थि' शेषा अपि त्रयः–अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसञ्ज्वलनादयस्तत्र–जीवद्रव्ये सन्ति, न चातीताद्यपेक्षया तत्सद्भावः प्रतिपाद्यते, यत आह—'न य ते ण संति तहियं' न च ते–अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणादयो न सन्ति, किंतु सन्त्येव, न च प्राधान्यं तेषामतो न व्यपदेशः, आद्यस्यैव व्यपदेशः,-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [--]

दीप अनुक्रम [३६..]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७७५॥

५ कायोत्स-गाध्य० ध्यानत्रैवि-ध्यं योगवत्

'तहेयंपि' तथा एतदपि अधिकृतं वेदितव्यमिति गाथार्थः ॥ १४७३ ॥ अधुना स्वरूपतः कायिकं मानसं च ध्यानमावेदय-न्नाह—'मा मे एजउ काउ'त्ति एजतु–कम्पतां 'कायो' देह इति, एवं अचलत एकाग्रतया स्थितस्येति भावना, किं ?, कायेन निर्वृत्तं कायिकं भवति ध्यानं, एवमेव मानसं निरुद्धमनसो भवति ध्यानमिति गाथार्थः ॥ १४७४ ॥ इत्थं प्रतिपादिते सत्याह चोदकः—'जइ कायमणनिरोहे' ननु यथा कायमनसोर्निरोधे ध्यानं प्रतिपादितं भवता 'वायाइ जुज्जइ न एवं'ति वाचि युज्यते नैवेति, कदाचिदप्रवृत्त्यैव निरोधाभावात्, तथाहि–न कायमनसी यथा सदा प्रवृत्ते तथा वागिति 'तम्हा वती उ झाणं न होइ' तस्माद् वाग् ध्यानं न भवत्येव, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् व्यवहितप्रयोगाच्च, 'को वा विसेसोऽत्थ'त्ति को वा विशेषोऽत्र? येनेत्थमपि व्यवस्थिते सति वाग् ध्यानं भवतीति गाथार्थः ॥ १४७५ ॥ इत्थं चोदकेनोक्ते सत्याह गुरुः–'मा मे चलउ'त्ति मा मे चलतु–कम्पतामितिशब्दस्य व्यवहितः प्रयोगः तं च दर्शयिष्यामः, तनुः–शरीरमिति–एवं चलन-क्रियानिरोधेन यथा तद् ध्यानं कायिकं 'निरेइणो' निरेजिनो–निष्प्रकम्पस्य भवति 'अजताभासविवज्जिस्स वाइयं झाण-मेवं तु' अयताभाषाविवर्जिनो–दुष्टवाक्परिहर्तुरित्यर्थः, वाचिकं ध्यानमेव यथा कायिकं, तुशब्दोऽत्रधारणार्थ इति गाथार्थः ॥ १४७६ ॥ साम्प्रतं स्वरूपत एव वाचिकध्यानमुपदर्शयन्नाह—'एवंविहा गिरा' एवंविधेति निरवद्या गीः–वागुच्यते 'मे'त्ति मया वक्तव्या 'एरिस'त्ति ईदृशी सावद्या न वक्तव्या, एवमेकाग्रतया विचारितवाक्यस्य सतो भाषमाणस्य वाचिकं ध्यानमिति गाथार्थः ॥ १४७७ ॥ एवं तावद् व्यवहारतो भेदेन त्रिविधमपि ध्यानमावेदितं, अधुनैकदैव एकत्रैव त्रिवि-धमपि दर्श्यते—'मणसा वावारंतो' मनसा–अन्तःकरणेनोपयुक्तः सन् व्यापारयन् कायं–देहं वाचं–भारतीं च 'तप्परी- ॥७७५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [--]

दीप अनुक्रम [३६..]

णामो' तत्परिणामो विवक्षितश्रुतपरीणामः, अथवा तत्परिणामो–योगत्रयपरिणामः स तथाविधः शान्तो योगत्रयपरिणामो यस्यासौ तत्परिणामः, भङ्गिकश्रुतं–दृष्टिवादान्तर्गतमन्यद्वा तथाविधं 'गुणंतो'त्ति गुणयन् वर्त्तते त्रिविधेऽपि ध्याने मनोवाक्कायव्यापारलक्षणे इति गाथार्थः ॥ १४७८ ॥ अवसितमानुषङ्गिकं, साम्प्रतं भेदपरिमाणं प्रतिपादयताऽध उत्सृतोच्छ्रितादिभेदो यो नवधा कायोत्सर्ग उपन्यस्तः स यथायोगं व्याख्यायत इति, तत्र—

धम्मं सुक्कं च दुवे झायइ झाणाइँ जो ठिओ संतो। एसो काउस्सग्गो उसिउसिओ होइ नायव्वो ॥ १४७९ ॥
धम्मं सुक्कं च दुवे नवि झायइ नवि य अट्टरुद्दाइं। एसो काउस्सग्गो दव्वुसिओ होइ नायव्वो ॥ १४८० ॥
पयलायंत सुसुत्तो नेव सुहं झाइ झाणमसुहं वा। अव्वावारियचित्तो जागरमाणोवि एमेव ॥ १४८१ ॥
अचिरोववन्नगाणं मुच्छियअव्वत्तमत्तसुत्ताणं। ओहाडियमव्वत्तं च होइ पाएण चित्तंति ॥ १४८२ ॥
गाढालंबणलग्गं चित्तं वुत्तं निरेयणं झाणं। सेसं न होइ झाणं मउअमवत्तं भमंतं वा ॥ १४८३ ॥
उम्हासेसोवि सिही होउं लद्धिंधणो पुणो जलइ। इय अवत्तं चित्तं होउं वत्तं पुणो होइ ॥ १४८४ ॥
पुव्वं च जं तदुत्तं चित्तस्सेगग्गया हवइ झाणं। आवन्नमणेगग्गं चित्तं चिय तं न तं झाणं ॥ १४८५ ॥
आ० मणसहिएण उ काएण कुणइ वायाइ भासई जं च। एयं च भावकरणं मणरहियं दव्वकरणं च ॥ १४८६ ॥
चो० जइ ते चित्तं झाणं एवं झाणमवि चित्तमावन्नं। तेन र चित्तं झाणं अह नेवं झाणमन्नं ते ॥ १४८७ ॥
आ० नियमा चित्तं झाणं झाणं चित्तं न यावि भइयव्वं। जह खइरो होइ दुमो दुमो य खइरो अखयरो वा ॥१४८८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [--]

दीप अनुक्रम [३६..]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७७६।

५कायोत्सर्गाध्य० उत्सृतादिकाः कायोत्सर्गभेदाः

अट्टं रुद्दं च दुवे झायइ झाणाइं जो ठिओ संतो। एसो काउस्सग्गो दव्वुसिओ भावउ निसन्नो ॥ १४८९ ॥
धम्मं सुक्कं च दुवे झायइ झाणाइं जो निसन्नो अ। एसो काउस्सग्गो निसनुसिओ होइ नायव्वो ॥ १४९० ॥
धम्मं सुक्कं च दुवे नवि झायइ नवि य अट्टरुद्दाइं। एसो काउस्सग्गो निसण्णओ होइ नायव्वो ॥ १४९१ ॥
अट्टं रुद्दं च दुवे झायइ झाणाइँ जो निसन्नो य। एसो काउस्सग्गो निसन्नगनिसन्नओ नामं ॥ १४९२ ॥
धम्मं सुक्कं च दुवे झायइ झाणाइँ जो निवन्नो उ। एसो काउस्सग्गो निवनुसिओ होइ णायव्वो ॥ १४९३ ॥
धम्मं सुक्कं च दुवे नवि झायइ नवि य अट्टरुद्दाइं। एसो काउस्सग्गो निवण्णओ होइ नायव्वो ॥ १४९४ ॥
अट्टं रुद्दं च दुवे झायइ झाणाइँ जो निवन्नो उ। एसो काउस्सग्गो निवन्नगनिवन्नओ नाम ॥ १४९५ ॥
अतरंतो उ निसन्नो करिज्ज तहवि य सहू निवन्नो उ। संबाहुवस्सए वा कारणियसहूवि य निसन्नो ॥ १४९६ ॥

धर्मं च शुक्लं च प्राक्प्रतिपादितस्वरूपे ते एव द्वे ध्यायति ध्याने यः कश्चित् स्थितः सन् एष कायोत्सर्ग उत्सृतोत्सृतो भवति ज्ञातव्यः, यस्मादिह शरीरमुत्सृतं भावोऽपि धर्मशुक्लध्यायित्वादुत्सृत एवेति गाथार्थः ॥ गतः खल्वेको भेदोऽधुना द्वितीयः प्रतिपाद्यते–'धम्मं सुक्कं' धर्मं शुक्लं च द्वे नापि ध्यायति नापि आर्त्तरौद्रे एष कायोत्सर्गो द्रव्योत्सृतो भवतीति ज्ञातव्य इति गाथार्थः ॥ १४७९–१४८० ॥ आह–कस्यां पुनरवस्थायां न शुभं ध्यानं ध्यायति नाप्यशुभमिति ?, अत्रोच्यते—'पयलायंत' प्रचलायमान ईषत् स्वपन्नित्यर्थः, 'सुसुत्त'त्ति सुष्ठु सुप्तः स खलु नैव शुभं ध्यायति ध्यानं–धर्मशुक्ललक्षणं अशुभं वा–आर्त्तरौद्रलक्षणं न व्यापारितं क्वचिद् वस्तुनि चित्तं येन सोऽव्यापारितचित्तः जाग्रदपि एवमेव–नैव ॥७७६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [--]

दीप अनुक्रम [३६..]

शुभं ध्यायति ध्यानं नाशुभमिति गाथार्थः ॥ १४८१ ॥ किंच—‘अचिरोववन्नगाणं’ ‘न चिरोपपन्नका अचिरोपपन्नकाः तेषामचिरोपपन्नकानामचिरजातानामित्यर्थः, मूर्च्छिताव्यक्तमत्तसुप्तानां—मूर्च्छितानामभिघातादिना अव्यक्तानाम्—अव्यक्तचेतसां मत्तानां मदिरादिना सुप्तानां निद्रया, इहाव्यक्तानामिति यदुक्तं तत्राव्यक्तचेतसः अव्यक्ताः, तत् पुनरव्यक्तं कीदृगित्याह—‘ओहाडियमवत्तं च होइ पाएण चित्तं तु’ ‘ओहाडिय’न्ति स्थगितं विषादिना तिरस्कृतस्वभावं अव्यक्तं च--अव्यक्तमेव चशब्दोऽवधारणे भवति प्रायश्चित्तमपि, प्रायोग्रहणादन्यथाऽपि सम्भवमाहेति गाथार्थः ॥ १४८२ ॥ स्यादेतत्—एवंभूतस्यापि चेतसो ध्यानताऽस्तु को विरोध इति ?, अत्रोच्यते, नैतदेवं, यस्मात्—आलम्बने लग्नं २ गाढमालम्बने लग्नं २ एकालम्बने स्थिरतया व्यवस्थितमित्यर्थः, चित्तं—अन्तःकरणं उक्तं—भणितं, निरेजनं—निष्प्रकम्पं ध्यानं, यतश्चैवमतः शेषं—यदस्मादन्यत् तन्न भवति ध्यानं, किंभूतं ?—‘मदुयमवत्तं भमन्तं वा’ मृदु—भावनायामकठोरं अव्यक्तं पूर्वोक्तं भ्रमन्वा—अनवस्थितं वेति गाथार्थः॥१४८३॥ आह—यदि मृद्वादि चित्तं ध्यानं न भवति वस्तुतः अव्यक्तत्वात् तत् कथमस्य पश्चादपि व्यक्ततेति ?, अत्रोच्यते—‘उम्हासेसोवि’उष्मावशेषो मनागपि उष्णमात्र इत्यर्थः, शिखी—अग्निर्भूत्वा लब्धेन्धनः—प्राप्तकाष्ठादिः सन् पुनर्ज्वलति,‘इय’ एवं अव्यक्तं चित्तं मदिरादिसम्पर्कादिना भूत्वा व्यक्तं पुनर्भवत्यग्निवदिति गाथार्थः ॥ १४८४ ॥ इत्थं प्रासङ्गिकं कियदप्युक्तं, अधुना प्रक्रान्तवस्तुशुद्धिः क्रियते, किंच प्रक्रान्तं?, कायिकादि त्रिविधं ध्यानं, यत उक्तं—‘भंगियसुयं गुणतो वट्टइ तिविहेऽवि झाणंमि’ इत्यादि, एवं च व्यवस्थिते ‘अन्तोमुहुत्तकालं चित्तस्सेगग्गया भवति झाणं’ यदुक्तमस्माद् विनेयस्य विरोधशङ्कया सम्मोहः स्यादतस्तदपनोदाय शङ्कामाह—‘पुव्वं च जं तदुत्तं’ ननु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [--]

दीप अनुक्रम [३६..]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥७७७॥

त्रिविधे ध्याने सति पूर्वं यदुक्तं चित्तस्यैकाग्रता भवति ध्यानं 'अन्तोमुहुत्तकालं चित्तस्सेगग्गया भवति झाणं'ति वचनात् चशब्दाद्यच्च तदूर्ध्वमुक्तं–'भंगियसुयं गुणंतो वट्टइ तिविहेवि झाणंमि' तदेतत् परस्परविरुद्धं कथयतस्त्रिविधे ध्याने सति आपन्नमनेकविषयं ध्यानमिति, तथा च मनसा किञ्चिद्ध्यायति वाचाऽभिधत्ते कायेन क्रियां करोतीति अनेकाग्रता, आचार्य इदमनादृत्य सामान्येनैकाग्र्यं चित्तं हृदि कृत्वा काक्काऽऽह–'चित्तं चिय तं न तं झाणं' यदनेकाग्रं तच्चित्तमेव न ध्यानमिति गाथार्थः ॥ १४८५ ॥ आह–उक्तन्यायादनेकाग्रं त्रिविधं ध्यानं तस्य तर्हि ध्यानत्वानुपपत्तिः, न, अभिप्रायापरिज्ञानात्, तथाहि–आ०—'मणसहिएण' मनःसहितेनैव कायेन करोति, यदिति सम्बध्यते, उपयुक्तो यत् करोतीत्यर्थः, वाचा भाषते यच्च मनःसहितया, तदेव भावकरणं वर्त्तते, भावकरणं च ध्यानं, मनोरहितं तु द्रव्यकरणं भवति, ततश्चै-तदुक्तं भवति–इहानेकाग्रतैव नास्ति सर्वेषामेव मनःप्रभृतीनामेकविषयत्वात्, तथाहि–स यत् मनसा ध्यायति तदेव वाचाऽभिधत्ते तत्रैव च कायक्रियेति गाथार्थः ॥१४८६॥ इत्थं प्रतिपादिते सत्यपरस्त्वाह—'जइ ते चित्तं झाणं' यदि ते–तव चित्तं ध्यानं 'अन्तोमुहुत्तकालं चित्तस्सेगग्गया हवइ झाणं'ति वचनात्, एवं ध्यानमपि चित्तमापन्नं, ततश्च कायिकवाचिक-ध्यानासम्भव इत्यभिप्रायः, तेन किल चित्तमेव ध्यानं नान्यदिति हृदयं, अथ नैवमिष्यते–मा भूत्, कायिकवाचिके ध्याने न भविष्यत इति, इत्थं तर्हि ध्यानमन्यत्ते–तव चित्तादिति गम्यते, यस्मान्नावश्यं ध्यानं चित्तमिति गाथार्थः॥१४८७॥ अत्र चाचार्य आह–अभ्युपगमाददोषः, तथाहि–'नियमा चित्तं झाणं' नियमात्–नियमेन उक्तलक्षणं चित्तं ध्यानमेव, 'झाणं चित्तं न यावि भइयव्वं' ध्यानं तु चित्तं न चाप्येवं भक्तव्यं–विकल्पनीयं, अत्रैवार्थे दृष्टान्तमाह–'जह खइरो होइ दुमो दुमो य खइरो

५कायोत्सर्गाध्य० उत्सृतादिकाः कायोत्सर्गभेदाः

॥७७७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[--]

दीप
अनुक्रम
[३६..]

अखइरो वा' यथा खदिरो भवति द्रुम एव, द्रुमस्तु खदिरः अखदिरो वा–धवादिर्वेत्ययं गाथार्थः ॥ १४८८ ॥ अन्ये पुनरिदं गाथाद्वयमतिक्रान्तगाथावयवाक्षेपद्वारेणान्यथा व्याचक्षते, यदुक्तं 'चित्तं चिय तं न तं झाणंती' त्येतदसत्, कथं ?, यदि ते 'चित्तं झाणं एवं झाणमवि चित्तमावन्नं' सामान्येन 'तेन र चित्तं झाणं' किमुच्यते 'चित्तं चित्तं न झाणं'ति 'अह नेयं झाणमन्नं ते' चित्तात्, अत्र पाठान्तरेणोत्तरगाथा 'नियमा चित्तं झाणं झाणं चित्तं न यावि भइयव्वं' यतोऽव्यक्तादिचित्तं न ध्यानमिति, 'जह खदिरो' इत्यादि निदर्शनं पूर्वं, अलं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुमः, प्रकृतश्च द्वितीयः उच्छ्रिताभिधानः कायोत्सर्गभेद इति, स च व्याख्यात एव, नवरं तत्र ध्यानचतुष्टयाध्यायी लेश्यापरिगतो वेदितव्य इति, अथेदानीं तृतीयः कायोत्सर्गभेदः प्रतिपाद्यते—निगदसिद्धैव, अधुना चतुर्थः कायोत्सर्गभेदः प्रदर्श्यते तत्रेयं गाथा—निगदसिद्धैव, नवरं कारणिक एव ग्लानस्थविरादिर्निषण्णकारी वेदितव्यः, वक्ष्यते च–'अतरंतो उ' इत्यादि, अधुना पञ्चमः कायोत्सर्गभेदः प्रदर्श्यते, तत्रेयं गाथा—निगदसिद्धा, नवरं प्रकरणान्निषण्णः स धर्मादीनि न ध्यायतीत्यवगन्तव्यम्, अधुना षष्ठः कायोत्सर्गभेदः प्रदर्श्यते, तत्रेयं गाथा—निगदसिद्धा, अधुना सप्तमः कायोत्सर्गभेदः प्रतिपाद्यते, इह च–निगदसिद्धा, नवरं कारणिक एव ग्लानस्थविरादिर्यो निषण्णोऽपि कर्त्तुमसमर्थः स निष(व)ण्णकारी गृह्यते, साम्प्रतमष्टमः कायोत्सर्गभेदः प्रदर्श्यते, निगदसिद्धा, इहापि च प्रकरणान्निष(व)ण्णः, स च धर्मादीनि न ध्यायतीत्यवगन्तव्यम्, अधुना नवमः कायोत्सर्गभेदःप्रदर्श्यते, इह च—'अट्टं रुद्दं च दुवे' गाहा निगदसिद्धा। 'अतरंतो' गाहा निगदसिद्धैव, नवरं 'कारणियसहूवि य निसण्णो'त्ति यो हि गुरुवैयावृत्त्यादिना व्यापृतः कारणिकः स समर्थोऽपि निषण्णः करोतीति ॥१४९५–१४९६॥ इत्थं तावत् कायोत्सर्ग उक्तः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [३७]

आवश्यक-हारिभद्रीया

॥७७८॥

अत्रान्तरे अध्ययनशब्दार्थो निरूपणीयः, स चान्यत्र न्यक्षेण निरूपितत्वान्नेहाधिकृतः, गतो नामनिष्पन्नो निक्षेपः, साम्प्रतं सूत्रालापकनिष्पन्नस्य निक्षेपस्यावसरः, स च सूत्रे सति भवति, सूत्रं च सूत्रानुगम इत्यादिप्रपञ्चो वक्तव्यः यावत् तच्चेदं सूत्रं–'करेमि भंते! सामाइयमित्यादि यावत् अप्पाणं वोसिरामि' अस्य संहितादिलक्षणा व्याख्या यथा सामायिकाध्ययने तथा मन्तव्या पुनरभिधाने च प्रयोजनं वक्ष्यामः, इदमपरं सूत्रं—

५कायोत्सर्गाध्य० इच्छामि ठाइउं व्याख्या

इच्छामि ठाइउं काउस्सग्गं जो मे देवसिओ अइआरो कओ काइओ वाइओ माणसिओ उस्सुत्तो उम्मग्गो अकप्पो अकरणिज्जो दुज्झाओ दुव्विचिंतिओ अणायारो अणिच्छिअव्वो असमणपाउग्गो नाणे दंसणे चरित्ते सुए सामाइए तिण्हं गुत्तीणं चउण्हं कसायाणं पंचण्हं महव्वयाणं छण्हं जीवनिकायाणं सत्तण्हं पिंडेसणाणं अट्ठण्हं पवयणमाऊणं नवण्हं बंभचेरगुत्तीणं दसविहे समणधम्मे समणाणं जोगाणं जं खंडिअं जं विराहिअं तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ (सूत्रम्)

अस्य व्याख्या—तल्लक्षणं चेदं–संहितेत्यादि, तत्र इच्छामि स्थातुं कायोत्सर्गं यो मे दैवसिकोऽतिचारः कृत इत्यादि संहिता, पदानि तु इच्छामि स्थातुं कायोत्सर्गं मया दैवसिकोऽतिचारः कृत इत्यादीनि, पदार्थस्तु 'इषु इच्छाया'मित्यस्यो-त्तमपुरुषस्यैकवचनान्तस्य 'इषुगमिष्यमां छ' इति (पा०७-३-७७) छत्वे इच्छामि भवति, इच्छामि–अभिलषामि स्थातुमिति 'ष्ठा गतिनिवृत्तौ' इत्यस्य तुम्प्रत्ययान्तस्य स्थातुमिति भवति, 'कायोत्सर्ग'मिति 'चिञ् चयने' अस्य घञन्तस्य 'निवासस-मिति(चिति)शरीरोपसमाधानेष्वादेश्च क इति (पा० ३-३-४१) चीयते इति कायः देह इत्यर्थः 'सृज विसर्गे' इत्यस्य उत्पूर्वस्य ॥७७८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कायोत्सर्गस्थापना सूत्र—अर्थ, व्याख्यादि

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [३८]

घञि उत्सर्ग इति भवति, शेषपदार्थो यथा प्रतिक्रमणे तथैव, पदविग्रहस्तु यानि समासभाञ्जि पदानि तेषामेव भवति नान्येषामिति, तत्र इच्छामि स्थातुं, कं ?–कायोत्सर्ग–कायस्योत्सर्गः कायोत्सर्गः तमिति, शेषपदविग्रहो यथा प्रतिक्रमणे, एवं चालना प्रत्यवस्थानं च यथासम्भवमुपरिष्टाद् वक्ष्यामः । तथेदमन्यत्तु सूत्रं—

तस्सुत्तरीकरणेणं पायच्छित्तकरणेणं विसोहीकरणेणं विसल्लीकरणेणं पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सग्गं अन्नत्थ ऊससिएणं नीससिएणं खासिएणं छीएणं जंभाइएणं उड्डुएणं वायनिसग्गेणं भमलिए पित्तमुच्छाए सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो जाव अरिहंताणं भगवंताणं नमुक्कारेणं न पारेमि ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि ॥ (सूत्रम्) ॥

अस्य व्याख्या—'तस्योत्तरीकरणेन''तस्ये'ति तस्य–अनन्तरं प्रस्तुतस्य श्रामण्ययोगसङ्घातस्य कथञ्चित् प्रमादात् खण्डितस्य विराधितस्य वोत्तरीकरणेन हेतुभूतेन 'ठामि काउस्सग्ग'मिति योगः, तत्रोत्तरकरणं पुनः संस्कारद्वारेणोपरिकरणमुच्यते, उत्तरं च तत् करणं च इत्युत्तरकरणं अनुत्तरमुत्तरं क्रियत इत्युत्तरीकरणं, कृतिः–करणमिति, तच्च प्रायश्चित्तद्वारेण भवति अत आह–'पायच्छित्तकरणेणं' प्रायश्चित्तशब्दार्थं वक्ष्यामः तस्य करणं प्रायश्चित्तकरणं तेन, अथवा सामायिकादीनि प्रतिक्रमणावसानानि विशुद्धौ कर्त्तव्यायां मूलकरणं, इदं पुनरुत्तरकरणमतस्तेनोत्तरकरणेन–प्रायश्चित्तकरणेनेति, क्रिया पूर्ववत्, प्रायश्चित्तकरणं च विशुद्धिद्वारेण भवत्यत आह–'विसोहीकरणेणं'विशोधनं विशुद्धिः अपराधमलिनस्यात्मनः प्रक्षालन-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

तस्य 'उत्तरीकरण' आदि तथा 'अन्नत्थ' मूलसूत्र एवं तयो: व्याख्या

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [३९]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥७७९॥

मित्यर्थः तस्याः करणं तेन हेतुभूतेन, विशुद्धिकरणं च विशल्यकरणद्वारेण भवत्यत आह–'विसल्लीकरणेणं' विगतानि शल्यानि–मायादीनि यस्यासौ विशल्यस्तस्य करणं विशल्यकरणं तेन हेतुभूतेन, 'पावाणं कम्माणं णिग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सग्गं' पापानां संसारनिबन्धनानां कर्मणां–ज्ञानावरणीयादीनां निर्घातार्थं–निर्घातननिमित्तं व्यापत्तिनिमित्तमित्यर्थः, किं ?–'तिष्ठामि कायोत्सर्गं' कायस्योत्सर्गः–कायपरित्याग इत्यर्थः तं, एतदुक्तं भवति–अनेकार्थत्वाद् धातूनां तिष्ठामीति–करोमि कायोत्सर्गं, व्यापारवतः कायस्य परित्यागमिति भावना, किं सर्वथा ? नेत्याह–'अन्नत्थूससिएणं'ति अन्यत्रोच्छ्वसितेन, उच्छ्वसितं मुक्त्वा योऽन्यो व्यापारस्तेन व्यापारवत इत्यर्थः, एवं सर्वत्र भावनीयं, तत्रोर्ध्वं प्रबलं वा श्वसितमुच्छ्वसितं तेन, 'नीससिएणं'ति अधःश्वसितं निःश्वसितं तेन निःश्वसितेन, 'खासिएणं'ति कासितं प्रतीतं, 'छीएणं'ति क्षुतं प्रतीतमेव तेनै-तदपि, 'जंभाइएणं'ति जृम्भितेन, विवृतवदनस्य प्रबलपवननिर्गमो जृम्भितमुच्यते, 'उड्डुएणं'ति उद्गारितं प्रतीतं, 'वायनिसग्गेणं'ति अपानेन पवननिर्गमो वातनिसर्गो भण्यते तेन, 'भमलीए'त्ति भ्रमल्या, इयमाकस्मिकी शरीरभ्रमिलक्षणा प्रतीतैव 'पित्तसंमूर्च्छया' पित्तमूर्च्छयाऽपि, पित्तप्राबल्यात् मनाग् मूर्च्छा भवति, 'सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं' सूक्ष्मैरङ्गसञ्चारैर्लक्ष्यालक्ष्यैर्गात्रविचलनप्रकारै रोमोद्गमादिभिः, 'सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं' सूक्ष्मैः खेलसञ्चारैर्यस्मात् सयोगिवीर्यसद्द्रव्यतया ते खल्वन्तर्भवन्ति 'सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं' सूक्ष्मैर्दृष्टिसञ्चारैः–निमेषादिभिः, 'एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ होज्ज मे काउस्सग्गो' एवमादिभिरित्यादिशब्दं वक्ष्यामः, आक्रियन्त इत्याकारा आगृह्यन्त इति भावना, सर्वथा कायोत्सर्गापवादप्रकारा इत्यर्थः, तैराकारैर्विद्यमानैरपि न भग्नोऽभग्नः, भग्नः सर्वथा नाशितः, न विराधितोऽविराधितो, विराधितो देशभग्नोऽभिधीयते, भवेत्

५कायोत्स-र्गाध्य० अ-न्यत्रोच्छ्व-सित०

॥७७९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[३९]

मम कायोत्सर्गः, कियन्तं कालं यावदित्याह–'जाव अरहंताणं भगवंताणं नमोक्कारेणं न पारेमि' यावदर्हतां भगवतां नमस्कारेण न पारयामि, यावदिति कालावधारणं, अशोकाद्यष्टमहाप्रातिहार्यादिरूपां पूजामर्हन्तीत्यर्हन्तस्तेषामर्हतां भगः–ऐश्वर्यादिलक्षणः स विद्यते येषां ते भगवन्तस्तेषां भगवतां सम्बन्धिना नमस्कारेण 'नमो अरहंताणं'इत्यनेन न पारयामि–न पारं गच्छामि, तावत् किमित्याह–'ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि'त्ति तावच्छब्देन कालनिर्देशमाह, कायं–देहं स्थानेन–ऊर्ध्वस्थानेन तथा मौनेन–वाग्निरोधलक्षणेन, तथा ध्यानेन शुभेन, 'अप्पाणं'ति प्राकृतशैल्या आत्मीयं, अन्ये न पठन्त्येवैनमालापकं, व्युत्सृजामि–परित्यजामि, इयमत्र भावना–कायं स्थानमौनध्यानक्रियाव्यतिरेकेण क्रियान्तराध्यासद्वारेण व्युत्सृजामि, नमस्कारपाठं यावत् प्रलम्बभुजो निरुद्धवाक्प्रसरः प्रशस्तध्यानानुगतस्तिष्ठामीति, तथाच कायोत्सर्गपरिसमाप्तौ नमस्कारमपठतस्तद्भङ्ग एव द्रष्टव्य इत्येष तावत् समासार्थः, अवयवार्थं तु भाष्यकारो वक्ष्यति, तत्रेच्छामि स्थातुं कायोत्सर्गमित्याद्यं सूत्रावयवमधिकृत्याह—कायोत्सर्गस्थानं न कार्यं, प्रयोजनरहितत्वात्, तथाविधपर्यटनवदिति, अत्रोच्यते, प्रयोजनरहितत्वमसिद्धं, यतः—

काउस्सग्गंमि ठिओ निरेयकाओ निरुद्धवइपसरो। जाणइ सुहमेगमणो मुणि देवसियाइअइयारं॥ १ ॥ (प्र०)
परिजाणिऊण य जओ संमं गुरुजणपगासणेणं तु। सोहेइ अप्पगं सो, जम्हा य जिणेहिं सो भणिओ ॥ २॥(प्र०)
काउस्सग्गं मुक्खपहदेसियं जाणिऊण तो धीरा। दिवसाइयारजाणणट्ठयाइ ठायंति उस्सग्गं ॥ १४९७ ॥

व्याख्या—इह च सम्बद्धगाथाद्वयमन्यकर्तृकं तथापि सोपयोगमितिकृत्वा व्याख्यायते, कायोत्सर्गे उक्तस्वरूपे स्थितः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [३९]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥७८०॥

सन् निरेजकायो–निष्प्रकम्पदेह इति भावना, निरुद्धवाक्प्रसरः–मौनव्यवस्थितः सन् जानीते सुखमेकमना–एकाग्रचित्त, सन् कोऽसौ ?–मुनिः–साधुः, किं ?–दैवसिकातिचारं आदिशब्दाद्रात्रिकग्रह इति गाथार्थः ॥ ततः किमित्याह–यस्मात् कारणात् सम्यग्–अशठभावेन गुरुजनप्रकाशनेन–गुरुजननिवेदनेनेति हृदयं, तुशब्दात् तदादिष्टप्रायश्चित्तकरणेन चः शोधयत्यात्मानमसौ, अतिचारमलिनं क्षालयतीत्यर्थः, तच्चातिचारपरिज्ञानमविकलं कायोत्सर्गव्यवस्थितस्य भवत्यतः कायोत्सर्गस्थानं कार्यमिति, किंच–यस्माज्जिनैर्भगवद्भिरयं कायोत्सर्गो भणित–उक्तः, तस्मात् कायोत्सर्गस्थानं कार्यमिति गाथार्थः ॥ १–२ ॥ यतश्चैवमतः 'काउस्सग्गं मुक्खपहदेसियं'ति मोक्षपन्थास्तीर्थकर एव भण्यते तत्प्रदर्शकत्वात्, कारणे कार्योपचारात्, तेन मोक्षपथेन देशितः–उपदिष्टः मोक्षपथदेशितस्तं, 'जाणिऊणं'ति दिवसाद्यतिचारपरिज्ञानोपायतया विज्ञाय ततो धीराः–साधवः, दिवसातिचारज्ञानार्थमित्युपलक्षणं रात्र्यतिचारज्ञानार्थमपि, 'ठायंति उस्सग्गं'ति तिष्ठन्ति कायोत्सर्गमित्यर्थः, ततश्च कायोत्सर्गस्थानं कार्यमेव, सप्रयोजनत्वात्, तथाविधवैयावृत्यवदिति गाथार्थः ॥१४९७॥ साम्प्रतं यदुक्तं 'दिवसातिचारज्ञानार्थ'मिति, तत्रौघतो विषयद्वारेण तमतिचारमुपदर्शयन्नाह—

सयणासणण्णपाणे चेइय जइ सेज्ज काय उच्चारे। समितीभावणगुत्ती वितहायरणंमि अइयारो ॥ १४९८ ॥

व्याख्या—शयनीयवितथाचरणे सत्यतिचारः, एतदुक्तं भवति–संस्तारकादेरविधिना ग्रहणादौ अतिचार इति, 'आसण'त्ति आसनवितथाचरणे सत्यतिचारः पीठकादेरविधिना ग्रहणादतिचार इति भावना, 'अण्णपाण'त्ति अन्नपानवितथाचरणे सत्यतिचारः अन्नपानस्याविधिना ग्रहणादावतिचार इत्यर्थः, 'चेतिय'त्ति चैत्यवितथाचरणे सत्यतिचारः, चैत्यविषयं

५कायोत्सर्गाध्य० कायोत्सर्गप्रयोजनं

॥७८०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

शयन, आसन आदीनाम् अतिचाराणां वर्णनं

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [३९]

वितथाचरणमविधिना वन्दने अकरणे चेत्यादि, 'जइ'त्ति यतिवितथाचरणे सत्यतिचारः, यतिविषयं च वितथाचरणं यथार्हं विनयाद्यकरणमिति, 'सेज्ज'त्ति शय्यावितथाचरणे सत्यतिचारः, शय्या वसतिरुच्यते, तद्विषयं वितथाचरणमविधिना प्रमार्जनादौ स्त्र्यादिसंसक्तायां वा वसत इत्यादि, 'काय' इति कायिकवितथाचरणे सत्यतिचारः, वितथाचरणं चास्थण्डिले कायिकं व्युत्सृजतः स्थण्डिले वाऽप्रत्युपेक्षितादावित्यादि, 'उच्चारे'त्ति उच्चारवितथाचरणे सत्यतिचारः उच्चारः–पुरीषं भण्यते वितथाचरणं चैतद्विषयं यथा कायिकायां, 'समिति'त्ति समितिवितथाचरणे सत्यतिचारः, समितयश्चेर्यासमिति-प्रमुखाः पञ्च यथा प्रतिक्रमणे, वितथाचरणं चासामविधिनाऽऽसेवनेऽनासेवने चेत्यादि, 'भावने'ति भावनावितथाचरणे सत्यतिचारः, भावनाश्चानित्यत्वादिगोचरा द्वादश, तथा चोक्तम्–"भावयितव्यमनित्यत्वमशरणत्वं तथैकतान्यत्वे। अशुचित्वं संसारः कर्माश्रवसंवरविधिश्च ॥ १ ॥ निर्जरणलोकविस्तरधर्मस्वाख्याततत्त्वचिन्ताश्च। बोधेः सुदुर्लभत्वं च भावना द्वादश विशुद्धाः ॥ २ ॥" अथवा पञ्चविंशतिभावना यथा प्रतिक्रमणे, वितथाचरणं चासामविधिसेवनेनेत्यादि, 'गुत्ति'त्ति गुप्ति-वितथाचरणे सत्यतिचारः, तत्र मनोगुप्तिप्रमुखास्तिस्रो गुप्तयः यथा प्रतिक्रमणे, वितथाचरणमपि गुप्तिविषयं यथा समिति-ष्विति गाथार्थः ॥१४९८॥ इत्थं सामान्येन विषयद्वारेणातिचारमभिधायाधुना कायोत्सर्गगतस्य मुनेः क्रियामभिधित्सुराह—

गोसमुहणंतगाई आलोए देसिए य अइयारे। सव्वे समाणइत्ता हियए दोसे ठविज्जाहि ॥ १४९९ ॥
काउं हिअए दोसे जहक्कमं जा न ताव पारेइ। ताव सुहुमाणुपाणू धम्मं सुक्कं च झाइज्जा ॥ १५०० ॥

गोषः प्रत्यूषो भण्यते, 'मुहणंतगं' मुखवस्त्रिका आदिशब्दाच्छेषोपकरणग्रहः, ततश्चैतदुक्तं भवति–गोषादारभ्य मुखवस्त्रि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [३९]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७८१॥

५कायोत्स-र्गाध्य० अतिचार-कायोत्स०

कादौ विषये 'आलोए देसिए य अतिचारे'त्ति अवलोकयेत्–निरीक्षेत दैवसिकानतिचारान्–अविधिप्रत्युपेक्षिताप्रत्युपेक्षिता-दीनिति, ततः 'सव्वे समणाइत्ता' सर्वानतिचारान् मुखवस्त्रिकाप्रत्युपेक्षणादारभ्य यावत् कायोत्सर्गावस्थानमत्रान्तरे य इति 'समाणइत्ता' समाप्य बुद्ध्यवलोकनेन समाप्तिं नीत्वा एतावन्त एत इति, नातः परमतिचारोऽस्ति ततो 'हृदये' चेतसि दोषान्–प्रतिषिद्धकरणादिलक्षणान् आलोचनीयानित्यर्थः, स्थापयेदिति गाथार्थः ॥ १४९९ ॥ कृत्वा हृदये दोषान् यथाक्रममिति प्रतिसेवनानुलोम्येन आलोचनानुलोम्येन च, प्रतिसेवनानुलोम्यं नाम ये यथाऽऽसेविता इति, आलोचनानुलोम्यं तु पूर्वं लघव आलोच्यन्ते पश्चाद् गुरव इति, 'जा न ताव पारेति'त्ति यावन्न तावत् पारयति गुरुर्नमस्कारेण, 'ताव सुहुमाणु-पाणु'त्ति तावदिति कालावधारणं, सूक्ष्मप्राणापानः, सूक्ष्मोच्छ्वासनिश्वास इत्यर्थः, किं ?–'धम्मं सुक्कं च झाएज्जा' धर्मध्यानं प्रतिक्रमणाध्ययनोक्तस्वरूपं शुक्लं ध्यानं च ध्यायेदिति गाथार्थः ॥ १५०० ॥ एवं—

देसिय राइय पक्खिय चाउम्मासे तहेव वरिसे य । इक्किक्के तिन्नि गमा नायव्वा पंचसेएसु ॥ १५०१ ॥

व्याख्या—'देवसिय'त्ति दैवसिके प्रतिक्रमणे दिवसेन निर्वृत्तं दैवसिकं, 'राइय'त्ति रात्रिके, 'पक्खिए'त्ति पाक्षिके 'चाउम्मासे'त्ति चातुर्मासिके तथैव 'वरिसि'त्ति तथैव वार्षिके च, वर्षेण निर्वृत्तं वार्षिकं–सांवत्सरिकमिति भावना, एकैकस्मिन् प्रतिक्रमणे दैवसिकादौ त्रयो गमा ज्ञातव्याः, पञ्चस्वेतेषु दैवसिकादिषु, कथं त्रयो गमाः ?, सामायिकं कृत्वा कायोत्सर्गकरणं, सामायिकमेव कृत्वा प्रतिक्रमणं, सामायिकमेव कृत्वा पुनः कायोत्सर्गम्, इह च यस्माद् दिवसादि तीर्थं दिवसप्रधानं च तस्माद् दैवसिकमादाविति गाथार्थः ॥ १५०१ ॥ अत्राह चोदकः—

॥७८१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [३९]

आइमकाउस्सग्गे पडिक्कमणे ताव काउ सामइयं । तो किं करेह बीयं तइअं च पुणोऽवि उस्सग्गे? ॥ १५०२ ॥
समभावंमि ठियप्पा उस्सग्गं करिय तो पडिक्कमइ । एमेव य समभावे ठियस्स तइयं तु उस्सग्गे ॥ १५०३ ॥
सज्झायझाणतवओसहेसु उवएसथुइपयाणेसु । संतगुणकित्तणेसु अ न हुंति पुणरुत्तदोसा उ ॥ १५०४ ॥

व्याख्या—'आदिमकायोत्सर्गे' इति प्रथमकायोत्सर्गे कृत्वा सामायिकमिति योगः 'पडिक्कमणे ताव बितियं काउं सामाइयं'ति योगः, ता किं करेह तइयं च सामाइयं पुणोऽवि उस्सग्गो' यः प्रतिक्रान्तोपरीति गाथार्थः ॥ १५०२ ॥ चालना चेयम्, अत्रोच्यते—'समभावंमि' गाहा व्याख्या—इह समभावस्थितस्य भावप्रतिक्रमणं भवति नान्यथा, ततश्च समभावे–रागद्वेषमध्यवर्त्तिनि स्थित आत्मा यस्यासौ स्थितात्मा, 'उस्सग्गं काउ (करिय) तो पडिक्कमति' दिवसातिचारपरिज्ञानाय कायोत्सर्गं कृत्वा गुरोरतिचारं निवेद्य तत्प्रदत्तप्रायश्चित्तं समभावपूर्वकमेव प्रपद्य ततः प्रतिक्रामति, 'एमेव य समभावे ठितस्स ततियं तु उस्सग्गे' एवमेव च समभावे व्यवस्थितस्य सतश्चारित्रशुद्धिरपि भवतीतिकृत्वा तृतीयं सामायिकं कायोत्सर्गे प्रतिक्रान्तोत्तरकालभाविनि क्रियत इति गाथार्थः ॥ १५०३ ॥ प्रत्यवस्थानमिदम्–'सज्झायझाण' गाहा व्याख्या निगदसिद्धा, इदानीं 'जो मे देवसिओ अइयारो कओ' इत्यादि सूत्रमधो व्याख्यातत्वादनादृत्य 'तस्स मिच्छामि दुक्कडं'ति सूत्रावयवं व्याचिख्यासुराह—

मित्ति मिउमद्दवत्ते छत्ति अ दोसाण छायणे होइ। मित्ति य मेराइ ठिओ दुत्ति दुगुंछामि अप्पाणं ॥ १५०५ ॥
कत्ति कडं मे पावं डत्तिय डेवेमि तं उवसमेणं। एसो मिच्छाउक्कडपयक्खरत्थो समासेणं ॥ १५०६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

'मिच्छामिदुक्कडं' शब्दस्य निर्युक्ति तथा व्याख्या

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [३९]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७८२॥

५कायोत्स-र्गाध्य० अतिचार-कायोत्स०

इत्थं(दं) गाथायुगलं यथा सामायिकाध्ययने व्याख्यातं तथैव द्रष्टव्यमिति, साम्प्रतं 'तस्योत्तरीकरणेने'ति सूत्रावयवं विवृण्वन्नाह—

खंडियविराहियाणं मूलगुणाणं सउत्तरगुणाणं । उत्तरकरणं कीरइ जह सगडरहंगगेहाणं ॥ १५०७ ॥
पावं छिंदइ जम्हा पायच्छित्तं तु भन्नई तेणं । पाएण वावि चित्तं विसोहए तेण पच्छित्तं ॥ १५०८ ॥
दव्वे भावे य दुहा सोही सल्लं च इक्कमिक्कं तु । सव्वं पावं कम्मं भामिज्जइ जेण संसारे ॥ १५०९ ॥

व्याख्या—'खण्डितविराधितानां' खण्डिताः–सर्वथा भग्ना विराधिताः–देशतो भग्ना मूलगुणानां–प्राणातिपातादिविनिवृत्तिरूपाणां सह उत्तरगुणैः–पिण्डविशुध्यादिभिर्वर्त्तत इति सोत्तरगुणास्तेषामुत्तरकरणं क्रियते, आलोचनादिना पुनः संस्करणमित्यर्थः, दृष्टान्तमाह–यथा शकटरथाङ्गगेहानां–गन्त्रीचक्रगृहाणामित्यर्थः, तथा च शकटानां खण्डितविराधितानां अक्षात्रलकादिनोत्तरकरणं क्रियत इति गाथार्थः ॥ १५०७ ॥ अधुना 'प्रायश्चित्तकरणेने'ति सूत्रावयवं व्याचिख्यासुराह–'पावं' गाहा, व्याख्या–पापं–कर्मोच्यते तत् पापं छिनत्ति यस्मात् कारणात् प्राकृतशैल्या 'पायच्छित्तं'ति भण्यते, तेन कारणेन, संस्कृते तु पापं छिनत्तीति पापच्छिदुच्यते, प्रायसो वा चित्तं–जीवं शोधयति–कर्ममलिनं विमलीकरोति तेन कारणेन प्रायश्चित्तमुच्यते, प्रायो वा–बाहुल्येन चित्तं स्वेन स्वरूपेण अस्मिन् सतीति प्रायश्चित्तं, प्रायोग्रहणं संवरादेरपि तथाविधचित्तसद्भावादिति गाथार्थः ॥ १५०८॥ अधुना 'विशोधिकरणे'त्यादिसूत्रावयवव्याचिख्यासयाऽऽह—'दव्वे भावे य दुहा सोही' गाहा–द्रव्यतो भावतश्च द्विविधा विशुद्धिः, शल्यं च, 'एक्कमेक्कं तु'त्ति एकैकं शुद्धिरपि द्रव्यभावभेदेन

॥७८२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [३९]

द्विधा, शल्यमपीत्यर्थः। तत्र द्रव्यशुद्धिः रूपादिना वस्त्रादेर्भावशुद्धिः प्रायश्चित्तादिनाऽऽत्मन एव, द्रव्यशल्यं कण्टकशिलीमुखफलादि, भावशल्यं तु मायादि, सर्वं ज्ञानावरणीयादि कर्म पापं वर्त्तते, किमिति ?–भ्राम्यते येन कारणेन तेन कर्मणा जीवः संसारे–तिर्यग्नारकामरभवानुभवलक्षणे, तथा च दग्धरज्जुकल्पेन भवोपग्राहिणाऽल्पेनापि सता केवलिनोऽपि न मुक्तिमासादयन्तीति दारुणं संसारभ्रमणनिमित्तं कर्मेति गाथार्थः॥ १५०९॥ साम्प्रतम् 'अन्यत्रोच्छ्वसितेने'त्यवयवं विवृणोति—

उस्सासं न निरुंभइ आभिग्गहिओवि किमुअ चिट्ठा उ?। सज्जमरणं निरोहे सुहुमुस्सासं तु जयणाए॥ १५१०॥
कासखुअजंभिए मा हु सत्थमणिलोऽनिलस्स तिव्वुण्हो। असमाही य निरोहे मा मसगाई अ तो हत्थो॥१५११॥
वायनिसग्गुड्डोए जयणासद्दस्स नेव य निरोहो। उड्डोए वा हत्थो भमलीमुच्छासु अ निवेसो॥ १५१२॥
वीरियसजोगयाए संचारा सुहुमबायरा देहे। बाहिं रोमंचाई अंतो खेलाणिलाईया॥ १५१३॥
आ(अव)लोअचलं चक्खू मणुव्व तं दुक्करं थिरं काउं। रूवेहिं तयं खिप्पइ सभावओ वा सयं चलइ॥ १५१४॥
न कुणइ निमेसजुत्तं तत्थुवओगे ण झाण झाइज्जा। एगनिसिं तु पवन्नो झायइ साहू अणिमिसच्छोऽवि॥१५१५॥
अगणीओ छिंदिज्ज व बोहियखोभाइ दीहडक्को वा। आगारेहिं अभग्गो उस्सग्गो एवमाईहिं॥ १५१६॥

ऊर्ध्वं प्रबलः श्वास उच्छ्वासः तं 'न निरुंभइ'त्ति न निरुणद्धि, 'आभिग्गहिओवि' अभिगृह्यत इति अभिग्रहः अभिग्रहेण निर्वृत्त आभिग्रहिकः–कायोत्सर्गस्तदव्यतिरेकात् तत्कर्त्ताऽप्याभिग्रहिको भण्यते, असावप्यभिभवकायोत्सर्गकार्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [३९]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७८३॥

पीत्यर्थः, 'किमुत चेट्ठा उ'त्ति किं पुनश्चेष्टाकायोत्सर्गकारी, स तु सुतरां न निरुणद्धि इत्यर्थः, किमित्यत आह–'सज्जमरणं निरोहे'त्ति सद्योमरणं निरोधे उच्छ्वासस्य, ततश्च 'सुहुमुस्सासं तु जयणाए'त्ति सूक्ष्मोच्छ्वासमेव यतनया मुञ्चति, नोल्बणं, मा भूत् सत्त्वघात इति गाथार्थः ॥ १५१० ॥ अधुना 'कासिते'त्यादिसूत्रार्थप्रचिकटिषयेदमाह—'कासखुयजंभिए' गाहा व्याख्या—इह कायोत्सर्गे कासक्षुतजृम्भितादीनि यतनया क्रियन्ते, किमिति ?–'मा हु सत्थमणिलोऽणिलस्स तिव्वुण्हो'त्ति मा शस्त्रं भविष्यति कासितादिसमुद्भवोऽनिलो–वायुरनिलस्य–बाह्यस्य वायोः, किंभूतः ?–तीव्रोष्णः, बाह्यानिलापेक्षया अत्युष्ण इत्यर्थः । न च न क्रियन्ते न च निरुध्यन्त एव न 'असमाही य निरोहे'त्ति (सर्वथारोधे) असमाधिश्च चशब्दात् मरणमपि सम्भाव्यते कासितादिनिरोधे सति, 'मा मसगाई'त्ति मा मसकादयश्च कासितादिसमुद्भवपवनश्लेष्माभिहता मरिष्यन्ति जृम्भिते च वदनप्रवेशं करिष्यन्ति ततो हस्तोऽग्रतो दीयत इति यतनेयमिति गाथार्थः ॥ १५११ ॥ आह–निःश्वसितेनेति सूत्रावयवो न व्याख्यायते इति किमत्र कारणम् ?, उच्यते, उच्छ्वसितेन तुल्ययोगक्षेमत्वादिति, इदानीम् 'उद्गारितेने'त्यादिसूत्रावयवव्याचिख्यासयाऽऽह—वातनिसर्गः–उक्तस्वरूप उद्गारोऽपि, तत्रायं विधिः–यतना शब्दस्य क्रियते न निसृष्टं मुच्यत इति, 'नेव य निरोहो'त्ति नैव च निरोधः क्रियते, असमाधिभावादेव, उद्गारे वा हस्तोऽन्तरे दीयत इति 'भमलीमुच्छासु य निवेसो' मा सहसापतितस्यात्मविराधना भविष्यतीति गाथार्थः ॥ १५१२ ॥ साम्प्रतं 'सूक्ष्मैरङ्गसञ्चारै'रित्यादिसूत्रावयवव्याचिख्यासयाऽऽह—वीर्यसयोगतया कारणेन संचाराः सूक्ष्मबादरा देहे अवश्यंभाविनो, वीर्यं वीर्यान्तरायक्षयोपशमक्षयजं खल्वात्मपरिणामो भण्यते योगास्तु–मनोवाक्कायास्तत्र वीर्यसयोग-

५कायोत्सर्गाध्य० अतिचारकायोत्स० ॥७८३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [३९]

तयैवातिचाराः सूक्ष्मबादरा भवन्ति न केवलात् वीर्यादिति देह एव च भवति नादेहस्य, तत्र बहो रोमश्चादय आदि-
शब्दादुत्कम्पग्रहः 'अन्तो खेलानिलादीया' अन्तः–मध्ये श्लेष्मानिलादयो विचरन्तीत्यर्थः, इति गाथार्थः ॥१५१३॥ अधुना
'सूक्ष्मैर्दृष्टिसञ्चारै'रिति सूत्रावयवं व्याख्यानयति—अवलोकनमालोकस्तस्मिन्नवलोके चलं अवलोकचलं दर्शनलालसमि-
त्यर्थः, किं ?–चक्षुः–नयनं, यतश्चैवमतो मनोवद्–अन्तःकरणमिव तच्चक्षुर्दुष्करं स्थिरं कर्तुं, न शक्यत इत्यर्थः, यतो रूपै-
स्तदाक्षिप्यते स्वभावतो वा–स्वभावेन वा नैसर्गिकेण स्वयं चलति, आत्मनैव चलतीति गाथार्थः ॥१५१४॥ यस्मादेवं तस्मात्
न करोति निमेष(रोध)यत्नं कायोत्सर्गकारी, किमिति ?,–'तत्थुवओगे ण झाण झाएज्ज'त्ति तत्र–निर्निमेषयत्ने य उपयोग-
स्तेन सता मा न ध्यानं ध्यायेत् अभिप्रेतमिति, 'एगनिसं तु पवन्नो झायइ साहू अणिमिसच्छोऽवि' एकरात्रिकीं तु प्रतिमां
प्रतिपन्नो महासत्त्वो ध्यायति समर्थः अनिमेषाक्षोऽपि–अनिमिषे अक्षिणी यस्य सः अनिमिषाक्षः निश्चलनयन इति गाथार्थः
॥ १५१५ ॥ अधुना एवमादिभिराकारैरित्यादिसूत्रावयवव्याचिख्यासयाह—'अगणि'त्ति यदा ज्योतिः स्पृशति तदा प्रावर-
णाय कल्पग्रहणं कुर्वतो न कायोत्सर्गभङ्गः, आह–नमस्कारमेवाभिधाय किमिति तद्ग्रहणं न करोति ? येन तद्भङ्गो न भवति,
उच्यते, नात्र नमस्कारपारणमेवाविशिष्टं कायोत्सर्गमानं क्रियते, किं तु यो यत्परिमाणो यत्र कायोत्सर्ग उक्तस्तत ऊर्ध्वं
परिसमाप्तेऽपि तस्मिन्नमस्कारमपठतो भङ्ग इत्यादि, अपरिसमाप्तेऽपि च पठतो भङ्ग एव, स चात्र न भवतीति, एवं सर्वत्र
भावनीयं, 'छिंदिज्ज व'त्ति मार्जारीमूषकादिभिर्वा पुरतो यायात्, अत्राप्यग्रतः सरतो न कायोसर्गभङ्गः, 'बोहियखोभाइ'त्ति
बोधिकाः–स्तेनकास्तेभ्यः क्षोभः–संभ्रमः, आदिशब्दाद्राजादिक्षोभः परिगृह्यते, तत्रास्थानेऽप्युच्चारयतो(ऽनुच्चारयतो)वा न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [३९]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७८४॥

कायोत्सर्गभङ्गो 'दीहडक्को वे'ति सर्पदष्टे चात्मनि परे वा सहसा–अकाण्ड एवोच्चारयतः, तथैव आक्रियन्त इत्याकारा-स्तैराकारैरभग्नः स्यात् कायोत्सर्ग एवमादिभिरिति गाथार्थः ॥ १५१६ ॥ अधुनौघतः कायोत्सर्गविधिप्रतिपादनायाह—

५कायोत्स-गाध्य० अतिचार-कायोत्स०

ते पुण ससूरिए चिय पासवणुच्चारकालभूमीओ । पेहित्ता अत्थमिए ठंतुस्सग्गं सए ठाणे ॥ १५१७ ॥
जइ पुण निव्वाघाए आवासं तो करिंति सव्वेवि। सड्ढाइकहणवाघाययाइ पच्छा गुरू ठंति ॥ १५१८ ॥
सेसा उ जहासत्तिं आपुच्छित्ताण ठंति सट्ठाणे । सुत्तत्थसरणहेउं आयरिएँ ठियंमि देवसियं ॥ १५१९ ॥
जो हुज्ज उ असमत्थो बालो वुड्ढो गिलाण परितंतो। सो विकहाइविरहिओ झाइज्जा जा गुरू ठंति ॥ १५२० ॥
जा देवसिअं दुगुणं चिंतइ गुरू अहिंडओऽचिट्ठं । बहुवावारा इअरे एगगुणं ताव चिंतंति ॥ १५२१ ॥
पव्वइयाण व चिट्ठं नाऊण गुरू बहुं बहुविहीअं । कालेण तदुचिएणं पारेई थोवचिट्ठोऽवि ॥ (प्र०१) ॥
नमुक्कारचउवीसगकिइकम्मालोअणं पडिक्कमणं । किइकम्मदुरालोइअ दुप्पडिक्कंते य उस्सग्गो ॥ १५२२ ॥
एस चरित्तुस्सग्गो दंसणसुद्धीइ तइयओ होइ । सुअनाणस्स चउत्थो सिद्धाण थुई अ किइकम्मं ॥ १५२३ ॥

व्याख्या—ते पुनः–कायोत्सर्गकर्त्तारः ससूर्य एव दिवसे प्रश्रवणोच्चारकालभूमयः (मीः) प्रत्युपेक्षन्ते, द्वादश प्रश्रवण-भूमयः आलयपरिभोगान्तः षट् षट् बहिः, एवमुच्चारभूमयो द्वादश, प्रमाणं चासां तिर्यग् जघन्येन हस्तमात्रमधश्चत्वार्यङ्गु-लानि यावत् अचेतनं, उत्कृष्टतस्तु स्थण्डिलं द्वादश योजनमानं, न च तेनेहाधिकारः, तिस्रस्तु कालभूमयः–कालमण्डलाख्याः, यावच्चैनमन्यं च श्रमणयोगं कुर्वन्ति कालवेलायां तावत् प्रायसोऽस्तमुपयात्येव सविता ततश्च 'अत्थमिए ठंति उस्सग्गं

॥७८४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

कायोत्सर्गस्य विधि: प्रतिपाद्यते

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[३९]

सए ठाणे'त्ति उक्तमन्यथा यस्य यदैव व्यापारपरिसमाप्तिर्भवति स तदैव सामयिकं कृत्वा तिष्ठतीति गाथार्थः ॥१५१७॥ अयं च विधिः केनचित् कारणान्तरेण गुरोर्व्याघाते सति। 'जइ पुण निव्वाघाओ' व्याख्या—यदि पुनर्निर्व्याघात एव सर्वेषामावश्यकं–प्रतिक्रमणं ततः कुर्वन्ति सर्वेऽपि सहैव गुरुणा 'सङ्घादिकहणवाघाते पच्छा गुरू ठंति'त्ति निगदसिद्धमिति गाथार्थः ॥ १५१८ ॥ यदा च पश्चाद् गुरवस्तिष्ठन्ति तदा—'सेसा उ जहासत्ती' गाहा व्याख्या—शेषास्तु साधवो यथाशक्ति–शक्त्यनुरूपं यो हि यावन्तं कालं स्थातुं समर्थः 'आपुच्छित्ता गुरू ठंति सट्ठाणे सामायिकं काऊण, किंनिमित्तं ?–'सुत्तत्थसरणहेउं' सूत्रार्थस्मरणनिमित्तं–'आयरिए ठियंमि देवसियं' आयरिए पुरओ ठिए तस्स सामाइयावसाणे देवसियं अइयारं चिंतेंति, अण्णे भणंति–जाहे आयरिओ सामाइयं कड्ढइ ताहे तेवि तयट्ठिया चेव सामाइयसुत्तमणुपेहंति गुरुणा सह पच्छा देवसियं'ति गाथार्थः ॥ १५१९ ॥ शेषाश्च यथा शक्तिरित्युक्तं, यस्य कायोत्सर्गेण स्थातुं शक्तिरेव नास्ति स किं कुर्यादिति तद्गतं विधिमभिधित्सुराह—'जो हुज्ज उ असमत्थो' गाहा व्याख्या—यः कश्चित् साधुर्भवेदसमर्थः कायोत्सर्गेण स्थातुं, स किंभूत इत्याह–बालो वृद्धो ग्लानः 'परितंतो'त्ति परिश्रान्तो गुरुवैयावृत्यकरणादिना असावपि विकथादिविरहितः सन् ध्यायेत् सूत्रार्थं 'जा गुरू ठंति'त्ति यावद् गुरवस्तिष्ठन्ति कायोत्सर्गमिति गाथार्थः ॥ १५२० ॥

---

१ आपृच्छय गुरून् तिष्ठन्ति स्वस्थाने सामायिकं कृत्वा, किंनिमित्तं ?, सूत्रार्थस्मरणहेतोः । आचार्ये स्थिते दैवसिकं–आचार्ये पुरतः स्थिते तस्य सामायिकावसाने दैवसिकमतिचारं चिन्तयन्ति, अन्ये भणन्ति–यदाऽऽचार्याः सामायिकं कथयन्ति तदा तेऽपि तदवस्थिता एव सामायिकसूत्रमनुप्रेक्षन्ते गुरुणा सह पश्चाद्दैवसिकं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [३९]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥७८५॥

५कायोत्सर्गाध्य० प्रतिक्रान्तिविधिः

आचार्ये स्थिते दैवसिकमित्युक्तं तद्गतं विधिमभिधित्सुराह—'जा देवसियं दुगुणं चिंतइ' गाहा व्याख्या—निगदसिद्धा, नवरं चेष्टा व्यापाररूपाऽवगन्तव्या ॥१५२१॥'नमोकारचउवीसग' गाहा व्याख्या–'नमोकारे'ति काउस्सग्गसमत्तीए नमोक्कारेण पारेंति नमो अरहंताणंति, 'चउवीसग'त्ति पुणो जेहिं इमं तित्थं देसियं तेसिं तित्थगराणं उसभादीणं चउवीसत्थएणं उक्कित्तणं करेंति, लोगस्सुज्जोयगरेणंति भणियं होति, 'कितिकम्मे'ति तओ वंदिउंकामा गुरुं संडासयं पडिलेहित्ता उवविसंति, ताहे मुहणंतगं पडिलेहिय ससीसोवरियं कायं पमज्जंति, पमज्जित्ता परेण विणएण तिकरणविसुद्धं कितिकम्मं करेंति, वन्दनकमित्यर्थः, उक्तं च–“आलोयणवागरणासंपुच्छणपूयणाए सज्झाए । अवराहे य गुरूणं विणओ मूलं च वंदणग ॥१॥” मित्यादि 'आलोयणं'ति एवं च वंदित्ता उत्थाय उभयकरगहियरओहरणाद्धावणयकाया पुव्वपरिचिंतिए दोसे जहारायणियाए संजयभासाए जहा गुरू सुणेइ तहा पवड्ढमाणसंवेगा भयविप्पमुक्का अप्पणो विशुद्धिनिमित्तमालोयंति, उक्तं च–“विणएण विणयमूलं गंतूणायरियपायमूलंमि । जाणाविज्ज सुविहिओ जह अप्पाणं तह परंपि ॥ १ ॥ कयपावोवि मणुस्सो

१ कायोत्सर्गसमाप्तौ नमस्कारेण पारयंति नमोऽर्हद्भ्य इति, चतुर्विंशतिरिति, पुनर्यैरिदं तीर्थं देशितं तेषां तीर्थकराणामृषभादीनां चतुर्विंशतिस्तवेनोत्कीर्तनं कुर्वन्ति, लोकस्योद्योतकरेणेति भणितं भवति, कृतिकर्मेति ततो वन्दितुकामा गुरुं संदंशकान् प्रमार्ज्योपविशन्ति, ततो मुखानन्तकं प्रतिलिख्य सशीर्षमुपरितनं कायं प्रमार्जयन्ति, प्रमृज्य परेण विनयेन त्रिकरणविशुद्धं कृतिकर्म कुर्वन्ति । आलोचनाव्याकरणसंप्रश्नपूजनासु स्वाध्याये । अपराधे च गुरूणां विनयो मूलं च वन्दनकं । एवं च वन्दित्वोत्थायोभयकरगृहीतरजोहरणा अर्धावनतकायाः पूर्वपरिचिन्तितान् दोषान् यथारत्नाधिकं संयतभाषया यथा गुरुः शृणोति तथा प्रवर्धमानसंवेगा भयविप्रमुक्ता आत्मनो विशुद्धिनिमित्तमालोचयन्ति–विनयेन विनयमूलं गत्वाऽऽचार्यपादमूले । ज्ञापयेत् सुविहितो यथाऽऽत्मानं तथा परमपि ॥ १ ॥ कृतपापोऽपि मनुष्य

॥७८५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [३९]

[1]आलोइउ निंदिउ गुरुसयासे। होइ अइरेगलहूओ ओहरियभरोव्व भारवहो ॥ २ ॥ तथा–उप्पण्णाणुप्पन्ना माया अणुमग्गओ निहंतव्वा। आलोयणनिंदणगरहणाहिं ण पुणो सिया बितियं ॥ ३ ॥ तस्स य पायच्छित्तं जं मग्गविऊ गुरू उवइसंति। तं तह अणुचरियव्वं अणवत्थपसंगभीएणं ॥ ४ ॥ 'पडिक्कमणं'ति–'आलोइऊण दोसे गुरुणा पडिदिण्णपायच्छित्ता उ। सामाइयपुव्वगं समभा(वा)वठिया पडिकमंति ॥ १ ॥ सम्ममुवउत्ता पयंपएण पडिक्कमणं कड्ढंति, अणवत्थपसंगभीया, अणवत्थाए पुण उदाहरणं तिलहारगकप्पट्ठगोत्ति, 'कितिकम्मं'ति तओ पडिक्कमित्ता खामणानिमित्तं पडिकंतायवत्तनिवेयणत्थं च वंदंति, तओ आयरियमादी पडिक्कमणत्थमेव दंसेमाणा खामेंति, उत्तं च–आयरिउवज्झाए सीसे साहंमिए कुलगणे य। जे मे केऽवि कसाया सव्वे तिविहेण खामेमि ॥ १ ॥ सव्वस्स समणसंघस्स भगवओ अंजलिं करिय सीसे। सव्वं खमावइत्ता खमामि सव्वस्स अहयंपि ॥ २ ॥ सव्वस्स जीवरासिस्स भावओ धम्मनिहियनियचित्तो। सव्वं खमावइत्ता

---

१ आलोच्य निन्दित्वा गुरुसकाशे। भवत्यतिशयेन लघुरुद्धृतभर इव भारवाहः ॥ २ ॥ उत्पन्नाऽनुत्पन्ना माया प्रतिमार्गं निहन्तव्या। आलोचनानिन्दनागर्हनाभिर्न स्याद् द्वितीयवारम् ॥३॥ तस्य च प्रायश्चित्तं यन्मार्गविदो गुरव उपदिशन्ति। तत्तथाऽनुचरितव्यमनवस्थाप्रसङ्गभीतेन ॥४॥ आलोच्य दोषान् गुरुणा प्रतिदत्तप्रायश्चित्तास्तु। सामायिकपूर्वं समभावावस्थिताः प्रतिक्राम्यन्ति ॥ १ ॥ सम्यगुपयुक्ताः पदंपदेन प्रतिक्रमणसूत्रं कथयन्त्यनवस्थाप्रसङ्गभीताः, अनवस्थायां पुनरुदाहरणं तिलहारकशिशुरिति। ततः प्रतिक्रम्य क्षामणानिमित्तं प्रतिक्रान्ताआत्मवृत्तनिवेदनार्थं च वन्दन्ते, तत आचार्यादीन् प्रतिक्रमणार्थमेव दर्शयन्तः क्षमयन्ति। आचार्योपाध्यान् शिष्यान् साधर्मिकान् कुलगणांश्च। ये मया केऽपि कषायिताः सर्वान् त्रिविधेन क्षमयामि ॥ १ ॥ सर्वश्रमणसङ्घस्य भगवतेऽञ्जलिं कृत्वा शीर्षे। सर्वं क्षमयित्वा क्षमे सर्वस्याहमपि ॥ २ ॥ सर्वस्मिन् जीवराशौ भावतो धर्मनिहितनिजचित्तः। सर्वं क्षमयित्वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
||गा.||

दीप
अनुक्रम
[४०-४६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ||७८६||

५कायोत्स-गाध्य० प्रतिक्रा-न्तिविधिः

खमामि सव्वस्स अहयंपि ॥ ३ ॥" इत्यादि 'दुरालोइयदुप्पडिक्कंते य उस्सग्गे'त्ति एवं खामित्ता आयरियमादी ततो दुरालोइयं वा होज्जा दुप्पडिक्कंतं वा होज्जा अणाभोगादिकारणेण ततो पुणोवि कयसामाइया चरित्तविसोहणत्थमेव काउस्सग्गं करेंतित्ति गाथार्थः ॥ १५२२ ॥ 'एस चरित्तुस्सग्गो' गाहा व्याख्या—एस चरित्तुस्सग्गोत्ति चरित्तातियारविसुद्धिनिमित्तोत्ति भणियं होइ, अयं च पंचासुस्सासपरिमाणो ॥१५२३॥ ततो नमोक्कारेण पारेत्ता विशुद्धचरित्ता विशुद्धदेसयाणं दंसणविसुद्धिनिमित्तं नामुक्कित्तणं करेंति, चरित्तं विसोहियमियाणिं दंसणं विसोहिज्जतित्तिकट्टु, तं पुण णामुक्कित्तणमेवं करेंति, 'लोगस्सुज्जोयगरे'त्यादि, अयं चतुर्विंशतिस्तवे न्यक्षेण व्याख्यात इति नेह पुनर्व्याख्यायते, चतुर्विंशतिस्तवं चाभिधाय दर्शनविशुद्धिनिमित्तमेव कायोत्सर्गं चिकीर्षवः पुनरिदं सूत्रं पठन्ति—

मूलसूत्र - लोगस्स

● **सव्वलोए अरिहंतचेइयाणं करेमि काउस्सग्गं वंदणवत्तियाए पूअणवत्तियाए सक्कारवत्तियाए सम्माणवत्तियाए बोहिलाभवत्तियाए निरुवसग्गवत्तियाए सद्धाए मेहाए धिइए धारणाए अणुप्पेहाए वड्ढमाणीए ठामि काउस्सग्गं (सूत्रं) ॥**

---

१ क्षमे सर्वस्याहमपि ॥ ३ ॥ एवं क्षमयित्वाऽऽचार्यादीन् ततो दुरालोचितं वा भवेत् दुष्प्रतिक्रान्तं वा भवेत् अनाभोगादिकारणेन ततः पुनरपि कृतसामायिकाश्चारित्रविशोधनार्थमेव कायोत्सर्गं कुर्वन्ति । एष चारित्रोत्सर्ग इति चारित्रातिचारविशुद्धिनिमित्त इति भणितं भवति, अयं च पञ्चाशदुच्छ्वासपरिमाणः, ततो नमस्कारेण पारयित्वा विशुद्धचारित्रा विशुद्धदेशकानां दर्शनशुद्धिनिमित्तं नामोत्कीर्त्तनं कुर्वन्ति, चारित्रं विशोधितमिदानीं दर्शनं विशुध्यत्वितिकृत्वा, तत्पुनर्नामोत्कीर्त्तनमेवं कुर्वन्ति । ||७८६||

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

सर्वलोके स्थित अर्हत्चैत्य-आश्रित कायोत्सर्गः

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[४७]

अस्य व्याख्या—सर्वलोकेऽर्हच्चैत्यानां करोमि कायोत्सर्गमिति, तत्र लोक्यते–दृश्यते केवलज्ञानभास्वतेति लोकः–चतुर्दशरज्ज्वात्मकः परिगृह्यते इति, उक्तं च–"धर्मादीनां वृत्तिर्द्रव्याणां भवति यत्र तत् क्षेत्रम्। तैर्द्रव्यैः सह लोकस्तद्विपरीतं ह्यलोकाख्यम् ॥ १ ॥" सर्वः खल्वधस्तिर्यगूर्ध्वभेदभिन्नः, सर्वश्चासौ लोकश्च २ तस्मिन् सर्वलोके, त्रैलोक्ये इत्यर्थः, तथाहि–अधोलोके चमरादिभवनेषु तिर्यग्लोके द्वीपाचलज्योतिष्कविमानादिषु सन्त्येवार्हच्चैत्यानि ऊर्ध्वलोके सौधर्मादिषु सन्त्येवार्हच्चैत्यानि, तत्राशोकाद्यष्टमहाप्रातिहार्यरूपां पूजामर्हन्तीत्यर्हन्तः–तीर्थकरास्तेषां चैत्यानि–प्रतिमालक्षणानि अर्हच्चैत्यानि, इयमत्र भावना–चित्तम्–अन्तःकरणं तस्य भावे कर्मणि वा वर्णदृढादिलक्षणे ष्यञि कृते चैत्यं भवति, तत्रार्हतां प्रतिमाः प्रशस्तसमाधिचित्तोत्पादनादर्हच्चैत्यानि भण्यन्ते, तेषां किं ?–करोमीत्युत्तमपुरुषैकवचननिर्देशेनात्माऽभ्युपगमं दर्शयति, किमित्याह–कायः–शरीरं तस्योत्सर्गः–कृताकारस्य स्थानमौनध्यानक्रियाव्यतिरेकेण क्रियान्तराध्यासमधिकृत्य परित्याग इत्यर्थः, तं कायोत्सर्गं, आह–कायस्योत्सर्ग इति षष्ठ्या समासः कृतः, अर्हच्चैत्यानामिति प्रागुक्तं, तत् किमर्हच्चैत्यानां कायोत्सर्गं करोति ?, नेत्युच्यते, षष्ठीनिर्दिष्टं तत्पदं पदद्वयमतिक्रम्य मण्डूकप्लुत्या वन्दनप्रत्ययमित्यादिभिः सम्बध्यते, ततोऽर्हच्चैत्यानां वन्दनप्रत्ययं करोमि कायोत्सर्गमिति द्रष्टव्यम्, तत्र वन्दनम्–अभिवादनं प्रशस्तकायवाङ्मनःप्रवृत्तिरित्यर्थः, तत्प्रत्ययं–तन्निमित्तं, तत्फलं मे कथं नाम कायोत्सर्गादित्यतोऽर्थमित्येवं सर्वत्र भावना कार्या, तथा 'पूयणवत्तियाए' त्ति पूजनप्रत्ययं–पूजानिमित्तं, तत्र पूजनं–गन्धमाल्यादिभिरभ्यर्चनं, तथा 'सक्कारवत्तियाए' त्ति सत्कारप्रत्ययं–सत्कारनिमित्तं, तत्र प्रवरवस्त्राभरणादिभिरभ्यर्चनं सत्कारः, आह–यदि पूजनसत्कारप्रत्ययः कायोत्सर्गः क्रियते

आ० १३२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [४७]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥७८७॥

५कायोत्स-र्गाध्य० प्रतिक्रमण-विधिः

ततस्तावेव कस्मान्न क्रियेते ?, उच्यते, द्रव्यस्तवत्वादप्रधानत्वाद्, उक्तं च–'दव्वत्थउ भावत्थउ' इत्यादि, अतः श्रावकाः पूजनसत्कारावपि कुर्वन्त्येव,साधवस्तु प्रशस्ताध्यवसायनिमित्तमेवमभिदधति,तथा'सम्माणवत्तियाए'त्ति सन्मानप्रत्ययं–सन्माननिमित्तं, तत्र स्तुत्यादिभिर्गुणोन्नतिकरणं सन्मानः, तथा मानसः प्रीतिविशेष इत्यन्ये, अथ वन्दनपूजनसत्कारसन्माना एव किंनिमित्तमित्यत आह–'बोहिलाभवत्तियाए' बोधिलाभप्रत्ययं–बोधिलाभनिमित्तं प्रेत्य जिनप्रणीतधर्मप्राप्तिर्बोधिलाभो भण्यते, अथ बोधिलाभ एव किंनिमित्तमित्यत आह 'निरुवसग्गवत्तियाए' निरुपसर्गप्रत्ययं–निरुपसर्गनिमित्तं, निरुपसर्गो–मोक्षः, अयं च कायोत्सर्गः क्रियमाणोऽपि श्रद्धा(दि)विकलस्य नाभिलषितार्थप्रसाधनायालमित्यत आह–'सद्धाए मेहाए धिईए धारणाए अणुप्पेहाए वड्ढमाणीए ठामि काउस्सग्गं'ति श्रद्धया हेतुभूतया तिष्ठामि कायोत्सर्गं न बलाभियोगादिना श्रद्धा–निजोऽभिलाषः, एवं मेधया–पटुत्वेन, न जडतया, अन्ये तु व्याचक्षते–मेधयेति मर्यादावर्त्तित्वेन नासमञ्जसतयेति, एवं धृत्या–मनःप्रणिधानलक्षणया न पुना रागद्वेषाकुलतया, धारणया–अर्हद्गुणाविष्करणरूपया न तच्छून्यतया, अनुप्रेक्षया–अर्हद्गुणानामेव मुहुर्मुहुरविच्युतिरूपेणानुचिन्तनया न तद्वैकल्येन, वर्द्धमानयेति प्रत्येकमभिसम्बध्यते, श्रद्धया वर्द्धमानया एवं मेधयेत्यादि, एवं तिष्ठामि कायोत्सर्गम्, आह–उक्तमेव प्राकरोमि कायोत्सर्गं साम्प्रतं तिष्ठामीति किमर्थमिति ?, उच्यते, 'वर्त्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा (पा०३-३-१३१) इतिकृत्वा करोमि करिष्यामीति क्रियाभिमुख्यमुक्तमिदानीं त्वासन्नतरत्वात् क्रियाकालनिष्ठाकालयोः कथञ्चिदभेदात् तिष्ठाम्येव, आह–किं सर्वथा ?, नेत्याह–'अन्नत्थूससिएणमित्यादि पूर्ववत् यावद्वोसिरामि'त्ति, एयं च सुत्तं पढित्ता पणवीसूसासपरिमाणं काउस्सग्गं करेंति, 'दंसणविसुद्धीय तइउ'त्ति,

॥७८७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
||गा.||

दीप
अनुक्रम
[४८-५२]

तृतीयत्वं चास्यातीचारालोचनविषयप्रथमकायोत्सर्गापेक्षयेति, तओ नमोक्कारेण पारेत्ता सुयणाणपरिवुड्ढिनिमित्तं अतियारविसोहणत्थं च सुयधम्मस्स भगवओ पराए भत्तीए तप्परूवगनमोक्कारपुव्वयं थुइं पढंति, तंजहा—

पुक्खरवरदीवड्ढे धायइसंडे य जंबुदीवे य। भरहेरवयविदेहे धम्माइगरे नमंसामि ॥ १ ॥ तमतिमिरपडलविद्धंसणस्स सुरगणनरिंदमहिअस्स। सीमाधरस्स वंदे पप्फोडियमोहजालस्स ॥ २ ॥ जाईजरामरणसोगपणासणस्स, कल्लाणपुक्खलविसालसुहावहस्स। को देवदानवनरिंदगणच्चिअस्स, धम्मस्स सारमुवलब्भ करे पमायं ? ॥ ३ ॥ सिद्धे भो ! पयओ णमो जिणमए नंदी सया संजमे, देवंनागसुवण्णकिण्णरगणस्सब्भूअभावच्चिए। लोगो जत्थ पइट्ठिओ जगमिणं तेलुक्कमच्चासुरं, धम्मो वड्ढउ सासओ विजयऊ धम्मुत्तरं वड्ढउ ॥ ४ ॥ सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्गं वंदण० अन्नत्थ०। (सूत्रम्)

अस्य व्याख्या—पुष्कराणि–पद्मानि तैर्वरः–प्रधानः पुष्करवरः २ श्चासौ द्वीपश्चेति समासः, तस्यार्धं मानुषोत्तराचलार्वाग्वर्ति तस्मिन्, तथा धातकीनां खण्डानि यस्मिन् स धातकीखण्डो द्वीपस्तास्मिंश्च, तथा जम्बोपलक्षितस्तत्प्रधानो वा द्वीपो जम्बूद्वीपस्तास्मिंश्च, एतेष्वर्द्धतृतीयेषु द्वीपेषु महत्तरक्षेत्रप्राधान्याङ्गीकरणतः पश्चानुपूर्व्योपन्यस्तेषु यानि भरतैरावतविदेहानि प्राकृतशैल्या त्वेकवचननिर्देशः द्वन्द्वैकवद्भावाद् भरतैरावतविदेह इत्यपि भवति, तत्र धर्मादिकरणान्नमस्यामि–'दुर्गतिप्रसृतान् जीवान्, यस्माद् धारयते ततः। धत्ते चैतान् शुभस्थाने, तस्माद् धर्म्म इति स्मृतः ॥ १ ॥' स च द्विभेदः—श्रुतधर्मश्चारित्रधर्मश्च, श्रुतधर्मेणेहाधिकारः, तस्य भरतादिष्वादौ करणशीलास्तीर्थकरा एवातस्तेषां स्तुतिरुक्ता, साम्प्रतं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

श्रुतस्तव रूप 'पुष्करवरद्वीप' सूत्र, मूल एवं व्याख्या

प्रत
सूत्रांक
||गा.||

दीप
अनुक्रम
[४८-५२]

आवश्यक-
हारिभ-
द्रीया
॥७८८॥

५कायोत्स-
र्गाध्य०
प्रतिक्रमण-
विधः

श्रुतधर्मस्य प्रोच्यते–'तमतिमिरपडलविद्धंसणस्स सुरगणे'त्यादि, तमः–अज्ञानं तदेव तिमिरं अथवा तमः–बद्धस्पृष्टनिधत्तं ज्ञानावरणीयं निकाचितं तिमिरं तस्य पटलं–वृन्दं तमस्तिमिरपटलं तद् विध्वंसयति नाशयतीति तमस्तिमिरपटलविध्वंसनः तस्य, तथा चाज्ञाननिरासेनैवास्य प्रवृत्तिः, तथा सुरगणनरेन्द्रमहितस्य, तथा चागममहिमानं कुर्वन्त्येव सुरादयः, तथा सीमां–मर्यादां धारयतीति सीमाधरः, सीम्नि वा धारयतीति तस्येति, तृतीयार्थे षष्ठी, तं वन्दे, तस्य वा यत् माहात्म्यं तद् वन्दे, अथवा तस्य वन्द इति वन्दनं करोमि, तथाहि–आगमवन्त एव मर्यादां धारयन्ति, किंभूतस्य ?–प्रकर्षेण स्फोटितं मोहजालं–मिथ्यात्वादि येन स तथोच्यते तस्य, तथा चास्मिन् सति विवेकिनो मोहजालं विलयमुपयात्येव, इत्थं श्रुतधर्ममभिवन्द्याधुना तस्यैव गुणोपदर्शनद्वारेण प्रमादागोचरतां प्रतिपादयन्नाह–'जाईजरामरणे'त्यादि, जातिः–उत्पत्तिः जरा–वयोहानिः मरणं–प्राणत्यागः शोकः–मानसो दुःखविशेषः, जातिश्च जरा च मरणं च शोकश्चेति द्वन्द्वः, जातिजरामरणशोकान् प्रणाशयति–अपनयति जातिजरामरणशोकप्रणाशनस्तस्य, तथा च श्रुतधर्मोक्तानुष्ठानाज्जात्यादयः प्रणश्यन्त्येव, अनेन चास्यानर्थप्रतिघातित्वमाह, कल्यम्–आरोग्यं कल्यमणतीति कल्याणं, कल्यं शब्दयतीत्यर्थः, पुष्कलं–सम्पूर्णं न च तदल्पं किं तु विशालं–विस्तीर्णं सुखं–प्रतीतं कल्याणं पुष्कलं विशालं सुखमावहति—प्रापयतीति कल्याणपुष्कलविशालसुखावहस्तस्य, तथा च श्रुतधर्मोक्तानुष्ठानादुक्तलक्षणमपवर्गसुखमवाप्यत एव, अनेन चास्य विशिष्टार्थप्रसाधकत्वमाह, कःप्राणी देवदानवनरेन्द्रगणार्चितस्य श्रुतधर्मस्य सारं–सामर्थ्यमुपलभ्य-दृष्ट्वा विज्ञाय कुर्यात् प्रमादं सचेतनः ? चारित्रधर्मे प्रमादः कर्तुं न युक्त इति हृदयम्, आह–सुरगणनरेन्द्रमहितस्येत्युक्तं पुनर्देवदानवनरेन्द्रगणार्चि- ॥७८८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
||गा.||

दीप
अनुक्रम
[४८-५२]

तस्येति किमर्थमिति ?, अत्रोच्यते, तन्निगमनत्वाददोषः, तस्यैवंगुणस्य धर्मस्य सारमुपलभ्य कः सकर्णः प्रमादी भवेच्चारित्रधर्म इति, यतश्चैवमतः 'सिद्धे भो पयओ नमो जिणमये'इत्यादि, सिद्धे–प्रतिष्ठिते प्रख्याते भो इत्येतदतिशयिनामामन्त्रणं पश्यन्तु भवन्तः प्रयतोऽहं–यथाशक्त्योद्यतः प्रकर्षेण यतः, इत्थं परसाक्षिकं भू(कृ)त्वा पुनर्नमस्करोति–'नमो जिनमते' अर्थाद् विभक्तिपरिणामो नमो जिनमताय, तथा चास्मिन् सति जिनमते नन्दिः–समृद्धिः सदा–सर्वकालं, क ?–संयमे–चारित्रे, यथोक्तं–'पढमं णाणं तओ दये'त्यादि, किंभूते संयमे ?–देवनागसुवर्णकिन्नरगणैः सद्भूतभावेनार्चिते, तथा च संयमवन्तः अर्च्यन्त एव देवादिभिः, किंभूते जिनमते ?–लोक्यतेऽनेनेति लोकः–ज्ञानमेव स यत्र प्रतिष्ठितः, तथा जगदिदं ज्ञेयतया, केचित् मनुष्यलोकमेव जगत् मन्यन्ते इत्यत आह–त्रैलोक्यमनुष्यासुरं, आधाराधेयरूपमित्यर्थः, अयमित्थंभूतः श्रुतधर्मो वर्द्धतां–वृद्धिमुपयातु शाश्वतः–द्रव्यार्थादेशान्नित्यः, तथा चोक्तं–'द्रव्यार्थादेशात् इत्येषा द्वादशाङ्गी न कदाचिद् नासीदि'त्यादि, अन्ये पठन्ति–धर्मो वर्द्धतां शाश्वतं इति, अस्मिन् पक्षे क्रियाविशेषणमेतत्, शाश्वतं वर्द्धतां अप्रच्युत्येति भावना, विजयतां कर्मपरप्रवादिविजयेनेति हृदयं, तथा धर्मोत्तरं–चारित्रधर्मोत्तरं वर्द्धतु, पुनर्वृद्ध्यभिधानं मोक्षार्थिना प्रत्यहं ज्ञानवृद्धिः कार्येति प्रदर्शनार्थं, तथा च तीर्थकरनामकर्महेतून् प्रतिपादयतोक्तं–"अप्पुव्वणाणगहणे"त्ति, 'सुयस्स भगवओ करेमि काउस्सग्गं वंदणवत्तियाए' इत्यादि प्रागवत्, यावद्वोसिरामि । एयं सुत्तं पढित्ता पणुवीसुस्सासमेव काउस्सग्गं करेमि, आह च–'सुयणाणस्स चउत्थो'त्ति, तओ नमोक्कारेण पारित्ता विसुद्धचरणदंसणसुयाइयारा मंगलनिमित्तं चरणदंसणसुयदेसगाणं सिद्धाणं थुइं कड्ढेंति, भणियं च—'सिद्धाण थुई य'त्ति, सा चेयं स्तुतिः—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ||गा.||

दीप अनुक्रम [५३-५७]

आवश्यक-हारिभद्रीया

||७८९||

सिद्धाणं बुद्धाणं पारगयाणं परंपरगयाणं। लोयग्गमुवगयाणं नमो सया सव्वसिद्धाणं ॥ १ ॥ जो देवाणवि देवो जं देवा पंजली नमंसंति। तं देवदेवमहिअं सिरसा वंदे महावीरं ॥ २ ॥ इक्कोऽवि नमुक्कारो जिणवरवसहस्स वद्धमाणस्स। संसारसागराओ तारेइ नरं व नारिं वा ॥ ३ ॥ उज्जिंतसेलसिहरे दिक्खा नाणं निसीहिआ जस्स। तं धम्मचक्कवट्टिं अरिट्ठनेमिं नमंसामि ॥ ४ ॥ चत्तारि अट्ठ दस दो य वंदिआ जिणवरा चउव्वीसं। परमट्ठनिट्ठिअट्ठा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥ ५ ॥ (सूत्रं)

५कायोत्सर्गाध्य० प्रतिक्रमणविधिः

अस्य व्याख्या—सितं ध्मातमेषामिति सिद्धा निर्दग्धकर्मेन्धना इत्यर्थस्तेभ्यः सिद्धेभ्यः, ते च सामान्यतो विद्यासिद्धा अपि भवन्त्यत आह–बुद्धेभ्यः, तत्रावगताशेषाविपरीततत्त्वा बुद्धा उच्यन्ते, तत्र कैश्चित् स्वतन्त्रतयैव तेऽपि स्वतीर्थोज्ज्वलनाय इहागच्छन्ति इत्यभ्युपगम्यन्ते अत आह–'पारगतेभ्यः' पारं–पर्यन्तं संसारस्य प्रयोजनव्रातस्य च गताः पारगताः तेभ्यः, तेऽपि चानादिसिद्धैकजगत्पतीच्छावशात् कैश्चित् तथाऽभ्युपगम्यन्ते अत आह–'परम्परगतेभ्यः' परम्परया एकेनाभिव्यक्तार्थादागमात् (कश्चित्) प्रवृत्तोऽन्येनाभिव्यक्तादर्थादन्योऽन्येनाप्यन्य इत्येवंभूतया गताः परंपरगतास्तेभ्यः, आह-प्रथमएकेनाभिव्यक्तार्थादागमात् प्रवृत्त इति ?, उच्यते, अनादित्वात् सिद्धानां प्रथमत्वानुपपत्तिरिति, अथवा कथञ्चित् कर्मक्षयोपशमात् दर्शनं दर्शनात् ज्ञानं ज्ञानाच्चारित्रमित्येवंभूतया परम्परया गतास्तेभ्यः, तेऽपि च कैश्चित् सर्वलोकापन्ना एवेष्यन्त इत्यत आह–'लोकाग्रमुपगतेभ्यः' लोकाग्रम्–ईषत्प्राग्भाराख्यं तमुपगताः तेभ्यः, आह–कथं पुनरिह सकलकर्मविप्रमुक्तानां लोकाग्रं यावद्गतिर्भवति ?, भावे वा सर्वदैव कस्मान्न भवतीति ?, अत्रोच्यते, पूर्वावेधवशाद् दण्डादिच- ||७८९||

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

सिद्धस्तव रूप 'सिद्धाणं बुद्धाणं' सूत्र एवं तस्य व्याख्या

प्रत
सूत्रांक
||गा.||

दीप
अनुक्रम
[५३-५७]

क्रमभ्रमणवत् समयमेवैकमवसेयेति, नमः सर्वदा–सर्वकालं 'सर्वसिद्धेभ्यः' तीर्थसिद्धादिभेदभिन्नेभ्यः, अथवा सर्वं साध्यं सिद्धं येषां ते तथा तेभ्यः, इत्थं सामान्येन सर्वसिद्धनमस्कारं कृत्वा पुनरासन्नोपकारित्वाद् वर्तमानतीर्थाधिपतेः श्रीमन्महावीरवर्द्धमानस्वामिनः स्तुतिं कुर्वन्ति–'जो देवाणवि देवो जं देवा पंजली'त्यादि, यो भगवान् महावीरः देवानामपि–भवनवास्यादीनां देवः, पूज्यत्वात्, तथा चाह–यं देवाः प्राञ्जलयो नमस्यन्ति–विनयरचितकरपुटाः सन्तः प्रणमन्ति, तं 'देवदेवमहियं' देवदेवाः–शक्रादयः तैः महितं–पूजितं शिरसा उत्तमाङ्गेनेत्यादरप्रदर्शनार्थमाह, वन्दे, तं कं ?–'महावीरं' 'ईर गतिप्रेरणयो'रित्यस्य विपूर्वस्य विशेषेण ईरयति–कर्म गमयति याति वा शिवमिति वीरः, महांश्चासौ वीरश्च महावीरः तं, इत्थं स्तुतिं कृत्वा पुनः फलप्रदर्शनार्थमिदं पठति—'एक्कोऽवि नमोक्कारो जिणवरवसहस्से'त्यादि, एकोऽपि नमस्कारो जिनवरवृषभस्य वर्द्धमानस्य संसारसागरात्तारयति नरं वा नारीं वा, इयमत्र भावना–सति सम्यग्दर्शने परया भावनया क्रियमाण एकोऽपि नमस्कारः तथाभूताध्यवसायहेतुर्भवति यथाभूताच्छ्रेणिमवाप्य निस्तरति भवोदधिमित्यतः कारणे कार्योपचारादेतदेवमुच्यते, अन्यथा चारित्रादिवैफल्यं स्यात् । एतास्तिस्रः स्तुतयो नियमेनोच्यन्ते, केचिदन्या अपि पठन्ति, न च तत्र नियमः, 'कितिकम्मं' पुणो संडंसयं पडिलेहिय उवविसंति, मुहपोत्तियं पडिलेहंति ससीसोवरियं कायं पडिलेहित्ता आयरियस्स वंदणं करेंति'त्ति गाथार्थः ॥ १५२३ ॥ आह—किंनिमित्तमिदं वन्दनकमिति ?, उच्यते—

सुकयं आणत्तिं पिव लोगे काऊण सुकयकिइकम्मं । वड्ढंतिया थुईओ गुरुथुइगहणे कए तिन्नि ॥ १५२४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
||गा.||

दीप
अनुक्रम
[५३-५७]

आवश्यक-हारिभद्रीया ||७९०||

५कायोत्सर्गाध्य० प्रतिक्रमणविधिः

‘सुकयं आणत्तिंपिव लोए काऊणं’ति जहा रण्णो मणुस्सा आणत्तिगाए पेसिया पणामं काऊण गच्छंति, तं च काऊण पुणो पणामपुव्वगं निवेदेंति, एवं साहुणोऽवि सामाइयगुरुवंदणपुव्वगं चरित्तादिविसोहिं काऊण पुणो सुकयकितिकम्मा संतो गुरुणो निवेदंति—भगवं! कयं ते पेसणं आयविसोहिकारगंति, वंदणं च काऊण पुणो उक्कुडुया आयरियाभिमुहा विणयरतियंजलिपुडा चिट्ठंति, जाव गुरू थुइगहणं करेंति, ततो पच्छा समत्ताए पढमथुतीए थुई कड्ढंति विणउत्ति, तओ थुई वड्ढंतियाओ कड्ढंति तिण्णि, अहवा वड्ढंतिया थुइओ गुरुथुतिगहणे कए तिण्णित्ति गाथार्थः ॥ १५२४ ॥

तओ पाउसियं करेंति, एवं ताव देवसियं करेंति, गतं देवसियं, राइयं इदाणिं, तत्थिमा विही, पढमं चिय सामाइयं कड्ढिऊण चरित्तविसुद्धिनिमित्तं पणुवीसुस्सासमित्तं काउस्सग्गं करेंति, तओ नमोक्कारेण पारित्ता दंसणविसुद्धीनिमित्तं चउवीसत्थयं पढंति, पणुवीसुस्सासमेत्तमेव काउस्सग्गं करेंति, एत्थवि नमोक्कारेण पारेत्ता सुयणाणविसुद्धीनिमित्तं सुयणाणत्थयं,

---

१ यथा राज्ञा मनुष्या आज्ञया प्रेषिताः प्रणामं कृत्वा गच्छन्ति, तच्च कृत्वा पुनः प्रणामपूर्वकं निवेदयन्ति, एवं साधवोऽपि सामायिकगुरुवन्दनपूर्वं चारित्रादिविशुद्धिं कृत्वा पुनः सुकृतकृतिकर्माणः सन्तो गुरुभ्यो निवेदयन्ति–भगवन्! कृतं तव प्रेषणमात्मविशुद्धिकारकमिति, वन्दनं च कृत्वा पुनरुत्कटुका आचार्याभिमुखा विनयरचिताञ्जलिपुटास्तिष्ठन्ति यावद्गुरवः स्तुतिग्रहणं कुर्वन्ति, ततः पश्चात् समाप्तायां प्रथमस्तुतौ स्तुतीः कथयन्ति विनय इति, ततः स्तुतीर्वर्धमानाः कथयन्ति तिस्रोऽथवा वर्धमानाः स्तुतयः। ततः प्रादोषिकं कालं कुर्वन्ति, एवं तावद्दैवसिकं कुर्वन्ति, गतं दैवसिकं, रात्रिकमिदानीं, तत्रायं विधिः–प्रथममेव सामायिकं कथयित्वा चारित्रविशुद्धिनिमित्तं पञ्चविंशत्युच्छ्वासमानं कायोत्सर्गं कुर्वन्ति, ततो नमस्कारेण पारयित्वा दर्शनविशुद्धिनिमित्तं चतुर्विंशतिस्तवं पठन्ति पञ्चविंशत्युच्छ्वासमात्रमेव कायोत्सर्गं कुर्वन्ति, अत्रापि नमस्कारेण पारयित्वा श्रुतज्ञानविशुद्धिनिमित्तं श्रुतज्ञानस्तवं.

||७९०||

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक ||गा.|| दीप अनुक्रम [५३-५७]

कड्ढेंति, काउस्सग्गं च तस्सुद्धिनिमित्तं करेंति, तत्थ य पाओसियथुइमादीयं अधिकयकाउस्सग्गपज्जंतमइयारं चिंतेइ, आह—किंनिमित्तं पढमकाउस्सग्गे एव राइयाइयारं ण चिंतेति ?, उच्यते,

निद्दामत्तो न सरइ अइआरं मा य घट्टणं ऽण्णोऽन्नं । किइअकरणदोसा वा गोसाई तिन्नि उस्सग्गा ॥ १५२५॥

निद्दामत्तो—निद्दाभिभूओ न सरइ–न संभरइ सुट्ठु अइयारं मा घट्टणं ऽण्णोऽण्णं अंधयारे वंदंतयाणं, कितिअकरणदोसा वा, अंधयारे अदंसणाओ मंदसद्धा न वंदंति, एएण कारणेणं गोसे–पच्चूसे आइए तिण्णि काउस्सग्गा भवन्ति, न पुण पाओसिए जहा एक्कोत्ति ॥ १५२५ ॥

एत्थ पढमो चरित्ते दंसणसुद्धीएँ बीयओ होइ । सुयनाणस्स य ततिओ नवरं चिंतंति तत्थ इमं ॥ १५२६ ॥
तइए निसाइयारं चिंतइ चरमंमि किं तवं काहं ?। छम्मासा एगदिणाइहाणि जा पोरिसि नमो वा ॥ १५२७॥
अहमवि भे खामेमी तुब्भेहिँ समं अहं च वंदामि। आयरियसंतियं नित्थारगा उ गुरुणो अ वयणाइं॥१५२८॥

ततो चिंतिऊण अइयारं नमोक्कारेण पारेत्ता सिद्धाण थुइं काऊण पुव्वभणिएण विहिणा वंदित्ता आलोएति, तओ-

१ कर्षयन्ति, कायोत्सर्गं च तच्छुद्धिनिमित्तं कुर्वन्ति, तत्र च प्रादोषिकस्तुत्यादिकं अधिकृतकायोत्सर्गपर्यन्तमतिचारं चिन्तयन्ति । आह–किंनिमित्तं प्रथमकायोत्सर्ग एव रात्रिकातिचारं न चिन्तयन्ति ?,–निद्रामत्तः–निद्राभिभूतो न स्मरति सुष्ठ्वतिचारं मा घट्टनमन्योऽन्यं वन्दमानानामन्धकारे कृतिकर्माकरणदोषा वा–अन्धकारेऽदर्शनात् मन्दश्रद्धा न वन्दन्ते, एतेन कारणेन प्रत्यूषे आदौ त्रयः कायोत्सर्गा भवन्ति, न पुनः प्रादोषिके यथैक इति, ततश्चिन्तयित्वाऽतिचारान् नमस्कारेण पारयित्वा सिद्धाणमिति स्तुतिं कृत्वा पूर्वभणितेन विधिना वन्दित्वाऽऽलोचयन्ति, ततः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक ||गा.||

दीप अनुक्रम [५३-५७]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ||७९१||

५कायोत्स-र्गाध्य० प्रतिक्रमण-विधिः

सामाइयपुव्वयं पडिक्कमंति, तओ वंदणापुव्वयं खामेंति, वंदणं काऊणं तओ सामाइयपुव्वयं काउस्सग्गं करेंति, तत्थ चिंतयंति–कम्मि य निउत्ता वयं गुरुहिं ?, तो तारिसयं तवं पवज्जामो जारिसेण तस्स हाणि न भवति, तओ चिंतेति–छम्मासखमणं करेमो ?, न सक्केमो, एगदिवसेण ऊणं ?, तहवि न सक्केमो, एवं जाव पंच मासा, तओ चत्तारि तओ तिन्नि तओ दोन्नि, ततो एक्कं ततो अद्धमासं चउत्थं आयंबिलं एगठाणयं पुरिमड्ढं निव्विगइयं, नमोकारसहियं वत्ति, उक्तं च–'चरिमे किं तवं काहं'ति, चरिमे काउस्सग्गे छम्मासमेगूण (दिणादि) हाणी जाव पोरिसि नमो वा, एवं जं समत्था काउं तमसढभावा हिअए करेंति, पच्छा वंदित्ता गुरुसक्खयं पवज्जंति, सव्वे य नमोकारइत्तगा समगं उट्ठेंति वोसिरावेंति निसीयंति य, एवं पोरिसिमादिसु विभासा, तओ तिण्णि थुई जहा पुव्वं, नवरमप्पसद्दगं देंति जहा घरकोइलादी सत्ता न उट्ठेंति, तओ देवे वंदंति, तओ बहुवेलं संदिसावेंति, ततो रयहरणं पडिलेहंति, ततो उवधिं संदिसावेंति पडिलेहंति य,

---

१ सामायिकपूर्वकं प्रतिक्राम्यन्ति, ततो वन्दनकपूर्वकं क्षमयन्ति, वन्दनं कृत्वा ततः सामायिकपूर्वकं कायोत्सर्गं कुर्वन्ति, तत्र चिन्तयन्ति–कस्मिंश्चि-युक्ताश्च वयं गुरुभिः ततस्तादृशं तपः प्रपद्यामहे यादृशेन तस्य हानिर्न भवति, ततश्चिन्तयन्ति–षण्मासक्षपणं कुर्मः ?, न शक्नुमः, एकदिवसेनोनं ?, तथापि न शक्नुमः, एवं यावत् पञ्च मासाः, ततश्चतुरः, ततस्त्रीन् ततो द्वौ तत एकं ततोऽर्द्धमासं चतुर्थभक्तमाचामाम्लं एकस्थानकं पूर्वार्धं निर्विकृतिकं नमस्कारसहितं चेति, चरमे कायोत्सर्गे षण्मासा एकदिनादिहानिर्यावत् पौरुषी नमस्कारसहितं वा, एवं यत् समर्थाः कर्तुं तदशठभावा हृदि कुर्वन्ति, पश्चात् वन्दित्वा गुरुसाक्षिकं प्रतिपद्यन्ते, सर्वे च नमस्कारसहिते पारकाः समकमुत्तिष्ठन्ति व्युत्सृजन्ति निषीदन्ति च, एवं पौरुष्यादिषु विभाषा, ततस्तिस्रः स्तुतीर्यथा पूर्वं, नवरमल्पशब्दं ददति यथा गृहकोकिलाद्याः सत्त्वा नोत्तिष्ठन्ति, ततो देवान् वन्दन्ते, ततो बहुवेलं संदिशन्ति, ततो रजोहरणं प्रतिलिखन्ति, तत उपधिं संदिशन्ति प्रतिलिखन्ति च ||७९१||

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [५८]

तओ वसहिं पडिलेहिय कालं निवेदेंति, अण्णे य भणंति–थुइसमणंतरं कालं निवेएंति, एवं तु पडिक्कमणकालं तुलेंति जहा पडिकमंताणं थुइअवसाणे चेव पडिलेहणवेला भवति, गयं राइयं, इयाणिं पाक्खियं, तत्थिमा विही–जाहे देवसियं पडिक्कंता भवंति निवट्टगपडिक्कमणेणं ताहे गुरू निविसंति, तओ साहू वंदित्ता भणंति—

● इच्छामि खमासमणो ! उवट्ठिओमि अब्भिंतरपक्खियं खामेउं, पन्नरसण्हं दिवसाणं पन्नरसण्हं राईणं जं किंचि अपत्तियं परपत्तियं भत्ते पाणे विणए वेयावच्चे आलावे संलावे उच्चासणे समासणे अंतरभासाए उवरिभासाए जं किंचि मज्झ विणयपरिहीणं सुहुमं वा बायरं वा तुब्भे जाणह अहं न याणामि तस्स मिच्छामि दुक्कडं (सूत्रं)

इदं च निगदसिद्धमेव, नवरमन्तरभाषा–आचार्यस्य भाषमाणस्यान्तरे भाषते, उपरिभाषा तूत्तरकालं तदेव किलाधिकं भाषते, अत्राचार्यो यदभिधत्ते तत् प्रतिपादयन्नाह—'अहमवि खामेमि' गाहा व्याख्या—अहमवि खामेमि तुब्भेत्ति

---

१ ततो वसतिं प्रतिलिख्य कालं निवेदयन्ति, अन्ये च भणन्ति–स्तुतिसमनन्तरं कालं निवेदयन्ति, एवं तु प्रतिक्रमणकालं तोलयन्ति यथा प्रतिक्राम्यतां स्तुत्यवसान एव प्रतिलेखनावेला भवति । गतं रात्रिकं, इदानीं पाक्षिकं, तत्रायं विधिः–यदा दैवसिकं प्रतिक्रान्ता भवन्ति निर्वर्त्तितप्रतिक्रमणेन तदा गुरवो निषीदन्ति, ततः साधवो वन्दित्वा भणन्ति–। अहमपि क्षमयामि युष्मान् इति भणितं भवति, एवं जघन्येन त्रय उत्कृष्टतः सर्वे.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

'पाक्षिक क्षमापना' सूत्राणि एवं तेषाम् व्याख्या:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [५८]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७९२॥

५कायोत्स-गाध्य० प्रतिक्रमण-विधिः

भणियं होति, एवं जहण्णेणं तिण्णि उक्कोसेणं सव्वे खामिज्जंति, पच्छा गुरू उट्ठेऊणं जहाराइणियाए उद्धट्ठिओ चेव खामेति, इयरेवि जहाराइणियाए सव्वेवि अवणउत्तमंगा भणंति–देवसियं पडिक्कंतं पक्खियं खामेमो पण्णरसण्हं दिवसाणमित्यादि, एवं सेसगावि जहाराइणियाए खामेंति, पच्छा वंदित्ता भणंति–देवसियं पडिक्कंतं पक्खियं पडिक्कमावेह, तओ गुरू गुरुसंदिट्ठो वा पक्खियपडिक्कमणं कड्ढति, सेसगा जहासत्तिं काउस्सग्गादिसंठिया धम्मज्झाणोवगया सुणेंति, कड्ढिए मुलुत्तरगुणेहिं जं खंडियं तस्स पायच्छित्तनिमित्तं तिण्णि ऊसाससयाणि काउस्सग्गं करेंति, बारसउज्जोयकरेत्ति भणियं होति, पारिए उज्जोयकरे थुइं कड्ढंति, पच्छा उवविट्ठा मुहणंतगं पडिलेहित्ता वंदंति पच्छा रायाण पूसमाणवा अतिक्कंते मंगलिज्जे कज्जे बहुमन्नंति, सत्तुपरक्कमेण अखंडियनियबलस्स सोभणो कालो गओ अण्णोऽवि एवं चेव उवट्ठिओ, एवं पक्खियविणओवयारं खामेंति बितियखामणासुत्तेणं, तच्चेदं—

१ क्षाम्यन्ते, पश्चात् गुरुरुत्थाय यथारात्निकमूर्द्धस्थित एव क्षमयति, इतरेऽपि यथारात्निकं सर्वेऽप्यवनतोत्तमाङ्गा भणन्ति–दैवसिकं प्रतिक्रान्तं पाक्षिकं क्षमयामः पञ्चदशसु दिवसेषु, एवं शेषा अपि यथारात्निकं क्षमयन्ति, पश्चाद् वन्दित्वा भणन्ति–दैवसिकं प्रतिक्रान्तं पाक्षिकं प्रतिक्रामयत, ततो गुरुर्गुरुसंदिष्टो वा पाक्षिकप्रतिक्रमणं कथयति, शेषा यथाशक्ति कायोत्सर्गादिसंस्थिता धर्मध्यानोपगताः शृण्वन्ति, कथिते मूलोत्तरगुणेषु यत् खण्डितं तस्य प्रायश्चित्तनिमित्तं त्रीण्युच्छ्वासशतानि कायोत्सर्गं कुर्वन्ति, द्वादशोद्योतकरानिति भणितं भवति, पारिते उद्योतकरे स्तुतिं कथयन्ति, पश्चादुपविष्टा मुखानन्तकं प्रतिलिख्य वन्दन्ते, पश्चात् राजानं पुष्पमाणवा अतिक्रान्ते माङ्गलिके कार्ये बहुमन्यन्ते–शत्रुपराक्रमणेनाखण्डितनिजबलस्य शोभनः कालो गतः एवमेवान्योऽपि उपस्थितः, एवं पाक्षिकविनयोपचारं क्षमयन्ति द्वितीयक्षामणासूत्रेण,

॥७९२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [५९]

● इच्छामि खमासमणो ! पियं च मे जं भे हट्ठाणं तुट्ठाणं अप्पायंकाणं अभग्गजोगाणं सुसीलाणं सुव्वयाणं सायरियउवज्झायाणं णाणेणं दंसणेणं चरित्तेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणाणं बहुसुभेणं भे दिवसो पोसहो पक्खो वतिक्कंतो, अण्णो य भे कल्लाणेणं पज्जुवट्ठिओ सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि (सूत्रम्)

निगदसिद्धं, आयरिआ भणंति–साहूहिं समं जमेयं भणियंति, तओ चेइयवंदावणं साधुवंदावणं च निवेदितुंकामा भणन्ति—

● इच्छामि खमासमणो ! पुव्विं चेइयाइं वंदित्ता नमंसित्ता तुज्झं पायमूले विहरमाणेणं जे केइ बहुदेवसिया साहुणो दिट्ठा सम(मा)णा वा वसमाणा वा गामाणुगामं दुइज्जमाणा वा, राइणिया संपुच्छंति ओमराइणिया वंदंति अज्जा वंदंति अज्जियाओ वंदंति सावया वंदंति सावियाओ वंदंति अहंपि निस्सल्लो निक्कसाओ (तिकट्टु) सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि ॥ अहमवि वंदावेमि चेइयाइं (सूत्रम्)

निगदसिद्धं, नवरं समणो–वुड्ढवासी वसमाणो–णवविगप्पविहारी, वुड्ढवासी जंघाबलपरिहीणो णव विभागे खेत्तं काऊण विहरति, नवविगप्पविहारी पुण उउबद्धे अट्ठ मासा मासकप्पेण विहरति, एए अट्ठ विगप्पा, वासावासं एगंमि चेव ठाणे

१ आचार्या भणन्ति–साधुभिः समं यदेतत् भणितमिति, ततश्चैत्यवन्दनं साधुवन्दनं च निवेदयितुकामा भणन्ति–नवरं श्रमणो–वृद्धावासः वैश्रमणो (वसन्)–नवविकल्पविहारः, वृद्धावासः परिक्षीणजङ्घाबलो नव विभागान् क्षेत्रं कृत्वा विहरति, नवकल्पविहारः पुनः ऋतुबद्धेऽष्ट मासान् मासकल्पेन विहरति, एतेऽष्ट विकल्पाः वर्षावासमेकस्मिन् स्थाने.

आ० १२२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६०]

करेंति, एस णवविगप्पो, अत्राचार्यो भणति–मत्थएण वंदामि अहंपि तेसिंति, अण्णे भणंति–अहमवि वंदावेमित्ति, तओ अप्पगं गुरूणं निवेदंति चउत्थखामणासुत्तेणं, तच्चेदं—

इच्छामि खमासमणो! उवट्ठिओमि तुब्भण्हं संतियं अहा कप्पं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुच्छणं वा (रयहरणं वा) अक्खरं वा पयं वा गाहं वा सिलोगं वा (सिलोगद्धं वा) अट्ठं वा हेउं वा पसिणं वा वागरणं वा तुब्भेहिं (सम्मं) चियत्तेण दिण्णं मए अविणएण पडिच्छियं तस्स मिच्छामि दुक्कडं (सूत्रम्)

निगदसिद्धं, आयरिआ भणंति–'आयरियसंतियं'ति य अहंकारवज्जणत्थं, किं ममात्रेति, तओ जं विणइया तमणुसट्ठिं बहु मन्नंति पंचमखामणासुत्तेण, तच्चेदं—

इच्छामि खमासमणो! कयाइं च मे कितिकम्माइं आयारमंतरे विणयमंतरे सेहिओ सेहाविओ संगहिओ उवगहिओ सारिओ वारिओ चोइओ पडिचोइओ अब्भुट्ठिओऽहं तुब्भण्हं तवतेयसिरीए इमाओ चातुरंतसंसारकंताराओ साहट्टु नित्थरिस्सामित्तिकट्टु सिरसा मणसा मत्थएण वन्दामि (सूत्रं)

निगदसिद्धं, संगहिओ-णाणादीहिं सारिओ-हिए पवत्तिओ वारिओ-अहियाओ निवत्तिओ चोइओ-खलणाए पडिचोइओ–

॥७९३॥

१ करोति, एष नवमो विकल्पः। मस्तकेन वन्देऽहमपि तेषामिति, अन्ये भणन्ति–अहमपि वन्दयामीति, तत आत्मानं गुरुभ्यो निवेदयन्ति चतुर्थक्षामणासूत्रेण, आचार्या भणन्ति–आचार्यसत्कमिति चाहङ्कारवर्जनार्थं, ततो यत् विनायितास्तामनुशास्तिं बहु मन्यन्ते पञ्चमक्षामणासूत्रेण, संगृहीतः–ज्ञानादिभिः सारितः–हिते प्रवर्तितः वारितोऽहितात् निवर्तितः चोदितः स्खलनायां प्रतिचोदितः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२]

पुणो २ अवत्थं उवट्ठिउत्ति, पच्छा आयरिओ भणइ–'नित्थारगपारग'त्ति नित्थारगपारगा होहत्ति, गुरुणोत्ति, एयाइं वयणाइंति वक्कसेसमयं गाथार्थः ॥ १५२९ ॥ एवं सेसाणवि साहूणं खामणावंदणं करेंति, अह वियालो वाघाओ वा ताहे सत्तण्हं पंचण्हं तिण्हं वा, पच्छा देवसियं पडिक्कमंति, केइ भणंति–सामण्णेणं, अन्ने भणंति–खामणाइयं, अण्णे चरित्तुस्सग्गाइयं, सेज्जदेवयाए य उस्सग्गं करेंति, पडिक्कंताणं गुरूसु वंदिएसु वड्ढमाणीओ तिण्णि थुइओ आयरिया भणंति, इमेवि अंजलिमउलियग्गहत्था समत्तीए नमोक्कारं करेंति, पच्छा सेसगावि भणंति, तद्दिवसं नवि सुत्तपोरिसी नवि अत्थपोरुसी थुईओ भणंति जस्स जत्तियाओ एंति, एसा पक्खियपडिक्कमणविही मूलटीकाकारेण भणिया, अण्णे पुण आयरणाणुसारेण भणंति–देवसिए पडिक्कंते खामिए य तओ पढमं गुरू चेव उट्ठित्ता पक्खियं खामेंति जहाराइणियाए, तओ उवविसंति, एवं सेसगावि जहाराइणिया खामेत्ता उवविसंति, पच्छा वंदित्ता भणंति–देवसियं पडिक्कंतं पक्खियं

---

१ पुनः पुनरवस्थामुपस्थापितः, पश्चादाचार्या भणन्ति–निस्तारकपारगा भवतेति, गुरूणामिति एतानि वचनानीति वाक्यशेषः। एवं शेषाणामपि साधूनां क्षामणावन्दनकं कुर्वन्ति, अथ विकालो व्याघातो वा तदा सप्तानां पञ्चानां त्रयाणां वा, पश्चाद्दैवसिकं प्रतिक्राम्यन्ति, केचित् भणन्ति–सामान्येन, अन्ये भणन्ति–क्षामणादिकं, अन्ये चारित्रोत्सर्गादिकं, शय्यादेवतायाश्चोत्सर्गं कुर्वन्ति, प्रतिक्राम्यत्सु गुरुषु वन्दितेषु (च) वर्धमानास्तिस्रः स्तुतीर्गुरवो भणन्ति, इमेऽपि अञ्जलिमुकुलिताग्रहस्ताः समाप्तौ नमस्कारं कुर्वन्ति, पश्चाच्छेषा अपि भणन्ति, तद्दिवसे नैव सूत्रपौरुषी नैवार्थपौरुषी, स्तुतीर्भणन्ति येन यावत्योऽधीताः, एष पाक्षिकप्रतिक्रमणविधिर्मूलटीकाकारेण भणितः, अन्ये पुनः आचरणानुसारेण भणन्ति–दैवसिके प्रतिक्रान्ते क्षामिते च ततः प्रथमं गुरुरेवोत्थाय पाक्षिकं क्षमयन्ति यथारात्निकं, तत उपविशन्ति, एवं शेषा अपि यथारात्निकं क्षमयित्वोपविशन्ति, पश्चाद्वन्दित्वा भणन्ति–दैवसिकं प्रतिक्रान्तं पाक्षिकं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२]

पडिक्कमावेह, इत्यादि पूर्ववत्, एवं चाउमासियंपि, नवरं काउस्सग्गे पंचुस्साससयाणि, एवं संवच्छरियंपि नवरं काउस्सग्गो अट्ठसहस्सं उस्सासाणं, चाउमासियसंवच्छरिएसु सव्वेवि मूलगुणउत्तरगुणाणं आलोयणं दाउं पडिक्कमंति, खेत्तदेवयाए उस्सग्गं करेंति, केई पुण चाउमासिगे सिज्जदेवयाएवि उस्सग्गं करेंति, पभाए य आवस्सए कए पंचकल्लाणगं गिण्हंति, पुव्वगहिए य अभिग्गहे निवेदेंति, अभिग्रहा जइ संमं णाणुपालिया तो कुइयकक्कराइयस्स उस्सग्गं करेंति, पुणोऽवि अण्णे गिण्हंति, निरभिग्गहाण न वट्टइ अच्छिउं, संवच्छरिए य आवस्सए कए पाओसिए पज्जोसवणा कप्पो कड्ढिज्जति, सो पुण पुव्विं च अणागयं पंचरत्तं कहिज्जइ य, एसा सामायारित्ति, एनामेव कालतः उपसंहरन्नाह भाष्यकारः–

चाउम्मासियवरिसे आलोअण नियमसो हु दायव्वा। गहणं अभिग्गहाण य पुव्वगहिए निवेएउं ॥२३२॥ (भा०)

चाउम्मासियवरिसे उस्सग्गो खित्तदेवयाए उ। पक्खिय सिज्जसुरीए करिंति चउमासिए वेगे ॥२३३॥ (भा०)

गाथाद्वयं गतार्थं । अधुना नियतकायोत्सर्गप्रतिपादनायाह—

---

१ प्रतिक्रामयत, एवं चातुर्मासिकमपि, परं कायोत्सर्गे पञ्चोच्छ्वासशतानि, एवं सांवत्सरिकमपि नवरं कायोत्सर्गोऽष्टसहस्रमुच्छ्वासानां । चातुर्मासिकसांवत्सरिकयोः सर्वेऽपि मूलोत्तरगुणानामालोचनां दत्त्वा प्रतिक्राम्यन्ति, क्षेत्रदेवताया उत्सर्गं कुर्वन्ति, केचित् पुनश्चातुर्मासिके शय्यादेवताया अपि कायोत्सर्गं कुर्वन्ति, प्रभाते चावश्यके कृते पञ्चकल्याणकं गृह्णन्ति, पूर्वगृहीतांश्चाभिग्रहान् निवेदयन्ति, अभिग्रहा यदि पुनः सम्यग् नानुपालितास्तदा कूजितककेरायिततयोत्सर्गं कुर्वन्ति, पुनरपि अन्यान् गृह्णन्ति, निरभिग्रहैर्न वर्त्तते स्थातुं, सांवत्सरिके चावश्यके कृते प्रदोषे पर्युषणाकल्पः कथ्यते, स पुनः पूर्वमेवानागते पञ्चरात्रे कथ्यते च, एषा सामाचारीति ।

॥७९४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२]

देसिय राइय पक्खिय चउमासे या तहेव वरिसे य। एएसु हुंति नियया उस्सग्गा अनिअया सेसा ॥ १५२९ ॥
साय सयं गोसऽद्धं तिन्नेव सया हवंति पक्खंमि। पंच य चाउम्मासे अट्ठसहस्सं च वारिसए ॥ १५३० ॥
चत्तारि दो दुवालस वीसं चत्ता य हुंति उज्जोआ। देसिय राइय पक्खिय चाउम्मासे अ वरिसे य ॥ १५३१ ॥
पणवीसमद्धतेरस सिलोग पन्नत्तरिं च बोद्धव्वा। सयमेगं पणवीसं बे बावन्ना य वारिसिए ॥ १५३२ ॥

निगदसिद्धाः, नवरं शेषा–गमनादिविषया इति, साम्प्रतं नियतकायोत्सर्गाणामोघत उच्छ्वासमानं प्रतिपादयन्नाह— 'साय'त्ति सायं–प्रदोषः तत्र शतमुच्छ्वासानां भवति, चतुर्भिरुद्योतकरैरिति, भावित एवायमर्थः प्राक्, 'गोसद्धं'ति प्रत्यूषे पञ्चाशद्यतस्तत्रोद्योतकरद्वयं भवति, शेषं प्रकटार्थमिति गाथार्थः ॥ १५३० ॥ उच्छ्वासमानं चोपरिष्टाद् वक्ष्यामः 'पायसमा उस्सासा' इत्यादिना। साम्प्रतं दैवसिकादिषूद्योतकरमानमभिधित्सुराह–'चत्तारि'त्तिगाहा भावितार्था ॥ १५३१ ॥ अधुना श्लोकमानमुपदर्शयन्नाह–'पणवीसे'तिगाहा निगदसिद्धैव, नवरं चतुर्भिरुच्छ्वासैः श्लोकः परिगृह्यते ॥ १५३२ ॥ इत्युक्ता नियतकायोत्सर्गवक्तव्यता, इदानीमनियतकायोत्सर्गवक्तव्यतावसरः, तत्रेयं गाथा—

गमणागमणविहारे सुत्ते वा सुमिणदंसणे राओ। नावानइसंतारे इरियावहियापडिक्कमणं ॥ १५३३ ॥
भत्ते पाणे सयणासणे य अरिहंतसमणसिज्जासु। उच्चारे पासवणे पणवीसं हुंति उस्सासा ॥ २३४ ॥ द्वारम् (भा०)
नियआलयाओ गमणं अन्नत्थ उ सुत्तपोरिसिनिमित्तं। होइ विहारो इत्थवि पणवीसं हुंति ऊसासा ॥ १ ॥ (प्र०)
उद्देससमुद्देसे सत्तावीसं अणुन्नवणियाए। अट्ठेव य ऊसासा पट्ठवण पडिक्कमणमाई ॥ १५३४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२]

आवश्यक-हारिभद्रीया

॥७९५॥

५कायोत्स-र्गाध्य० अनियत-कायोत्स०

जुज्जइ अकालपढियाइएसु दुट्ठु अ पडिच्छियाईसु । समणुन्नसमुद्देसे काउस्सग्गस्स करणं तु ॥ १५३५ ॥
जं पुण उद्दिसमाणा अणइक्कंतावि कुणह उस्सग्गं। एस अकओवि दोसो परिघिप्पइ किं मुहा भंते!? ॥१५३६॥
पावुग्घाई कीरइ उस्सग्गो मंगलंति उद्देसो । अणुवहियमंगलाणं मा हुज्ज कहिंचि णे विग्घं ॥ १५३७ ॥
पाणवहमुसावाए अदत्तमेहुणपरिग्गहे चेव । सयमेगं तु अणूणं ऊसासाणं हविज्जाहि ॥ १५३८ ॥
नावा(ए) उत्तरिउं वहमाई तह नइं च एमेव । संतारेण चलेण व गंतुं पणवीस ऊसासा ॥ १ ॥ (प्र०)

[१]गमणं भिक्षादिनिमित्तमन्यग्रामादौ, आगमणं तत्तो चेव, इत्थ इरियावहियं पडिक्कमिऊण पंचवीसुस्सासो काउस्सग्गो कायव्वो॥ १५३३॥ तथा चामुमेवावयवं विवृण्वन्नाह भाष्यकारः–'भत्ते पाणे सयणासणे' गाहा, भत्तपाणनिमित्तमन्नगामादिगया जइ न ताव वेलेति ता ईरियावहियं पडिक्कमिऊण अच्छंति । आगयावि पुणोऽवि पडिक्कमंति, एवं सयणासणनिमित्तंपि, सयणं-संथारगो वसही वा, आसणं–पीढगादि, 'अरहंतसमणसेज्जासु'त्ति चेइघरं गया पडिक्कमिऊणं अच्छंति, एवं समणसेज्जंमि–साहुवसतिमित्यर्थः, 'उच्चारपासवणे'त्ति उच्चारे वोसिरिए पासवणे य जतिवि हत्थमेत्तं गया

---

१ गमनं भिक्षादिनिमित्तमन्यग्रामादौ आगमनं तत एवात्रेर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य पञ्चविंशत्युच्छ्वासः कायोत्सर्गः कर्त्तव्यः, भक्तपाननिमित्तमन्यग्रामादिगता यदि तावन्न वेलेति तदेर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य तिष्ठन्ति, आगता अपि पुनरपि प्रतिक्राम्यन्ति, एवं शयनासननिमित्तमपि, शयनं संस्तारको वसतिर्वा, आसनं पीठादि 'अर्हच्छ्रमणशय्यास्वि'ति चैत्यगृहं गताः प्रतिक्रम्य तिष्ठन्ति, एवं श्रमणशय्यास्विति साधुवसतौ 'उच्चारप्रश्रवण'इति उच्चारं व्युत्सृज्य प्रश्रवणं च यद्यपि हस्तमात्रं गता–

॥७९५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [६२]

तोऽवि आगया पडिक्कमंति, अह मत्तए वोसिरियं होज्ज ताहे जो तं परिठवेति सो पडिक्कमति, सठाणेसु पुण जइ हत्थसयं नियत्तस्स बाहिं तो पडिक्कमंति, अह अंतो न पडिक्कमंति, एतेसु ठाणेसु काउस्सग्गपरिमाणं पणुवीसं होति ऊसासत्ति गाथार्थः 'विहारे'त्ति विहारं व्याचिख्यासुराह–'निययालयाउ गमणं'गाहा [गाथा]ऽन्यकर्त्तृकी सोपयोगा च निगदसिद्धा च। 'सुत्ते व'त्ति सूत्रद्वारं व्याचिख्यासुराह–'उद्देससमुद्देसे' गाहा व्याख्या—सुत्तस्स उद्देसे समुद्देसे य जो काउस्सग्गो कीरइ तत्थ सत्तावीसमुस्सासा भवंति, अणुण्णवणयाए य, एत्थ जइ असढो सयं चेव पारेइ, अह सढो ताहे आयरिया अट्ठेव ऊसासा, 'पट्ठवणपडिक्कमणमाई' पट्ठविओ कज्जनिमित्तं जइ खलइ अट्ठुस्सासं उस्सग्गं करिय गच्छइ, बितियवारं जति तो सोलस्सुस्सासं, ततियवारं जइ तो न गच्छति, अण्णो पट्ठविज्जति, अवस्सकज्जे वा देवे वंदिय पुरओ साहू ठवेत्ता अण्णेण समं गच्छति, कालपडिक्कमणेवि अट्ठउस्सासा, आदिसद्दाओ कालगिण्हण पट्ठवणे य

---

१ स्तदाऽप्यागताः प्रतिक्राम्यन्ति, अथ मात्रके व्युत्सृष्टं भवेत् तदा यस्तं परिष्ठापयेत् स प्रतिक्राम्येत्, स्वस्थानात् पुनर्यदि हस्तशतनिर्वृत्ताद्बहिस्तदा प्रतिक्राम्यन्ति, अथान्तर्न प्रतिक्राम्यन्ति, एतेषु स्थानेषु कायोत्सर्गपरिमाणं पञ्चविंशतिरुच्छ्वासा इति। सूत्रस्योद्देशे समुद्देशे च यः कायोत्सर्गः क्रियते तत्र सप्तविंशतिरुच्छ्वासा भवन्ति, अनुज्ञायां च, अत्र यद्यशठः स्वयमेव पारयति, अथ शठस्तदाऽऽचार्या अष्टैवोच्छ्वासान्, प्रस्थापनप्रतिक्रमणादौ–प्रस्थापितः कार्यनिमित्तं यदि स्खलति अष्टोच्छ्वासमुत्सर्गं कृत्वा गच्छति, द्वितीयवारं यदि तदा षोडशोच्छ्वासं, तृतीयवारं यदि तदा न गच्छति, अन्यः प्रस्थाप्यते, अवश्यकार्ये वा देवान् वन्दित्वा पुरतः साधून् स्थापयित्वाऽन्येन समं गच्छति, कालप्रतिक्रमणेऽप्यष्टोच्छ्वासाः, आदिशब्दात् कालग्रहणे प्रस्थापने च.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७९६॥

५कायोत्स-गाध्य० अनियत-कायोत्स०

गोयरचरियाए सुयखंधपरियट्टणे अट्ठ चेव, केसिंचि परियट्टणे पंचवीस, तथा चाह–'सुयखंधपरियट्टणं मंगलत्थं (उज्जोय) काउस्सग्गं काऊण कीरइ'त्ति गाथार्थः॥ १५३४॥ अत्राह चोदकः—'जुज्जइ अकालपढियाइ' गाथा, युज्यते–संगच्छते घटते अकालपठितादिषु कारणेषु सत्सु अकालपठितमादिशब्दात् काले न पठितमित्यादि, दुष्ठु च प्रतीच्छितादि–दुष्टविधिना प्रतीच्छितं आदिशब्दात् श्रुतहीलनादिपरिग्रहः, 'समणुण्णसमुद्देसे'त्ति समनुज्ञासमुद्देशयोः, समनुज्ञायां च समुद्देशे च कायोत्सर्गस्य करणं युज्यत एवेति योगः, अतिचारसम्भवादिति गाथार्थः॥ १५३५॥ यत् पुनरुद्दिश्यमानाः श्रुतमनतिक्रान्ता अपि निर्विषयत्वादपराधमप्राप्ता अपि 'कुणह उस्सग्गं'ति कुरुत कायोत्सर्गं एषः अकृतोऽपि दोषः कायोत्सर्गशोध्यः परिगृह्यते किं मुधा भदन्त !, न चेत् परिगृह्य(ते) न कर्त्तव्यः तदुद्देशकायोत्सर्ग इति गाथाभिप्रायः॥ १५३६॥ अत्राहाचार्यः–'पावुग्घाई कीरइ' गाहा निगदसिद्धा ॥१५३७॥ 'सुमिणदंसणे राउ'त्ति द्वारं व्याख्यानयन्नाह–'पाणवहमुसावाए' गाहा, सुमिणंमि पाणवहमुसावाए अदत्तमेहुणपरिग्गहे चेव आसेविए समाणे सयमेगं तु अणूणं उस्सासाणं भविज्जाहि, मेहुणे दिट्ठिविप्परियासियाए सयं इत्थीविप्परियासयाए अट्ठसयंति॥ उक्तं च—"दिट्ठीविप्परियासे सय मेहुन्नंमि थीविपरियासे। ववहारेणट्ठसयं अणभिस्संगस्स साहुस्स॥ १॥" गाथार्थः॥ १५३८॥ 'णावाणतिसंतार'त्ति द्वारत्रयं व्याचिख्यासुराह–'नावाए उत्तरिउं वहगाई' गाहा, गाथेयमन्यकर्तृकी सोपयोगा च निगदसिद्धा, इदानीमुच्छ्वासमानप्रतिपादनायाह—

॥७९६॥

१ गोचरचर्यायां श्रुतस्कन्धपरावर्त्तनेऽष्टैव, केषाञ्चित् परावर्त्तने पञ्चविंशतिः, श्रुतस्कन्धपरावर्त्तनं मङ्गलार्थं कायोत्सर्गं कृत्वा क्रियते। २ स्वप्ने प्राणवधमृषावादादत्तमैथुनपरिग्रहेष्वासेवितेषु सत्सु शतमेकमनूनमुच्छ्वासानां भवेत्, मैथुने दृष्टिविपर्यासे शतं स्त्रीविपर्यासेऽष्टशतमिति.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२]

पायसमा ऊसासा कालपमाणेण हुंति नायव्वा । एयं कालपमाणं उस्सग्गेणं तु नायव्वं ॥ १५३९ ॥

'पायसमा उस्सासा काल' गाहा व्याख्या—नवरं पादः-श्लोकपादः ॥ १५३९ ॥ व्याख्याता गमनेत्यादिद्वारगाथा, अधुनाऽऽद्यद्वारगाथागतमशठद्वारं व्याख्यायते, इह विज्ञानवता शाठ्यरहितेनात्महितमितिकृत्वा स्वबलापेक्षया कार्यो-त्सर्गः कार्यः, अन्यथाकरणेऽनेकदोषप्रसङ्गः, तथा चाह भाष्यकारः—

जो खलु तीसइवरिसो सत्तरिवरिसेण पारणाइसमो। विसमे व कूडवाही निव्विन्नाणे हु से जड्डे ॥ २३५ ॥(भा०)

समभूमेवि अइभरो उज्जाणे किमुअ कूडवाहिस्स?। अइभारेणं भज्जइ तुत्तयघाएहि अ मरालो॥ २३६॥ (भा०)

एमेव बलसमग्गो न कुणइ मायाइ सम्ममुस्सग्गं। मायावडिअं कम्मं पावइ उस्सग्गकेसं च ॥ १ ॥ (प्र०)

मायाए उस्सग्गं सेसं च तवं अकुव्वओ सहुणो। को अन्नो अणुहोही सकम्मसेसं अणिज्जरियं? ॥ १५४० ॥

निकूडं सविसेसं वयाणुरूवं बलाणुरूवं च । खाणुव्व उद्धदेहो काउस्सगं तु ठाइज्जा ॥ १५४१ ॥

व्याख्या—यः कश्चित् साधुः, खलुशब्दो विशेषणार्थः, त्रिंशद्वर्षः सन् खलुशब्दाद् बलवानातङ्करहितश्च सप्ततिवर्षेणान्येन वृद्धेन साधुना पारणाइसमो—कायोत्सर्गप्रारम्भपरिसमाप्त्या तुल्य इत्यर्थः। विषम इव—उट्टंकादाविव कूटवाही बलीवर्द्द इव निर्विज्ञान एवासौ 'जड' जड्डः, स्वहितपरिज्ञानशून्यत्वात्, तथा चात्महितमेव सम्यक्कायोत्सर्गकरणं स्वकर्मक्षयफलत्वादिति गाथार्थः ॥ २३५ ॥ अधुना दृष्टान्तमेव विवृण्वन्नाह—'समभूमेवि अइभरो'गाहा व्याख्या—समभूमावपि अतिभरत्रिषमवाहित्वात् 'उज्जाणे किमुत कूडवाहिस्स'ऊर्द्धं यानमस्मिन्नित्युद्यानम्—उदकं तस्मिन्नुद्याने किमुत?, सुत-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [६२]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७९७॥

५कायोत्स-गाध्य० अशठद्वारं

रामित्यर्थः, कस्य ?-कूटवाहिनो–बलीवर्दस्य, तस्य च दोषद्वयमित्याह–'अतिभारेणं भज्जति तुत्तयघाएहि य मरालो' त्ति अतिभारेण भज्यते यतो विषमवाहिन एवातिभारो भवति, तुत्तयघातैश्च विषमवाहोऽथ पीड्यते, तुत्तगो–पाइणगो मरालो–गलिरिति गाथार्थः ॥ २३६ ॥ साम्प्रतं दार्ष्टान्तिकयोजनां कुर्वन्नाह–'एमेव बलसमग्गो'गाहा व्याख्या–इयमन्धकर्तृकी सोपयोगा च व्याख्यायते, 'एमेव'मरालबलीवर्दवत् बलसमग्रः सन्(यो)न करोति मायया करणेन सम्यक्–सामर्थ्यानुरूपं कायोत्सर्गं स मूढः मायाप्रत्ययं कर्म प्राप्नोति नियमत एव, तथा कायोत्सर्गक्लेशं च निष्फलं प्राप्नोति, तथाहि–निर्मायस्यापेक्षारहितस्य स्वशक्त्यनुरूपं च कुर्वत एव सर्वमनुष्ठानं सफलं भवतीति गाथार्थः ॥ अधुना मायावतो दोषानुपदर्शयन्नाह–'मायाए उस्सग्गं'गाहा, मायया कायोत्सर्गं शेषं च तपः–अनशनादि अकुर्वतः 'सहिष्णोः'समर्थस्य कश्च तस्मादन्योऽनुभविष्यति ?, किं–स्वकर्म[वि]शेषमनिर्जरितं, शेषता चास्य सम्यक्त्वप्राप्त्योत्कृष्टकर्मापेक्षयेति, उक्तं च–"सत्तण्हं पगडीणं अब्भिंतरओ उ कोडीकोडीए । काऊण सागराणं जइ लहइ चउण्हमण्णयरं ॥ १ ॥" अन्ये पठन्ति–'एमेवय उस्सग्गं'ति, न चायमतिशोभनः पाठ इति गाथार्थः॥ १५४० ॥ यतश्चैवमतः–'निक्कूडं सविसेसं'गाहा, 'निष्कूट'-मित्यशठं 'सविशेष'मिति समबलादन्यस्मात् सकाशात्, न चाहमहमिकया, किं तु वयोऽनुरूपं, स्थाणुरिवोर्द्धदेहो निष्कम्पः समशत्रुमित्रः कायोत्सर्गं तु तिष्ठेत्, तुशब्दादन्यच्च भिक्षाटनाद्येवंभूतमेवानुतिष्ठत(ष्ठेत्) इति गाथार्थः ॥ १५४१ ॥ ॥७९७॥
इदानीं वयो बलं चाधिकृत्य कायोत्सर्गकरणविधिमभिधत्ते–

१ सप्तानां प्रकृतीनामभ्यन्तरे तु कोटीकोट्याः । कृत्वा सागरोपमाणां यदि लभते चतुर्णामन्यतरत् (तर्हि लभते) ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२]

तरुणो बलवं तरुणो अ दुब्बलो थेरओ बलसमिद्धो। थेरो अबलो चउसुवि भंगेसु जहाबलं ठाई ॥ १५४२ ॥

तरुणो बलवान् १ तरुणश्च दुर्बलः २ स्थविरो बलसमृद्धः ३ स्थविरो दुर्बलः ४ चतुर्ष्वपि भङ्गकेषु यथाबलं तिष्ठति बलानुरूपमित्यर्थः, न त्वभिमानतः, कथमनेनापि वृद्धेन तुल्य इत्यबलवतापि स्थातव्यम्, उत्तरत्रासमाधानग्लानादावधिकरणसम्भवादिति गाथार्थः ॥ १५४२ ॥ गतं सप्रसङ्गमशठद्वारं, साम्प्रतं शठद्वारावसरस्तत्रेयं गाथा—

पयलायइ पडिपुच्छइ कंटययवियारपासवणधम्मे । नियडी गेलन्नं वा करेइ कूडं हवइ एयं ॥ १५४३ ॥

कायोत्सर्गकरणवेलायां मायया प्रचलयति–निद्रां गच्छति, प्रतिपृच्छति सूत्रमर्थं वा, कण्टकं अपनयति, 'वियार'त्ति पुरीषोत्सर्गाय गच्छति, 'पासवणे'त्ति कायिकां व्युत्सृजति, 'धम्मे'त्ति धर्मं कथयति, 'निकृत्या' मायया ग्लानत्वं वा करोति कूटं भवत्येतद्–अनुष्ठानमिति गाथार्थः ॥ १५४३ ॥ गतं शठद्वारम्, अधुना विधिद्वारमाख्यायते, तत्रेयं गाथा—

पुव्वं ठंति य गुरुणो गुरुणा उस्सारियंमि पारेंति। ठायंति सविसेसं तरुणा उ अनूणविरिया उ ॥ १५४४ ॥

चउरंगुल मुहपत्ती उज्जूए डब्बहत्थ रयहरणं । वोसट्ठचत्तदेहो काउस्सग्गं करिज्जाहि ॥ १५४५ ॥

घोडग लयाइ खंभे कुड्डे माले अ सबरि वहु नियले। लंबुत्तर थण उद्धी संजय खलि[णे य] वायसकविट्ठे ॥ १५४६ ॥

सीसुक्कंपिय मूई अंगुलिभमुहा य वारुणी पेहा। नाहीकरयलकुप्पर उस्सारिय पारियंमि थुई ॥ १५४७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७९८॥

५कायोत्स-गाध्य० कायोत्स-र्गदोषाः

‘पुव्वं ठंति य गुरुणो’ गाहा प्रकटार्था ॥ १५४४ ॥ ‘चउरंगुल’त्ति चत्तारि अंगुलाणि पायाणं अंतरं करेयव्वं, मुहपोत्तिं ‘उज्जुए’त्ति दाहिणहत्थेण मुहपोत्तिया घेत्तव्वा, डव्वहत्थे रयहरणं कायव्वं, एतेण विहिणा ‘वोसट्ठचत्तदेहो’त्ति पूर्ववत्, काउस्सग्गं करिज्जाहित्ति गाथार्थः ॥ १५४५ ॥ गतं विधिद्वारम्, अधुना दोषावसरः, तत्रेदं गाथाद्वयं–‘घोडगे’त्यादि—

आसुव्व विसमपायं गायं ठावित्तु ठाइ उस्सग्गे । कंपइ काउस्सग्गे लयव्व खरपवणसंगेणं ॥ १ ॥ खंभे वा कुड्डे वा अवठंभिय ठाइ काउसग्गं तु । माले य उत्तमंगं अवठंभिय ठाइ उस्सग्गं ॥ २ ॥ सबरी वसणविरहिया करेहि सागारियं जह ठवेइ । ठइऊण गुज्झदेसं करेहि तो कुणइ उस्सग्गं ॥ ३ ॥ अवणामिउत्तमंगो काउस्सग्गं जहा कुलवहुव्व । नियलियओविव चलणे वित्थारिय अहव मेलविउं ॥ ४ ॥ काऊण चोलपट्टं अविधीए नाभिमंडलस्सुवरिं । हिट्ठा य जाणुमित्तं चिट्ठई लंबुत्तरुस्सग्गं ॥ ५ ॥ उच्छाईऊण य थणे चोलगपट्टेण ठाइ उस्सग्गं । दंसाइरक्खणट्ठा अहवा अन्नाणदोसेणं ॥ ६ ॥ मेलित्तु पण्हियाओ चलणे वित्थारिऊण बाहिरओ । ठाउस्सग्गं एसो बाहिरउद्धी मुणेयव्वो ॥ ७ ॥ अंगुट्ठे मेलविउं वित्थारिय पण्हियाओ बाहिं तु । ठाउस्सग्गं एसो भणिओ अब्भिंतरुद्धित्ति ॥ ८ ॥ कप्पं वा पट्टं वा पाइणिउं संजइव्व उस्सग्गं । ठाइ य खलिणं व जहा रयहरणं अग्गओ काउं ॥ ९ ॥ भामेइ तहा दिट्ठिं चलचित्तो वायसुव्व उस्सग्गे । छप्पइआण भएणं कुणई अ पट्टं कविट्ठं व ॥ १० ॥ सीसं पकंपमाणो जक्खाइट्ठव्व कुणइ उस्सग्गं । मूयव्व हुअहुअंतो तहेव छिज्जंतमाईसु ॥ ११ ॥ अंगुलिभमुहाओवि य चालंतो तहय कुणइ उस्सग्गं । आलावगगणणट्ठा संठवणत्थं च जोगाणं ॥ १२ ॥ काउस्सग्गंमि ठिओ सुरा जह बुडबुडेइ अव्वत्तं । अणुपेहंतो तह वानरुव्व चालेइ ओट्ठउडे ॥ १३ ॥ एए काउस्सग्गं कुणमाणेण विबुहेण दोसा उ । सम्मं परिहरियव्वा जिणपडिकुट्ठत्तिकाऊणं ॥ १४ ॥ ॥७९८॥

‘नाभीकरयलकुप्पर उस्सारे पारियंमि थुइ’त्ति निर्युक्तिगाथाशकलं लेशतोऽदुष्टकायोत्सर्गावस्थानप्रदर्शनपरं विध्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

कायोत्सर्ग-संबंधी दोषाणां वर्णनं

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२]

न्तरसंग्रहपरं च, तत्र 'नाभि'त्ति नाभीओ हेट्ठो चोलपट्टो कायव्वो, करयलेत्ति सामण्णेणं हेट्ठा पलंबकरयले 'जाव कोप्परे'त्ति सोऽविय कोप्परेहिं धरेयव्वो, एवंभूतेन कायोत्सर्गः कार्यः, उस्सारिए य–काउस्सग्गे पारिए नमोक्कारेण अवसाणे थुई दायव्वेति गाथार्थः ॥ १५४७ ॥ गतं प्रासङ्गिकं, साम्प्रतं कस्येति द्वारं व्याख्यायते, तत्रोक्तदोषरहितोऽपि यस्यायं कायोत्सर्गो यथोक्तफलो भवति तमुपदर्शयन्नाह—

वासीचंदणकप्पो जो मरणे जीविए य समसण्णो। देहे य अपडिबद्धो काउस्सग्गो हवइ तस्स ॥ १५४८ ॥
तिविहाणुवसग्गाणं दिव्वाणं माणुसाण तिरियाणं। सम्ममहियासणाए काउस्सग्गो हवइ सुद्धो ॥ १५४९ ॥
इहलोगंमि सुभद्दा राया उइओद सिट्ठिभज्जा य। सोदासखग्गथंभण सिद्धी सग्गो य परलोए ॥ १५५० ॥

'वासीचंदनकप्पो'गाहा व्याख्या—वासीचन्दनकल्पः—उपकार्यपकारिणोर्मध्यस्थः, उक्तं च–"जो चंदणेण बाहुं आलिंपइ वासिणा व तच्छेइ। संथुणइ जो व निंदइ महरिसिणो तत्थ समभावा ॥ १ ॥" अनेन परं प्रति माध्यस्थ्यमुक्तं भवति, तथा मरणे–प्राणत्यागलक्षणे जीविते च–प्राणसंधारणलक्षणे चशब्दादिहलोकादौ च समसञ्ज्ञः तुल्यबुद्धिरित्यर्थः, अनेन चात्मानं प्रति माध्यस्थ्यमुक्तं भवति, तथा देहे च–शरीरे चाप्रतिबद्धः चशब्दादुपकरणादौ च, कायो-

१ नाभितोऽधस्तात् चोलपट्टकः कर्त्तव्यः, करतलेति सामान्येन अधस्तात् प्रलम्बकरतलः यावत् कूर्पराभ्यां–सोऽपि च कूर्पराभ्यां धारयितव्यः, उत्सारिते च–कायोत्सर्गे पारिते नमस्कारेणावसाने स्तुतिर्दातव्या। २ यश्चन्दनेन बाहुमालिम्पति वास्या वा तक्षयति। संस्तौति यो वा निन्दति महर्षयस्तत्र समभावाः ॥ १ ॥

आ० १३४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥७९९॥

त्सर्गो यथोक्तफलो भवति तस्येति गाथार्थः ॥ १५४८ ॥ तथा–'तिविहाणुवसग्गाणं'गाहा, त्रिविधानां–त्रिप्रकाराणां दिव्यानां–व्यन्तरादिकृतानां मानुषाणां–म्लेच्छादिकृतानां तैरश्चानां–सिंहादिकृतानां सम्यक्–मध्यस्थभावेन अतिसहनायां सत्यां कायोत्सर्गो भवति शुद्धः–अविपरीत इत्यर्थः। ततश्चोपसर्गसहिष्णोः कायोत्सर्गो भवतीति गाथार्थः ॥१५४९॥ द्वारं। साम्प्रतं फलद्वारमभिधीयते, तच्च फलमिहलोकपरलोकापेक्षया द्विधा भवति, तथा चाह ग्रन्थकारः–'इहलोगंमि' गाहा व्याख्या–इहलोके यत् कायोत्सर्गफलं तत्र सुभद्रोदाहरणं–कथं?, [1]वसंतपुरं नगरं, तत्थ जियसत्तुराया, जिणदत्तो सेट्ठी संजयसड्ढओ, तस्स सुभद्दा दारिया धुया, अतीवरूवस्सिणी ओरालियसरीरा साविगा य, सो तं असाहंमियाणं न देइ, तच्चनियसड्ढेणं चंपाओ वाणिज्जागएण दिट्ठा, तीए रूवलोभेण कवडसड्ढओ जाओ, धम्मं सुणेइ, जिणसाहू पूजेइ, अण्णया भावो समुप्पण्णो, आयरियाणं आलोएइ, तेहिवि अणुसासिओ, जिणदत्तेण से भावं नाऊण धूया दिण्णा, वित्तो विवाहो, केच्चिरकालस्सवि सो तं गहाय चंपं गओ, नणंदसासुमाइयाओ तवण्णियसड्ढिगाओ तं खिंसंति, तओ जुयगं घरं कयं,

५कायोत्सर्गाध्य० कायोत्सर्गफले कथाः ॥७९९॥

१ वसन्तपुरं नगरं, तत्र जितशत्रू राजा, जिनदत्तः श्रेष्ठी संयतश्राद्धः, तस्य सुभद्रा बालिका दुहिताऽतीव रूपिणी उदारशरीरा श्राविका च, स तामसाधर्मिकाय न ददाति, तच्चनिकश्राद्धेन चम्पातो वाणिज्यागतेन दृष्टा, तस्या रूपलोभेन कपटश्राद्धो जातः, धर्मं शृणोति, जिनसाधून् पूजयति, अन्यदा भावः समुत्पन्नः, आचार्याणां कथयति, तैरप्यनुशिष्टः, जिनदत्तेन तस्य भावं ज्ञात्वा दुहिता दत्ता, वृत्तो विवाहः, कियच्चिरेण कालेन सोऽपि तां गृहीत्वा चम्पां गतः, ननन्दृश्वश्र्वादिकास्तच्चनिकश्राद्धस्तां निन्दन्ति, ततः पृथग्गृहं कृतं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

कायोत्सर्ग-फ़लस्य कथा एवं भावना कथयते

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२]

तत्थाणेगे समणा समणीओ य पाउग्गनिमित्तमागच्छंति, तच्चण्णिगसड्डिया भणंति, एसा संजयाणं दढं रत्तत्ति, भत्तारो से न पत्तियइत्ति, अण्णया कोई वण्णरूवाइगुणगणनिप्फणो तरुणभिक्खू पाउग्गनिमित्तं गओ, तस्स य वाउद्धुयं अच्छिमि कणगं पविट्ठं, सुभद्दाए तं जीहाए लिहिऊण अवणीयं, तस्स निलाडे तिलओ संकंतो, तेणवि वक्खित्तचित्तेण ण जाणिओ, सो नीसरति ताव तच्चणिगसड्डिगाहिं अथक्कागयस्स भत्तारस्स स दंसिओ, पेच्छ इमं वीसत्थरमियसंकंतं भज्जाए संगतं तिलगंति, तेणवि चिंतियं–किमिदमेवंपि होज्जा ?, अहवा बलवंतो विसया अणेगभवब्भत्थगा य किन्न होइत्ति ?, मंद-नेहो जाओ, सुभद्दाए कहवि विदिओ एस वुत्तंतो, चिंतियं च णाए–पावयणीओ एस उड्डाहो कहं फेडिउ (डेमि) त्ति, पवयणदेवयमभिसंधारिऊण रयणीए काउस्सग्गं ठिया, अहासंनिहिया काइ देवया तीए सीलसमायारं नाऊण आगया, भणियं च तीए–किं ते पियं करेमित्ति, तीए भणियं–उड्डाहं फेडेहि, देवयाए भणियं–फेडेमि, पच्चूसे इमाए नयरीए

---

१ तत्रानेके श्रमणाः श्रमण्यश्च प्रायोग्यनिमित्तमागच्छन्ति, तच्चनिकश्राद्धयो भणन्ति–एषा संयतेषु दृढं रक्तेति, भर्त्ता तस्या न प्रत्येतीति, अन्यदा कोऽपि वर्णरूपादिगुणगणयुक्तस्तरुणभिक्षुः प्रायोग्यनिमित्तं गतः, तस्य च वायूद्धुतं रजोऽक्ष्णि प्रविष्टं, सुभद्रया तज्जिह्वयोल्लिख्यापनीतं, तस्य ललाटे तिलकः संक्रान्तः, तेनापि व्याक्षिप्तचित्तेन न ज्ञातः, स निस्सरति तावत्तच्चनिकश्राद्धीभिरकाण्डागताय भर्त्रे स दर्शितः, पश्येदं विश्वस्तरमणसंक्रान्तं भार्यायाः संगतं तिलकमिति, तेनापि चिन्तितं–किमिदमेवमपि भवेत् ?, अथवा बलवन्तो विषया अनेकभवाभ्यस्तकाश्चेति किं न भवतीति, मन्दस्नेहो जातः, सुभद्रया कथमपि ज्ञात एष वृत्तान्तः, चिन्तितं चानया–प्रावचनिक एष उड्डाहः कथं स्फेटयामीति ?, प्रवचनदेवतामभिसंधार्य रजनौ कायोत्सर्गे स्थिता, यथासन्निहिता काचिद्देवता तस्याः शीलसमाचारं ज्ञात्वाऽऽगता, भणितं च तया–किं ते प्रियं करोमीति, तया भणितं–उड्डाहं स्फेटय, देवतया भणितं–स्फेटयामि, प्रत्यूषेऽस्या नगर्यां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥८००॥

५कायोत्स-र्गाध्य० कायोत्सर्ग-फले कथाः

दाराणि थंभेमि,तओ आलग्गे(अद्दण्णे)सु नागरेसु आगासत्था भणिस्सामि–जाए परपुरिसो मणेणावि न चिंतिओ सा इत्थिया चालणीए पाणियं छोढूणं गंतूणं तिण्णि वारे छंटेउं उग्घाडाणि भविस्संति, तओ तुमं विण्णासिउं सेसनागरिएहिं बाहिं पच्छा जाएज्जासि, तओ उग्घाडेहिसि, तओ फिट्टिही उड्डाहो, पसंसं च पाविहिसि, तहेव कयं पसंसं च पत्ता, एयं ताव इहलोइयं काउस्सग्गफलं, अन्ने भणंति–वाणारसीए सुभद्दाए काउस्सग्गो कओ, एलगच्छुप्पत्ती भाणियव्वा। राया 'उदिओदए'त्ति, उदितोदयस्स रण्णो भज्जा(धम्म) लाभागयं णिवरोहियस्स उवसग्गए व समणजायं, कहाणगं जहा नमोक्कारे । 'सेट्ठिभज्जा य'त्ति चंपाए सुदंसणो सेट्ठिपुत्तो, सो सावगो अट्ठमिचाउद्दसीसु चच्चरे उवासगपडिमं पडिवज्जइ, सो महादेवीए पत्थिज्जमाणो णिच्छइ, अण्णया वोसट्ठकाओ देवपडिमत्ति वत्थे वेढीए वेढिउं अंतेउरं अतिणीओ, देवीए निब्बंधेवि कए नेच्छइ, पउट्ठाए कोलाहलो कओ, रण्णा वज्झो आणत्तो, निज्जमाणे भज्जाए से मित्तवतीए सावियाए सुतं,

---

१ द्वाराणि स्थगिष्यामि, ततोऽधृतिमापन्नेषु नागरेषु आकाशस्था भणिष्यामि–यया परपुरुषो मनसाऽपि न चिन्तितः सा स्त्री चालिन्यामुदकं क्षिप्त्वा गत्वा त्रीन् वारान् छण्टयति उद्घाटानि भविष्यन्ति, ततस्त्वं परीक्ष्य शेषनागरैः सह बहिः पश्चाद्यायाः, तत उद्घाटयिष्यसि, ततः स्फेटिष्यत्युड्डाहः प्रशंसां च प्राप्स्यसि, तथैव कृतं, प्रशंसां च प्राप्ता, एतत्तावदैहलौकिकं कायोत्सर्गफलं, अन्ये भणन्ति–वाराणस्यां सुभद्रया कायोत्सर्गः कृतः, एडकाक्षोत्पत्तिर्भणितव्या । राजा उदितोदय इति, उदितोदयस्य राज्ञः भार्या धर्मलाभागतं अन्तःपुररुद्धं श्रमणमुपसर्गयति कथानकं यथा नमस्कारे । श्रेष्ठिभार्या चेति चम्पायां सुदर्शनः श्रेष्ठिपुत्रः, स श्रावकोऽष्टमीचतुर्दश्योश्चत्वरे उपासकप्रतिमां प्रतिपद्यते, स महादेव्या प्रार्थ्यमानो नेच्छति, अन्यदा व्युत्सृष्टकायो देवप्रतिमेति चेट्या वस्त्रैर्वेष्टयित्वा अन्तःपुरमानीतः, देव्या निर्बन्धे कृतेऽपि नेच्छति, प्रद्विष्टया कोलाहलः कृतः, राज्ञा वध्य आज्ञप्तः, नीयमानो भार्यया तस्य मित्रवत्या श्राविकया श्रुतः,

॥८००॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२]

[1]सच्चाणजक्खस्सासवण्णा काउस्सग्गे ठिता, सुदंसणस्सावि अट्ठखंडाणि कीरंतुत्ति खंधे असी वाहितो, सच्चाणजक्खेण पुप्फदामं कतो, मुक्को रन्ना पूइतो, ताधे मित्तवतीए पारियं। तथा 'सोदास'त्ति सोदासो राया, जहा नमोक्कारे, 'खग्गथंभणे'त्ति कोइ विराहियसामण्णो खग्गो समुप्पण्णो, वट्टाए मारेति साहू, पहाविया, तेण दिट्ठा आगओ, इयरवि काउस्सग्गेण ठिया, न पहवइ, पच्छा तं दट्ठूण उवसंतो। एतदैहिकं फलं, 'सिद्धी सग्गो य परलोए'सिद्धिः–मोक्षः स्वर्गो–देवलोकः चशब्दात् चक्रवर्त्तित्वादि च परलोके फलमिति गाथार्थः ॥ १५५० ॥ आह–सिद्धिः सकलकर्मक्षयादेवाप्यते, 'कृत्स्नकर्मक्षयान्मोक्षः' इति वचनात्, स कथं कायोत्सर्गफलमिति ?, उच्यते, कर्मक्षयस्यैव कायोत्सर्गफलत्वात्, परम्पराकारणस्यैव विवक्षितत्वात्, कायोत्सर्गफलत्वमेव कर्मक्षयस्य कथं ?, यत आह भाष्यकारः—

जह करगओ निकिंतइ दारुं इंतो पुणोवि वच्चंतो। इअ कंतंति सुविहिया काउस्सग्गेण कम्माइं॥२३७॥ (भा०)

काउस्सग्गे जह सुट्ठियस्स भज्जंति अंगमंगाइं। इय भिंदंति सुविहिया अट्ठविहं कम्मसंघायं ॥ १५५१ ॥

अन्नं इमं सरीरं अन्नो जीवुत्ति एव कयवुद्धी। दुक्खपरिकिलेसकरं छिंद ममत्तं सरीराओ ॥ १५५२ ॥

जावइया किर दुक्खा संसारे जे मए समणुभूया। इत्तो दुव्विसहतरा नरएसु अणोवमा दुक्खा ॥ १५५३ ॥

---

१ सत्याणयक्षस्य आश्रवणाय (असपत्ना) कायोत्सर्गे स्थिता, सुदर्शनस्याप्यष्ट खण्डा भवन्त्विति स्कन्धेऽसिः प्रहृतः, सत्याणयक्षेण पुष्पदामीकृतः, मुक्तो राज्ञा पूजितः, तदा मित्रवत्या पारितः। सौदासेति सौदासो राजा, यथा नमस्कारे, खड्गस्तम्भनमिति, कश्चिद्विराद्धश्रामण्यः खड्गः समुत्पन्नः, वर्त्तन्यां मारयति साधून्, साधवः प्रधाविताः, तेन दृष्टा आगतः, इतरेऽपि कायोत्सर्गेण स्थिताः, न प्रभवति। पश्चात्तदृष्ट्वोपशान्तः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥८०१॥

तम्हा उ निम्ममेणं मुणिणा उवलद्धसुत्तसारेणं ।
काउस्सग्गो उग्गो कम्मखयट्ठाय कायव्वो ॥ १५५४ ॥ काउस्सग्गनिज्जुत्ती समत्ता (ग्रन्थाग्र २५३९)

व्याख्या—यथा 'करगतो'त्ति करपत्रं निकृन्तति–छिनत्ति विदारयति दारु–काष्ठं, किं कुर्वन् ?–आगच्छन् पुनश्च व्रजन्नित्यर्थः, 'इय' एवं कृन्तन्ति सुविहिताः–साधवः कायोत्सर्गेण हेतुभूतेन कर्माणि–ज्ञानावरणादीनि, तथाऽन्यत्राप्युक्तं-"संवरेण भवे गुत्तो, गुत्तीए संजमुत्तमे। संजमाओ तवो होइ, तवाओ होइ निज्जरा ॥ १ ॥ निज्जराएऽसुभं कम्मं, खिज्जई कमसो सया। आवस्सग(गेण)जुत्तस्स,काउस्सग्गो विसेसओ॥२॥"इत्यादि, अयं गाथार्थः॥२३७॥ अत्राह–किमिदमित्थमित्यत आह-'काउस्सग्गे'गाहा व्याख्या-कायोत्सर्गे सुस्थितस्य सतः यथा भज्यन्ते अङ्गोपाङ्गानि 'इय' एवं चित्तनिरोधेन 'भिन्दन्ति' विदारयन्ति मुनिवराः–साधवः अष्टविधं–अष्टप्रकारं कर्मसङ्घातं—ज्ञानावरणीयादिलक्षणमिति गाथार्थः ॥ १५५१॥ आह–यदि कायोत्सर्गे सुस्थितस्य भज्यन्ते अङ्गोपाङ्गानि ततश्च दृष्टापकारत्वादेवालमनेनेति ?, अत्रोच्यते, सौम्य ! मैवं–'अन्नं इमं' गाहा व्याख्या—अन्यदिदं शरीरं निजकर्मोपात्तमालयमात्रमशाश्वतम् , अन्यो जीवोऽस्याधिष्ठाता शाश्वतः स्वकृतकर्मफलोपभोक्ता य इदं त्यजत्येव, एवं कृतबुद्धिः सन् दुःखपरिक्लेशकरं छिन्द्धि ममत्वं शरीरात्, किं च–यद्यनेनाप्यसारेण कश्चिदर्थः सम्पद्यते पारलौकिकस्ततः सुतरां यत्नः कार्य इति गाथार्थः॥१५५२॥किं चैवं विभावनीयम्–'जावइया'गाहा व्याख्या—याव-

५कायोत्स-र्गाध्य० कायोत्सर्गे फलं भावना च

॥८०१॥

---

१ संवरेण भवेद्गुप्तो गुप्त्या संयमोत्तमो भवेत् । संयमात्तपो भवति तपसो भवति निर्जरा ॥ १ ॥ निर्जरयाऽशुभं कर्म क्षीयते क्रमशः सदा । आवश्यकेन युक्तस्य कायोत्सर्गे विशेषतः ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [६२]	

न्त्यकृतजिनप्रणीतधर्मेण किलशब्दः परोक्षाप्तागमवादसंसूचकः दुःखानि शारीरमानसानि संसारे–तिर्यग्नरनारकामरभवानुभवलक्षणे यानि मयाऽनुभूतानि ततः–तेभ्यो दुर्विषहतराण्यग्रतोऽप्यकृतपुण्यानां नरकेषु–सीमन्तकादिषु अनुपमानि–उपमारहितानि दुःखानि, दुर्विषहत्वमेतेषां शेषगतिसमुत्थदुःखापेक्षयेति गाथार्थः ॥ १५५३ ॥ यतश्चैवं 'तम्हा' गाथा, तस्मात् तु निर्ममेन–ममत्वरहितेन मुनिना–साधुना, किंभूतेन ?–उपलब्धसूत्रसारेण–विज्ञातसूत्रपरमार्थेनेत्यर्थः, किं ?–कायोत्सर्गः–उक्तस्वरूपः उग्रः–शुभाध्यवसायप्रबलः कर्मक्षयार्थं नतु स्वर्गादिनिमित्तं कर्तव्य इति गाथार्थः ॥१५५४॥ उक्तोऽनुगमः, नयाः पूर्ववत् ॥ शिष्यहितायां कायोत्सर्गाध्ययनं समाप्तम् ।

कायोत्सर्गविवरणं कृत्वा यदवाप्तमिह मया पुण्यम् । तेन खलु सर्वसत्त्वाः पञ्चविधं कायमुज्झन्तु ॥ १ ॥

॥ इत्याचार्यश्रीहरिभद्रकृतायां शिष्यहिताख्यायामावश्यकवृत्तौ कायोत्सर्गाध्ययनं समाप्तं ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

अत्र अध्ययनं -५- ‘कायोत्सर्गं’ परिसमाप्तं

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२..]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥८०२॥

॥ अथ प्रत्याख्यानाध्ययनं ॥

व्याख्यातं कायोत्सर्गाध्ययनं, अधुना प्रत्याख्यानाध्ययनमारभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः–अनन्तराध्ययने स्खलनविशेषतोऽपराधव्रणविशेषसम्भवे निन्दामात्रेणाशुद्धस्यौघतः प्रायश्चित्तभेषजेनापराधव्रणचिकित्सोक्ता, इह तु गुणधारणा प्रतिपाद्यते, भूयोऽपि मूलगुणोत्तरगुणधारणा कार्येति, सा च मूलगुणोत्तरगुणप्रत्याख्यानरूपेति तदत्र निरूप्यते, यद्वा कायोत्सर्गाध्ययने कायोत्सर्गकरणद्वारेण प्रागुपात्तकर्मक्षयः प्रतिपादितः, यथोक्तं–'जह करगओ नियंतइ'त्यादि, 'काउस्सग्गे जह सुट्ठियस्से'त्यादि, इह तु प्रत्याख्यानकरणतः कर्मक्षयोपशमक्षयजं फलं प्रतिपाद्यते, वक्ष्यते च–'इहलोइयपरलोइय दुविह फलं होइ पच्चक्खाणस्स। इहलोए धम्मिलादी दामण्णगमाइ परलोए ॥ १ ॥ पच्चक्खाणमिणं सेविऊण भावेण जिणवरुद्दिट्ठं। पत्ता अणंतजीवा सासयसोक्खं लहुं मोक्खं ॥ २ ॥' इत्यादि, अथवा सामायिके चारित्रमुपवर्णितं, चतुर्विंशतिस्तवेऽर्हतां गुणस्तुतिः, सा च दर्शनज्ञानरूपा, एवमिदं त्रितयमुक्तं, अस्य च वितथासेवनमैहिकामुष्मिकापायपरिजिहीर्षुणा गुरोर्निवेदनीयं, तच्च वन्दनपूर्वकमित्यतस्तन्निरूपितं, निवेद्य च भूयः शुभेष्वेव स्थानेषु प्रतीपं क्रमणमासेवनीयमिति तदपि निरूपितं, तथाऽप्यशुद्धस्य सतोऽपराधव्रणस्य चिकित्सा आलोचनादिना कायोत्सर्गपर्यवसानप्रायश्चित्तभेषजेनानन्तराध्ययन उक्ता, इह तु तथाप्यशुद्धस्य प्रत्याख्यानतो भवतीति तन्निरूप्यते, एवमनेकरूपेण सम्बन्धेनायातस्य प्रत्याख्यानाध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि सप्रपञ्चं वक्तव्यानि, तत्र नामनिष्पन्ने निक्षेपे प्रत्याख्यानाध्ययनमिति प्रत्याख्यानमध्ययनं च, तत्र प्रत्याख्यानमधिकृत्य द्वारगाथामाह निर्युक्तिकारः—

५कायोत्सर्गाध्य० प्रत्याख्यानाद्याभेदाः ६

॥८०२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

- अत्र अध्ययनं -६- 'प्रत्याख्यानं' आरभ्यते

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[६२..]

पच्चक्खाणं पच्चक्खाओ पच्चक्खेयं च आणुपुव्वीए । परिसा कहणविही या फलं च आईइ छब्भेया ॥ १५५५ ॥

अस्या व्याख्या—'ख्या प्रकथने' इत्यस्य प्रत्याङ्पूर्वस्य ल्युडन्तस्य प्रत्याख्यानं भवति, तत्र प्रत्याख्यायते–निषिध्यतेऽनेन मनोवाक्कायक्रियाजालेन किञ्चिदनिष्टमिति प्रत्याख्यानं क्रियाक्रियावतोः कथञ्चिदभेदात् प्रत्याख्यानक्रियैव प्रत्याख्यानं प्रत्याख्यायतेऽस्मिन् सति वा प्रत्याख्यानं "कृत्यल्युटो बहुल"मिति (पा० ३–३–१२) वचनादन्यथाऽप्यदोषः प्रति आख्यानं प्रत्याख्यानमित्यादौ, तथा प्रत्याख्यातीति प्रत्याख्याता–गुरुर्विनेयश्च, तथा प्रत्याख्यायत इति प्रत्याख्येयं–प्रत्याख्यानगोचरं वस्तु, चशब्दस्त्रयाणामपि तुल्यकक्षतोद्भावनार्थं, आनुपूर्व्या–परिपाट्या कथनीयमिति वाक्यशेषः, तथा परिषद् वक्तव्या, किंभूतायाः परिषदः कथनीयमिति, तथा कथनविधिश्च–कथनप्रकारश्च वक्तव्यः, तथा फलं चैहिकामुष्मिकभेदं कथनीयं, आदावेते षड् भेदा इति गाथासमासार्थः । व्यासार्थं तु यथाऽवसरं भाष्यकार एव वक्ष्यति, तत्राद्यावयवव्यासार्थप्रतिपिपादयिषयाह—

नामंठवणादविए अइच्छ पडिसेहमेव भावे य । एए खलु छब्भेया पच्चक्खाणंमि नायव्वा ॥ २३८ ॥ (भा०)
दव्वनिमित्तं दव्वे दव्वभूओ व तत्थ रायसुआ । अइच्छापच्चक्खाणं बंभणसमणा न(अ) इच्छन्ति ॥ २३९ ॥ (भा०)
अमुगं दिज्जउ मज्झं नत्थि ममं तं तु होइ पडिसेहो । सेसपयाण य गाहा पच्चक्खाणस्स भावंमि ॥ २४० ॥ (भा०)
तं दुविहं सुअनोसुअ सुयं दुहा पुव्वमेव नोपुव्वं । पुव्वसुय नवमपुव्वं नोपुव्वसुयं इमं चेव ॥ २४१ ॥ (भा०)
नोसुअपच्चक्खाणं मूलगुणे चेव उत्तरगुणे य । मूले सव्वं देसं इत्तरियं आवकहियं च ॥ २४२ ॥ (भा०)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्याख्यानम् अधिकृत्य द्वाराणि प्रकाश्यते

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२..]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥८०३॥

मूलगुणावि य दुविहा समणाणं चेव सावयाणं च। ते पुण विभज्जमाणा पंचविहा हुंति नायव्वा ॥ १ ॥ (प्र०)
पाणिवहमुसावाए अदत्तमेहुणपरिग्गहे चेव । समणाणं मुलगुणा तिविहंतिविहेण नायव्वा ॥ २४३॥ (भा०)

६प्रत्याख्याध्य० प्रत्याख्यान निक्षेपाः

व्याख्या—नामप्रत्याख्यानं स्थापनाप्रत्याख्यानं 'दविए'त्ति द्रव्यप्रत्याख्यानं, 'अदिच्छ'त्ति दातुमिच्छा दित्सा न दित्सा अदित्सा सैव प्रत्याख्यानमदित्साप्रत्याख्यानं 'पडिसेहे'त्ति प्रतिषेधप्रत्याख्यानं, 'एवं भावे'त्ति एवं भावप्रत्याख्यानं च, 'एए खलु छब्भेया पच्चक्खाणंमि नायव'त्ति गाथादलं निगदसिद्धमयं गाथासमुदायार्थः। अवयवार्थं तु यथावसरं वक्ष्यामः, तत्र नामस्थापने गतार्थे ॥ २३८ ॥ अधुना द्रव्यप्रत्याख्यानप्रतिपादनायाह–'दव्वनिमित्तं' गाथाशकलम्, अस्य व्याख्या–द्रव्यनिमित्तं प्रत्याख्यानं वस्त्रादिद्रव्यार्थमित्यर्थः, यथा केषाञ्चित् साम्प्रतक्षपकाणां, तथा द्रव्ये प्रत्याख्यानं यथा भूम्यादौ व्यवस्थितः करोति, तथा द्रव्यभूतः–अनुपयुक्तः सन् यः करोति तदप्यभीष्टफलरहितत्वात् द्रव्यप्रत्याख्यानमुच्यते, तुशब्दाद् द्रव्यस्य द्रव्याणां द्रव्येण द्रव्यैर्द्रव्येष्विति, क्षुण्णश्चायं मार्गः, 'तत्थ रायसुय'त्ति अत्र कथानकं–एगस्स रण्णो धूया अण्णस्स रण्णो दिण्णा, सो य मओ, ताहे सा पिउणा आणिया, धम्मं पुत्त! करेहि त्ति भणिया, सा पासंडीणं दाणं देति, अण्णया कत्तिओ धम्ममासोत्ति मंसं न खामित्ति पच्चक्खायं, तत्थ पारणए अणेगाणि सत्तसहस्साणि मंसत्थाए उवणीयाणि, ताहे ॥८०३॥

१ एकस्य राज्ञो दुहिताऽन्यस्मै राज्ञे दत्ता, स च मृतः, तदा सा पित्रानीता, धर्मं पुत्रिके! कुर्विति भणिता, सा पाषण्डिभ्यो दानं ददाति, अन्यदा कार्तिको धर्ममास इति मांसं न खादामीति प्रत्याख्यातं, तत्र पारणकेऽनेकाः शतसहस्राः (पशवो) मांसार्थमुपनीताः, तदा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत्याख्यानस्य भेदानाम वर्णनं

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२..]

भत्तं दिज्जति, तत्थ साहू अदूरेण वोलेंता निमंतिया, तेहिं भत्तं गहियं, मंसं नेच्छंति, सा य रायधूया भणइ–किं तुज्झं न ताव कत्तियमासो पूरइ?, ते भणंति जावज्जीवाए कत्तिउत्ति, किं वा कह वा, ताहे ते धम्मकहं कहेंति, मंसदोसे य परिकहेंति, पच्छा संबुद्धा पव्वतिया, एवं तीसे दव्वपच्चक्खाणं, पच्छा भावपच्चक्खाणं जातं, अधुना अदित्साप्रत्याख्यानं प्रतिपाद्यते, तत्रेदं गाथार्द्धं, अदित्साप्रत्याख्याने 'बंभणसमणा अदिच्छ'त्ति हे ब्राह्मण हे श्रमण अदित्सेति–न मे दातुमिच्छा, न तु नास्ति यद् भवता याचितं, ततश्चादित्सैव वस्तुतः प्रतिषेधात्मिकेति प्रत्याख्यानमिति गाथार्थः ॥ २३९ ॥ अधुना प्रतिषेधप्रत्याख्यानव्याचिख्यासयेदं गाथाशकलमाह–'अमुगं दिज्जउ मज्झं'गाहा व्याख्या—अमुकं घृतादि दीयतां मह्यं, इतरस्त्वाह–नास्ति मे तदिति, न तु दातुं नेच्छा, एष इत्थंभूतो भवति प्रतिषेधः, अयमपि वस्तुतः प्रत्याख्यानमेव, प्रतिषेध एव प्रत्याख्यानं २ । ॥ २४० ॥ इदानीं भावप्रत्याख्यानं प्रतिपाद्यते, तत्रेदं गाथार्द्धं 'सेसपयाण य गाहा पच्चक्खाणस्स भावंमि' शेषपदानामागमनोआगमादीनां साक्षादिहानुक्तानां प्रत्याख्यानस्य सम्बन्धिनां गाथा कार्येति योगवाक्यशेषो, इह गाथा प्रतिष्ठोच्यते, निश्चितिरित्यर्थः, 'गाथृ प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे चे'ति धातुवचनात्, 'भावंमि'त्ति द्वारपरामर्शः, भावप्रत्याख्यान इति । तदेतद्दर्शयन्नाह–'तं दुविहं सुतणोसुय'गाहा, 'तद्'भावप्रत्याख्यानं द्विविधं–द्विप्रकारं 'सुत-

१ भक्तं दीयते, तत्र साधवोऽदूरे व्यतिव्रजन्तो निमन्त्रिताः, तैर्भक्तं गृहीतं, मांसं नेच्छन्ति, सा च राजदुहिता भणति–किं युष्माकं न तावत् कार्त्तिकमासः पूर्णः ?, ते भणन्ति–यावज्जीवं कार्त्तिक इति, किं वा कथं वा ?, तदा ते धर्मकथां कथयन्ति, मांसदोषांश्च परिकथयंति, पश्चात् संबुद्धा प्रव्रजिता, एवं तस्या द्रव्यप्रत्याख्यानं पश्चाद् भावप्रत्याख्यानं जातं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२..]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥८०४॥

नोसुत'त्ति श्रुतप्रत्याख्यानं नोश्रुतप्रत्याख्यानं च 'सुयं दुहा पुवमेव नोपुवं' श्रुतप्रत्याख्यानमपि द्विधा भवति–पूर्वश्रुतप्रत्याख्यानं नोपूर्वश्रुतप्रत्याख्यानं च, 'पुवसुय नवमपुवं' पूर्वश्रुतप्रत्याख्यानं नवमं पूर्वं, 'नोपुवसुयं इमं चेव' नोपूर्वश्रुतप्रत्याख्यानमिदमेव–प्रत्याख्यानाध्ययनमित्येतच्चोपलक्षणमन्यच्चातुरप्रत्याख्यानमहाप्रत्याख्यानादि पूर्वबाह्यमिति गाथार्थः ॥ २४१ ॥ अधुना नोश्रुतप्रत्याख्यानप्रतिपादनायाह–'नोसुयपच्चक्खाणं' गाहा 'णोसुयपच्चक्खाणं'ति श्रुतप्रत्याख्यानं न भवतीति नोश्रुतप्रत्याख्यानं, 'मूलगुणे चेव उत्तरगुणे य' मूलगुणांश्चाधिकृत्योत्तरगुणांश्च, मूलभूता गुणाः २ त एव प्राणातिपातादिनिवृत्तिरूपत्वात् प्रत्याख्यानं वर्त्तते, उत्तरभूता गुणाः २ त एवाशुद्धपिण्डनिवृत्तिरूपत्वात् प्रत्याख्यानं तद्विषयं वा अनागतादि वा दशविधमुत्तरगुणप्रत्याख्यानं, 'सव्वं देसं'ति मूलगुणप्रत्याख्यानं द्विधा–सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानं देशमूलगुणप्रत्याख्यानं च, सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानं पञ्च महाव्रतानि, देशमूलगुणप्रत्याख्यानं पञ्चाणुव्रतानि, इदं चोपलक्षणं वर्त्तते यत उत्तरगुणप्रत्याख्यानमपि द्विधैव–सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानं देशोत्तरगुणप्रत्याख्यानं च, तत्र सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानं दशविधमनागतमतिक्रान्तमित्याद्युपरिष्टाद् वक्ष्यामः, देशोत्तरगुणप्रत्याख्यानं सप्तविधं–त्रीणि गुणव्रतानि चत्वारि शिक्षाव्रतानि, एतान्यप्यूर्ध्वं वक्ष्यामः, पुनरुत्तरगुणप्रत्याख्यानमोघतो द्विविधं–'इत्तरियमावकहियं च' तत्रेत्वरं–साधूनां किञ्चिदभिग्रहादिः श्रावकाणां तु चत्वारि शिक्षाव्रतानि, यावत्कथिकं तु नियन्त्रितं, यत् कान्तारदुर्भिक्षादिष्वपि न भज्यते, श्रावकाणां तु त्रीणि गुणव्रतानीति गाथार्थः ॥ २४२ ॥ साम्प्रतं स्वरूपतः सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानमुपदर्शयन्नाह–'पाणिवहमुसावाए' गाहा, प्राणा–इन्द्रि-

६प्रत्याख्यानाध्य० प्रत्याख्यानभेदाः

॥८०४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[६२..]

यादयः, तथा चोक्तम्–"पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च, उच्छ्वासनिश्वासमथान्यदायुः। प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्ता, एषां वियोगीकरणं तु हिंसा ॥ १ ॥" तेषां वधः प्राणवधो [न] जीववधस्तस्मिन्, मृषा वदनं मृषावादस्तस्मिन्, असदभिधान इत्यर्थः, 'अदत्तं'ति उपलक्षणत्वाददत्तादाने परवस्त्वाहरण इत्यर्थः, 'मेहुण'त्ति मैथुने अब्रह्मसेवने यदुक्तं भवति, 'परिग्गहे चेव'त्ति परिग्रहे चैव, एतेषु विषयभूतेषु श्रमणानां–साधूनां मुलगुणाः त्रिविधत्रिविधेन योगत्रयकरणत्रयेण नेतव्याः–अनुसरणीयाः, इयमत्र भावना–श्रमणाः प्राणातिपाताद्विरतास्त्रिविधं त्रिविधेन तत्थ 'तिविध'न्ति न करेति न कारवेइ २ करंतंपि अण्णं णाणुजाणेति, 'तिविहं'ति मणेणं वायाए काएणं, एवमन्यत्रापि योजनीयमिति गाथार्थः ॥ २४३ ॥ इत्थं तावदुपदर्शितं सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानं, अधुना देशमूलगुणप्रत्याख्यानावसरः, तच्च श्रावकाणां भवतीतिकृत्वा विनेयानुग्रहाय तद्धर्मविधिमेवौघतः प्रतिपिपादयिषुराह—

सावयधम्मस्स विहिं वुच्छामी धीरपुरिसपन्नत्तं। जं चरिऊण सुविहिया गिहिणोवि सुहाइं पावंति ॥ १५५६ ॥
साभिग्गहा य निरभिग्गहा य ओहेण सावया दुविहा। ते पुण विभज्जमाणा अट्ठविहा हुंति नायव्वा ॥ १५५७ ॥
दुविहतिविहेण पढमो दुविहं दुविहेण बीयओ होइ। दुविहं एगविहेणं एगविहं चेव तिविहेणं ॥ १५५८ ॥
एगविहं दुविहेणं इक्किक्कविहेण छट्ठओ होइ। उत्तरगुण सत्तमओ अविरयओ चेव अट्ठमओ ॥ १५५९ ॥
पणय चउक्कं च तिगं दुगं च एगं च गिण्हइ वयाइं। अहवाऽवि उत्तरगुणे अहवाऽवि न गिण्हई किंचि ॥ १५६० ॥
निस्संकियनिक्कंखिय निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य। वीरवयणंमि एए बत्तीसं सावया भणिया ॥ १५६१ ॥

आ० १२५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [६२..]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥८०५॥

व्याख्या—तत्राभ्युपेतसम्यक्त्वः प्रतिपन्नाणुव्रतोऽपि प्रतिदिवसं यतिभ्यः सकाशात् साधूनामगारिणां च सामाचारीं शृणोतीति श्रावक इति, उक्तं च–"यो ह्यभ्युपेतसम्यक्त्वो, यतिभ्यः प्रत्यहं कथाम्। शृणोति धर्मसम्बद्धामसौ श्रावक उच्यते ॥ १ ॥" श्रावकाणां धर्म्मः २ तस्य विधिस्तं वक्ष्ये–अभिधास्ये, किंभूतं ?–'धीरपुरुषप्रज्ञप्तं' महासत्त्वमहाबुद्धि-तीर्थकरगणधरप्ररूपितमित्यर्थः, यं चरित्त्वा सुविहिता गृहिणोऽपि सुखान्यैहिकामुष्मिकाणि प्राप्नुवन्तीति गाथार्थः ॥१५५६॥ तत्र—'साभिग्गहा य निरभिग्गहा य' गाहा, अभिगृह्यन्त इत्यभिग्रहाः–प्रतिज्ञाविशेषाः सह अभिग्रहैर्वर्त्तन्त इति साभिग्रहाः, ते पुनरनेकभेदा भवन्ति, तथाहि—दर्शनपूर्वकं देशमूलगुणोत्तरगुणेषु सर्वेष्वेकास्मिंश्च (स्मिन्) वा भवन्त्येव तेषामभिग्रहः, निर्गता–अपेता अभिग्रहा येभ्यस्ते निरभिग्रहाः, ते च केवलसम्यग्दर्शनिन एव, यथा कृष्णसत्यकिश्रेणिकादयः, इत्थं ओघेन–सामान्येन श्रावका द्विधा भवन्ति, ते पुनर्द्विविधा अपि विभज्यमाना अभिग्रहग्रहणविशेषेण निरूप्यमाणा अष्टविधा भवन्ति ज्ञातव्या इति गाथार्थः ॥१५५७॥ तत्र यथाऽष्टविधा भवन्ति तथोपदर्शयन्नाह—'दुविहतिविहेण' गाहा, इह योऽसौ कश्चनाभिग्रहं गृह्णाति स ह्येवं–'द्विविध'मिति कृतकारितं 'त्रिविधेने'ति मनसा वाचा कायेनेति, एतदुक्तं भवति–स्थूल-प्राणातिपातं न करोत्यात्मना न कारयत्यन्यैर्मनसा वचसा कायेनेति प्रथमः, अस्यानुमतिरप्रतिषिद्धा, अपत्यादिपरिग्रह-सद्भावात्, तद्व्यापृतिकरणे च तस्यानुमतिप्रसङ्गाद्, इतरथा परिग्रहापरिग्रहयोरविशेषेण प्रव्रजिताप्रव्रजितयोरभे-दापत्तेरिति भावना, अत्राह–ननु भगवत्यामागमे त्रिविधं त्रिविधेनेत्यपि प्रत्याख्यानमुक्तमगारिणः, तच्च श्रुतोक्तत्वादन-वद्यमेव, तदिह कस्मान्नोक्तं निर्युक्तिकारेणेति ?, उच्यते, तस्य विशेषविषयत्वात्, तथाहि–किल यः प्रविव्रजिषुरेव प्रतिमां

६प्रत्याख्या नाध्य० श्रावकव्रतभङ्गाः

॥८०५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रावकव्रतस्य भेदाः उच्यते

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [६२..]

प्रतिपद्यते पुत्रादिसन्ततिपालनाय स एव त्रिविधं त्रिविधेनेति करोति, तथा विशेष्यं वा किञ्चिद् वस्तु स्वयम्भूरमणमत्स्यादिकं तथा स्थूलप्राणातिपातादिकं चेत्यादि, न तु सकलसावद्यव्यापारविरमणमधिकृत्येति, ननु च निर्युक्तिकारेण स्थूलप्राणातिपातादावपि त्रिविधंत्रिविधेनेति नोक्तो विकल्पः, 'वीरवयणंमि एए बत्तीसं सावया भणिया' इति वचनादन्यथा पुनरधिकाः स्युरिति ?, अत्रोच्यते, सत्यमेतत्, किंतु बाहुल्यपक्षमेवाङ्गीकृत्य निर्युक्तिकारेणाभ्यधायि, यत् पुनः क्वचिदवस्थाविशेषे कदाचिदेव समाचर्यते न सुष्ठु समाचार्यनुपाति तन्नोक्तं, बाहुल्येन तु द्विविधं त्रिविधेनेत्यादिभिरेव षड्भिर्विकल्पैः सर्वस्यागारिणः सर्वमेव प्रत्याख्यानं भवतीति न कश्चिद् दोष इत्यलं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुमः, 'दुविहं तिविहेण बितियओ होति'त्ति 'द्विविध' मिति स्थूलप्राणातिपातं न करोति न कारयति 'द्विविधेने'ति मनसा वाचा, यद्वा मनसा कायेन, यद्वा वाचा कायेन, इह च प्रधानोपसर्जनभावविवक्षया भावार्थोऽवसेयः,, तत्र यदा मनसा वाचा न करोति न कारयति तदा मनसैवाभिसन्धिरहित एव वाचापि हिंसकमब्रुवन्नेव कायेनैव दुश्चेष्टितादिना करोत्यसंज्ञिवत्, यदा तु मनसा कायेन च न करोति न कारयति तदा मनसाभिसन्धिरहित एव कायेन च दुश्चेष्टितादि परिहरन्नेव अनाभोगाद्वाचैव हिंसकं ब्रूते, यदा तु वाचा कायेन च न करोति न कारयति तदा मनसैवाभिसन्धिमधिकृत्य करोतीति, अनुमतिस्तु त्रिभिरपि सर्वत्रैवास्तीति भावना, एवं शेषविकल्पा अपि भावनीया इति, 'दुविहं एगविहेणं'ति द्विविधमेकविधेन, 'एकविहं चेव तिविहेणं'ति एकविधं चैव त्रिविधेनेति गाथार्थः ॥ १५५८ ॥ 'एगविहं दुविहेणं'ति एकविधं द्विविधेन 'एक्केक्कविहेण छट्ठओ होइ' एकविधमेकविधेन षष्ठो भवति भेदः, 'उत्तरगुण सत्तमओ'त्ति प्रतिपन्नोत्तरगु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२..]

णः सप्तमः, इह च सम्पूर्णासम्पूर्णोत्तरगुणभेदमनादृत्य सामान्येनैक एव भेदो विवक्षितः, 'अविरयओ चेव अट्ठमओ'त्ति अविरतश्चैवाष्टम इति अविरतसम्यग्दृष्टिरिति गाथार्थः ॥ १५५९ ॥ इत्थमेते अष्टौ भेदाः प्रदर्शिताः, एत एव विभज्यमाना द्वात्रिंशद् भवन्ति, कथमित्यत आह—'पणग'त्ति पञ्चाणुव्रतानि समुदितान्येव गृह्णाति कश्चित्, तत्रोक्तलक्षणाः षड् भेदा भवन्ति, 'चउक्कं च'त्ति तथाऽणुव्रतचतुष्टयं गृह्णात्यपरस्तत्रापि षडेव, 'तिग'न्ति एवमणुव्रतत्रयं गृह्णात्यन्यस्तत्रापि षडेव, 'दुगं च'त्ति इत्थमणुव्रतद्वयं गृह्णाति, तत्रापि षडेव, 'एक्कं व'त्ति तथाऽन्य एकमेवाणुव्रतं गृह्णाति, तत्रापि षडेव, 'गिण्हइ वयाइं'ति इत्थमनेकधा गृह्णाति व्रतानि, विचित्रत्वात् श्रावकधर्मस्य, एवमेते पञ्च षट्कास्त्रिंशद् भवन्ति, प्रतिपन्नोत्तरगुणेन सहैकत्रिंशत्, तथा चाह–'अहवावि (य) उत्तरगुणे'त्ति अथवोत्तरगुणान्–गुणव्रतादिलक्षणान् गृह्णाति, समुदितान्येव गृह्णाति, केवलसम्यग्दर्शनिना सह द्वात्रिंशद् भवन्ति, तथा चाह–'अहवावि न गिण्हती किंचि'त्ति अथवा न गृह्णाति तानप्युत्तरगुणानिति, केवलं सम्यग्दृष्टिरेवेति गाथार्थः ॥ १५६० ॥ इह पुनर्मूलगुणोत्तरगुणानामाधारः सम्यक्त्वं वर्त्तते तथा चाह–'निस्संकियनिक्कंखिय'गाहा, शङ्कादिस्वरूपमुदाहरणद्वारेणोपरिष्टाद् वक्ष्यामः 'वीरवचने' महावीरवर्द्धमानस्वामिप्रवचने 'एते' अनन्तरोक्ता द्वात्रिंशदुपासकाः–श्रावका भणिताः–उक्ता इति गाथार्थः ॥ १५६१ ॥ एते चेव बत्तीसतिविहा करणतियजोगतियकालतिएणं विसेसेज्जमाणा सीयालं समणोवासगसयं भवति, कहं ?, पाणाइवायं न करेति मणेणं, अथवा पाणातिपातं न करेइ वायाए, अहवा पाणातिपातं न करेइ काएणं ३, अथवा पाणातिवातं न करेति मणेणं वायाए य, अथवा पाणातिवायं न करेति मणेणं काएण य, अथवा पाणातिपातं न करेति वायाए काएण य ६, अथवा पाणातिपातं न करेति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मणेणं वायाए काएण य', एते सत्त भंगा करणेणं, एवं कारवणेणवि एए चेव सत्त भंगा १४, एवं अणुमोयणेणवि सत्त भंगा २१, अहवा न करेइ न कारवेइ मणसा १ अहवा न करेइ न कारवेइ वचसा, २ अहवा न करेइ न कारवेइ काएण ३ अहवा न करेइ न कारवेइ मणसा वयसा ५ अहवा न करेइ न कारवेइ मणसा कायेणं ५ अहवा न करेइ न कारवेइ वयसा कायसा ६ अहवा न करेइ न कारवेइ मणसा वयसा कायसा ७, एते करणकारावणेहिं सत्त भंगा ७ एवं करणाणुमोयणेहिवि सत्त भंगा ७, एवं कारावणाणुमोयणेहिवि सत्त भंगा, एवं करणकारावणाणुमोयणेहिवि सत्त भंगा ७, एवेते सत्त सत्तभंगाणं एगूणपण्णासं विगप्पा भवन्ति, एत्थ इमो एगूणपन्नासइमो विगप्पो–पाणातिवायं न करेइ न कारवेइ करेंतंपि अन्नं न समणुजाणइ मणेणं वायाए काएणंति, एस अंतिमविगप्पो पडिमापडिवन्नस्स समणोवासगस्स तिविहंतिविहेणं भवतीति, एवं ताव अतीतकाले पडिक्कमंतस्स एगूणपण्णा भवन्ति, एवं पडुपण्णेवि काले संवरेंतस्स एगूणपण्णा भवन्ति, एवं अणागएवि काले पच्चक्खायंतस्स एगूणपन्नासा भवन्ति, एवमेता एगूणपण्णासा तिण्णि सीयालं सावयसयं भवति—

सीयालं भंगसयं जस्स विसोहीएँ होति उवलद्धं । सो खलु पच्चक्खाणे कुसलो सेसा अकुसला उ ॥ १ ॥ एवं पुण पंचहिं अणुव्वएहिं गुणियं सत्तसयाणि पंचत्तीसाणि सावयाणं भवन्ति,–सीयालं भंगसयं गिहिपच्चक्खाणभेयपरिमाणं । जोगत्तियकरणत्तियकालतिएणं गुणेयव्वं ॥ २ ॥ सीयालं भंगसयं पच्चक्खाणंमि जस्स उवलद्धं । सो खलु पच्चक्खाणे कुसलो सेसा अकुसला य ॥ ३ ॥ सीयालं भंगसयं गिहिपच्चक्खाणभेयपरिमाणं । तं च विहिणा इमेणं भावेयव्वं पयत्तेणं ॥ ४ ॥ तिन्नि तिया तिन्नि दुया तिन्निक्किक्का य हुंति जोगेसुं । तिदुइक्कं तिदुइक्कं तिदुएगं चेव करणाइं ॥ ५ ॥ पढमे लब्भइ एगो सेसेसु पएसु तिय तिय तियंति । दो नव तिय दो नवगा तिगुणिय सीयाल भंग-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२..]

सयं ॥ ६ ॥ अहवा अणुव्वए चेव पडुच्च एक्कगादिसंजोगदुवारेण पभूयतरा भेदा निदंसिज्जंति, तत्रेयमेकादिसंयोगपरिमाणप्रदर्शनपराऽन्यकर्तृकी गाथा ॥

पंचण्हमणुवयाणं इक्कगदुगतिगचउक्कपणएहिं । पंचगदसदसपणइक्कगे य संजोग कायव्वा ॥ १ ॥

एतीए वक्खाणं–पंचण्हमणुव्वयाणं पुव्वभणियाणं 'एक्कगदुगतिगचउक्कपणएहिं' चिंतिज्जमाणाणं 'पंचगदसदसपणगएक्कगो य संजोग णातवा' एक्केण चिंतिज्जमाणाणं पंच संजोगा, कहं?, पंचसु घरएसु एगेण पंचेव भवन्ति, दुगेण चिंतिज्जमाणाणं दस चेव, कहं ?, पढमबीयघरेण एक्को १ पढमततियघरेण २ पढमचउत्थघरेण ३ पढमपंचमघरेण ४ बितियततियघरेण ५ बीयचउत्थघरेण ६ बीयपंचमघरेण सत्तमो ७ ततियचउत्थघरेण ८ ततियपंचमघरेण ९ चउत्थपंचमघरेण १० ॥ तिगेण चिंतिज्जमाणाणं दस चेव, कहं ?, पढमबियततियघरेण एक्को १ पढमबितियचउत्थघरेण २ पढमबितियपंचमघरेण ३ पढमतईयचउत्थघरेण ४ पढमततियपंचमघरेण ५ पढमचउत्थपंचमघरेण ६ बितियततियचउत्थघरएण ७ बितियततियपंचमघरेण ८ बितियचउत्थपंचमघरेण ९ ततियचउत्थपंचमघरेण १० । चउक्कगेण चिंतिज्जमाणाणं पंच हवंति, कहं ?, पढमबितियततियचउत्थघरेण एक्को पढमबितियततियपंचमघरेण २ पढमबितियचउत्थपंचमघरेण ३ पढमततियचउत्थपंचमघरेण ४ बितियततियचउत्थपंचमघरेण ५, पंचगेण चिंतिज्जमाणाण एगो चेव भवतित्तिगाथार्थः ॥ १ ॥ एत्थ य एक्कगेण य जे पंच संजोगा दुगेण जे दस इत्यादि, एएसिं चारणीयापओगेण आगयफलगाहाओ तिण्णि–

वयमिक्कगसंजोगाण हुंति पंचण्ह तीसई भंगा । दुगसंजोगाण दसण्ह तिन्नि सट्ठा सया हुंति ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [६२..]

संजोगाण दसण्ह भंगसयं इक्कवीसई सट्ठा । चउसंजोगाण पुणो चउसट्ठिसयाणिऽसीयाणि ॥ २ ॥
सत्तुत्तरिं सयाइं छसत्तराइं च पंच संजोए । उत्तरगुण अविरयमेलियाण जाणाहि सव्वग्गं ॥ ३ ॥
सोलस चेव सहस्सा अट्ठसया चेव होंति अट्ठहिया । एसो उवासगाणं वयगहणविही समासेणं ॥ ४ ॥ (प्र०)

व्याख्या—एताश्चतस्रोऽप्यन्यकृताः सोपयोगा इत्युपन्यस्ताः, एतासिं भावणाविही इमा–तत्र तावदियं स्थापना,

प्रा०	मृ०	अ०	मै०	प०
२।३	२।३	२।३	२।३	२।३
२।२	२।२	२।२	२।२	२।२
२।१	२।१	२।१	२।१	२।१
१।३	१।३	१-३	१।३	१।३
१।२	१।२	१।२	१।२	१।२
१।१	१।१	१।१	१।१	१।१

थूलगपाणातिवातं पच्चक्खाइ दुविहं तिविहेण १ दुविहं दुविहेणं २ दुविहं एक्कविहेणं ३ एगविहं तिविहेणं ४ एगविहं दुविहेण ५ एगविहं एगविहेण ६, एवं थूलगमुसावायअदत्तादाणमेहुणपरिग्गहेसु, एक्केके छभेदा, एए सव्वेवि मिलिया तीसं हवंतित्ति, ततश्च यदुक्तं प्राक् 'वयएक्कगसंजोगाण होंती पंचण्ह तीसई भंग'त्ति तद् भावितं, इयाणिं दुगचारणिया–थूलगपाणाइवायं थूलगमुसावायं पच्चक्खाति दुविहंतिविहेण १ थूलगपाणाइवायं दुविहंतिविहेण थूलगमुसावायं पुण दुविहं दुविहेण २ थूलगपाणाइवायं २-३ थूलगमुसावायं पुण दुविहं एगविहेण ३ थूलगपाणाइवायं २-३ थूलगमुसावायं पुण एगविहंतिविहेण ४ थूलगपाणाइवायं २-३ थूलगमुसावायं पुण एगविहं दुविहेण ५ थूलगपाणातिवायं २-३ थूलगमुसावायं पुण एगविहंएगविहेण ६, एवं थूलगअदत्तादाणमेहुणपरिग्गहेसु एक्केके छब्भंगा, सव्वेवि मिलिया चउवीसं, एए य थूलगपाणाइवायं पढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, एवं बितियादिघरएसु पत्तेयं चउवीस हवंति, एए य सव्वेवि मिलिया चोयालं सयं, चालिओ थूलगपाणाइवाओ, इयाणिं थूलगमुसा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [६२..]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥८०८॥

वायाइ चिंतिज्जइ–तत्थ थूलगमुसावायं थूलगअदत्तादाणं पच्चक्खाति दुविहं तिविहेणं १ थूलगमुसावायं दुविहं तिविहेण अदत्तादाणं पुण दुविहं दुविहेण २ एवं पुव्वकमेण छब्भंगा नायव्वा, एवं मेहुणपरिग्गहेसु पत्तेयं पत्तेयं छ २, सव्वेवि मिलिया अट्ठारस, एते मुसावायं पढमघरगममुंचमाणेण लद्धा १८, एवं बीयादिघरेसुवि पत्तेयं २ अट्ठारस २ भवन्ति, एए सव्वेवि मेलिया अट्ठुत्तरं सयंति, चारिओ थूलगमुसावाओ, इयाणिं थूलगादत्तादाणादि चिंतिज्जति, तत्थ थूलगादत्तादाणं थूलगमेहुणं वा पच्चक्खाति दुविहंतिविहेण १, थूलगअदत्ताणं २-३ थूलगमेहुणं पुण दुविहं दुविहेण २–२ एवं पुव्वकमेण छब्भंगा नायव्वा, एवं थूलगपरिग्गहेणवि छभंगा, मेलिया बारस, एए य थूलगअदत्तादाणं पढमघरममुंचमाणेण लद्धा, एवं बितियाइसुवि पत्तेयं छ २ हवंति, एते सव्वेवि मेलिया बावत्तरि हवंति, चारितं थूलगादत्तादाणं, इदाणिं थूलगमेथुणादि चिंतिज्जति, तत्थ थूलगमेहुणं थूलगपरिग्गहं च पच्चक्खाति दुविधं तिविधेण १ थूलगमेथुणं थूलगपरिग्गहं पुण दुविधं दुविधेण २ एवं पुव्वकमेण छब्भंगा, एते थूलगमेथुणपढमघरममुंचमाणेण लद्धा, एवं बीयादिसुवि पत्तेयं २ छ २ हवंति, सव्वेवि मेलिया छत्तीसं, एते य मूलाओ आरब्भ सव्वेवि चोतालसयं अट्ठुत्तरसयं बावत्तरिं छत्तीसं मेलिता तिण्णि सताणि सट्ठाणि हवंति, ततश्च यदुक्तं प्राक् ‘दुगसंजोगाण दसण्ह तिन्नि सट्ठा सता होंति’त्ति तदेतद् भावितं, इदाणिं तिगचारणीयाए थूलगपाणातिवातं थूलगमुसावायं थूलगादत्तादाणं पच्चक्खाति दुविधं तिविधेण १ थूलगपाणातिवातं थूलगमुसावादं २-३ थूलगादत्तादाणं पुण दुविधं दुविधेण २ थूलगपाणातिवायं थूलगमुसावायं २-३ थूलगादत्तादाणं पुण दुविहं एगविहेणं ३ एवं पुव्वकमेण छब्भंगा, एवं मेहुणपरिग्गहेसुवि पत्तेयं २ छ २, सव्वेवि मेलिया

६प्रत्याख्यानाध्य० श्रायकव्रतभङ्गाः

॥८०८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२..]

अट्ठारस, एते य थूलगमुसावादपढमघरकममुंचमाणेण लद्धा, एवं बीयादिसुवि पत्तेयं २ अट्ठारस २ हवंति, सव्वेवि मेलिया अट्ठुत्तरं सयं, एवं च थूलगपाणाइवायपढमघरममुंचमाणेण लद्धा, एवं बीयाइसुवि पत्तेयं २ अट्ठुत्तरं २ सयं हवंति, एए य सव्वेवि मिलिया छ सयाणि अडयालाणि, एवं थूलगपाणातिवाओ तिगसंजोएण थूलगमुसावाएण सह चारिओ, एवं अदत्तादाणेण सह चारिज्जति, तत्थ थूलगपाणाइवायं थूलगादत्तादाणं थूलगमेहुणं च पच्चक्खाइ दुविहंतिविहेण १ थूलगपाणाइवायं थूलगादत्तादाणं २-३ थूलगमेहुणं पुण दुविहं दुविहेण २ एवं पुव्वकमेण छब्भंगा, एवं थूलगपरिग्गहेणवि छ मेलिया दुवालस, एते य अदत्तादाणपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, एवं बीयाइसुवि पत्तेयं २ दुवालस २, सव्वेवि मेलिया बावत्तरिं हवंति, एते य पाणाइवायपढमघरममुंचमाणेण लद्धा, एते बितियाइसुवि पत्तेयं बावत्तरि २, सव्वेऽवि मिलिया चत्तारि सया बत्तीसा हवंति, एवं थूलगपाणाइवाओ तिगसंजोगेण थूलगादत्तादाणेण सह चारिओ, इयाणिं थूलमेहुणेण परिग्गहेण सह चारिज्जइ, तत्थ थूलगपाणाइवायं थूलगमेहुणं थूलगपरिग्गहं २-३ पाणातिवायं मेहुणं २-३ परिग्गहं दुविहं दुविहेण २ एवं पुव्वक्कमेण छब्भंगा, एए उ थूलगमेहुणपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, बितियादिसुवि पत्तेयं २ छ छ, सव्वेऽपि मेलिया छत्तीसं, एते य थूलगपाणातिवायपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, बितियादिसु पत्तेयं २ छत्तीसं, सव्वेवि मेलिया सोलसुत्तरा दो सया। एवं थूलगपाणातिवाओ तिगसंजोएणं मेहुणेण सह चारिओ, चारिओ य तिगसंजोएणं पाणातिवाओ, इदाणिं मुसावाओ चिंतिज्जइ, तत्थ थूलगमुसावायं थूलगादत्तादाणं थूलगमेहुणं च पच्चक्खाति दुविहं तिविहेण १ थूलगमुसावायं थूलगादत्तादाणं २-३ थूलगमेहुणं पुण दुविहं दुविहेण २ एवं पुव्वक्कमेण छब्भंगा, एवं थूलगपरिग्गहेणवि छ, मेलिया दुवालस,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६२..]

आवश्यक-हारिभद्रीया

॥८०९॥

६प्रत्याख्याना‍ध्य० श्रावकव्रतभङ्गाः

एते य थूलगादत्तादाणपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, बितियादिसुवि पत्तेयं दुवालस २, सवेऽवि मेलिया बावत्तरि, एते य थूलगमुसावायपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, बितियादिसु पत्तेयं बावत्तरि २, सवेवि मेलिया चत्तारि सया बत्तीसा, एवं थूलगमुसावाओ त्तिगसंजोएण थूलगादत्तादाणेण सह चारिओ इयाणिं थूलगमेहुणेण सह चारिज्जइ, तत्थ थूलगमुसावायं थूलगमेहुणं थूलगपरिग्गहं च पच्चक्खाति दुविहंतिविहेण १ थूलगमुसावायं थूलगमेहुणं २-३ थूलगपरिग्गहं पुण दुविहंदुविहेण २ एवं पुवक्कमेण छब्भंगा, एए थूलगमेहुणपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, बितियादिसुवि पत्तेयं २ छ २ हवंति, सवेऽवि मेलिया छत्तीसं, एते य थूलगमुसावादपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, बितियादिसुवि पत्तेयं छत्तीसं २ हवंति, सवेऽवि मेलिया दो सया सोलसुत्तरा, चारिओ तिगसंजोएण थूलगमुसावाओ, इयाणिं थूलगादत्तादाणादि चिंतिज्जइ, तत्थ थूलगादत्तादाणं मेहुणं परिग्गहं च पच्चक्खाइ दुविहंतिविहेण १ थूलगादत्तादाणं थूलगमेहुणं २-३ थूलगपरिग्गहं पुण दुविहंदुविहेण २, एवं पुवक्कमेण छब्भंगा, एते य थूलगमेहुणपढमघरमममुंचमाणेण लद्धा, बितियादिसुवि पत्तेयं छ २, सवेऽवि मेलिया छत्तीसं, एते य थूलगादत्तादाणपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, बितियाइसु पत्तेयं छत्तीसं २, सवेऽवि मेलिया दो सया सोलसुत्तरा, एते य मूलाओ आरब्भ सवेऽवि अडयाला छ सया बत्तीसा चउसया सोलसुत्तरा दो सया य बत्तीसा चउसया सोलसुत्तरा दो सया, एए सवेऽवि मेलिया इगवीससयाइं सट्ठाइं भंगाणं भवंति, ततश्च यदुक्तं प्राग् 'तिगसंजोगाण दसण्ह भंगसया एक्कवीसई सट्ठा' तदेतद् भावितं, इयाणिं चउक्कचारणिया, तत्थ थूलगपाणाइवायं थूलगमुसावायं थूलगादत्तादाणं थूलगमेहुणं च पच्चक्खाति दुविहंतिविहेण १ थूलगपाणातिवायाइ २-३ थूलगमेहुणं पुण दुविहंदुविहेण २, एवं पुवक्कमेण छब्भंगा, थूलगपरिग्गहेणवि छ, एएवि मेलिया

॥८०९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[६२..]

दुवालस, एते य थूलगादत्तादाणपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, बितियादिसुवि पत्तेयं दुवालस २, सव्वेवि मेलिया बावत्तरि, एते उ थूलगमुसावायपढमघरममुंचमाणेण लद्धा, बितियासुवि पत्तेयं बावत्तरि २, सव्वेवि मेलिया चत्तारि सया बत्तीसा, एते य थूलगपाणातिवायपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, बितियादिसुवि पत्तेयं चत्तारि २ सया बत्तीसा, सव्वेवि मेलिया दो सहस्सा पंच सया बाणउया, इदाणिं अण्णो विगप्पो–थूलगपाणाइवायं थूलगमुसावायं थूलगमेहुणं थूलगपरिग्गहं च पच्चक्खाति दुविहं दुविहेण २, एवं पुव्वक्कमेण छब्भंगा, एते उ थूलगमेहुणपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, बितियादिसु पत्तेयं २ छ छ सव्वे मेलिया छत्तीसं, एते उ थूलगमुसावायपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, बितियादिसुवि पत्तेयं छत्तीसं २, सव्वेवि मेलिया दो सया सोलसुत्तरा, एए थूलगपाणाइवायपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, बितियादिसुवि पत्तेयं २ दो २ सया सोलसुत्तरा, सव्वेवि मेलिया दुवालस सया छन्नउया, इयाणिं अण्णो विगप्पो–थूलगपाणाइवायं थूलगअदत्तादाणं थूलगमेहुणं थूलगपरिग्गहं च पच्चक्खाति दुविहंतिविहेण १, थूलगपाणातिवातं थूलगादत्तादाणं थूलगमेहुणं २-३ थूलगपरिग्गहं च पुण दुविहंदुविहेण २, एवं पुव्वक्कमेण छब्भंगा, एते य थूलगमेहुणस्स पढमघरममुंचमाणेण लद्धा, बितियादिसुवि छ २, मेलिया छत्तीसं, एते य थूलगादत्तादाणपढमघरममुंचमाणेण लद्धा, बितियादिसुवि पत्तेयं छत्तीसं २, सव्वेऽवि मेलिया दो सया सोलसुत्तरा, एते य थूलगपाणाइवायपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, बितियादिसुवि पत्तेयं दो दो सया सोलसुत्तरा, सव्वेऽवि मेलिया दुवालस सया छण्णउया, इदाणिमण्णो विगप्पो–थूलगमुसावायं थूलगादत्तादाणं थूलगमेहुणं थूलगपरिग्गहं च पच्चक्खाति दुविहंतिविहेणं १ थूलगमुसावायाति २-३ थूलगपरिग्गहं पुण दुविहंदुविहेण २, एवं पुव्वक्कमेण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [६२..]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥८१०॥ | ६प्रत्याख्यानाध्य० श्रावकव्रतभङ्गाः

छब्भंगा, एते य थूलगमेहुणपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, बितियादिसुवि पत्तेयं छ २, मेलिया छत्तीसं, एते य थूलगादत्तादाणपढमघरममुंचमाणेण लद्धा, बितियाइसुवि घरेसु पत्तेयं २ छत्तीसं २, मेलिया दो सया सोलसुत्तरा, एते थूलगमुसावायपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, बितियाइसुवि पत्तेयं दो दो सया सोलसुत्तरा, सव्वेवि मिलिया दुवालस सयाँ छणउया, एए य मूलाओ आरब्भ सव्वेवि दो सहस्सा पंचसया वाणउया, दुवालससया छण्णउया ३, मिलिया छसहस्सा चत्तारि सया असीया, ततश्च यदुक्तं प्राक् 'चउसंजोगाण पुण चउसट्ठिसयाणऽसीयाणि'त्ति, इयाणिं पंचगचारणिया, तत्थ थूलगपाणाइवायं थूलगमुसावायं थूलगादत्तादाणं थूलगमेहुणं थूलगपरिग्गहं च पच्चक्खाइ दुविहंतिविहेण १ पाणातिवायाति २-३ थूलगपरिग्गहं दुविहं दुविहेण २ एवं पुव्वक्कमेण छब्भंगा, एए थूलगमेहुणपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, बीयाइसुवि पत्तेयं २ छ छ, मेलिया छत्तीसं, एते य थूलगादत्तादाणपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, बीयादिसुवि पत्तेयं २ छत्तीसं २, मिलिया दो सया सोलसुत्तरा, एए य थूलगमुसावायपढमघरगममुंचमाणेण लद्धा, बितियाइसुवि पत्तेयं २ दो सया सोलसुत्तरा २, मेलिया दुवालस सया छन्नउया, एए य थूलगपाणातिवायपढमघरममुंचमाणेण लद्धा, बितियाइसुवि पत्तेयं २ दुवालस सया छण्णउया, सव्वेवि मेलिया सत्तसहस्सा सत्तसया छावुत्तरा, ततश्च यदुक्तं प्राक् 'सत्ततरीसयाइं छसत्तराइं तु पंचसंजोए' एतद् भावितं, 'उत्तरगुणअविरयमेलियाण जाणाहि सव्वग्गं'ति उत्तरगुणगाही एगो चेव भेओ, अविरयसम्मदिट्ठी बितिओ, एएहिं मेलियाण सव्वेसिं पुव्वभणियाण भेयाण जाणाहि सव्वग्गं इमं जातं, परूवणं पडुच्च तं पुण इमं–सोलस चेवेत्यादि ॥८१०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६३]

गाथा भाविताऽर्थैवेत्यभिहितमानुषङ्गिकं, प्रकृतं प्रस्तुमः, तत्र यस्मात् श्रावकधर्मस्य तावत् मूलं सम्यक्त्वं तस्माद् तद्गत-मेव विधिमभिधातुकाम आह—

● तत्थ समणोवासओ पुव्वामेव मिच्छत्ताओ पडिक्कमइ, संमत्तं उवसंपज्जइ, नो से कप्पइ अज्जप्पभिई अन्नउत्थिए वा अन्नउत्थिअदेवयाणि वा अन्नउत्थियपरिग्गहियाणि अरिहंतचेइयाणि वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा पुव्विं अणालत्तएणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पयाउं वा, नन्नत्थ रायाभिओगेणं गणाभिओगेणं बलाभिओगेणं देवयाभिओगेणं गुरुनिग्गहेणं वित्तीकंतारेणं, से य संमत्ते पसत्थसमत्तमोहणियकम्माणुवेयणोवसमखयसमुत्थे पसमसंवेगाइलिंगे सुहे आयपरिणामे पन्नत्ते, सम्मत्तस्स समणोवासएणं इमे पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा–संका कंखा वितिगिच्छा परपासंडपसंसा परपासंडसंथवे (सूत्रम्) ॥

अस्य व्याख्या—श्रमणानामुपासकः श्रमणोपासकः श्रावक इत्यर्थः, श्रमणोपासकः 'पूर्वमेव' आदावेव श्रमणोपासको भवन् मिथ्यात्वात्–तत्त्वार्थाश्रद्धानरूपात् प्रतिक्रामति–निवर्त्तते, न तन्निवृत्तिमात्रमत्राभिप्रेतं, किं तर्हि ?, तन्निवृत्तिद्वारेण सम्यक्त्वं–तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं उप–सामीप्येन प्रतिपद्यते, सम्यक्त्वमुपसम्पन्नस्य सतः न 'से' तस्य 'कल्पते' युज्यते 'अद्यप्रभृति' सम्यक्त्वप्रतिपत्तिकालादारभ्य, किं न कल्पते ?–अन्यतीर्थिकान्–चरकपरिव्राजकभिक्षुभौतादीन् अन्यतीर्थिकदेवतानि–

आ० १३६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्त्व-प्रतिज्ञाया: सूत्र एवं विवेचनं

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६३]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥८११॥

रुद्रविष्णुसुगतादीनि अन्यतीर्थिकपरिगृहीतानि वा(अर्हत्)चैत्यानि–अर्हत्प्रतिमालक्षणानि यथा भौतपरिगृहीतानि वीरभ- ६प्रत्याख्यानाध्य० सम्यक्त्वाधिकारः
द्रमहाकालादीनि वन्दितुं वा नमस्कर्तुं वा, तत्र वन्दनं–अभिवादनं, नमस्करणं–प्रणामपूर्वकं प्रशस्तध्वनिभिर्गुणोत्कीर्त्तनं, को दोषः स्यात् ?, अन्येषां तद्भक्तानां मिथ्यात्वादिस्थिरीकरणादिरिति, तथा पूर्वं–आदौ अनालप्तेन सता अन्यतीर्थिकैस्तानेत्रालप्तुं वा संलप्तुं वा, तत्र सकृत् सम्भाषणमालपनं पौनःपुन्येन संलपनं, को दोषः स्यात् ?, ते हि तप्ततरायोगोलकल्पाः खल्वासनादिक्रियायां नियुक्ता भवन्ति, तत्प्रत्ययः कर्मबन्धः, तथा तेन वा प्रणयेन गृहागमनं कुर्युः, अथ च श्रावकस्य स्वजनपरिजनोऽगृहीतसमयसारस्तैः सह सम्बन्धं यायादित्यादि, प्रथमालप्तेन त्वसम्भ्रमं लोकापवादभयात् कीदृशस्त्वमित्यादि वाच्यमिति, तथा तेषामन्यतीर्थिकानां अशनं–घृतपूर्णादि पानं–द्राक्षापानादि खादिमं–त्रपुषफलादि स्वादिमं –कक्कोललवङ्गादि दातुं वा अनुप्रदातुं वा न कल्पत इति, तत्र सकृद् दानं पुनः पुनरनुप्रदानमिति, किं सर्वथैव न कल्पत इति ?, न, अन्यथा राजाभियोगेनेति–राजाभियोगं मुक्त्वा बलाभियोगं मुक्त्वा देवताभियोगं मुक्त्वा गुरुनिग्रहेण–गुरुनिग्रहं मुक्त्वा वृत्तिकान्तारं मुक्त्वा, एतदुक्तं भवति–राजाभियोगादिना ददद‌पि न धर्ममतिक्रामति ।

इह चोदाहरणानि, '[1]कहं रायाभिओगेण देंतो णातिचरति धम्मं ?, तत्रोदाहरणम्–हत्थिणाउरे नयरे जियसत्तू राया, कत्तिओ सेट्ठी नेगमसहस्सपढमासणिओ सावगवण्णगो, एवं कालो वच्चइ, तत्थ य परिवायगो मासंमासेण खमइ, ॥८११॥

१ कथं राजाभियोगेन ददन्नातिचरति धर्मं हस्तिनापुरे नगरे जितशत्रू राजा, कार्त्तिकः श्रेष्ठी निगमसहस्रप्रथमासनिकः श्रावकवर्णकः, एवं कालो व्रजति, तत्र च परिव्राजको मासंमासेन क्षपयति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६३]

तं सवलोगो आढाति, कत्तिओ नाढाति, ताहे से सो गेरुओ पओसमावण्णो छिद्दाणि मग्गति, अण्णया रायाए निमंतिओ पारणए नेच्छति, बहुसो २ राया निमंतेइ ताहे भणइ–जइ नवरं मम कत्तिओ परिवेसेइ तो नवरं जेमेमि, राया भणइ–एवं करेमि, राया समणूसो कत्तियस्स घरं गओ, कत्तिओ भणइ–संदिसह, राया भणति–गेरुयस्स परिवेसेहि, कत्तिओ भणति–न वट्टइ अम्हं, तुम्ह विसयवासित्ति करेमि, चिंतेइ–जइ पबइओ होंतो न एवं भवंतं, पच्छा णेण परिवेसियं, सो परिवेसेज्जंतो अंगुलिं चालेति, किह ते ?, पच्छा कत्तिओ तेण निवेएण पबइओ नेगमसहस्सपरिवारो मुणिसुबयसमीवे, बारसंगाणि पढिओ, बारस वरिसाणि परियाओ, सोहम्मे कप्पे सक्को जाओ, सो परिवायओ तेणाभिओगेण आभिओगिओ एरावणो जाओ, पेच्छिय सक्कं पलाओ, गहिउं सक्को विलग्गो, दो सीसाणि कयाणि, सक्कावि दो जाया, एवं जावइयाणि सीसाणि विउवति तावतियाणि सक्को विउवति सक्करूवाणि, ताहे नासिउमारद्धो,

१ तं सर्वलोक आद्रियते, कार्तिको नाद्रियते, तदा तस्मै स गैरिकः प्रद्वेषमापन्नश्छिद्राणि मार्गयति, अन्यदा राज्ञा निमन्त्रितः पारणके नेच्छति, बहुशो २ राजा निमन्त्रयति तदा भणति–यदि परं कार्तिकः मां परिवेषयति तर्हि नवरं जेमामि, राजा भणति–एवं करोमि, राजा समनुष्यः कार्त्तिकस्य गृहं गतः, कार्त्तिको भणति–संदिश, राजा भणति–गैरिकं परिवेषय, कार्त्तिको भणति–न वर्ततेऽस्माकं, युष्मद्विषयवासीति करोमि, चिन्तयति–यदि प्रव्रजितोऽभविष्यं नैवमभविष्यत्, पश्चादनेन परिवेषितं, स परिवेष्यमाणोऽङ्गुलिं चालयति, कथं तव ?, पश्चात् कार्त्तिकस्तेन निर्वेदेन प्रव्रजितो नैगमसहस्रपरिवारो मुनिसुव्रत. समीपे, द्वादशाङ्गानि पठितः, द्वादश वर्षाणि पर्यायः, सौधर्मे कल्पे शक्रो जातः, स परिव्राट् तेनाभियोगेनाभियोगिक ऐरावणो जातः, दृष्ट्वा च शक्रं पलायितः गृहीत्वा शक्रो विलग्नः, द्वे शीर्षे कृते, शक्रौ अपि द्वौ जातौ, एवं यावन्ति शीर्षाणि विकुर्वति तावन्तिः शक्ररूपाणि विकुर्वति शक्रः, तदा नंष्टुमारब्धः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६३]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥८१२॥

६प्रत्याख्यानाध्य० सम्यक्त्वाधिकराः

संकेणाहओ पच्छा ठिओ, एवं रायाभिओगेण देंतो नाइक्कमति, केत्तिया एयारिसया होहिंति जे पव्वइस्संति, तम्हा न दायव्वो। गणाभिओगेण वरुणो रहमुसले निउत्तो, एवं कोऽवि सावगो गणाभिओगेण भत्तं दवाविज्जा दिंतोवि सो नाइचरइ धम्मं, बलाभिओगोवि एमेव, देवयाभिओगेण जहा एगो गिहत्थो सावओ जाओ, तेण वाणमंतराणि चिरपरिचियाणि उज्झियाणि, एगा तत्थ वाणमंतरी पओसमावण्णा, गावीरक्खगो पुत्तो तीए वाणमंतरीए गावीहिं समं अवहरिओ, ताहे उइण्णा साहइ तज्जंती–किं ममं उज्झसि न वत्ति ?, सावगो भणइ, नवरि मा मम धम्मविराहणा भवतु, सा भणइ–ममं अच्चेहि, सो भणइ–जिणपडिमाणं अवसाणे ठाहि, आमं ठामि, तेण ठविया, ताहे दारगो गावीओ आणीयाओ, एरिसा केत्तिया होहिंति तम्हा न दायव्वं, दवाविज्जंतो णातिचरति। गुरुनिग्गहेण भिक्खुउवासगपुत्तो सावगं धूयं मग्गति, ताणि न देंति, सो कवडसड्ढत्तणेण साधू सेवेति, तस्स भावओ उवगयं, पच्छा साहेइ–एएण कारणेण पुव्विं ढुक्कोमि,

१ शकेणाहतः पश्चात् स्थितः, एवं राजाभियोगेन ददत् नातिक्रामति, कियन्त एतादृशो भविष्यन्ति ये प्रव्रजिष्यन्ति तस्मान्न दातव्यः। गणाभियोगेन वरुणो रथमुशले नियुक्तः, एवं कोऽपि श्रावको गणाभियोगेन भक्तं दाप्यते ददद्पि स नातिचरति धर्मं। बलाभियोगोऽप्येवमेव। देवताभियोगेन यथैको गृहस्थः श्रावको जातः, तेन व्यन्तराश्चिरपरिचिता उज्झिताः, एका तत्र व्यन्तरी प्रद्वेषमापन्ना, गोरक्षकः पुत्रस्तया व्यन्तर्या गोभिः सममपहृतः, तदाऽवतीर्णा कथयति तर्जयन्ती–किं मामुज्झसि न वेति ?, श्रावको भणति–नवरं मा मे धर्मविराधना भूत्, सा भणति–मामर्चय, स भणति–जिनप्रतिमानां पार्श्वे तिष्ठ, ओं तिष्ठामि, तेन स्थापिता, दारको गावश्च तदानीताः, ईदृशाः कियन्तो भविष्यन्ति तस्मान्न दातव्यं, दाप्यमानो नातिचरति। गुरु निग्रहेण भिक्षूपासकपुत्रः श्रावकं दुहितरं याचते न तौ दत्तः, स कपटश्राद्धतया साधून् सेवते, तस्य भावेनोपगतं, पश्चात् कथयति–एतेन कारणेन पूर्वमागतोऽस्मि

॥८१२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६३]

इयाणिं सब्भावसावओ, सावओ साहू पुच्छइ, तेहिं कहियं, ताहे दिण्णा धूया, सो सावओ जुयगं घरं करेइ, अण्णया तस्स मायापियरो भत्तं भिक्खुगाण करेंति, ताइं भणंति–अज्ज एक्कसिं वच्चाहि, सो गओ, भिक्खुएहिं विज्जाए मंतिऊण फलं दिण्णं, ताए वाणमंतीरए अहिट्ठिओ घरं गओ तं सावयधूयं भणइ–भिक्खुगाणं भत्तं देमो, सा नेच्छइ, दासाणि सयणो य आरद्धो सज्जेउं, साविया आयरियाण गंतुं कहेति, तेहिं जोगपडिभेओ दिण्णो, सो से पाणिएण दिण्णो, सा वाणमंतरी नट्ठा, साभाविओ जाओ पुच्छइ कहं वत्ति ?, कहिए पडिसेहेति, अण्णे भणंति–तीए मयणमिंजाए वमाविओ, सो तो साभाविओ जाओ, भणइ–अम्मापिउछलेण मणा विवंचिउत्ति, तं किर फासुगं साहूणं दिण्णं, एरिसा केत्तिया आयरिया होहिंति तम्हा परिहरेज्जा। वित्तीकंतारेणं देज्जा, सोरट्ठो सड्ढओ उज्जेणिं वच्चइ दुक्काले तच्चण्णिएहिं समं, तस्स पत्थयणं, खीणं भिक्खुएहिं भण्णइ–अम्हएहिं वहाहि पत्थयणं तो तुज्झवि दिज्जिहित्ति, तेण पडिवण्णं,

---

१ इदानीं सद्भावश्रावकः, श्रावकः साधून् पृच्छति, तैः कथितं, तदा दत्ता दुहिता, स श्रावकः पृथग्गृहं करोति, अन्यदा तस्य मातापितरौ भक्तं भिक्षुकाणां कुरुतः, तौ भणतः–अद्यैकश आगच्छ, स गतः, भिक्षुकैर्विद्यया मन्त्रयित्वा फलं दत्तं, तया व्यन्तर्याऽधिष्ठितो गृहं गतः तां श्रावकदुहितरं भणति–भिक्षुकेभ्यो भक्तं दद्वः, सा नेच्छति, दासाः स्वजनश्च आरब्धः सज्जयितुं, श्राविकाऽऽचार्यान् गत्वा कथयति, तैः योगप्रतिभेदो दत्तः, स तस्मै पानीयेन दत्तः, सा व्यन्तरी नष्टा, स्वाभाविको जातः पृच्छति–कथं वेति ?, कथिते प्रतिषेधति, अन्ये भणन्ति–तया मदनबीजेन वमितः, स ततः स्वाभाविको जातो, भणति–मातापितृच्छलेन मनाक् विवञ्चित इति, तत्किल प्रासुकं साधुभ्यो दत्तं, ईदृशाः कियन्त आचार्या भविष्यन्ति तस्मात् परिहरेत्। वृत्तिकान्तारेण दद्यात्, सौराष्ट्रः श्रावक उज्जयिनीं व्रजति दुष्काले तच्चनिकैः समं, तस्य पथ्यदनं क्षीणं, भिक्षुकैर्भण्यते–अस्मदीयं वह पथ्यदनं तर्हि तुभ्यमपि दीयते इति, तेन प्रतिपन्नं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६३]

अण्णया तस्स पोट्टसरणी जाया, सो चीवरेहिं वेढिओ तेहिं अणुकंपाए, सो भट्टारगाणं नमोक्कारं करेंतो कालगओ देवो वेमाणिओ जाओ, ओहिणा तच्चणियसरीरं पेच्छइ, ताहे सभूसणेण हत्थेण परिवेसेति, सड्डाण ओहावणा, आयरियाण आगमणं, कहणं च, तेहिं भणियं–जाह अग्गहत्थं गिण्हिऊण भणह–नमो अरहंताणंति, बुज्झ गुज्झगा २, तेहिं गंतूण भणिओ संबुद्धो वंदित्ता लोगस्स कहेइ–जहा नत्थि एत्थ धम्मो तम्हा परिहरेज्जा ॥

अत्राह—इह पुनः को दोषः स्याद् येनेत्थं तेषामशनादिप्रतिषेध इति?, उच्यते, तेषां तद्भक्तानां च मिथ्यात्वस्थिरीकरणं, धर्मबुद्ध्या ददतः सम्यक्त्वलाञ्छना, तथा आरम्भादिदोषश्च, करुणागोचरं पुनरापन्नानामनुकम्पया दद्यादपि, यदुक्तं–"सव्वेहिंपि जिणेहिं दुज्जयजियरागदोसमोहेहिं। सत्ताणुकंपणट्ठा दाणं न कहिंचि पडिसिद्धं ॥ १ ॥" तथा च भगवन्तस्तीर्थकरा अपि त्रिभुवनैकनाथाः प्रविव्रजिषवः सांवत्सरिकमनुकम्पया प्रयच्छन्त्येव दानमित्यलं विस्तरेण । प्रकृतमुच्यते–'संमत्तस्स समणोवासएण'मित्यादि सूत्रं, अस्य व्याख्या 'सम्यक्त्वस्य' प्राग्निरूपितस्वरूपस्य श्रमणोपासकेन–श्रावकेण 'एते' वक्ष्यमाणलक्षणाः अथवाऽमी ये प्रक्रान्ताः पञ्चेति सङ्ख्यावाचकः अतिचारा मिथ्यात्वमोहनीयकर्मोदयादात्मनोऽशुभाः परि-

---

१ अन्यदा तस्यातीसारो जातः, स चीवरैर्वेष्टितस्तैरनुकम्पया, स भट्टारकेभ्यो नमस्कारं कुर्वन् कालगतो देवो वैमानिको जातः, अवधिना तच्चनिकशरीरं प्रेक्षते, तदा सभूषणेन हस्तेन परिवेषयति, श्राद्धानामपभ्राजना, आचार्याणामागमनं, कथनं च, तैर्भणितं–यातामहस्तं गृहीत्वा भणत–नमोऽर्हद्भ्य इति, बुध्यस्व गुह्यक ! २, तैर्गत्वा भणितः संबुद्धो वंदित्वा लोकाय कथयति–यथा नास्त्यत्र धर्मस्तस्मात्परिहरेत् ॥ २ ॥ सर्वैरपि जिनैर्जितदुर्जयरागद्वेषमोहैः । सत्त्वानुकम्पनार्थं दानं न कुत्रापि प्रतिषिद्धम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६३]

णामविशेषा इत्यर्थः, यैः सम्यक्त्वमतिचरति, ज्ञातव्याः ज्ञपरिज्ञया न समाचरितव्याः, नासेव्या इति भावार्थः । 'तद्यथे'–त्युदाहरणप्रदर्शनार्थः, शङ्का काङ्क्षा विचिकित्सा परपाषण्डप्रशंसा परपाषण्डसंस्तवश्चेति, तत्र शङ्कनं शङ्का, भगवदर्हत्–प्रणीतेषु पदार्थेषु धर्मास्तिकायादिष्वत्यन्तगहनेषु मतिदौर्बल्यात् सम्यगनवधार्यमाणेषु संशय इत्यर्थः, किमेवं स्यात् नैवमिति, संशयकरणं शङ्का, सा पुनर्द्विभेदा–देशशङ्का सर्वशङ्का च, देशशङ्का देशविषया, यथा किमयमात्माऽसङ्ख्येयप्रदेशात्मकः स्यादथ निष्प्रदेशो निरवयवः स्यादिति, सर्वशङ्का पुनः सकलास्तिकायजात एव किमेवं नैवं स्यादिति । मिथ्यादर्शनं च त्रिविधम्–अभिगृहीतानभिगृहीतसंशयभेदात्, तत्र संशयो मिथ्यात्वमेव, यदाह–"पयमक्खरं च एक्कं जो न रोएइ सुत्तनिद्दिट्ठं। सेसं रोयंतोवि हु मिच्छद्दिट्ठी मुणेयव्वो ॥ १ ॥" तथा–"सूत्रोक्तस्यैकस्याप्यरोचनादक्षरस्य भवति नरः। मिथ्यादृष्टिः सूत्रं हि नः प्रमाणं जिनाज्ञा च(जिनाभिहितं)॥१॥ एकस्मिन्नप्यर्थे सन्दिग्धे प्रत्ययोऽर्हति हि नष्टः । मिथ्यात्वदर्शनं तत्सचादिहेतुर्भवगतीनाम् ॥ २॥" तस्मात् मुमुक्षुणा व्यपगतशङ्केन सता जिनवचनं सत्यमेव सामन्यतः प्रतिपत्तव्यं, संशयास्पदमपि सत्यं, सर्वज्ञाभिहितत्वात्, तदन्यपदार्थवत्, मतिदौर्बल्यादिदोषात्तु कार्त्स्न्येन सकलपदार्थस्वभावावधारणमशक्यं छद्मस्थेन, यदाह–"न हि नामानाभोगश्छद्मस्थस्येह कस्यचिन्नास्ति । ज्ञानावरणीयं हि ज्ञानावरणप्रकृति कर्म ॥ १ ॥" इह चोदाहरणं–जो संकं करेइ सो विणस्सति, जहा सो पेज्जायओ, पेज्जाए मासा जे परिभज्जमाणा ते छूढा, अंधगारए

१ पदमक्षरं चैकं यो न रोचयति सूत्रनिर्दिष्टम् । शेषं रोचयन्नपि मिथ्यादृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥ १ ॥ २ यः शङ्कां करोति स विनश्यति यथा स पेयापायी, पेयायां माषा ये परिभुज्यमानास्ते क्षिप्ताः, अन्धकारे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६३]

आवश्यक-हारिभद्रीया

॥८१४॥

६प्रत्याख्यानाध्य० सम्यक्त्वाधिकारः

लेहसालाओ आगया दो पुत्ता पियंति, एगो चिंतेति–एयाओ, मच्छियाओ संकाए तस्स वग्गुलो वाउ जाओ, मओ य, बिइओ चिंतेइ–न मम माया मच्छिया देइ जीओ, एते दोसा। काङ्क्षणं काङ्क्षा–सुगतादिप्रणीतदर्शनेषु ग्राहोऽभिलाष इत्यर्थः, तथा चोक्तं–'कंखा अन्नन्नदंसणग्गाहो'सा पुनर्द्विभेदा–देशकाङ्क्षा सर्वकाङ्क्षा च, देशकाङ्क्षैकदेशविषया, एकमेव सौगतं दर्शनं काङ्क्षति, चित्तजयोऽत्र प्रतिपादितोऽयमेव च प्रधानो मुक्तिहेतुरित्यतो घटमानकमिदं न दूरापेतमिति, सर्वकाङ्क्षा तु सर्वदर्शनान्यवकाङ्क्षति, अहिंसादिप्रतिपादनपराणि सर्वाण्येव कपिलकणभक्षाक्षपादादिमतानीह लोके च नात्यन्तक्लेशप्रतिपादनपराण्यतः शोभनान्येवेति, अथवैहिकामुष्मिकफलानि काङ्क्षति, प्रतिषिद्धा चेयमर्हद्भिरतः प्रतिषिद्धानुष्ठानादेनां कुर्वतः सम्यक्त्वातिचारो भवति, तस्मादेकान्तिकमव्याबाधमपवर्गं विहायान्यत्र काङ्क्षा न कार्येति, एत्थोदाहरणं, राया कुमारामच्चो य आसेणावहिया अडविं पविट्ठा, छुहापरद्धा वणफलाणि खायंति, पडिनियत्ताण राया चिंतेइ, लड्डुयपूयलगमादीणि सव्वाणि खामि, आगया दोवि जणा, रण्णा सूयारा भणिया–जं लोए पयरइ तं सव्वं सव्वे रंधेहत्ति, उवट्ठवियं च रन्नो, सो राया पेच्छणयदिट्ठंतं करेइ, कप्पडिया बलिएहिं धाडिज्जइ, एवं मिट्ठस्स अवगासो होहितित्ति कणकुंडगमंडगादीणिवि

१ लेखशालाया आगतौ द्वौ पुत्रौ पिबतः, एकश्चिन्तयति–एता मक्षिकाः, शङ्कया तस्य वल्गुलो वायुर्जातो मृतश्च, द्वितीयश्चिन्तयति–न मह्यं माता मक्षिका दद्यात् जीवितः, एते दोषाः। २ अत्रोदाहरणं राजा कुमारामात्यश्चाश्वेनापहृतावटवीं प्रविष्टौ, क्षुधापरिगतौ वनफलानि खादतः, प्रतिनिवृत्तयो राजा चिन्तयति–लड्डुकापूपादीनि सर्वाणि खादामि, आगतौ द्वावपि जनौ, राज्ञा सूदा भणिताः–यल्लोके प्रचरति तत् सर्वं सर्वे राध्यतेति, उपस्थापितं च राज्ञे, स राजा प्रेक्षणकदृष्टान्तं करोति, कार्पटिका बलिभिर्धाव्यन्ते, एवं मिष्टस्यावकाशो भविष्यतीति कणकुण्डकमण्डकादीन्यपि

॥८१४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६३]

खइयाणि, तेहिं सूलेण मओ, अमच्चेण वमणविरेयणाणि कयाणि, सो आभागी भोगाण जाओ, इयरो विणट्ठो। चिकित्सा मतिविभ्रमः, युक्त्यागमोपपन्नेऽप्यर्थे फलं प्रति सम्मोहः, किमस्य महतस्तपःक्लेशायासस्य सिकताकणकवलनादेरायत्यां मम फलसम्पद् भविष्यति किं वा नेति, उभयथेह क्रियाः फलवत्यो निष्फलाश्च दृश्यन्ते कृषीवलानां, न चेयं शङ्कातो न भिद्यते इत्याशङ्कनीयं, शङ्का हि सकलासकलपदार्थभाक्त्वेन द्रव्यगुणविषया इयं तु क्रियाविषयैव, तत्त्वतस्तु सर्व एते प्रायो मिथ्यात्वमोहनीयोदयतो भवन्तो जीवपरिणामविशेषाः सम्यक्त्वातिचारा उच्यन्ते, न सूक्ष्मेक्षिकाऽत्र कार्येति, इयमपि न कार्या, यतः सर्वज्ञोक्तकुशलानुष्ठानाद् भवत्येव फलप्राप्तिरिति, अत्र चौरोदाहरणं[2]–सावगो नंदीसरवरगमणं दिव्वगंधाणं(तं) देवसंघरिसेण मित्तस्स पुच्छणं विज्जाए दाणं साहणं मसाणे चउप्पायं सिक्कगं, हेट्ठा इंगाला खायरो य सूलो, अट्ठसयं वारा परिजवित्ता पाओ सिक्कगस्स छिज्जइ एवं बितिओ तइए चउत्थे य छिण्णे आगासेणं वच्चति, तेण विज्जा गहिया, किण्हचउद्दसिरत्तिं साहेइ मसाणे, चोरो य नगरारक्खिएहिं परिरब्भमाणो तत्थेव अतियओ, ताहे वेढेउं सुसाणे ठिया

---

१ खादितानि, तैः शूलेन मृतः, अमात्येन वमनविरेचनानि कृतानि, स भोगानामाभागी जातः, इतरो विनष्टः। २ चौरोदाहरणं श्रावको नन्दीश्वरवरगमनं देवसंघर्षेण दिव्यगन्धः मित्रस्य पृच्छा विद्याया दानं साधनं श्मशाने चतुष्पादं सिक्कमधस्ताद् अङ्गाराः खादिरश्च स्तम्भः अष्टशतं वारान् परिजप्य पादःसिक्ककस्य छेद्यते एवं द्वितीयः तृतीये चतुर्थे च छिन्ने आकाशेन गम्यते, तेन विद्या गृहीता, कृष्णचतुर्दशीरात्रौ साधयति श्मशाने, चौरश्च नगरारक्षकै रुध्यमानस्तत्रैवातिगतस्तदा वेष्टयित्वा श्मशानं (ते) स्थिताः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६३]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥८१५॥

६प्रत्याख्याध्य० सम्यक्त्वाधिकारः

[1]पभाए घिप्पिहितित्ति, सो य भमंतो तं विज्जासाहयं पेच्छइ, तेण पुच्छिओ भणति–विज्जं साहेमि, चोरो भणति–केण दिण्णा ?, सो भणति–सावगेण, चोरेण भणियं–इमं दव्वं गिण्हाहि, विज्जं देहि, सो सड्ढो वितिगिच्छति–सिज्झेज्जा न वत्ति, तेण दिण्णा, चोरो चिंतेइ–सावगो कीडियाएवि पावं नेच्छइ, सच्चमेयं, सो साहिउमारद्धो, सिद्धा, इयरो सड्ढो गहिओ, तेण आगासगएण लोओ भेसिओ ताहे सो मुक्को, सड्ढावं दोवि जाया, एवं निव्वित्तिगिच्छेण होयव्वं, अथवा विद्वज्जुगुप्सा, विद्वांसः–साधवः विदितसंसारस्वभावाः परित्यक्तसमस्तसङ्गाः तेषां जुगुप्सा–निन्दा, तथाहि–तेऽस्नानात्, प्रस्वेदजलक्लिन्नमलत्वात् दुर्गन्धिवपुषो भवन्ति तान् निन्दति–को दोषः स्यात् यदि प्रासुकेन वारिणाऽङ्गक्षालनं कुर्वीरन् भगवन्तः ?, इयमपि न कार्या, देहस्यैव परमार्थतोऽशुचित्वात्, [2]एत्थं उदाहरणं–एको सड्ढो पच्चंते वसति, तस्स धूयाविवाहे कहवि साहवो आगया, सा पिउणा, भणिया–पुत्तग ! पडिलाहेहि साहुणो, सा मंडियपसाहिया पडिलाभेति, साहूण जल्लगंद्धो तीए अग्घाओ, चिंतेइ–अहो अणवज्जो भट्टारगेहिं धम्मो देसिओ जइ फासुएण ण्हाएज्जा ?, को दोसो होज्जा ?, सा तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंता

१ प्रभाते गृहीष्यते इति, स च भ्राम्यन् तं विद्यासाधकं प्रेक्षते, तेन पृष्टो भणति–विद्यां साधयामि, चौरो भणति–केन दत्ता ?, स भणति–श्रावकेण, चौरेण भणितं–इदं द्रव्यं गृहाण विद्यां देहि, स श्राद्धो विचिकित्सति सिध्येन्न वेति, तेन दत्ता, चौरश्चिन्तयति–श्रावकः कीटिकाया अपि पापं नेच्छति, सत्यमेतत्, स साधयितुमारब्धः, सिद्धा, इतरः श्राद्धो गृहीतः, तेनाकाशगतेन लोको भापितः, तदा स मुक्तः/ श्रद्धावन्तौ द्वावपि जातौ, एवं निर्विचिकित्सेन भवितव्यं । २ अत्रोदाहरणं एकः श्राद्धः प्रत्यन्ते वसति, तस्य दुहितृविवाहे कथमपि साधवः आगताः, सा पित्रा भणिता–पुत्रिके ! प्रतिलम्भय साधून्, सा मण्डितप्रसाधिता प्रतिलम्भयति, साधूनां जल्लगन्धस्तयाऽऽघ्रातः, चिन्तयति–अहो अनवद्यो भट्टारकैर्धर्मो देशितः यदि प्रासुकेन स्नायात् को दोषो भवेत् ?, सा तस्य स्थानस्यानालोचितप्रतिक्रान्ता

॥८१५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६३]

कालं किच्चा रायगिहे गणियाए पोट्टे उववन्ना, गब्भगता चेव अरइं जणेति, गब्भपाडणेहि य न पडइ, जाया समाणी उज्झिया, सा गंधेण तं वणं वासेति, सेणिओ य तेण पएसेण निग्गच्छइ सामिणो वंदगो, सो खंधावारो तीए गंधं न सहइ, रण्णा पुच्छियं–किमेयंति, कहियं दारियाए गंधो, गंतूण दिट्ठा, भणति–एसेव पढमपुच्छति, गओ सेणिओ, पुव्वुद्दिट्ठवुत्तंते कहिते भणइ राया–कहिं एसा पच्चणुभविस्सइ सुहं दुक्खं वा ?, सामी भणइ–एएण कालेण वेदियं, सा तव चेव भज्जा भविस्सति अग्गमहिसी, अट्ठ संवच्छराणि जाव तुज्झं रममाणस्स पुट्ठीए हंसोवळीर्लीं काही तं जाणिज्जासि, वंदित्ता गओ, सो य अवहरिओ गंधो, कुलपुत्तएण साहरिया, संवड्ढिया जोव्वणत्था जाया, कोमुइवारे अम्मयाए समं आगया, अभओ सेणिओ (य)पच्छण्णा कोमुइवारं पेच्छंति, तीए दारियाए अंगफासेण अज्झोववण्णो णाममुद्दं दसियाए तीए बंधति, अभयस्स कहियं–णाममुद्दा हारिया, मग्गाहि, तेण मणुस्सा दारेहिं ठविया, एक्केक्कं माणुस्सं पलोएउं नीणिज्जइ, सा

---

१ कालं कृत्वा राजगृहे गणिकाया उदरे उत्पन्ना, गर्भगतैवारतिं जनयति, गर्भपातनैरपि च न पतति, जाता सत्युज्झिता, सा गन्धेन तद्वनं वासयति, श्रेणिकश्च तेन प्रदेशेन निर्गच्छति, स्वामिनो वन्दनाय, स स्कन्धावारस्तस्या गन्धं न सहते, राज्ञा पृष्टं–किमेतदिति ?, कथितं दारिकाया गन्धः, गत्वा दृष्टा, भणति–एषैव प्रथमपृच्छेति, गतः श्रेणिकः, पूर्वोद्दिष्टे वृत्तान्ते कथिते भणति राजा–कैषा प्रत्यनुभविष्यति सुखं दुःखं वा ?, स्वामी भणति–एतेन कालेन वेदितं, सा तवैव भार्या भविष्यति अग्रमहिषी, अष्ट संवत्सरान् यावत्तव रममाणस्य पृष्ठौ हंसोलीं करिष्यति तां जानीयाः, वन्दित्वा गतः, स चापहृतो गन्धः कुलपुत्रकेण संहृता संवृद्धा च यौवनस्था जाता, कौमुदीवासरेऽम्बया सममागता, अभयः श्रेणिकश्च प्रच्छन्नौ कौमुदीवासरं प्रेक्षेते, तस्या दारिकाया अङ्गस्पर्शेनाध्युपपन्नो नाममुद्रां तस्या दशायां बध्नाति, अभयाय कथितं–नाममुद्रा हारिता, मार्गय, तेन मनुष्या द्वारि स्थापिताः, एकैको मनुष्यः प्रलोक्य निष्काश्यते, सा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[६३]

दारिया दिट्ठा चोरोत्ति गहिया, परिणीया य, अण्णया य वज्झुक्केण रमंति, रायाणिउ तेण पोत्तेण वाहेंति, इयरा पोत्तं देंति, सा विलग्गा, रण्णा सरियं, मुक्का य पव्वइया, एयं विउदुगुंछाफलं । परपाषंडानां–सर्वज्ञप्रणीतपाषण्डव्यतिरिक्तानां प्रशंसा प्रशंसनं प्रशंसा स्तुतिरित्यर्थः । परपाषण्डानामोघतस्त्रीणि शतानि त्रिषष्ठ्यधिकानि भवन्ति, यत उक्तम्– "असीयसयं किरियाणं अकिरियवाईण होइ चुलसीती । अण्णाणिय सत्तट्ठी वेणइयाणं च बत्तीसं ॥१॥ गाहा", इयमपि गाथा विनेयजनानुग्रहार्थं ग्रन्थान्तरप्रतिबद्धाऽपि लेशतो व्याख्यायते–'असियसयं किरियाणं'ति अशीत्युत्तरं शतं क्रियावादिनां, तत्र न कर्त्तारं विना क्रिया सम्भवति तामात्मसमवायिनीं वदन्ति ये तच्छीलाश्च ते क्रियावादिनः, ते पुनरात्माद्यस्तित्वप्रतिपत्तिलक्षणाः अनेनोपायेनाशीत्यधिकशतसङ्ख्या विज्ञेयाः, जीवाजीवाश्रवबन्धसंवरनिर्जरापुण्यापुण्यमोक्षाख्यान् नव पदार्थान् विरचय्य परिपाट्या जीवपदार्थस्याधः स्वपरभेदावुपन्यसनीयौ, तयोरधो नित्यानित्यभेदौ, तयोरप्यधः कालेश्वरात्मनियतिस्वभावभेदाः पञ्च न्यसनीयाः, पुनश्चेत्थं विकल्पाः कर्त्तव्याः–अस्ति जीवः स्वतो नित्यः कालत इत्येको विकल्पः, विकल्पार्थश्चायं–विद्यते खल्वयमात्मा स्वेन रूपेण नित्यश्च कालतः, कालवादिनः, उक्तेनैवाभिलापेन द्वितीयो विकल्पः ईश्वरवादिनः, तृतीयो विकल्प आत्मवादिनः 'पुरुष एवेदं सर्वं'मित्यादि, नियतिवादिनश्चतुर्थो विकल्पः, पञ्चमविकल्पः स्वभाववादिनः, एवं स्वत इत्यत्यजता लब्धाः पञ्च विकल्पाः, परत इत्यनेनापि पञ्चैव लभ्यन्ते,- नित्यत्वा-

१ दारिका दृष्टा चौर इति गृहीता परिणीता च, अन्यदा च वाह्यक्रीडया रमन्ते, राज्यस्तं पोतेन वाहयन्ति, इतराः पोतं ददति, सा विलग्ना, राज्ञा स्मृतं, मुक्ता च प्रव्रजिता, एतत् विद्वज्जुगुप्साफलं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६३]

परित्यागेन चैते दश विकल्पाः एवमनित्यत्वेनापि दशैव, एकत्र विंशतिर्जीवपदार्थेन लब्धाः, अजीवादिष्वप्यष्टस्वेवमेव प्रतिपदं विंशतिर्विकल्पानामतो विंशतिर्नवगुणा शतमशीत्युत्तरं क्रियावादिनामिति । 'अक्किरियाणं च भवति चुलसीति'त्ति अक्रियावादिनां च भवति चतुरशीतिर्भेदा इति, न हि कस्यचिदवस्थितस्य पदार्थस्य क्रिया समस्ति, तद्भाव एवावस्थितेरभावादित्येवं वादिनोऽक्रियावादिनः, तथा चाहुरेके–"क्षणिकाः सर्वसंस्काराः, अस्थितानां कुतः क्रिया ?। भूतिर्येषां क्रिया सैव, कारकं सैव चोच्यते ॥ १ ॥" इत्यादि, एते चात्मादिनास्तित्वप्रतिपत्तिलक्षणा अमुनोपायेन चतुरशीतिर्द्रष्टव्याः, एतेषां हि पुण्यापुण्यवर्जितपदार्थसप्तकन्यासस्तथैव जीवस्याधः स्वपरविकल्पभेदद्वयोपन्यासः, असत्त्वादात्मनो नित्यानित्यभेदौ न स्तः, कालादीनां तु पञ्चानां षष्ठी यदृच्छा न्यस्यते, पश्चाद्विकल्पभेदाभिलापः,–नास्ति जीवः स्वतः कालत इत्येको विकल्पः, एवमीश्वरादिभिरपि यदृच्छावसानैः, सर्वे च षड् विकल्पाः, तथा नास्ति जीवः परतः कालत इति षडेव विकल्पाः, एकत्र द्वादश, एवमजीवादिष्वपि षट्सु प्रतिपदं द्वादश विकल्पाः एकत्र, सप्त द्वादशगुणाश्चतुरशीतिर्विकल्पा नास्तिकानामिति । 'अण्णाणिय सत्तट्ठि'त्ति अज्ञानिकानां सप्तषष्टिर्भेदा इति, तत्र कुत्सितं ज्ञानमज्ञानं तदेषामस्तीति अज्ञानिकाः, नन्वेवं लघुत्वात् प्रक्रमस्य प्राक् बहुव्रीहिणा भवितव्यं ततश्चाज्ञाना इति स्यात्, नैष दोषः, ज्ञानान्तरमेवाज्ञानं मिथ्यादर्शनसहचारित्वात्, ततश्च जातिशब्दत्वाद् गौरखरवदरण्यमित्यादिवदज्ञानिकत्वमिति, अथवा अज्ञानेन चरन्ति तत्प्रयोजना वा अज्ञानिकाः–असंचिन्त्य कृतवैफल्यादिप्रतिपत्तिलक्षणाः, अमुनोपायेन सप्तषष्टिर्ज्ञातव्याः, तत्र जीवादिनवपदार्थान् पूर्ववत् व्यवस्थाप्य पर्यन्ते चोत्पत्तिमुपन्यस्याधः सप्त सदादयः उपन्यसनीयाः,

आ० १२७

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६३]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥८१७॥

सत्त्वमसत्त्वं सदसत्त्वं अवाच्यत्वं सद्वाच्यत्वं असदवाच्यत्वं सदसदवाच्यत्वमिति चैकैकस्य जीवादेः सप्त सप्त विकल्पाः, एते नव सप्तकाः त्रिषष्टिः, उत्पत्तेस्तु चत्वार एवाद्या विकल्पाः; तद्यथा—सत्त्वमसत्त्वं सदसत्त्वं अवाच्यत्वं चेति; त्रिषष्टिमध्ये क्षिप्ताः सप्तषष्टिर्भवन्ति, को जानाति जीवः सन्नित्येको विकल्पः, ज्ञातेन वा किं ?, एवमसदादयोऽपि वाच्याः, उत्पत्तिरपि किं सतोऽसतः सदसतोऽवाच्यस्येति को जानातीति ?, एतन्न कश्चिदपीत्यभिप्रायः । 'वेणइयाणं च बत्तीस'त्ति वैनयिकानां च द्वात्रिंशद् भेदाः, विनयेन चरन्ति विनयो वा प्रयोजनमेषामिति वैनयिकाः, एते चानवधृतलिङ्गाचारशास्त्रा विनयप्रतिपत्तिलक्षणा अमुनोपायेन द्वात्रिंशदवगन्तव्याः—सुरनृपतियतिज्ञातिस्थविराधममातृपितॄणां प्रत्येकं कायेन वचसा मनसा दानेन च देशकालोपपन्नेन विनयः कार्य इत्येते चत्वारो भेदाः सुरादिष्वष्टसु स्थानकेषु, एकत्र मिलिता द्वात्रिंशदिति, सर्वसङ्ख्या पुनरेतेषां त्रीणि शतानि त्रिषष्ट्यधिकानि, न चैतत् स्वमनीषिकाव्याख्यानं, यस्मादन्यैरप्युक्तं—"आस्तिकमतमात्माद्या नित्यानित्यात्मका नव पदार्थाः । कालनियतिस्वभावेश्वरात्मकृताः (तकाः) स्वपरसंस्थाः ॥ १ ॥ कालयदृच्छानियतीश्वरस्वभावात्मनश्चतुरशीतिः । नास्तिकवादिगणमतं न सन्ति भावाः स्वपरसंस्थाः ॥ २ ॥ अज्ञानिकवादिमतं नव जीवादीन् सदादिसप्तविधान् । भावोत्पत्तिं सदसद्वैतावाच्यां च को वेत्ति ? ॥ ३ ॥ वैनयिकमतं विनयश्चेतोवाक्कायदानतः कार्यः । सुरनृपतियतिज्ञातिस्थविराधममातृपितृषु सदा ॥ ४ ॥" इत्यलं प्रसङ्गेन प्रकृतं प्रस्तुमः, एतेषां प्रशंसा न कार्या—पुण्यभाज एते सुलब्धमेभिर्यद् जन्मेत्यादिलक्षणा, एतेषां मिथ्यादृष्टित्वादिति । अत्र चोदाहरणं—पाडलिपुत्ते चाणक्को, ॥८१७॥

प्रत्याख्यानाध्य० श्रावकव्रताधि०

१ पाटलीपुत्रे चाणक्यः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [६३]

चंदगुत्तेणं भिक्खुगाणं वित्ती हरिता, ते तस्स धम्मं कहेंति, राया तूसति चाणक्कं पलोएति, ण य पसंसति ण देति, तेण चाणक्कभज्जा ओलग्गिता, ताए सो करणिं गाहितो, ताधे कथितेण भणितं तेण–सुभासियंति, रण्णा तं अण्णं च दिण्णं, विदियदिवसे चाणक्को भणति–कीस दिन्नं ?, राया भणइ–तुज्झेहिं पसंसितं, सो भणइ–ण मे पसंसितं, सव्वारंभपवित्ता कहं लोगं पत्तियाविंतित्ति !, पच्छा ठितो, केत्तिया एरिसा तम्हा ण कायव्वा । परपाषण्डैः–अनन्तरोक्तस्वरूपैः सह संस्तवः परपाषण्डसंस्तवः, इह संवासजनितः परिचयः संवसनभोजनालापादिलक्षणः परिगृह्यते, न स्तुतिरूपः, तथा च लोके प्रतीत एव संपूर्वः स्तौतिः परिचय इति, 'असंस्तुतेषु प्रसभं कुलेष्वि'त्यादाविति, अयमपि न समाचरणीयः, तथा हि एकत्र संवासे तत्प्रक्रियाश्र .णात् तत्क्रियादर्शनाच्च तस्यासकृदभ्यस्तत्वादवाप्तसहकारिकारणात् मिथ्यात्वोदयतो दृष्टिभेदः संजायते अतोऽतिचारहेतुत्वान्न समाचरणीयोऽयमिति । अत्र चोदाहरणं–सोरट्ठसड्ढगो पुव्वभणितो । एवं शङ्कादिसकलशल्यरहितः सम्यक्त्ववान् शेषाणुव्रतादिप्रतिपत्तियोग्यो भवति, तानि चाणुव्रतानि स्थूलप्राणातिपातादिनिवृत्तिरूपाणि प्राक् लेशतः सूचितान्येव 'दुविधन्तिविधेण पढमो' इत्यादि(ना) अधुना स्वरूपतस्तान्येवोपदर्शयन्नाह–

● **थूलगपाणाइवायं समणोवासओ पच्चक्खाइ, से पाणाइवाए दुविहे पन्नत्ते, तंजहा–संकप्पओ अ आरंभओ**

१ चन्द्रगुप्तेन भिक्षुकाणां वृत्तिर्हृता, ते तस्मै धर्मं कथयन्ति, राजा तुष्यति, चाणक्यं प्रलोकयति, तान् न प्रशंसति न ददाति, तैश्चाणक्यभार्या सेवितुमारब्धा, तया स करणिं ग्राहितः, तदा कथितेन भणितं तेन–सुभाषितमिति, राज्ञा तदन्यच्च दत्तं, द्वितीयदिवसे चाणक्यो भणति–कथं दत्तं ?, राजा भणति–युष्माभिः प्रशंसितं, स भणति–न मया प्रशंसितं सर्वारम्भप्रवृत्ताः कथं लोकं प्रत्याययन्ति ?, पश्चात् स्थितः, कियन्त ईदृशास्तस्मान्न कर्त्तव्या। २ सौराष्ट्रश्रावकः पूर्वभणितः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अथ स्थूल प्राणातिपात व्रतस्य वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [सू.१]

दीप अनुक्रम [६४]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥८१८॥

६प्रत्याख्याना-ध्य० श्रावकव्र-ताधि०

अ, तत्थ समणोवासओ संकप्पओ जावज्जीवाए पच्चक्खाइ, नो आरंभओ, थूलगपाणाइवायवेरमणस्स समणोवासएणं इमे पंच अइयारा जाणियव्वा, तंजहा–बंधे वहे छविच्छेए अइभारे भत्तपाणवुच्छेए १। (सूत्रं)॥

अस्य व्याख्या–स्थूलाः–द्वीन्द्रियादयः,स्थूलत्वं चैतेषां सकललौकिकजीवत्वप्रसिद्धेः, एतदपेक्षयैकेन्द्रियाः (णां) सूक्ष्माधिगमेना(न)जीवत्वसिद्धेरिति, स्थूला एव स्थूलकास्तेषां प्राणाः-इन्द्रियादयः तेषामतिपातः स्थूलप्राणातिपातः तं श्रमणोपासकः श्रावक इत्यर्थः प्रत्याख्याति, तस्माद् विरमत इति भावना । स च प्राणातिपातो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तीर्थकरगणधरैर्द्विविधः प्ररूपित इत्यर्थः, 'तद्यथे'त्युदाहरणोपन्यासार्थः, सङ्कल्पजश्चारम्भजश्च, सङ्कल्पाज्जातः सङ्कल्पजः, मनसः सङ्कल्पाद् द्वीन्द्रियादिप्राणिनः मांसास्थिचर्म्मनखवालदन्ताद्यर्थं व्यापादयतो भवति, आरम्भाज्जातः आरम्भजः, तत्रारम्भो–हलदन्तालखननस्तत्(लवन)प्रकारस्तस्मिन् शङ्खचन्दणकपिपीलिकाधान्यगृहकारकादिसङ्घट्टनपरितापापद्रावलक्षण इति, तत्र श्रमणोपासकः सङ्कल्पतो यावज्जीवयापि प्रत्याख्याति, न तु यावज्जीवयैव नियमत इति, 'नारम्भज'मिति, तस्यावश्यतयाऽऽरम्भसद्भावादिति, आह–एवं सङ्कल्पतः किमिति सूक्ष्मप्राणातिपातमपि न प्रत्याख्याति ?, उच्यते, एकेन्द्रिया हि प्रायो दुष्परिहाराः सद्मवासिनां सङ्कल्प्यैव सचित्तपृथ्व्यादिपरिभोगात्, [1]तत्थ पाणातिपाते कज्जमाणे के दोसा ? अकज्जंते के गुणा ?, तत्थ दोसे उदाहरणं कोंकणगो, तस्स भज्जा मया, पुत्तो य से अत्थि, तस्स दारगस्स दाइयभएण दारियं ण लभति, ताधे सो अन्नलक्खेण रमंतो ॥८१८॥

१ तत्र प्राणातिपाते क्रियमाणे के दोषाः ? अक्रियमाणे च के गुणाः ?, तत्र दोषे उदाहरणं कोङ्कणकः, तस्य भार्या मृता, पुत्रश्च तस्य अस्ति, तस्य दारकस्य दायादभयेन दारिकां न लभते, तदा सोऽन्यलक्ष्येण रममाणो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.१]

दीप अनुक्रम [६४]

विंधति। गुणे उदाहरणं सत्तवदिओ। बिदियं उज्जेणीए दारगो, मालवेहिं हरितो सावगदारगो, सूतेण कीतो, सो तेण भणितो– लावगे ऊसासेहि, तेण मुक्का, पुणो भणिओ मारेहित्ति, सो णेच्छति, पच्छा पिट्टेत्तुमारद्धो, सो पिट्टिज्जंतो कूवति, पच्छा रण्णा सुतो, सद्दावेतूण पुच्छितो, ताधे साहति, रण्णावि भणिओ णेच्छति, ताधे हत्थिणा तासितो तथावि णेच्छति, पच्छा रण्णा सीसरक्खो ठवितो, अण्णता थेरा समोसढा, तेसिं अंतिए पव्वइतो। ततियं गुणे उदाहरणं–पाडलिपुत्ते नगरे जियसत्तू राया, खेमो से अमच्चो चउविधाए बुद्धीए संपण्णो समणोवासगो सावगगुणसंपण्णो, सो पुण रण्णो हिउत्तिकाउं अण्णेसिं दंडभडभोइयाणं अप्पितो, तस्स विणासणणिमित्तं खेमसंतिए पुरिसे दाणमाणेहिं सक्कारिंति, रण्णो अभिमरए पउंजंति, गहिता य भणंति हम्ममाणा–अम्हे खेमसंगता तेण चेव खेमेण णिउत्ता, खेमो गहितो भणति–अहं सव्वसत्ताणं खेमं करेमि किं पुण रण्णो सरीरस्सत्ति ?, तथावि वज्झो आणत्तो, रण्णो य असोगवणियाउ(ए) अगाहा पुक्खरिणीसंछण्णपत्तभि-

१ विध्यति। गुणे उदाहरणं सप्तपदिकः द्वितीयं, उज्जयिन्या दारको, मालवकैर्हृतः श्रावकदारकः, सूतेन क्रीतः, स तेन भणितः–लावकान् मारय, तेन मुक्ताः, पुनर्भणितः–मारयेति, स नेच्छति, पश्चात्पिट्टयितुमारब्धः, स पिट्टयमानः कूजति, पश्चाद् राज्ञा श्रुतः, शब्दयित्वा पृष्टः, तदा कथयति, राज्ञाऽपि भणितो नेच्छति, तदा हस्तिना त्रासितस्तथापि नेच्छति, पश्चाद्राज्ञा शीर्षरक्षकः स्थापितः, अन्यदा स्थविराः समवसृतास्तेषामन्तिके प्रव्रजितः। तृतीयमुदाहरणं गुणे– पाटलिपुत्रे नगरे जितशत्रू राजा, क्षेमस्तस्य अमात्यश्चतुर्विधया बुद्ध्या संपन्नः श्रमणोपासकः श्रावकगुणसंपन्नः, स पुना राज्ञे हित इतिकृत्वाऽन्येषां दण्डभटभोजिकानामप्रियः, तस्य विनाशननिमित्तं क्षेमसत्कान् पुरुषान् दानसन्मानाभ्यां सत्कारयन्ति, राज्ञोऽभिमरकान् प्रयुञ्जन्ति, गृहीताश्च भणन्ति हन्यमानाः–वयं क्षेमसत्काः तेनैव क्षेमेण नियुक्ताः, क्षेमो गृहीतो भणति–अहं सर्वसत्त्वानां क्षेमं करोमि किं पुना राज्ञः शरीरस्येति ?, तथापि वध्य आज्ञप्तः, राज्ञश्चाशोकवनिकायामगाधा पुष्करिणी संछन्नपत्रवि–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.१]

दीप अनुक्रम [६४]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥८१९॥

६प्रत्याख्या नाध्य० श्रावकव्र-ताधि०

समुणाला उप्पलपउमोपसोभिता, सा य मगरगाहेहिं दुरवगाहा, ण य ताणि उप्पलादीणि कोइ उच्चिणिउं समत्थो, जो य वज्झो रण्णा आदिस्सति सो वुच्चति–एत्तो पुक्खरिणीतो पउमाणि आणेहित्ति, ताधे खेमो उट्ठेऊण नमोऽत्थु णं अरहंताणं भणित्तु जदिहं निरावराधी तो मे देवता साणेज्झं देंतु, सागारं भत्तं पच्चक्खायितुं ओगाढो, देवदासाण्णेज्झेणं मगरपुट्ठी-ठितो बहूणि उप्पलपउमाणि गेण्हित्तुत्तिण्णो, रण्णा हरिसितेण खामितो उवगूढो य, पडिपक्खणिग्गहं कातूण भणितो–किं ते वरं देमि ?, तेण णिरुंभमाणेणवि पव्वज्जा चरिता पव्वइतो, एते गुणा पाणातिपातवेरमणे। इदं चातिचाररहितमनुपाल-नीयं, तथा चाह–'थूलगे'त्यादि, स्थूलकप्राणातिपातविरमणस्य विरतेरित्यर्थः श्रमणोपासकेनामी पञ्चातिचाराः 'जाणियव्वा' ज्ञपरिज्ञया न समाचरितव्याः–न समाचरणीयाः, तद्यथेत्युदाहरणोपन्यासार्थः, तत्र बन्धनं बन्धः–संयमनं रज्जुदामनकादि-भिर्हननं वधः ताडनं कसादिभिः छविः–शरीरं तस्य छेदः–पाटनं करपत्रादिभिः भरणं भारः अतीव भरणं अतिभारः–प्रभूतस्य पूगफलादेः स्कन्धपृष्ठ्यादिष्वारोपणमित्यर्थः, भक्तं–अशनमोदनादि पानं–पेयमुदकादि तस्य च व्यवच्छेदः–निरोधोऽदानमित्यर्थः, एतान् समाचरन्नतिचरति प्रथमाणुव्रतं, तदत्रायं तस्य विधिः—

॥८१९॥

१ शमृणाला उत्पलपद्मोपशोभिता, सा च मकरग्राहैर्दुरवगाहा, न च तान्युत्पलादीनि कोऽप्युच्चेतुं समर्थः, यश्च वध्यो राज्ञाऽऽदिश्यते स उच्यते–इतः पुष्करिणीतः पद्मान्यानयेति, तदा क्षेम उत्थाय नमोऽस्तु अर्हद्भ्यो भणित्वा यद्यहं निरपराधस्तदा मह्यं देवता सान्निध्यं ददातु, साकारं भक्तं प्रत्याख्यायावगाढः, देवतासान्निध्येन मकरपृष्ठिस्थितो बहून्युत्पलपद्मानि गृहीत्वोत्तीर्णः, राज्ञा हृष्टेन क्षामितः उपगूढश्च, प्रतिपक्षनिग्रहं कृत्वा भणितः–किं ते वरं ददामि ?, तेन निरुध्यमानेनापि प्रव्रज्या चीर्णा प्रव्रजितः, एते गुणाः प्राणातिपातविरमणे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.१]

दीप अनुक्रम [६४]

बन्धो दुविधो–दुप्पदाणं चतुप्पदाणं च, अट्ठाए अणट्ठाए य, अणट्ठाए न वट्टति बंधेत्तुं, अट्ठाए दुविधो–निरवेक्खो सावेक्खो य, णिरवेक्खो णेच्चलं धणितं जं बंधति, सावेक्खो जं दामगंठिणो जं व सक्केति पलीवणगादिसुं मुंचितुं छिंदितुं वा तेण संसरपासएण बंधेतबं, एवं ताव चतुप्पदाणं, दुपदाणंपि दासो वा दासी वा चोरो वा पुत्तो वा ण पढंतगादि जति बज्झति तो सावेक्खाणि बंधितबाणि रक्खितबाणि य जधा अग्गिभयादिसु ण विणस्संति, ताणि किर दुपदचतुप्पदाणि सावगेण गेण्हितबाणि जाणि अबद्धाणि चेव अच्छंति, वहो तधा चेव, वधो णाम तालणा, अणट्ठाए णिरवेक्खो णिद्दयं तालेति, सावेक्खो पुण पुबमेव भीतपरिसेण होतबं, मा हणणं कारिज्जा, जति करेज्ज ततो मम्मं मोत्तूणं ताधे लताए दोरेण वा एक्कं दो तिण्णि वारे तालेति, छविछेदो अणट्ठाए तधेव णिरवेक्खो हत्थपादकण्णणक्काइं णिद्दयत्ताए छिंदति, सावेक्खो गंडं वा अरुयं वा छिंदेज्ज वा डहेज्ज वा, अतिभारो ण आरोवेतबो, पुबं चेव जा वाहणाए जीविया सा मोत्तवा,

---

१ बन्धो द्विविधो–द्विपदानां चतुष्पदानां च, अर्थायानर्थाय च, अनर्थाय न वर्त्तते बद्धुं, अर्थाय द्विविधः–निरपेक्षस्सापेक्षश्च, निरपेक्षो यन्निश्चलं बध्नाति बाढं, सापेक्षो यद्दामग्रन्थिना यच्च शक्नोति प्रदीपनकादिषु मोचयितुं छेत्तुं वा तेन संसरत्पाशकेन बद्धव्यं, एवं तावत् चतुष्पदानां, द्विपदानामपि दासो वा दासी वा चौरो वा पुत्रो वाऽपठदादिर्यदि बध्यते तदा सापेक्षाणि बद्धव्यानि रक्षितव्यानि च यथाऽग्निभयादिषु न विनश्यन्ति, ते किल द्विपदचतुष्पदाः श्रावकेण ग्रहीतव्या येऽबद्धा एव तिष्ठन्ति, वधोऽपि तथैव, वधो नाम ताडनं, अनर्थाय निरपेक्षो निर्दयं ताडयति, सापेक्षः पुनः पूर्वमेव भीतपर्षदा भवितव्यं मा घातं कुर्यां, यदि कुर्यात् ततो मर्म मुक्त्वा तदा लतया दवरकेण वा एकशो द्विस्त्रिर्वारान् ताडयति, छविच्छेदोऽनर्थाय तथैव निरपेक्षो हस्तपादकर्णनासिकादि निर्दयतया छिनत्ति, सापेक्षो गण्डं वा अरुर्वा छिन्द्याद्वा दहेद्वा, अतिभारो नारोपयितव्यः, पूर्वमेव या वाहनेनाजीविका सा मोक्तव्या,

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.१]

दीप अनुक्रम [६४]

आवश्यक-हारिभद्रीया

||८२०||

६प्रत्याख्या नाध्य० श्रावकव्रताधि०

णं होज्जा अण्णा जीविता ताधे दुपदो जं सयं उक्खिवति उत्तारेति वा भारं एवं वहाविज्जति, बइल्लाणं जधा साभाविया-ओवि भारातो ऊणओ कीरति, हलसगडेसुवि वेलाए मुयति, आसहत्थीसुवि एस विही, भत्तपाणवोच्छेदो ण कस्सइ कातव्वो, तिव्वछुद्धो मा मरेज्ज, तधेव अणट्ठाए दोसा परिहरेज्जा, सावेक्खो पुण रोगणिमित्तं वा वायाए वा भणेज्जा–अज्ज ते ण देमित्ति, संतिणिमित्तं वा उववासं कारावेज्जा, सव्वत्थवि जतणा जधा थूलगपाणातिवातस्स अतिचारो ण भवति तथा पयतितव्वं, णिरवेक्खबंधादिसु य लोगोवघातादिया दोसा भाणियव्वा। उक्तं सातिचारं प्रथमाणुव्रतं, अधुना द्वितीयमुच्यते, तत्रेदं सूत्रं—

●थूलगमुसावायं समणोवासओ पच्चक्खाइ, से य मुसावाए पंचविहे पन्नत्ते, तंजहा–कन्नालीए गवालीए भोमालिए नासावहारे कूडसक्खिज्जे। थूलगमुसावायवेरमणस्स समणोवासएणं इमे पंच०, तंजहा–सहस्सब्भक्खाणे रहस्सब्भक्खाणे सदारमंतभेए मोसुवएसे कूडलेहकरणे २ ॥

अस्य व्याख्या–मृषावादो हि द्विविधः–स्थूलः सूक्ष्मश्च, तत्र परिस्थूलवस्तुविषयोऽतिदुष्टविवक्षासमुद्भवः स्थूलो, विपरीत-

---

१ न भवेदन्या जीविका तदा द्विपदो यं स्वयमुत्क्षिपति उत्तारयति वा भारं एवं वाह्यते, बलिवर्दानां यथा स्वाभाविकादपि भारादूनः क्रियते, हलशकटेष्वपि वेलायां मुञ्चति, अश्वहस्त्यादिष्वप्येष एव विधिः, भक्तपानव्यवच्छेदो न कस्यापि कर्तव्यः तीव्रक्षुन्मा मृत, तथैवानर्थाय दोषाय (तस्मात्) परिहरेत्, सापेक्षः पुना रोगनिमित्तं वा वाचा वा भणेत्–अद्य तुभ्यं न ददामीति, शान्तिनिमित्तं वोपवासं कारयेत्, सर्वत्रापि यतना यथा स्थूलप्राणातिपातस्यातिचारो न भवति तथा प्रयतितव्यं, निरपेक्षबन्धादिषु च लोकोपघातादयो दोषा भणितव्याः।

||८२०||

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अथ स्थूल मृषावाद व्रतस्य वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [सू.२]

दीप अनुक्रम [६५]

स्त्वितरः, तत्र स्थूल एव स्थूलकः २ श्चासौ मृषावादश्चेति समासः, तं श्रमणोपासकः प्रत्याख्यातीति पूर्ववत्, स च मृषावादः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः–पञ्चप्रकारः प्ररूपितस्तीर्थकरगणधरैः, तद्यथेत्युदाहरणोपन्यासार्थः, कन्याविषयमनृतं अभिन्नकन्यकामेव भिन्नकन्यकां वक्ति विपर्ययो वा, एवं गवानृतं अल्पक्षीरामेव गां बहुक्षीरां वक्ति विपर्ययो वा, एवं भूम्यनृतं परसत्कामेवात्मसत्कां वक्ति, व्यवहारे वा नियुक्तोऽनाभवद्व्यवहारस्यैव कस्यचिद् भागाद्यभिभूतो वक्ति–अस्येयमाभवतीति, न्यस्यते–निक्षिप्यत इति न्यासः–रूप्यकाद्यर्पणं तस्यापहरणं न्यासापहारः, अदत्तादानरूपत्वादस्य कथं मृषावादत्वमिति ?, उच्यते, अपलपतो मृषावाद इति, कूटसाक्षित्वं उत्कोचमात्सर्याद्यभिभूतः प्रमाणीकृतः सन् कूटं वक्ति, अविधवाद्यनृतस्यात्रैवान्तर्भावो वेदितव्यः। मुसावादे के दोसा ? अकज्जंते वा के गुणा ?, तत्थ दोसा कण्णगं चेव अकण्णगं भणंते भोगंतरायदोसा पदुट्ठा वा आतघातं करेज्ज कारवेज्ज वा, एवं सेसेसुवि भाणियव्वा। णासावहारे य पुरोहितोदाहरणम्–सो जधा णमोक्कारे, गुणे उदाहरणं–कोंकणगसावगो मणुस्सेण भणितो, घोडए णासंते आहणाहित्ति, तेण आहतो मतो य करणं णीतो, पुच्छितो–को ते सक्खी ?, घोडगसामिएण भणियं, एतस्स पुत्तो मे सक्खी, तेण दारएण भणितं–सच्चमेतन्ति, तुट्ठा पूजितो सो, लोगेण

---

१ मृषावादे के दोषाः ? अक्रियमाणे वा के गुणाः ?, तत्र दोषाः कन्यकामेवाकन्यकां भणति भोगान्तरायदोषाः प्रद्विष्टा वाऽऽत्मघातं कुर्यात्कारयेद्वा, एवं शेषेष्वपि भणितव्याः। न्यासापहारे च पुरोहितोदाहरणं–स यथा नमस्कारे, गुणे उदाहरणं–कोङ्कणकश्रावको मनुष्येण भणितः–घोटकं नश्यन्तं आजहि इति, तेनाहतो मृतश्च करणं नीतः, पृष्टः–कस्तव साक्षी ?, घोटकस्वामिकेन भणितं–एतस्य पुत्रो मे साक्षी, तेन दारकेण भणितं–सत्यमेतदिति, तुष्टाः (सभ्याः) पूजितः सः, लोकेन

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.२]

दीप अनुक्रम [६५]

यं पसंसितो, एवमादिया गुणा मुसावादवेरमणे। इदं चातिचाररहितमनुपालनीयम्, तथा चाह–'थूलगमुसावादवेरमणस्स' व्याख्या—स्थूलकमृषावादविरमणस्य श्रमणोपासकेनामी पञ्चातिचाराः ज्ञातव्याः ज्ञपरिज्ञया न समाचरितव्याः, तद्यथेति पूर्ववत्, सहसा-अनालोच्य अभ्याख्यानं सहसाऽभ्याख्यानं अभिशंसनम्–असदध्यारोपणं, तद्यथा–चौरस्त्वं पारदारिको वेत्यादि, रहः–एकान्तस्तत्र भवं रहस्यं तेन तस्मिन् वा अभ्याख्यानं रहस्याभ्याख्यानं, एतदुक्तं भवति–एकान्ते मन्त्रयमाणान् वक्ति–एते हीदं चेदं च राजापकारित्वादि मन्त्रयन्ति, स्वदारे मन्त्रभेदः स्वदारमन्त्रभेदः–स्वदारमन्त्र[भेद]प्रकाशनं स्वकलत्रविश्रब्धविशिष्टावस्थामन्त्रितान्यकथनमित्यर्थः, कूटम्–असद्भूतं लिख्यत इति लेखः तस्य करणं–क्रिया कूटलेखक्रिया–कूटलेखकरणं अन्यमुद्राक्षरबिम्बस्वरूपलेखकरणमित्यर्थः, एतानि समाचरन्नतिचरति द्वितीयाणुव्रतमिति, तत्रापायाः प्रदर्श्यन्ते, 'सहसऽब्भक्खाणं खलपुरिसो सुणेज्जा सो वा इतरो वा मारिज्जेज्ज वा, एवं गुणो, वेसित्ति भएणं अप्पाणं तं वा विरोधेज्जा, एवं रहस्सब्भक्खाणेऽवि, सदारमंतभेदे जो अप्पणो भज्जाए सद्धिं जाणि रहस्से बोल्लिताणि ताणि अण्णेसिं पगासेति पच्छा सा लज्जिता अप्पाणं परं वा मारेज्जा, तत्थ उदाहरणम्–मथुरावाणिगो दिसीयत्ताए गतो, भज्जा सो जाधे ण एति ताधे बारसमे वरिसे अण्णेण समं घडिता, सो आगतो, रत्तिं अन्नायवेसेण

॥८२१॥

१ च प्रशंसितः, एवमादिका गुणा मृषावादविरमणे। २ सहसाऽभ्याख्यानं खलपुरुषः शृणुयात् स वेतरो वा मारयेत् एवं गुणः, द्वेषीति भयेनात्मानं तं वा विराधयेत्, एवं रहोऽभ्याख्यानेऽपि, स्वदारमन्त्रभेदे य आत्मनो भार्यया समं यानि रहसि उक्तानि तान्यन्येषां प्रकाशयति पश्चात्, सा लज्जिताऽऽत्मानं परं वा मारयेत्, तत्रोदाहरणं–मथुरावणिक् दिग्यात्रायै गतः, भार्या तस्य यदा नायाति तदा द्वादशे वर्षेऽन्येन समं स्थिता, स आगतः, रात्रौ अज्ञातवेषेण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.२]

दीप अनुक्रम [६५]

[1]कप्पडियत्तणेण पविसति, ताणं तद्दिवसं पगतं, कप्पडिओ य मग्गति, तीए य वहितवगं खज्जगादि, ताधे णियगपतिं वाहेति, अण्णातचज्जाए ताधे पुणरवि गंतुं महता रिद्धीए आगतो सयणाण समं मिलितो, परोवदेसेण वयस्साण सव्वं कधेति, ताए अप्पा मारितो। मोसुवतेसे परिव्वायगो मणुस्सं भणति–किं किलिस्ससि ?, अहं ते जदि रुच्चति णिसण्णो चेव दव्वं विढवावेमि, जाहि किराडयं उच्छिण्णं मग्गाहि, पच्छा कालुद्देसेहिं मग्गेज्जासि, जाधे य वाउलो जणदाणगहणेण ताधे भणिज्जासि, सो तधेव भणति, जाधे विसंवदति ताधे ममं सक्खिं उद्दिसेज्जत्ति, एवं करणे उ हारितो जितो(न)दवावितो य, कूडलेहकरणे भइरधी अण्णे य उदाहरणा। उक्तं सातिचारं द्वितीयाणुव्रतं, अधुना तृतीयं प्रतिपादयन्नाह—

● थूलगअदत्तादाणं समणो०, से अदिन्नादाणे दुविहे पन्नत्ते, तंजहा–सचित्तादत्तादाणे अचित्तादत्तादाणे अ। थूलादत्तादाणवेरमणस्स समणोवासएणं इमे पंच अइयारा जाणियव्वा, तंजहा–तेनाहडे तक्करपओगे विरुद्धरज्जाइक्कमणे कूडतुलकूडमाणे तप्पडिरूवगववहारे ३ ॥

---

१ कार्पटिकत्वेन प्रविशति, तथोस्तद्दिवसे प्रकृतं, कार्पटिकश्च मार्गयति, तस्याश्च वहनीयं खाद्यकादि, तदा निजकपतिं वाहयति, अज्ञातचर्यया तदा पुनरपि गत्वा महत्या ऋद्ध्या आगतः स्वजनैः समं मिलति, परोपदेशेन वयस्यानां कथयति सर्वं, तयाऽऽत्मा मारितः। मृषोपदेशे परिव्राजको मनुष्यं भणति–किं क्लाम्यसि ?, अहं ते यदि रोचते निषण्ण एव द्रव्यमुपार्जयामि, याहि किराटकं (द्रव्यसमूहं) उद्यतकं मार्गय, पश्चात् कालोद्देशो मार्ग्यसे, यदा च व्याकुलो जनदानग्रहणेन तदा भणेः, स तथैव भणति, यदा विसंवदति तदा मां साक्षिणमुद्दिशेरिति, एवं करणेऽपि पराजितो जितो न दापितश्च, कूटलेखकरणे भगिरथी अन्ये चोदाहरणानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अथ स्थूल अदत्तादान व्रतस्य वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [सू.३]

दीप अनुक्रम [६६]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥८२२॥

व्याख्या—अदत्तादानं द्विविधं–स्थूलं सूक्ष्मं च, तत्र परिस्थूलविषयं चौर्यारोपणहेतुत्वेन प्रतिषिद्धमिति, दुष्टाध्यवसायपूर्वकं स्थूलं, विपरीतमितरत्, स्थूलमेव स्थूलकं स्थूलकं च तत् अदत्तादानं चेति समासः, तच्छ्रमणोपासकः प्रत्याख्यातीति पूर्ववत्, सेशब्दः मागधदेशीप्रसिद्धो निपातस्तच्छब्दार्थः, तच्चादत्तादानं द्विविधं प्रज्ञप्तं–तीर्थकरगणधरैर्द्विप्रकारं प्ररूपितमित्यर्थः, तद्यथेति पूर्ववत्, सह चित्तेन सचित्तं–द्विपदादिलक्षणं वस्तु तस्य क्षेत्रादौ सुन्यस्तदुर्न्यस्तविस्मृतस्य स्वामिनाऽदत्तस्य चौर्यबुद्ध्याऽऽदानं सचित्तादत्तादानं, आदानमिति ग्रहणं, अचित्तं–वस्त्रकनकरत्नादि तस्यापि क्षेत्रादौ सुन्यस्तदुर्न्यस्तविस्मृतस्य स्वामिनाऽदत्तस्य चौर्यबुध्याऽऽदानमचित्तादत्तादानमिति, अदत्तादाने के दोषाः ?, [१]अकज्जंते वा के गुणा ?, एत्थ इमं चेवोदाहरणम्–जधा एगा गोट्ठी, सावगोऽवि ताए गोट्ठीए, एगत्थ य पगरणं वट्टति, जणे गते गोट्ठीलएहिं घरं पेल्लितं, थेरीए एक्केको मोरपुत्तपाएसु पट्ठंतीए अंकितो, पभाए रण्णो णिवेदितं, राया भणति–कथं ते जाणियव्वा ?, थेरी भणति–एते पादेसु अंकिता, णगरसमागमे दिट्ठा, दो तिण्णि चत्तारि सव्वा गोट्ठी गहिता, एगो सावगो भणति–ण हरामि ण लंछितो य, तेहिंवि भणितं–ण एस हरति मुक्को, इतरे सासिता, अविय सावयेण गोट्ठिं ण पविसितव्वं, जं किंचिवि पयोयणेण

६प्रत्याख्याना ध्य० श्रावकव्रताधि०

॥८२२॥

१ अक्रियमाणे वा के गुणाः ?, अत्रेदमेवोदाहरणं–यथैका गोष्ठी, श्रावकोऽपि तस्यां गोष्ठयां, एकत्र च प्रकरणं वर्त्तते, जने गते गोष्ठीकैर्गृहं लुण्टितं, स्थविरयैकैको मयूरपुत्रपादैः प्रतिष्ठन्त्याऽङ्कितः, प्रभाते राज्ञो निवेदितं, राजा भणति–कथं ते ज्ञातव्याः ?, स्थविरा भणति–एते पादेष्वङ्किताः, नगरसमागमे दृष्टाः, द्वौ त्रयः सर्वा गोष्ठी गृहीता, एकः श्रावको भणति–न मुष्णामि न च लाञ्छितः, तैरपि भणितं–नैष मुष्णाति मुक्तः, इतरे शासिताः अपि च श्रावकेण गोष्ठयां न प्रवेष्टव्यं, यत् केनापि प्रयोजनेन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.३]

दीप अनुक्रम [६६]

पविसति[1] ता ववहारगहिंसादि ण देति, ण य तेसिं आयोगठाणेसु ठाति। इदं चातिचाररहितमनुपालनीयं, तथा चाह- 'थूलगे'त्यादि स्थूलकादत्तादानविरमणस्य श्रमणोपासकेनामी पञ्चातीचारा ज्ञातव्याः, न समाचरितव्याः, तद्यथा–स्तेनाहृतं, स्तेनाः–चौरास्तैराहृतं–आनीतं किञ्चित् कुङ्कुमादि देशान्तरात् स्तेनाहृतं तत् समर्घमिति लोभाद् गृह्णतोऽतिचारः, तस्कराः–चौरास्तेषां प्रयोगः–हरणक्रियायां प्रेरणमभ्यनुज्ञा तस्करप्रयोगः, तान् प्रयुङ्क्ते–हरत यूयमिति, विरुद्धनृपयोर्यद् राज्यं तस्यातिक्रमः–अतिलङ्घनं विरुद्धराज्यातिक्रमः, न हि ताभ्यां तत्र तदाऽतिक्रमोऽनुज्ञातः, 'कूटतुलाकूटमानं' तुला प्रतीता मानं–कुडवादि, कूटत्वं–न्यूनाधिकत्वं, न्यूनया ददतोऽधिकया गृह्णतोऽतिचारः, तेन–अधिकृतेन प्रतिरूपकं–सदृशं तत्प्रतिरूपकं तस्य विविधमवहरणं व्यवहारः–प्रक्षेपस्तत्प्रतिरूपको व्यवहारः, यद्यत्र घटते व्रीह्यादि घृतादिषु पलञ्जीवसादि तस्य प्रक्षेप इतियावत्, तत्प्रतिरूपकेण वा वसादिना व्यवहरणं तत्प्रतिरूपकव्यवहारः, एतानि समाचरन्नतिचरति तृतीयाणुव्रतमिति। दोसा[2] पुण तेणाहडगहिते रायावि हणेज्जा, सामी वा पच्चभिजाणेज्जा ततो दंडेज्ज वा मारेज्ज वा इत्यादयः, शेषा अपि वक्तव्याः। उक्तं सातिचारं तृतीयाणुव्रतं, इदानीं चतुर्थमुपदर्शयन्नाह—

● परदारगमणं समणो० पच्चक्खाति सदारसंतोसं वा पडिवज्जइ, से य परदारगमणे दुविहे पन्नत्ते, तंजहा–

१ प्रविशति तदा व्यवहारकहिंसादि न ददाति न च तेषामायोगस्थानेषु तिष्ठति। २ दोषाः पुनः स्तेनाहृते गृहीते राजाऽपि हन्यात्, स्वामी वा प्रत्यभिजानीयात् ततो दण्डयेत् मारयेद्वा,

आ० १३८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अथ परदारागमनविरमणं व्रतस्य वर्णनं क्रियते

प्रत
सूत्रांक
[सू.४]

दीप
अनुक्रम
[६७]

ओरालियपरदारगमणे वेउव्वियपरदारगमणे, सदारसंतोसस्स समणोवा० इमे पंच०, तंजहा–अपरिगहियागमणे इत्तरियपरिग्गहियागमणे अणंगकीडा परवीवाहकरणे कामभोगतिव्वाभिलासे ४ ॥ (सू०)

आत्मव्यतिरिक्तो योऽन्यः स परस्तस्य दाराः–कलत्रं परदारास्तस्मिन् (तेषु)गमनं परदारगमनं, गमनमासेवनरूपतया द्रष्टव्यं, श्रमणोपासकः प्रत्याख्यातीति पूर्ववत्, स्वकीया दाराः–स्वकलत्रमित्यर्थः, तेन (तैः) तस्मिन् (तेषु) वा संतोषः स्वदारसन्तोषः तं वा प्रतिपद्यते, इयमत्र भावना–परदारगमनप्रत्याख्याता यास्वेव परशब्दः प्रवर्त्तते, स्वदारसन्तुष्टस्त्वेकानेकस्वदारव्यतिरिक्ताभ्यः सर्वाभ्य एवेति, सेशब्दः पूर्ववत्, तच्च परदारगमनं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथेति पूर्ववद्, औदारिकपरदारगमनं–स्त्र्यादिपरदारगमनं वैक्रियपरदारगमनं–देवाङ्गनागमनं, तथा [1]चउत्थे अणुव्वते सामण्णेण अणियत्तस्स दोसा–मातरमवि गच्छेज्जा, उदाहरणं–गिरिणगरे तिण्णि वयंसियाओ, ताओ उज्जेंतं गताओ, चोरेहिं गहिताओ, णेत्तुं पारसकूले विक्कीताओ, ताण पुत्ता डहरगा घरेसु उज्झियता, तेवि मित्ता जाता, मातासिणेहेण वाणिज्जेणं गता पारसउलं, ताओ य गणियाओ सहदेसियाउत्ति भाडिं देंति, तेवि संपत्तीए सयाहि सयाहि गया, एगो सावगो, ताहि यऽप्पणीयाहि मातमिस्सियाहिं समं

---

१ चतुर्थेऽणुव्रते सामान्येनानिवृत्तस्य दोषा मातरमपि गच्छेत्, उदाहरणं–गिरिनगरे तिस्रो वयस्याः, ता उज्जयन्तं गताश्चौरैर्गृहीताः, नीत्वा पारसकूले विक्रीताः, तासां पुत्राः क्षुल्लका गृहेषु उज्झिताः, तेऽपि मित्राणि जाताः, मातृस्नेहेन वाणिज्येन गताः पारसकूलं, ताश्च गणिकाः सदेशीया इति भाटीं ददति, तेऽपि भवितव्यतया स्वकीयायाः २ (मातुः पार्श्वे) गताः, एकः श्रावकः, ताभिश्चात्मीयाभिर्मातृमिश्राभिः सम–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.४]

दीप अनुक्रम [६७]

वुच्छा, सेट्ठो णेच्छसि, महिला अणिच्छं णातुं तुण्हिका अच्छति, कातो तुज्झे आणीता ?, ताए सिट्ठं, तेण भणितं–अम्हे चेव तुम्हे पुत्ता, इयरेसिं सिट्ठं मोइया पव्वइता, एते अणिविसाणं दोसा। बिदियं–धूताएवि समं वसेज्जा, जधा गुव्विणीए भज्जाए दिसागमणं, पेसितं जधा ते धूता जाता, सोऽवि ता ववहरति जाव जोव्वणं पत्ता, अण्णा (अण्ण) णगरे दिण्णा सो ण याणति जधा दिण्णत्ति, सो पडियंतो तम्मि णगरे मा भंडं विणस्सिहितित्ति वरिसारत्तं ठितो, तस्स तीए धूताए समं घडितं, तहवि ण याणति, वत्ते वासारत्ते गतो सणगरं, धूतागमणं, दट्ठूणं विलियाणि, नियत्तु ताए मारितो अप्पा, इयरोऽवि पव्वतितो। ततियं–गोट्ठीए समं चेडो अच्छति, तस्स सा माता हिंडति, सुण्हा से णियगएत्ति णो साहइ पतिं, सा तस्स माता देवकुलठितेहिं धुत्तेहिं गच्छंती दिट्ठा, तेहिं परिभुत्ता, मातापुत्ताणं पोत्ताणि परियत्तिताणि, तीए भण्णति–महिलाए कीस ते उवरिल्लं पोत्तं गहितं ?, हा पाव ! किं ते कतं ?, सो णट्ठो पव्वइतो। चउत्थं–जमलाणि गणियाए उज्झिताणि,

---

१ मुषिताः, स इष्टो नेच्छति, महेला अनिच्छां ज्ञात्वा तूष्णीका तिष्ठति, कुतो यूयमानीताः, ?, तयोक्तं, तेन भणितं–वयमेव युष्माकं पुत्राः, इतरेषां शिष्टं, मोचिताः प्रव्रजिताः, एतेऽनिवृत्तानां दोषाः। द्वितीयं–दुहित्राऽपि समं वसेत्, यथा गर्भिण्यां भार्यायां दिग्गमनं, प्रेषितं यथा ते दुहिता जाता, सोऽपि तावत् व्यवहरति यावद्यौवनं प्राप्ता, अन्याऽन्यस्मिन् नगरे दत्ता स न जानाति यथा दत्तेति, स प्रत्यागच्छन् तस्मिन्नगरे मा भाण्डं विनेशदिति वर्षारात्रं स्थितः, तस्य तया दुहित्रा समं संयोगो जातः, तथापि न जानाति, वृत्ते वर्षारात्रे गतः स्वनगरं, दुहित्रागमनं, दृष्ट्वा विलज्जितौ, निवृत्य तया मारित आत्मा, इतरोऽपि प्रव्रजितः। तृतीयं–गोष्ठ्या समं चेटस्तिष्ठति, तस्य सा माता हिण्डते, स्नुषा तस्या निजकेति न कथयति पत्यै, सा तस्य माता देवकुलस्थितैर्धूर्तैर्गच्छन्ती दृष्टा तैः परिभुक्ता, मातृपुत्रयोर्वस्त्रे परावृत्ते, तया भण्यते–महेलायाः कथं त्वयोपरितनं वस्त्रं गृहीतं ?, हा पाप ! किं त्वया कृतं ?, स नष्टः प्रव्रजितः। चतुर्थं–यमलं गणिकयोज्झितं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.४]

दीप अनुक्रम [६७]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥८२४॥

६प्रत्याख्यानाध्य० श्रावकव्रताधि०

पेत्तेहिं मित्तेहिं गहिताणि वट्टंति, तेसिं पुव्वसंठितीए संजोगो कतो, अण्णदा सो दारगो ताए गणियाए पुव्वमाताए सह लग्गो, सा से भगिणी धम्मं सोतुं पव्वइता, ओहीणाणमुप्पण्णं, गणियाघरं गता, तेण गणियाए पुत्तो जातो, अज्जा गहाय परियंदाइ, कहं ?, पुत्तोऽसि मे भत्तिज्जओऽसि मे दारगा देवरोऽसि मे भायासि मे, जो तुज्झ पिता सो मज्झ पिया पती य ससुरो य भाता य मे, जा तुज्झ माया सा मे माया भाउज्जाइया सवत्तिणी सासू य, एवं नाऊण दोसे वज्जेयव्वं। एते इहलोए दोसा परलोए पुण णपुंसगत्तविरूवपियविप्पयोगादिदोसा भवन्ति, णियत्तस्स इहलोए परलोए य गुणा, इहलोए कच्छे कुलपुत्तगाणि सड्ढाणि आणंदपूरे, एगो य धिज्जातिओ दरिद्दो, सो थूलेसरे उववासेण वरं मग्गति, कोवे (र)! चाउव्वेज्जभत्तस्स मोल्लं देहि, जा पुण्णं करेमि, तेण वाणमंतरेण भणितं–कच्छे सावगाणि कुलपुत्ताणि भज्जपतियाणि, एयाणं भत्तं करेहि, ते महप्फलं होहिति, दोण्णि वारा भणितो गतो कच्छं, दिण्णं दाणं सावयाणं भत्तं दक्खिणं च, भणति–साहध किं तुज्झं तवचरणं जेण तुज्झे

१ प्राग्भैर्मित्रैर्गृहीतं वर्त्तते, तयोः पूर्वसंस्थित्या संयोगः कृतः, अन्यदा स दारकस्तया गणिकया पूर्वमात्रा सह लग्नः, सा तस्य भगिनी धर्मं श्रुत्वा प्रव्रजिता, अवधिज्ञानमुत्पन्नं, गणिकागृहं गता, तेन गणिकायां पुत्रो जातः, आर्या गृहीत्वा क्रीडयति (उल्लापयति), कथं ?, पुत्रोऽसि मे भ्रातृव्योऽसि मे दारक ! देवाऽसि मे भ्राताऽसि मे, यस्तव पिता स मम पिता पतिः श्वशुरो भ्राता च मे, या तव माता सा मे माता भ्रातृजाया श्वश्रूः सपत्नी च, एवं ज्ञात्वा दोषान् वर्जयितव्यं। एते इहलोके दोषाः परलोके पुनर्नपुंसकत्वविरूपत्वप्रियविप्रयोगादयो दोषा भवन्ति, निवृत्तस्येहलोके परलोके च गुणाः, इहलोके कच्छे कुलपुत्रौ श्राद्धौ आनन्दपुरे, एकश्च धिग्जातीयो दरिद्रः, स स्थूलेश्वरं (व्यन्तरं) उपवासेनाराध्य वरं मार्गयति–कुबेर ! चातुर्वैद्यभक्तस्य मूल्यं देहि यतः पुण्यं करोमि, तेन व्यन्तरेण कथितं–कच्छे श्रावकौ कुलपुत्रौ भार्यापती, एताभ्यां भक्तं देहि, तव महत्फलं भविष्यति, द्विर्भणितो गतः कच्छं, दत्तं दानं श्रावकाभ्यां भक्तं दक्षिणां च, भणति–कथयतं किं युवयोस्तपश्चरणं येन युवां

॥८२४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[सू.४]

दीप
अनुक्रम
[६७]

देवस्स पुज्जाणि ?, तेहिं भणितं–अम्हे बालभावे एगंतरं मेथुणं पच्चक्खायं, अण्णदा अम्हाणं किहवि संजोगो जातो, तं च विवरीयं समावडियं, जद्दिवसं एगस्स बंभचेरपोसधो तद्दिवसं बिइयस्स पारणगं, एवं अम्ह घरंगताणि चेव कुमारगाणि, धिज्जातितो संबुद्धो । एते इहलोए गुणा, परलोए पधाणपुरिसत्तं देवत्ते पहाणातो अच्छराओ मणुयत्ते पधाणाओ माणुसीतो विउला य पंचलक्खणा भोगा पियसंपयोगा य आसण्णसिद्धिगमणं चेति । इदं चातिचाररहितमनुपालनीयं, तथा चाह–'सदारसंतोसस्स' इत्यादि, स्वदारसन्तोषस्य श्रमणोपासकेनामी पञ्चातिचारा ज्ञातव्याः न समाचरितव्यास्तद्यथा–इत्वरपरिगृहीतागमनं अपरिगृहीतागमनं अनङ्गक्रीडा परविवाहकरणं कामभोगतीव्राभिलाषः, तत्रेत्वरकालपरिगृहीता कालशब्दलोपादित्वरपरिगृहीता, भाटिप्रदानेन कियन्तमपि कालं दिवसमासादिकं स्ववशीकृतेत्यर्थः, तस्या गमनम्–अभिगमो मैथुनासेवना इत्वरपरिगृहीतागमनं, अपरिगृहीताया गमनं अपरिगृहीतागमनं, अपरिगृहीता नाम वेश्या अन्यसत्कगृहीतभाटी कुलाङ्गना वाऽनाथेति, अनङ्गानि च–कुचकक्षोरुवदनादीनि तेषु क्रीडनमनङ्गक्रीडा, अथवाऽनङ्गो मोहोदयोद्भूतः तीव्रो मैथुनाध्यवसायाख्यः कामो भण्यते तेन तस्मिन् वा क्रीडा कृतकृत्यस्यापि स्वलिङ्गेन आहार्यैः काष्ठफलपुस्तकमृत्तिकाचर्म्मादिघटितप्रजननैर्योषिदवाच्यप्रदेशासेवनमित्यर्थः, परविवाहकरणमितीह स्वापत्यव्यतिरिक्तमपत्यं

---

१ देवस्यापि पूज्यौ ?, ताभ्यां भणितं–आवाभ्यां बाल्ये एकान्तरितं मैथुनं प्रत्याख्यातं, अन्यदाऽऽवयोः कथमपि संयोगो जातः, तच्च विपरीतमापतितं, यद्दिवसे एकस्य ब्रह्मचर्यपोषधः तद्दिवसे द्वितीयस्य पारणकमेवमावां गृहगतावेव कुमारौ, धिग्जातीयः संबुद्धः । एते ऐहलौकिका गुणाः, परलोके प्रधानपुरुषत्वं देवत्वे प्रधाना अप्सरसो मनुजत्वे प्रधाना मानुष्यो विपुलाश्च पञ्चलक्षणा भोगाः प्रियसंप्रयोगाश्चासन्नसिद्धिगमनं च ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[सू.४]

दीप
अनुक्रम
[६७]

परशब्देनोच्यते तस्य कन्याफललिप्सया स्नेहबन्धेन वा विवाहकरणमिति, अवि य–उस्सग्गे णियगावच्चाणवि वरणसंवरणं ण करेति किमंग पुण अण्णेसिं ?, जो वा जत्तियाण आगारं करेइ, तत्तिया कप्पंति, सेसा ण कप्पंति, ण वट्टति महती दारिया दिज्जउ गोधणे वा संडो छुपेज्जेति भणिउं। काम्यन्त इति कामाः–शब्दरूपगन्धा भुज्यन्त इति भोगा–रसस्पर्शाः, कामभोगेषु तीव्राभिलाषः, तीव्राभिलाषो नाम तदध्यवसायित्वं, तस्माच्चेदं करोति–समाप्तरतोऽपि योषिन्मुखोपस्थकर्णकक्षान्तरेष्वतृप्ततया प्रक्षिप्य लिङ्गं मृत इव आस्ते निश्चलो महतीं वेलामिति, दन्तनखोत्पलपत्रकादिभिर्वा मदनमुत्तेजयति, वाजीकरणानि चोपयुङ्क्ते, योषिदवाच्यदेशं वा मृद्नाति। एतानीत्वरपरिगृहीतगमनादीनि समाचरन्नतिचरति चतुर्थाणुव्रतमिति। एत्थ य आदिल्ला दो अतियारा सदारसंतुट्ठस्स भवंति णो परदारविवज्जगस्स, सेसा पुण दोण्हवि भवन्ति, दोसा पुण इत्तरियपरिग्गहितागमणे बिदिएण सद्धिं वेरं होज्ज मारेज्ज तालेज्ज वा इत्यादयः, एवं सेसेसुवि भाणियव्वा। उक्तं सातिचारं चतुर्थाणुव्रतं। अधुना पञ्चमं प्रतिपाद्यते, तत्रेदं सूत्रम्—

अपरिमियपरिग्गहं समणो०, इच्छापरिमाणं उवसंपज्जइ, से परिग्गहे दुविहे पन्नत्ते, तंजहा–सचित्तपरिग्गहे अचित्तपरिग्गहे य, इच्छापरिमाणस्स समणोवा० इमे पंच०–धणधन्नपमाणाइक्कमे खित्तवत्थुपमाणाइक्कमे हिरन्नसुवन्नपमाणाइक्कमे दुपयचउप्पयपमाणाइक्कमे कुवियपमाणाइक्कमे ५ ॥ (सू०) ॥८२५॥

१ अपि च उत्सर्गे निजकापत्यानामपि वरणसंवरणं न करोति किं पुनरन्येषां ?, यो वा यावतामाकारं करोति तावन्तः कल्पन्ते, शेषा न कल्पन्ते, न युज्यते महतीं दारिकां ददातु गोधने वा षण्डः क्षिपत्विति भणितुं। २ अत्र चाद्यौ द्वावतिचारौ स्वदारसंतुष्टस्य भवतः न परदारविवर्जकस्य, शेषाः पुनर्द्वयोरपि भवन्ति, दोषाः पुनरित्वरपरिगृहीतागमने द्वितीयेन सार्धं वैरं भवेत् मारयेत् ताडयेद्वा, एवं शेषेष्वपि भणितव्याः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

अथ परिग्रहपरिमाणं व्रतस्य वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [सू.५]

दीप अनुक्रम [६८]

'अपरिमितपरिग्गहं समणोवासतो पच्चक्खाति' परिग्रहणं परिग्रहः अपरिमितः–अपरिमाणः तं श्रमणोपासकः प्रत्याख्याति, सचित्तादेः अपरिमाणात् परिग्रहाद् बिरमतीति भावना, इच्छायाः परिमाणं २ तदुपसम्पद्यते, सचित्तादिगोचरेच्छापरिमाणं करोतीत्यर्थः। स च परिग्रहो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथेत्येतत् प्राग्वत्, सह चित्तेन सचित्तं–द्विपदचतुष्पदादि तदेव परिग्रहः अचित्तं–रत्नवस्त्रकुप्यादि तदेव चाचित्तपरिग्रहः। एत्थ य पंचमअणुव्वते अणियत्तस्स दोसे नियत्तस्स य गुणे, तत्थोदाहरणम्–लुद्धनंदो कुसीमूलियं लद्धु विणट्ठो नंदो सावगो पूइतो भंडागारवती ठवितो, अहवावि वाणिणी रतणाणि विक्किणति छुद्धाए मरंती, सड्ढेण भणिता–एत्तिअपरिक्खओ णत्थि, अण्णस्स णीताणि, ताए भण्णति–जं जोग्गं तं देहि, सो पत्थं देइ, सुभक्खे तीए भत्तारो आगतो, पुच्छति–रतणाणि कहिं ?, भणति–विक्कियाणि मए, कहं ?, सा भणइ–गोहुमसेइयाए एक्केक्कं दिन्नं अमुगस्स वाणियगस्स, सो वाणियगो तेण भणिओ–रयणा अप्पेह पूरं वा मोल्लं देहि, सो नेच्छइ, तओ रण्णो मूलं गतो एरिसे अग्घे वट्टमाणे एतस्स एतेण एत्तियं दिण्णं, सो विणासितो, पढमं पुण ताणि

१ अत्र च पञ्चमाणुव्रते अनिवृत्तस्य दोषा निवृत्तस्य च गुणाः, तत्रोदाहरणं–लोभनन्दः कुशीमूलिकां लब्ध्वा विनष्टः, नन्दः श्रावकः पूजितो भाण्डागारपतिः स्थापितः, अथवाऽपि वणिग्भार्या रत्नानि विक्रीणाति क्षुधा म्रियमाणा, श्राद्धेन भण्यते–ईयत्परीक्षको नास्ति, अन्यस्य पार्श्वे नीतानि, तया भण्यते–यद्योग्यं तद्देहि, स प्रस्थं ददाति, सुभिक्षे तस्या भर्त्ताऽऽगतः, पृच्छति–रत्नानि क्व ?, भणति–विक्रीतानि मया, कथं ?, सा भणति–गोधूमसेतिकयैकैकं दत्तममुकस्मै वणिजे, स वणिक् तेन भणितः–रत्नान्यर्पय पूर्णं वा मूल्यं देहि, स नेच्छति, ततो राज्ञो मूलं गतः–ईदृशेऽर्घे वर्त्तमाने एतस्यैतेनेयद्दत्तं, स विनाशितः प्रथमं पुनस्तानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.५]

दीप अनुक्रम [६८]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥८२६॥

६प्रत्याख्याना॰ श्रावकव्रताधि॰

[१]रतणाणि सावगस्स विक्किणियाणि तेण परिग्गहपरिमाणाइरित्ताइंतिकाउं न गहियाणि, सावगेण णेच्छितं, सो पूइतो। इदं चातिचाररहितमनुपालनीयं, तथा चाह–'इच्छापरिमाणस्स समणोवासएणं॰' इच्छापरिमाणस्य श्रमणोपासकेनामी पञ्चातिचारा ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः, तद्यथेति पूर्ववत्, क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रमः तत्र शस्योत्पत्तिभूमिः क्षेत्रं, तच्च सेतुकेतुभेदाद् द्विभेदं, तत्र सेतुक्षेत्रं अरघट्टादिसेक्यं, केतुक्षेत्रं पुनराकाशपतितोदकनिष्पाद्यं, वास्तु–अगारं तदपि त्रिविधं- खातमुच्छ्रितं खातोच्छ्रितं च, तत्र खातं–भूमिगृहकादि उच्छ्रितं–प्रासादादि, खातोच्छ्रितं–भूमिगृहस्योपरि प्रासादः, एतेषां क्षेत्रवास्तूनां प्रमाणातिक्रमः, प्रत्याख्यानकालगृहीतप्रमाणोल्लङ्घनमित्यर्थः। तथा हिरण्यसुवर्णप्रमाणातिक्रमस्तत्र हिरण्यं- रजतमघटितं घटितं वा अनेकप्रकारं द्रम्मादिः, सुवर्णं प्रतीतमेव तदपि घटिताघटितं, एतद्ग्रहणाच्चेन्द्रनीलमरकताद्युपलग्रहः, अक्षरगमनिका पूर्ववदेव, तथा धनधान्यप्रमाणातिक्रमः, तत्र धनं–गुडशर्करादि, गोमहिष्यजाविकाकरभतुरगाद्यन्ये, धान्यं–व्रीहिकोद्रवमुद्गमाषतिलगोधूमयवादि, अक्षरगमनिका प्राग्वदेव, तथा द्विपदचतुष्पदप्रमाणातिक्रमः, तत्र द्विपदादीनि–दासीमयूरहंसादीनि, चतुष्पदानि–हस्त्यश्वमहिष्यादीनि, अक्षरगमनिका पूर्ववदेव, तथा कुप्यप्रमाणातिक्रमः, तत्र कुप्यं–आसनशयनभण्डककरोटकलोहाद्युपस्करजातमुच्यते, एतद्ग्रहणाच्च वस्त्रकम्बलपरिग्रहः, अक्षरगमनिका पूर्ववदेव, तान् क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रमादीन् समाचरन्नतिचरति पञ्चमाणुव्रतमिति। [२]एत्थ य दोसा जीवघातादि भणितव्वा। उक्तं सातिचारं पञ्चमाणुव्रतम् इत्युक्तान्यणुव्रतानि, साम्प्रतमेतेषामेवाणुव्रतानां परिपालनाय भावनाभूतानि ॥८२६॥

१ रत्नानि श्रावकाय विक्रेतुं नीतानि, तेन परिग्रहप्रमाणातिरिक्तानीतिकृत्वा न गृहीतानि, श्रावकेण नेष्टं, स पूजितः, २ अत्र च दोषा जीवघातादयो भणितव्याः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.५]

दीप अनुक्रम [६८]

गुणव्रतान्यभिधीयन्ते–तानि पुनस्त्रीणि भवन्ति, तद्यथा–दिग्व्रतं उपभोगपरिमाणं अनर्थदण्डपरिवर्जनमिति, तत्राद्य-गुणव्रतस्वरूपाभिधित्सयाऽऽह—

● दिसिवए तिविहे पन्नत्ते–उड्ढदिसिवए अहोदिसिवए तिरियदिसिवए, दिसिवयस्स समणो०इमे पञ्च० तंजहा–उड्ढदिसिपमाणाइक्कमे अहोदिसिपमाणाइक्कमे तिरियदिसिपमाणाइक्कमे खित्तवुड्ढी सइअंतरद्धा ६ ॥ (सूत्रं)

दिशो ह्यनेकप्रकाराः शास्त्रे वर्णिताः, तत्र सूर्योपलक्षिता पूर्वा शेषाश्च पूर्वदक्षिणादिकास्तदनुक्रमेण द्रष्टव्याः, तत्र दिशां संबन्धि दिक्षु वा व्रतमेतावत्सु पूर्वादिविभागेषु मया गमनाद्यनुष्ठेयं न परत इत्येवंभूतं दिग्व्रतं, एतच्चौघतः त्रिविधं प्रज्ञप्तं तीर्थकरगणधरैः, तद्यथेत्युदाहरणोपन्यासार्थः,ऊर्ध्वादिग् ऊर्ध्वं दिग् तत्सम्बन्धि तस्यां वा व्रतं ऊर्ध्वं दिग्व्रतं,एतावती दिगूर्द्ध्वं पर्वताद्यारोहणादवगाहनीया न परत इत्येवंभूतं इति भावना, अधो दिग् अधोदिक् तत्सम्बन्धि तस्यां वा व्रतं अधोदिग्व्रतं–अर्वाग्दिग्व्रतम्, एतावती दिगध इन्द्रकूपाद्यवतरणादवगाहनीया न परत इत्येवंभूतमिति हृदयं, तिर्यक् दिशस्तिर्यग्-दिशः–पूर्वादिकास्तासां सम्बन्धि तासु वा व्रतं तिर्यग्व्रतं, एतावती दिग् पूर्वेणावगाहनीया एतावती दक्षिणेनेत्यादि, न परत इत्येवंभूतमिति भावार्थः। अस्मिंश्च सत्यवगृहीतक्षेत्राद् बहिः स्थावरजङ्गमप्राणिगोचरो दण्डः परित्यक्तो भवतीति गुणः। इदमतिचाररहितमनुपालनीयमतोऽस्यैवातिचारानभिधित्सुराह–'दिसिवयस्स समणो०' दिग्व्रतस्य उक्तरूपस्य श्रमणोपासकेनामी पञ्चातिचारा ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः, तद्यथा–ऊर्द्ध्वदिक्प्रमाणातिक्रमः यावत्प्रमाणं परिगृहीतं तस्यातिलङ्घनमित्यर्थः, एवमन्यत्रापि भावना कार्या, अधोदिक्प्रमाणातिक्रमः, तिर्यग्दिक्प्रमाणातिक्रमः, क्षेत्रस्य वृद्धिः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अथ दिक्परिमाणं व्रतस्य वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [सू.६]
दीप अनुक्रम [६९]

क्षेत्रवृद्धिः [इति]–एकतो योजनशतपरिमाणमभिगृहीतमन्यतो दश योजनानि गृहीतानि तस्यां दिशि समुत्पन्ने कार्ये योजनशतमध्यादपनीयान्यानि दश योजनानि तत्रैव स्वबुद्ध्या प्रक्षिपति, संवर्द्धयत्येकत इत्यर्थः, स्मृतेर्भ्रंशः–अन्तर्द्धानं स्मृत्यन्तर्द्धानं किं मया परिगृहीतं कया मर्यादया व्रतमित्येवमननुस्मरणमित्यर्थः, स्मृतिमूलं नियमानुष्ठानं, तद्भ्रंशे तु नियमत एव नियमभ्रंश इत्यतिचारः । एत्थ य सामाचारी–उड्ढं जं पमाणं गहितं तस्स उवरिं पव्वतसिहरे रुक्खे वा मक्कडो पक्खी वा सावयस्स वत्थं आभरणं वा गेण्हितुं पमाणातिरेकं उवरि भूमिं वच्चेज्जा, तत्थ से ण कप्पति गंतुं, जाधे तु पडितं अण्णेण वा आणितं ताधे कप्पति, इदं पुण अट्ठावयहेमकुडसम्मेयसुपतिट्ठउज्जंतचित्तकूडअंजणगमंदरादिसु पव्वतेसु भवेज्जा, एवं अधेवि कूवियादिसु विभासा, तिरियं जं पमाणं गहितं तं तिविधेणवि करणेण णातिक्कमितव्वं, खेत्तवुड्ढी सावगेण ण कायव्वा, कथं ?, सो पुव्वेण भंडं गहाय गतो जाव तं परिमाणं ततो परेण भंडं अग्घतित्तिकातुं अवरेण जाणि जोयणाणि पुव्वदिसाए संछुभति, एसा खेत्तवुड्ढी से ण कप्पति कातुं, सिय जति वोलीणो होज्जा णियत्तियव्वं, विस्सारिते य

१ अत्र च सामाचारी ऊर्ध्वं यत् प्रमाणं गृहीतं तस्योपरि पर्वतशिखरे वृक्षे वा मर्कटः पक्षी वा श्रावकस्य वस्त्रमाभरणं वा गृहीत्वा प्रमाणातिरेकामुपरिभूमिं व्रजेत्, तत्र तस्य न कल्पते गन्तुं, यदा तु पतितं अन्येन वा आनीतं तदा कल्पते, इदं पुनरष्टापदहेमकुण्डसंमेतसुप्रतिष्ठोजयन्तचित्रकूटाञ्जनकमन्दरादिषु पर्वतेषु भवेत्, एवमधोऽपि कूपिकादिषु विभाषा, तिर्यग् यत् प्रमाणं गृहीतं तत् त्रिविधेनापि करणेन तन्नातिक्रान्तव्यं, क्षेत्रवृद्धिः श्रावकेण न कर्त्तव्या, कथं ?, स पूर्वस्यां भाण्डं गृहीत्वा गतो यावत्तत्प्रमाणं ततः परतो भाण्डमर्घतीतिकृत्वाऽपरस्यां यानि योजनानि (तानि) पूर्वस्यां दिशि क्षिपति, एषा क्षेत्रवृद्धिस्तस्य न कल्पते कर्त्तुं, स्याद्यद्यतिक्रान्तो भवेत् निवर्त्तितव्यं, विस्मृते च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.६] दीप अनुक्रम [६९]	(see text below)

णं गंतवं, अण्णोवि ण विसज्जितव्वो, अणाणाए कोवि गतो होज्ज जं विसुमरियखेत्तगतेण लद्धं तं ण गेण्हेज्जत्ति। [ग्रं० २१०००] उक्तं सातिचारं प्रथमं गुणव्रतं अधुना द्वितीयमुच्यते, तत्रेदं सूत्रं—

● उवभोगपरिभोगवए दुविहे पन्नत्ते तंजहा—भोअणओ कम्मओ अ । भोअणओ समणोवा० इमे पञ्च०—सचित्ताहारे सचित्तपडिबद्धाहारे अप्पउलिओसहिभक्खणया तुच्छोसहिभ० दुप्पउलिओसहिभक्खणया ७ ॥

उपभुज्यत इत्युपभोगः, उपशब्दः सकृदर्थे वर्त्तते, सकृद्भोग उपभोगः—अशनपानादि, अथवाऽन्तर्भोगः उपभोगः—आहारादि, उपशब्दोऽत्रान्तर्वचनः, परिभुज्यत इति परिभोगः, परिशब्दोऽत्रावृत्तौ वर्त्तते, पुनः पुनर्भोगः वस्त्रादेः परिभोग इति, अथवा बहिर्भोगः परिभोग एवमेव वसनालङ्कारादेः, अत्र परिशब्दो बहिर्वाचक इति, एतद्विषयं व्रतं—उपभोगपरिभोगव्रतं, एतत् तीर्थकरगणधरैर्द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथेत्युदाहरणोपन्यासार्थः, भोजनतः कर्मतश्च, तत्र भोजनत उत्सर्गेण निरवद्याहारभोजिना भवितव्यं, कर्मतोऽपि प्रायो निरवद्यकर्मानुष्ठानयुक्तेनेत्यक्षरार्थः । इह चेयं सामाचारी—'भोयणतो सावगो उस्सग्गेण फासुगं आहारं आहारेज्जा, तस्सासति अफासुगमवि सचित्तवज्जं, तस्स असती अणंतकायबहुबीयमाणि परिहरितव्वाणि,

१ न गन्तव्यं, अन्योऽपि न विसर्जनीयः, अनाज्ञया कोऽपि गतो भवेत् यद्विस्मृतक्षेत्रे च गतेन लब्धं तन्न गृह्णीयात् इति । २ भोजनतः श्रावक उत्सर्गेण प्रासुकमाहारमाहरेत्, तस्मिन्नसति अप्रासुकमपि सचित्तवर्जं, तस्मिन्नसति अनन्तकायबहुबीजकानि परिहर्त्तव्यानि,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

अथ उवभोग-परिभोग परिमाणं व्रतस्य वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [सू.७]

दीप अनुक्रम [७०]

॥८२८॥

ईमं च अण्णं भोयणतो परिहरति–असणे अणंतकायं अल्लगमूलगादि मंसं च, पाणे मंसरसमज्जादि, खादिमे उदुंबरका-उंबरवडपिप्पलपिलंखुमादि, सादिमं मधुमादि, अचित्तं च आहारेयव्वं, जदा किर ण होज्ज अचित्तो तो उस्सग्गेण भत्तं पच्चक्खातितव्वं ण तरति ताधे अववाएण सचित्तं अणंतकायबहुत्रीयगवज्जं, कम्मतोऽवि अकम्मा ण तरति जीवितुं ताधे अच्चंतसावज्जाणि परिहरिज्जंति । इदमपि चातिचाररहितमनुपालनीयमित्यतस्तस्यैवातिचारानभिधित्सुराह–'भोयणतो समणोवासएण' भोजनतो यद्व्रतमुक्तं तदाश्रित्य श्रमणोपासकेनामी पञ्चातिचारा ज्ञातव्या न समाचरितव्याः, तद्यथा–'सचित्ताहारः' सचित्तं चेतना संज्ञानमुपयोगोपधानमिति पर्यायाः, सचित्तश्चासौ आहारश्चेति समासः, सचित्तो वा आहारो यस्य सचित्तमाहारयति इति वा मूलकन्दलीकन्दकार्द्रकादिसाधारणप्रत्येकतरुशरीराणि सचित्तानि सचित्तं पृथिव्याद्या-हारयतीति भावना । तथा सचित्तप्रतिबद्धाहारो यथा वृक्षे प्रतिबद्धो गुन्दादि पक्वफलानि वा । तथा अपक्वौषधभक्षणत्वमिदं प्रतीतं, सचित्तसंमिश्राहार इति वा पाठान्तरं, सचित्तेन संमिश्र आहारः सचित्तसंमिश्राहारः, वल्ल्यादि पुष्पादि वा संमिश्रं, तथा दुष्पक्वौषधिभक्षणता दुष्पक्वाः–अस्विन्ना इत्यर्थः तद्भक्षणता, तथा तुच्छौषधिभक्षणता तुच्छा हि असारा मुद्गफलीप्रभृतयः, अत्र हि महती विराधना अल्पा च तुष्टिः, बहिभिरप्यैहिकोऽप्यपायः सम्भाव्यते । ऐस्थ ॥८२८॥

१ इदं चान्यत् भोजनतः परिहरति–अशनेऽनन्तकायं आर्द्रकमूलकादि मांसं च, पाने मांसरसमज्जादि, खाद्ये उदुम्बरकाकोन्दुबरवटपिप्पलप्लक्षादि स्वाद्ये मध्वादि, अचित्तं चाहर्त्तव्यं, यदा किल न भवेत् अचित्त उत्सर्गेण भक्तं प्रत्याख्यातव्यं न शक्नोति तदाऽपवादेन सचित्तं अनन्तकायबहुबीजकवर्जं, कर्मतोऽप्य-कर्मा न शक्नोति जीवितुं तदाऽत्यन्तसावद्यानि परिह्रियन्ते । २ अत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.७]

दीप अनुक्रम [७०]

सिंगाखायकोदाहरणं–खेत्तरक्खगो सिंगातो खाति, राया णिग्गच्छति, मज्झण्हे पडिगतो, तधावि खायति, रण्णा कोउएणं पोट्टं फालावितं केत्तियाओ खइताओ होज्जत्ति, णवरि फेणो अन्नं किंचि णत्थि, एवं भोजन इति गतं। अधुना कर्मतो यत् व्रतमुक्तं तदप्यतिचाररहितमनुपालनीयं इत्यतोऽस्यातिचारानभिधित्सुराह—

●कम्मओ णं समणोवा० इमाइं पन्नरस कम्मादाणाइं जा०, तंजहा–इंगालकम्मे वणकम्मे साडीकम्मे भाडीकम्मे फोडीकम्मे, दंतवाणिज्जे लक्खवाणिज्जे रसवाणिज्जे केसवाणिज्जे विसवाणिज्जे, जंतपीलणकम्मे निल्लंछणकम्मे दवग्गिदावणया सरदहतलायसोसणया असईपोसणया ७ ॥ (सूत्रं) ॥

कर्मतो यद् व्रतमुक्तं णमिति वाक्यालङ्कारे तदाश्रित्य श्रमणोपासकेनामूनि–प्रस्तुतानि पञ्चदशेतिसङ्ख्या कर्मादानानीत्यसावद्यजीवनोपायाभावेऽपि तेषामुत्कटज्ञानावरणीयादिकर्महेतुत्वादादानानि कर्मादानानि ज्ञातव्यानि न समाचरितव्यानि। तद्यथेत्यादि पूर्ववत् , अङ्गारकर्म–अङ्गारकरणविक्रयक्रिया, एवं वनशकटभाटकस्फोटना दन्तलाक्षारसविषकेशवाणिज्यं च यंत्रपीडननिर्लाञ्छनदवदापनसरोहृदादिपरिशोषणासतीपोषणास्वपि द्रष्टव्यमित्यक्षरार्थः । भावार्थस्त्वयं–'इंगालकम्मं'ति, इंगाला निदहितुं विक्किणति, तत्थ छण्हं कायाणं वधो तं न कप्पति, वणकम्मं–जो वणं किणति,

१ शिम्बाखादक उदाहरणं क्षेत्ररक्षकः शिम्बाः खादति, राजा निर्गच्छति, मध्याह्ने प्रतिगतः, तत्रापि खादति, राज्ञा कौतुकेनोदरं पाटितं कियत्यः खादिता भवेयुरिति, नवरं फेनः, अन्यत्किमपि नास्ति। २ अङ्गारकर्मेति–अङ्गारान् निर्दह्य विक्रीणाति तत्र षण्णां कायानां वधस्तन्न कल्पते, वनकर्म यो वनं क्रीणाति,

आ० १३९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.७]

दीप अनुक्रम [७१]

पच्छा रुक्खे छिंदित्तुं मुल्लेण जीवति, एवं पणिगादि पडिसिद्धा हवंति, साडीकम्मं–सागडीयत्तणेण जीवति, तत्थ बंधवधमाई दोसा, भाडीकम्मं–सएण भंडोवक्खरेण भाडएण वहइ, परायगं ण कप्पति, अण्णेसिं वा सगडं बलद्दे य न देति, एवमादी कातुं ण कप्पति, फोडिकम्मं–उदत्तेणं हलेण वा भूमीफोडणं, दंतवाणिज्जं–पुव्विं चेव पुलिंदाणं मुल्लं देति दंते देज्जा वत्ति, पच्छा पुलिंदा हत्थी घातेंति, अचिरा सो वाणियओ एहिइत्तिकातुं, एवं धीम्मरगाणं संखमुल्लं देंति, एवमादी ण कप्पति, पुव्वाणीतं किणति, लक्खवाणिज्जेऽवि एते चेव दोसा–तत्थ किमिया होंति, रसवाणिज्जं–कल्लालत्तणं सुरादि तत्थ पाणे बहुदोसा मारणअक्कोसवधादी तम्हा ण कप्पति, विसवाणिज्जं–विसविक्कयो से ण कप्पति, तेण बहूण जीवाणं विराधणा, केसवाणिज्जं–दासीओ गहाय अण्णत्थ विक्किणति जत्थ अग्घंति, एत्थवि अणेगे दोसा परवसत्तादयो, जंतपीलणकम्मं–तेल्लियं जंतं उच्छुजन्तं चक्कादि तंपि ण कप्पते, णिल्लंछणकम्मं–वद्धेउं गोणादि ण कप्पति, दवग्गिदावणताकम्मं–वणदवं देति

---

१ पश्चाद्वृक्षान् छित्वा मूल्येन जीवति, एवं पण्याद्याः प्रतिपिद्धा भवन्ति, शाकटिककर्म–शाकटिकत्वेन जीवति, तत्र बन्धवधादिका दोषाः, भाटीकर्म–स्वकीयेन भाण्डोपस्करेण भाटकेन वहति परकीयं न कल्पते, अन्येभ्यो वा शकटं बलीवर्दौ च न ददाति, एवमादि कर्तुं न कल्पते, स्फोटिकर्म–तुदत्रेण हलेन वा भूमिस्फोटनं, दन्तवाणिज्यं–पूर्वमेव पुलिन्द्रेभ्यो मूल्यं ददाति, दन्तान् दद्यातेति, पश्चात् पुलिन्द्रा हस्तिनो घातयन्ति अचिरात् स वणिक् आयास्यतीति-कृत्वा, एवं धीवराणां शङ्खमूल्यं ददाति, एवमादि न कल्पते, पूर्वानीतं क्रीणाति, लाक्षावाणिज्येऽपि एत एव दोषास्तत्र कृमयो भवन्ति, रसवाणिज्यं–कौलालत्वं सुरादि तत्र पाने बहवो दोषाः मारणाक्रोशवधादयस्तस्मान्न कल्पते, विषवाणिज्यं विषविक्रयस्तस्य न कल्पते, तेन बहूनां जीवानां विराधना, केशवाणिज्यं–दासीर्गृहीत्वाऽन्यत्र विक्रीणाति यत्रार्घन्ति, अत्राप्यनेके दोषाः परवशत्वादयः, यन्त्रपीडनकर्म–तैलिकं यन्त्रं इक्षुयन्त्रं चक्रादि तदपि न कल्पते, निर्लाञ्छनकर्म–वर्धयितुं गवादीन् न कल्पते, दवाग्निदापनताकर्म वनदवं ददाति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.७]

दीप अनुक्रम [७१]

छेत्तरक्खणणिमित्तं जधा उत्तरावहे पच्छा दड्ढे तरुणगं तणं उट्ठेति, तत्थ सत्ताणं सत्तसहस्साण वधो, सरदहतलागपरिसोसणताकम्मं–सरदहतलागादीणि सोसेति पच्छा वाविज्जंति, एवं ण कप्पति, असदीपोसणताकम्मं–असतीओ पोसेति जधा गोल्लविसए जोणीपोसगा दासीण भाडिं गेण्हेंति, प्रदर्शनं चैतद् बहुसावद्यानां कर्मणां एवंजातीयानां, न पुनः परिगणनमिति भावार्थः। उक्तं सातिचारं द्वितीयं गुणव्रतं, साम्प्रतं तृतीयमाह—

● अणत्थदंडे चउव्विहे पन्नत्ते, तंजहा–अवज्झाणायरिए पमत्तायरिए हिंसप्पयाणे पावकम्मोवएसे, अणत्थदंडवेरमणस्स समणोवा० इमे पञ्च० तंजहा–कंदप्पे कुक्कुइए मोहरिए संजुत्ताहिगरणे उवभोगपरिभोगाइरेगे ८ ॥ (सूत्रम्)

अनर्थदण्डशब्दार्थः, अर्थः–प्रयोजनं, गृहस्थस्य क्षेत्रवास्तुधनशरीरपरिजनादिविषयं तदर्थं आरम्भो–भूतोपमर्दोऽर्थदण्डः, दण्डो निग्रहो यातना विनाश इति पर्यायाः, अर्थेन–प्रयोजनेन दण्डोऽर्थदण्डः स चैष भूतविषयः उपमर्दनलक्षणो दण्डः क्षेत्रादिप्रयोजनमपेक्षमाणोऽर्थदण्ड उच्यते, तद्विपरीतोऽनर्थदण्डः–प्रयोजननिरपेक्षः, अनर्थः अप्रयोजनमनुपयोगो निष्कारणतेति पर्यायाः, विनैव कारणेन भूतानि दण्डयति सः, तथा कुठारेण प्रहृष्टस्तरुस्कन्धशाखादिषु प्रहरति कृकलासपिपीलिकादीन् व्यापादयति कृतसङ्कल्पः, न च तद्व्यापादने किञ्चिदतिशयोपकारि प्रयोजनं येन विना गार्हस्थ्यं प्रतिपालयितुं न शक्यते, सोऽयमनर्थदण्डः चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–'अपध्यानाचरित' इति अपध्यानेनाचरितः अप-

१ क्षेत्ररक्षणनिमित्तं यथोत्तरापथे, पश्चात् दग्धे तरुणं तृणमुत्तिष्ठते, तत्र सत्त्वानां शतसहस्राणां वधः, सरोह्रदतटाकपरिशोषणताकर्म–सरोह्रदतटाकादीन् शोषयति, पश्चादुप्यन्ते, एवं न कल्पते, असतीपोषणताकर्म–असतीः पोषयति यथा गौडविषये योनिपोषका दासीनां भाटिं गृह्णन्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ अनर्थदण्डविरमणं व्रतस्य वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [सू.८]

दीप अनुक्रम [७२]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥८३०॥

६प्रत्याख्यानाध्य० श्रावकव्रताधि०

ध्यानाचरितः समासः, अप्रशस्तं ध्यानं अपध्यानं, इह देवदत्तश्रावककोङ्कणकसाधुप्रभृतयो ज्ञापकं, 'प्रमादाचरितः' प्रमादेनाचरित इति विग्रहः, प्रमादस्तु मद्यादिः पञ्चधा, तथा चोक्तम्–"मज्जं विसयकसाया विकथा णिद्दा य पंचमी भणिया" अनर्थदण्डत्वं चास्योक्तशब्दार्थद्वारेण स्वबुद्ध्या भावनीयं, 'हिंसाप्रदानं' इह हिंसाहेतुत्वादायुधानलविषादयो हिंसोच्यते, कारणे कार्योपचारात्, तेषां प्रदानमन्यस्मै क्रोधाभिभूतायानभिभूताय वा न कल्पते, प्रदाने त्वनर्थदण्ड इति, 'पापकर्मोपदेशः' पातयति नरकादाविति पापं तत्प्रधानं कर्म पापकर्म तस्योपदेश इति समासः, यथा–कृष्यादि कुरुत, तथा चोक्तं–"छित्ताणि कसध गोणे दमेध इच्चादि सावगजणस्स। णो कप्पति उवदिसिउं जाणियजिणवयणसारस्स ॥ १ ॥" इदमतिचाररहितमनुपालनीयमित्यतोऽस्यैवातिचाराभिधित्सयाऽऽह–'अणट्ठदंडे'त्यादि, अनर्थदण्डविरमणस्य श्रमणोपासकेनामी पञ्चातिचारा ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः, तद्यथा–कन्दर्पः–कामः तद्धेतुर्विशिष्टो वाक्प्रयोगः कन्दर्प उच्यते, रागोद्रेकात् प्रहासमिश्रो मोहोद्दीपको नर्मेति भावः। इह सामाचारी–सावगस्स अट्टट्टहासो न कप्पति, जति णाम हसियव्वं तो ईसिं चेव विहसितव्वंति। कौकुच्यं–कुत्सितसंकोचनादिक्रियायुक्तः कुचः कुकुचः तद्भावः कौकुच्यं–अनेकप्रकारा मुखनयनोष्ठकरचरणभ्रूविकारपूर्विका परिहासादिजनिका भाण्डादीनामिव विडम्बनक्रियेत्यर्थः। एत्थ सामायारी–तारिसगाणि भासितुं ण कप्पति जारिसेहिं लोगस्स हासो उप्पज्जति, एवं गतीए ठाणेण वा ठातितुन्ति। मौखर्य–धार्ष्ट्यप्रायमसत्या- ॥८३०॥

---

१ क्षेत्राणि कृष गा दमय इत्यादि श्रावकजनस्य। न कल्पते उपदेष्टुं ज्ञातजिनवचनसारस्य ॥ १ ॥ २ श्रावकस्याट्टहासो न कल्पते, यदि नाम हसितव्यं तर्हि ईषदेव विहसितव्यमिति। ३ अत्र सामाचारी–तादृशि भाषितुं न कल्पते यादृशैर्लोकस्य हास्यमुत्पद्यते, एवं गत्या स्थानेन वा स्थातुमिति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्बद्धप्रलापित्वमुच्यते, मुँहेण वा अरिमाणेति, जधा कुमारामच्चेणं सो चारभडओ विसज्जितो, रण्णा णिवेदितं, ताए जीविकाए वित्ति दिण्णा, अण्णता रुट्ठेण मारितो कुमारामच्चो । संयुक्ताधिकरणं–अधिक्रियते नरकादिष्वनेनेत्यधिकरणं–वास्तूदूषलशिलापुत्रकगोधूमयन्त्रकादि संयुक्तं–अर्थक्रियाकरणयोग्यं संयुक्तं च तदधिकरणं चेति समासः । ऍत्थ समाचारी–सावगेण संजुत्ताणि चेव सगडादीनि न धरेतव्वाणि, एवं वासीपरसुमादिविभासा। 'उपभोगपरिभोगातिरेक' इति उपभोगपरिभोगशब्दार्थो निरूपित एव तदतिरेकः । ऍत्थवि सामायारी–उवभोगातिरित्तं जदि तेल्लामलए बहुए गेण्हति ततो बहुगा ण्हायगा वच्चंति तस्स लोलियाए, अण्हविण्हायगा ण्हायंति, एत्थ पूतरगाआउक्कायवधो, एवं पुप्फतंबोलमादिविभासा, एवं ण वट्टति, का विधी सावगस्स उवभोगे ण्हाणे ?, घरे ण्हायव्वं णत्थि ताधे तेल्लामलएहिं सीसं घंसित्ता सव्वे साडेतूणं ताहे तडागाईतडे निविट्ठो अंजलिहि ण्हाति, एवं जेसु य पुप्फेसु पुप्फकुंथुताणि ताणि परिहरति । उक्तं सातिचारं

---

१ मुखेन वाऽरिमानयति, यथा कुमारामात्येन स चारभटो विसृष्टः, राज्ञो निवेदितं, तया जीविकया वृत्तिर्दत्ता, अन्यदा रुष्टेन मारितः कुमारामात्यः । २ अत्र सामाचारी श्रावकेण संयुक्तानि शकटादीनि न धारणीयानि, एवं वासीपर्श्वादिविभाषा । ३ अत्रापि सामाचारी–उपभोगातिरिक्तं यदि तैलामलकादीनि बहूनि गृह्णाति ततो बहवः स्नानकारका व्रजन्ति तस्य लौल्येन, अन्येऽस्नायका अपि स्नान्ति, अत्र पूतरकाद्यप्कायवधः, एवं पुष्पतांबूलादिविभाषा, एवं न वर्त्तते, को विधिः श्रावकस्योपभोगे स्नाने ?–गृहे स्नातव्यं नास्ति तदा तैलामलकैः शीर्षं घृष्ट्वा सर्वाणि शाटयित्वा ततस्तडाकादीनां तटे निवेश्याञ्जलिभिः स्नाति, एवं येषु पुष्पेषु पुष्पकुन्थवस्तानि परिहरति ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.८]

दीप अनुक्रम [७२]

तृतीयाणुव्रतं, व्याख्यातानि गुणव्रतानि, अधुना शिक्षापदव्रतानि उच्यन्ते, तानि च चत्वारि भवन्ति, तद्यथा–सामायिकं देशावकाशिकं पौषधोपवासः अतिथिसंविभागश्चेति, तत्राद्यशिक्षापदव्रतप्रतिपादनायाह—

● सामाइअं नाम सावज्जजोगपरिवज्जणं निरवज्जजोगपडिसेवणं च । सिक्खा दुविहा गाहा उववायठिई गई कसाया य। बंधंता वेयंता पडिवज्जाइक्कमे पंच॥ १॥ सामाइअंमि उ कए समणो इव सावओ हवइ जम्हा । एएण कारणेणं बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥ २ ॥ सव्वंति भाणिऊणं विरई खलु जस्स सव्विया नत्थि। सो सव्वविरइवाई चुक्कइ देसं च सव्वं च ॥ ३ ॥ सामाइयस्स समणो० इमे पञ्च०, तंजहा–मणदुप्पणिहाणे वइदुप्पणिहाणे कायदुप्पणिहाणे सामाइयस्स सइअकरणया सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया ९॥ (सूत्रम्) ॥

समो–रागद्वेषवियुक्तो यः सर्वभूतान्यात्मवत् पश्यति, आयो लाभः प्राप्तिरिति पर्यायाः, समस्यायः समायः, समो हि प्रतिक्षणमपूर्वैर्ज्ञानदर्शनचरणपर्यायैर्निरुपमसुखहेतुभिरधःकृतचिन्तामणिकल्पद्रुमोपमैर्युज्यते, स एव समायः प्रयोजनमस्य क्रियानुष्ठानस्येति सामायिकं समाय एव सामायिकं, नामशब्दोऽलङ्कारार्थः, अवद्यं–गर्हितं पापं, सहावद्येन सावद्यः योगो–व्यापारः कायिकादिस्तस्य परिवर्जनं–परित्यागः कालावधिनेति गम्यते, तत्र मा भूत् सावद्ययोगपरिवर्जनमात्रमपरव्यापारासेवनशून्यमित्यत आह–निरवद्ययोगप्रतिसेवनं चेति, अत्र सावद्ययोगपरिवर्जनवन्निरवद्ययोगप्रतिसेवनेऽप्यहर्निशं यत्नः कार्य इति दर्शनार्थं चशब्दः परिवर्जनप्रतिसेवनक्रियाद्वयस्य तुल्यकक्षतोद्भावनार्थः। ऍत्थ पुण सामाचारी–सामाइयं ॥८३१॥

१ अत्र पुनः सामाचारी सामायिकं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ सामायिक व्रतस्य वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [सू.९] + गाथा ||१-३||

दीप अनुक्रम [७३-७७]

सावएण कथं कायबंति ?, इह सावगो दुविधो–इड्डीपत्तो अणिड्डिपत्तो य, जो सो अणिड्डिपत्तो सो चेतियघरे साधुसमीपे वा घरे वा पोसधसालाए वा जत्थ वा विसमति अच्छते वा निवावारो सवत्थ करेति तत्थ, चउसु ठाणेसु णियमा कायबं–चेतियघरे साधुमूले पोषधसालाए घरे आवासगं करेंतोत्ति, तत्थ जति साधुसगासे करेति तत्थ का विधी ?, जति परं परभयं नत्थि जतिवि य केणइ समं विवादो णत्थि जति कस्सइ ण धरेइ मा तेण अंछवियछियं कज्जिहित्ति, जति य धारणगं दङ्गूण न गेण्हति मा णिज्जिहित्ति, जति वावारं ण वावारेति, ताधे घरे चेव सामायिकं कातूणं वच्चति, पंचसमिओ तिगुत्तो ईरियाउवजुत्ते जहा साहू भासाए सावज्जं परिहरंतो एसणाए कट्ठं लेट्ठुं वा पडिलेहिउं पमज्जेत्तुं, एवं आदाणे णिक्खेवणे, खेलसिंघाणे ण विगिंचति, विगिंचंतो वा पडिलेहेति य पमज्जति य, जत्थ चिट्ठति तत्थवि गुत्तिणिरोधं करेति। एताए विधीए गत्ता तिविधेण णमित्तु साधुणो पच्छा सामाइयं करेति, 'करेमि भन्ते ! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि दुविधं तिविधेणं जाव साधू पज्जुवासामित्ति कातूणं, पच्छा ईरियावहियाए

---

१ श्रावकेण कथं कर्त्तव्यमिति ?, इह श्रावको द्विविधः–ऋद्धिप्राप्तोऽनृद्धिप्राप्तश्च, यः सोऽनृद्धिप्राप्तः स चैत्यगृहे साधुसमीपे वा गृहे वा पौषधशालायां वा यत्र वा विश्राम्यति तिष्ठति वा निर्व्यापारः सर्वत्र करोति तत्र, चतुर्षु स्थानेषु नियमात् कर्त्तव्यं–चैत्यगृहे साधुमूले पौषधशालायां गृहे वाऽऽवश्यकं कुर्वन्निति, तत्र यदि साधुसकाशे करोति तत्र को विधिः ?–यदि परं परभयं नास्ति यदि च केनापि सार्धं विवादो नास्ति यदि कस्मैचिन्न धारयति मा तेनाकर्षविकर्षं भूदिति, यदि वाधमर्णं दृष्ट्वा न गृह्णीयात् मा नीनेशदिति, यदि व्यापारं न करोति, तदा गृह एव सामायिकं कृत्वा व्रजति, पञ्चसमितस्त्रिगुप्त ईर्याद्युपयुक्तो यथा साधुः भाषायां सावद्यं परिहरन् एषणायां लेष्टुं काष्ठं वा प्रतिलिख्य प्रमृज्य एवमादाने निक्षेपे, श्लेष्मसिङ्घाने न त्यजति, त्यजन् वा प्रतिलिखति च प्रमार्ष्टि च, यत्र तिष्ठति तत्रापि गुप्तिनिरोधं करोति, एतेन विधिना गत्वा त्रिविधेन नत्वा साधून् पश्चात् सामायिकं करोति–करोमि भदन्त ! सामायिकं सावद्यं योगं प्रत्याख्यामि द्विविधं त्रिविधेन यावत् साधून् पर्युपासे इतिकृत्वा, पश्चात् ऐर्यापथिकीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.९] + गाथा ||१-३||

दीप अनुक्रम [७३-७७]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥८३२॥

६प्रत्याख्यानाध्य० श्रावकव्रताधि०

पडिक्कमति, पच्छा आलोएत्ता वंदति आयरियादी जधारातिणिया, पुणोवि गुरुं वंदित्ता पडिलेहित्ता णिविट्ठो पुच्छति पढति वा, एवं चेतियाइएसुवि, जदा सगिहे पोसधसालाए वा आवासए वा तत्थ णवरि गमणं णत्थि, जो इड्ढीपत्तो(सो) सविड्ढीए एति, तेण जणस्स उच्छाहोवि आढिता य साधुणो सुपुरिसपरिग्गहेणं, जति सो कयसामाइतो एति ताधे आसहत्थिमादिणा जणेण य अधिकरणं वट्टति, ताधे ण करेति, कयसामाइएण य पादेहिं आगंतवं, तेणं ण करेति, आगतो साधुसमीवे करेति, जति सो सावओ तो ण कोइ उट्ठेति, अह अहाभद्दओ ता पूता कता होतुत्ति भण(ण्ण)ति, ताधे पुवरइतं आसणं कीरति, आयरिया उट्ठिता य अच्छंति, तत्थ उट्ठेंतमणुट्ठेंते दोसा विभासितवा, पच्छा सो इड्ढीपत्तो सामाइयं करेइ अणेण विधिणा-करेमि भन्ते! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि दुविधं तिविधेण जाव नियमं पज्जुवासामित्ति, एवं सामाइयं काउं पडिक्कंतो वंदित्ता पुच्छति, सो य किर सामाइयं करेंतो मउडं अवणेति कुंडलाणि णाममुद्दं

१ प्रतिक्रामति, पश्चात् आलोच्य वन्दते आचार्यादीन् यथारात्निकं, पुनरपि गुरुं वन्दित्वा प्रतिलिख्य निविष्टः पृच्छति पठति वा, एवं चैत्यादिष्वपि, यदा स्वगृहे पौषधशालायां वा आवासके वा तदा नवरं गमनं नास्ति, य ऋद्धिप्राप्तः स सर्वर्द्ध्याऽऽयाति, तेन जनस्योत्साहः अपि च साधव आदृताः सुपुरुषपरिग्रहेण, यदि स कृतसामायिक आयाति तदाऽश्वहस्त्यादिना जनेन चाधिकरणं वर्त्तते ततो न करोति, कृतसामायिकेन च पादाभ्यामागन्तव्यं तेन न करोति, आगतः साधुसमीपे करोति, यदि स श्रावकस्तदा न कोऽपि अभ्युत्तिष्ठति, अथ यथाभद्रकस्तदाऽऽद्दतो भवत्विति भण्यते, तदा पूर्वरचितमासनं क्रियते, आचार्याश्चोत्थितास्तिष्ठन्ति, तत्रोत्तिष्ठत्यनुत्तिष्ठति च दोषा विभाषितव्याः, पश्चात् स ऋद्धिप्राप्तः सामायिकं करोत्यनेन विधिना-करोमि भदन्त! सामायिकं सावद्यं योगं प्रत्याख्यामि द्विविधं त्रिविधेन यावन्नियमं पर्युपासे इति, एवं सामायिकं कृत्वा प्रतिक्रान्तो वन्दित्वा पृच्छति, स किल सामायिकं कुर्वन् मुकुटं अपनयति कुण्डले नाममुद्रां

॥८३२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.९] + गाथा ||१-३|| दीप अनुक्रम [७३-७७]

पुष्फतंबोलपावारगमादी वोसिरति। एसा विधी सामाइयस्स। आह–सावद्ययोगपरिवर्जनादिरूपत्वात् सामायिकस्य कृतसामायिकः श्रावको वस्तुतः साधुरेव, स कस्माद् इत्वरं सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानमेव न करोति त्रिविधं त्रिविधेनेति?, अत्रोच्यते, सामान्येन सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानस्यागारिणोऽसम्भवादारम्भेष्वनुमतेरव्यवच्छिन्नत्वात्,कनकादिषु चाऽऽत्मीयपरिग्रहादनिवृत्तेः, अन्यथा सामायिकोत्तरकालमपि तदग्रहणप्रसङ्गात् ,साधुश्रावकयोश्च प्रपञ्चेन भेदाभिधानात्। तथा चाह ग्रन्थकारः–

सिक्खा दुविधा गाहा, उववातठिती गती कसाया य। बंधंता वेदेन्ता पडिवज्जाइक्कमे पंच ॥ १ ॥

इह शिक्षाकृतः साधुश्रावकयोर्महान् विशेषः, सा च शिक्षा द्विधा–आसेवनाशिक्षा ग्रहणशिक्षा च, आसेवना–प्रत्युपेक्षणादिक्रियारूपा, शिक्षा–अभ्यासः, तत्रासेवनाशिक्षामधिकृत्य सम्पूर्णामेव चक्रवालसामाचारीं सदा पालयति साधुः, श्रावकस्तु न तत्कालमपि सम्पूर्णामपरिज्ञानादसम्भवाच्च, ग्रहणशिक्षां पुनरधिकृत्य साधुः सूत्रतोऽर्थतश्च जघन्येनाष्टौ प्रवचनमातर उत्कृष्टतस्तु बिन्दुसारपर्यन्तं गृह्णातीति, श्रावकस्तु सूत्रतोऽर्थतश्च जघन्येनाष्टौ प्रवचनमातर उत्कृष्टतस्तु षड्जीवनिकायां यावदुभयतोऽर्थतस्तु पिण्डैषणां यावत् , नतु तामपि सूत्रतो निरवशेषामर्थत इति। सूत्रप्रामाण्याच्च विशेषः, तथा चोक्तम्–"सामाइयंमि तु कते समणो इव सावओ हवइ जम्हा। एतेण कारणेणं बहुसो सामाइयं कुज्जा॥ १ ॥" इति, गाथासूत्रं प्राग् व्याख्यातमेव, लेशतस्तु व्याख्यायते–सामायिके प्राग्निरूपितशब्दार्थे, तुशब्दोऽवधारणार्थः, सामायिक एव कृते न शेषकालं श्रमण इव–साधुरिव श्रावको भवति यस्मात्, एतेन कारणेन बहुशः–अनेकशः सामायिकं कुर्यादि-

१ पुष्पताम्बूलप्रावारकादि व्युत्सृजति, एष विधिः सामायिकस्य ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.९] + गाथा ||१-३||

दीप अनुक्रम [७३-७७]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥८३२॥

६प्रत्याख्यानाध्य० श्रावकव्रताधि०

त्यत्र श्रमण इव चोक्तं न तु श्रमण एवेति यथा समुद्र इव तडागः न तु समुद्र एवेत्यभिप्रायः । तथोपपातो विशेषकः, साधुः सर्वार्थसिद्ध उत्पद्यते श्रावकस्त्वच्युते परमोपपातेन जघन्येन तु द्वावपि सौधर्म एवेति, तथा चोक्तं–"अविराधितसामण्णस्स साधुणो सावगस्स उ जहण्णो । सोधम्मे उववातो भणिओ तेलोक्कदंसीहिं ॥ १ ॥" तथा स्थितिर्भेदिका, साधोरुत्कृष्टा त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि जघन्या तु पल्योपमपृथक्त्वमिति, श्रावकस्य तूत्कृष्टा द्वाविंशतिः सागरोपमाणि जघन्या तु पल्योपममिति । तथा गतिर्भेदिका, व्यवहारतः साधुः पञ्चस्वपि गच्छति, तथा च कुरटोत्कुरुटौ नरकं गतौ कुणालादृष्टान्तेनेति श्रूयते, श्रावकस्तु चतसृषु न सिद्धगताविति, अन्ये च व्याचक्षते–साधुः सुरगतौ मोक्षे च, श्रावकस्तु चतसृष्वपि । तथा कषायाश्च विशेषकाः, साधुः कषायोदयमाश्रित्य सञ्ज्वलनापेक्षया चतुस्त्रिद्व्येककषायोदयवानकषायोऽपि भवति छद्मस्थवीतरागादिः, श्रावकस्तु द्वादशकषायोदयवान् अष्टकषायोदयवांश्च भवति, यदा द्वादशकषायवांस्तदाऽनन्तानुबन्धवर्जा गृह्यन्ते, एते चाविरतस्य विज्ञेया इति, यदा त्वष्टकषायोदयवान् तदाऽनन्तानुबन्धिअप्रत्याख्यानकषायवर्ज्जा इति, एते च विरताविरतस्य । तथा बन्धश्च भेदकः, साधुर्मूलप्रकृत्यपेक्षया अष्टविधबन्धको वा सप्तविधबन्धको वा षड्विधबन्धको वा एकविधबन्धको वा, उक्तं च–"सत्तविधबंधगा हुंति पाणिणो आउवज्जगाणं तु । तह सुहुमसंपरागा छव्विहबंधा विणिद्दिट्ठा ॥ १ ॥ मोहाउयवज्जाणं पगडीणं ते उ बंधगा भणिया । उवसंतखीणमोहा केवलिणो एगविधबंधा ॥ २ ॥ ते पुण ॥८३२॥

१ अविराद्धश्रामण्यस्य साधोः श्रावकस्यापि जघन्यतः । सौधर्मे उपपातो भणितस्त्रैलोक्यदर्शिभिः ॥ १ ॥ २ सप्तविधबन्धका भवन्ति प्राणिन आयुर्वर्जानां तु । तथा सूक्ष्मसंपरायाः षड्विधबन्धा विनिर्दिष्टाः ॥ १ ॥ मोहायुर्वर्जानां प्रकृतीनां ते तु बन्धका भणिताः । उपशान्तक्षीणमोहौ केवलिन एकविधबन्धकाः ॥ २ ॥ ते पुन-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.९] + गाथा ||१-३||

दीप अनुक्रम [७३-७७]

दुसमयठितीयस्स बंधगा ण पुण संपरागस्स । सेलेसीपडिवण्णा अबंधगा होंति विण्णेया ॥ ३ ॥" श्रावकस्तु अष्टविधबन्धको वा सप्तविधबन्धको वा । तथा वेदनाकृतो भेदः, साधुरष्टानां सप्तानां चतसृणां वा प्रकृतीनां वेदकः, श्रावकस्तु नियमादष्टानामिति । तथा प्रतिपत्तिकृतो विशेषः, साधुः पञ्च महाव्रतानि प्रतिपद्यते, श्रावकस्त्वेकमणुव्रतं द्वे त्रीणि चत्वारि पञ्च वा, अथवा साधुः सकृत् सामायिकं प्रतिपद्य सर्वकालं धारयति, श्रावकस्तु पुनः २ प्रतिपद्यत इति । तथाऽतिक्रमो विशेषकः, साधोरेकव्रतातिक्रमे पञ्चव्रतातिक्रमः, श्रावकस्य पुनरेकस्यैव, पाठान्तरं वा, किं च–इतरश्च सर्वशब्दं न प्रयुङ्क्ते, मा भूद्देशविरतेरप्यभाव इति, आह च–'सामाइयंमि उ कए' 'सव्वंति भाणिऊणं' गाहा, सर्वमित्यभिधाय–सर्वं सावद्यं योगं परित्यजामीत्यभिधाय विरतिः खलु यस्य 'सर्वा' निरवशेषा नास्ति, अनुमतेर्नित्यप्रवृत्तत्वादिति भावना, स एवंभूतः सर्वविरतिवादी 'चुक्कइ'त्ति भ्रश्यति देशविरतिं सर्वविरतिं च प्रत्यक्षमृषावादित्वादित्यभिप्रायः । पर्याप्तं प्रसङ्गेन प्रकृतं प्रस्तुमः । इदमपि च शिक्षापदव्रतमतिचाररहितमनुपालनीयमित्यत आह–'सामाइयस्स समणो' [गाहा], सामायिकस्य श्रमणोपासकेनामी पञ्चातिचारा ज्ञातव्या न समाचरितव्याः, तद्यथा–मनोदुष्प्रणिधानं, प्रणिधानं–प्रयोगः दुष्टं प्रणिधानं दुष्प्रणिधानं मनसो दुष्प्रणिधानं मनोदुष्प्रणिधानं, कृतसामायिकस्य गृहसत्केतिकर्त्तव्यतासुकृतदुष्कृतपरिचिन्तनमिति, उक्तं च–"सामाइयंति (तु)कातुं घरचिन्तं जो तु चिंतये सड्ढो । अट्टवसट्टमुवगतो निरत्थयं तस्स सामइयं ॥ १ ॥

१ द्विसमयस्थितिकस्य बन्धका न पुनः सांपरायिकस्य । शैलेशीप्रतिपन्ना अबन्धका भवन्ति विज्ञेया ॥ ३ ॥ २ सामायिकं(तु) कृत्वा गृहचिन्तां (कार्यं) यस्तु चिन्तयेच्छ्राद्धः । आर्त्तवशार्त्तमुपगतो निरर्थकं तस्य सामायिकम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.९] + गाथा ||१-३||

दीप अनुक्रम [७३-७७]

आवश्यक-हारिभद्रीया

॥८३४॥

वागूदुष्प्रणिधानं कृतसामायिकस्यासभ्यनिष्ठुरसावद्यवाक्प्रयोग इति, उक्तं च–"[1]कडसामइओ पुव्वं बुद्धीए पेहितूण भासेज्जा। सइ णिरवज्जं वयणं अण्णह सामाइयं ण भवे ॥ २ ॥" कायदुष्प्रणिधानं कृतसामायिकस्याप्रत्युपेक्षितादिभूतलादौ करचरणादीनां देहावयवानामनिभृतस्थापनमिति, उक्तं च–"[2]अणिरिक्खियापमज्जिय थंडिल्ले ठाणमादि सेवन्तो। हिंसाभावेवि ण सो कडसामइओ पमादाओ॥ १॥" सामायिकस्य स्मृत्यकरणं–सामायिकस्य सम्बन्धिनी या स्मरणा स्मृतिः–उपयोगलक्षणा तस्या अकरणम्–अनासेवनमिति, एतदुक्तं भवति–प्रबलप्रमादवान् नैव स्मरत्यस्यां वेलायां मया यत्सामायिकं कर्तव्यं कृतं न कृतमिति वा, स्मृतिमूलं च मोक्षसाधनानुष्ठानमिति, उक्तं च–"[3]ण सरइ पमादजुत्तो जो सामइयं कदा तु कातव्वं। कतमकतं वा तस्स हु कयंपि विफलं तयं णेयं॥१॥" सामायिकस्यानवस्थितस्य करणं अनवस्थितकरणं, अनवस्थितमल्पकालं वा करणानन्तरमेव त्यजति, यथाकथञ्चिद्वाऽनवस्थितं करोतीति, उक्तं च–"[4]कातूण तक्खणं चिय पारेति करेति वा जधिच्छाए। अणवट्ठियं सामइयं अणादरातो न तं सुद्धं ॥ १ ॥" उक्तं सातिचारं प्रथमं शिक्षापदव्रतमधुना द्वितीयं प्रतिपादयन्नाह–

६प्रत्याख्यानाध्य० श्रावकव्रताधि०

● **दिसिव्वयगहियस्स दिसापरिमाणस्स पइदिणं परिमाणकरणं देसावगासियं, देसावगासियस्स समणो० इमे पञ्च०, तंजहा–आणवणप्पओगे पेसवणप्पओगे सद्दाणुवाए रूवाणुवाए बहिया पुग्गलपक्खेवे ॥ १० ॥ (सूत्रं)**

॥८३४॥

---

१ कृतसामायिकः पूर्वं बुद्ध्या प्रेक्ष्य भाषेत । सदा निरवद्यं वचनमन्यथा सामायिकं न भवेत् ॥ १ ॥ २ अनिरीक्ष्याप्रमृज्य स्थण्डिलात् स्थानादि सेवमानः । हिंसाऽभावेऽपि न स कृतसामायिकः प्रमादात् ॥ १ ॥ ३ न स्मरति प्रमादयुक्तो यः सामायिकं तु कदा कर्त्तव्यं । कृतमकृतं वा तस्य हु कृतमपि विफलं तकत् ज्ञेयं ॥ १ ॥ ४ कृत्वा तत्क्षणमेव पारयति करोति वा यदृच्छया । अनवस्थितं सामायिकमनादरात् न तत् शुद्धम् ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अथ दिशा-व्रतस्य वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [सू.१०]

दीप अनुक्रम [७८]

दिग्व्रतं प्राग् व्याख्यातमेव तद्गृहीतस्य दिक्परिमाणस्य दीर्घकालस्य यावज्जीवसंवत्सरचतुर्मासादिभेदस्य योजनशतादिरूपत्वात् प्रत्यहं तावत्परिमाणस्य गन्तुमशक्तत्वात् प्रतिदिनं–प्रतिदिवसमित्येतच्च प्रहरमुहूर्त्ताद्युपलक्षणं प्रमाणकरणं–दिवसादिगमनयोग्यदेशस्थापनं प्रतिदिनप्रमाणकरणं देशावकाशिकं, दिग्व्रतगृहीतदिक्परिमाणस्यैकदेशः–अंशः तस्मिन्नवकाशः–गमनादिचेष्टास्थानं देशावकाशस्तेन निर्वृत्तं देशावकाशिकं, एतच्चाणुव्रतादिगृहीतदीर्घतरकालावधिविरतेरपि प्रतिदिनसङ्क्षेपोपलक्षणमिति पूज्या वर्णयन्ति, अन्यथा तद्विषयसङ्क्षेपाभावाद् भावे वा पृथक्शिक्षापदभावप्रसङ्गादित्यलं विस्तरेण। एत्थ य सप्पदिट्ठंतं आयरिया पण्णवयंति, जधा सप्पस्स पुव्वं से बारसजोयणाणि विसओ आसि, पच्छा विज्जावादिएण ओसारेंतेण जोयणे दिट्ठिविसओ से ठवितो, एवं सावओवि दिसिव्वतागारे बहुयं अवरज्झियाउ, पच्छा देसावगासिएणं तंपि ओसारेति। अथवा विसदिट्ठंतो–अगतेण एक्काए अंगुलीए ठवितं, एवं विभासा। इदमपि शिक्षाव्रतमतिचाररहितमनुपालनीयमित्यत आह–'देसा० देशावकाशिकस्य–प्राग्निरूपितशब्दार्थस्य श्रमणोपासकेनामी पञ्चातिचारा ज्ञातव्या न समाचरितव्याः, तद्यथा–'आनयनप्रयोगः' इह विशिष्टे देशाधि(दि)के भूदेशाभिग्रहे परतः स्वयं गमनायोगाद्यदन्यः सचित्तादिद्रव्यानयने प्रयुज्यते सन्देशकप्रदानादिना त्वयेदमानेयमित्यानयनप्रयोगः, बलात् विनियोज्यः प्रेष्यः तस्य प्रयोगः यथाऽभिगृहीतपरविचारदेशव्यतिक्रमभयात् त्वयाऽवश्यमेव गत्वा मम गवाद्यानेयमिदं वा तत्र कर्तव्यमित्येवंभूतः प्रेष्यप्रयोगः। तथा शब्दानुपातः स्वगृहवृत्तिप्राकारकादिव्यवच्छिन्नभूदेशाभिग्रहेऽपि बहिः प्रयोजनो-

अत्र च सर्पदृष्टान्तमाचार्याः प्रज्ञापयन्ति, यथा पूर्वं तस्य सर्पस्य द्वादश योजनानि विषय आसीत्, पश्चाद्विद्यावादिनाऽपसारयता योजने तस्य दृष्टिविषयः स्थापितः, एवं श्रावकोऽपि दिग्व्रताकारे बह्वपराद्धवान् पश्चात् देशावकाशिकेन तदप्यपसारयति। अथवा विषदृष्टान्तः–अगदेनैकस्यामङ्गुलौ स्थापितं, एवं विभाषा

आ० १९८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.१०]

दीप अनुक्रम [७८]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥८३५॥

त्पत्तौ तत्र स्वयं गमनायोगात् वृत्तिप्राकारप्रत्यासन्नवर्तिनो बुद्धिपूर्वकं क्षुत्कासितादिशब्दकरणेन समवासितकान् बोधयतः शब्दस्यानुपातनम्-उच्चारणं तादृग् येन परकीयश्रवणविवरमनुपतत्यसाविति, तथा रूपानुपातः-अभिगृहीतदेशाद् बहिः प्रयोजनभावे शब्दमनुच्चारयत एव परेषां समीपानयनार्थं स्वशरीररूपदर्शनं रूपानुपातः, तथा बहिः पुद्गलप्रक्षेपः अभिगृहीत-देशाद् बहिः प्रयोजनभावे परेषां प्रबोधनाय लेष्टादिक्षेपः पुद्गलप्रक्षेप इति भावना, देशावकाशिकमेतदर्थमभिगृह्यते मा भूद् बहिर्गमनागमनादिव्यापारजनितः प्राण्युपमर्द इति, स च स्वयं कृतोऽन्येन वा कारित इति न कश्चित् फले विशेषः प्रत्युत गुणः स्वयंगमने ईर्यापथविशुद्धेः परस्य पुनरनिपुणत्वादशुद्धिरिति कृतं प्रसङ्गेन ॥ व्याख्यातं सातिचारं द्वितीयं शिक्षापदव्रतं, अधुना तृतीयमुच्यते, तत्रेदं सूत्रम्—

● पोसहोववासे चउव्विहे पन्नत्ते, तंजहा-आहारपोसहे सरीरसकारपोसहे बंभचेरपोसहे अव्वावारपोसहे, पोसहोववासस्स समणो० इमे पञ्च०, तंजहा-अप्पडिलेहियदुप्पडिलेहियसिज्जासंथारए अपमज्जियदुप्पमज्जिय-सिज्जासंथारए अप्पडिलेहियदुप्पडिलेहियउच्चारपासवणभूमीओ अप्पमज्जियदुप्पमज्जियउच्चारपासवण-भूमीओ पोसहोववासस्स सम्मं अणणुपाल(ण)या ॥ ११ ॥ (सूत्रं)

इह पौषधशब्दो रूढ्या पर्वसु वर्त्तते, पर्वाणि चाष्टम्यादितिथयः, पूरणात् पर्व, धर्मोपचयहेतुत्वादित्यर्थः, पौषधे उपव-सनं पौषधोपवासः नियमविशेषाभिधानं चेदं पोषधोपवास इति, अयं च पोषधोपवासश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-'आहा-रपोषधः' आहारः प्रतीतः तद्विषयस्तन्निमित्तं पोषध आहारपोषधः, आहारनिमित्तं धर्मपूरणं पर्वेति भावना, एवं शरीरसत्कार-

६प्रत्याख्या नाध्य० श्रावकव्र-ताधि०

॥८३५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अथ पौषधोपवास व्रतस्य वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [सू.११]

दीप अनुक्रम [७९]

पोषधः ब्रह्मचर्यपोषधः, अत्र चरणीयं चर्यं 'अवो यदि'त्यस्मादधिकारात् 'गदमदचरयमश्चानुपसर्गात्' (पा० ३-१-१००) इति यत्, ब्रह्म-कुशलानुष्ठानं, यथोक्तं-"ब्रह्म वेदा ब्रह्म तपो, ब्रह्म ज्ञानं च शाश्वतम् ।" ब्रह्म च तत् चर्यं चेति समासः शेषं पूर्ववत् । तथा अव्यापारपोषधः । एत्थ पुण भावत्थो एस-आहारपोसधो दुविधो-देसे सवे य, देसे अमुगा विगती आयंबिलं वा एक्कसिं वा दो वा, सवे चतुव्विधोऽवि आहारो अहोरत्तं पच्चक्खातो, सरीरपोषधो ण्हाणुवट्टणवण्णगविलेवणपुप्फगंधतंबोलाणं वत्थाभरणाणं च परिच्चागो य, सोवि देसे सवे य, देसे अमुगं सरीरसक्कारं करेमि अमुगं न करेमित्ति, सवे अहोरत्तं, वंभचेरपोषधो देसे सवे य, देसे दिवा रत्तिं एक्कसिं दो वा वारेत्ति, सवे अहोरत्तिं बंभयारी भवति, अवावारे पोसधो दुविहो देसे सवे य, देसे अमुगं वावारं ण करेमि, सवे सयलवावारे हलसगडघरपरक्कमादीओ ण करेति, एत्थ जो देसपोसधं करेति सामाइयं करेति वा ण वा, जो सवपोसधं करेति सो णियमा कयसामाइतो, जति ण करेति तो णियमा वंचिज्जति, तं कहिं ?, चेतियघरे साधूमूले वा घरे वा पोसधसालाए वा उम्मुक्कमणिसुवण्णो पढंतो पोत्थगं वा वायंतो

१ अत्र पुनर्भावार्थ एषः-आहारपोषधो द्विविधः-देशतः सर्वतश्च, देशे अमुका विकृतिः आचामाम्लं वा एकशो द्विर्वा, सर्वतश्चतुर्विधोऽप्याहारोऽहोरात्रं प्रत्याख्यातः, शरीरपोषधः स्नानोद्वर्त्तनवर्णकविलेपनपुष्पगन्धताम्बूलानां वस्त्राभरणानां च परित्यागात्, सोऽपि देशतः सर्वतश्च देशतोऽमुकं शरीरसत्कारं करोम्यमुकं न करोमि, सर्वतोऽहोरात्रं, ब्रह्मचर्यपोषधो देशतः सर्वतश्च, देशतो दिवा रात्रौ वा एकशो द्विर्वा, सर्वतोऽहोरात्रं ब्रह्मचारी भवति, अव्यापारपोषधो द्विविधो देशतः सर्वतश्च, देशतोऽमुकं व्यापारं न करोमि सर्वतः सकलव्यापारान् हलशकटगृहपराक्रमादिकान् न करोति, अत्र यो देशपोषधं करोति सामायिकं करोति वा नं वा, यः सर्वपोषधं करोति स निमात् कृतसामायिकः, यदि न करोति तदा नियमाद्वञ्च्यते, तत् क ?, चैत्यगृहे साधुमूले वा गृहे वा पोषधशालायां वा, उन्मुक्तमणिसुवर्णः पठन् पुस्तकं वा वाचयन्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.११]

दीप अनुक्रम [७९]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥८३६॥

६प्रत्याख्या नाध्य० श्रावकव्र-ताधि०

धम्मं झाणं झायति, जधा एते साधुगुणा अहं असमत्थो मंदभग्गो धारेतुं विभासा । इदमपि च शिक्षापदव्रतमतिचाररहितमनुपालनीयमित्यत आह–'पोसधोववासस्स समणो'०पोषधोपवासस्य निरूपितशब्दार्थस्य श्रमणोपासकेनामी पञ्चातिचारा ज्ञातव्या न समाचरितव्याः, तद्यथा–अप्रत्युपेक्षितदुष्प्रत्युपेक्षितशय्यासंस्तारौ, इह संस्तीर्यते यः प्रतिपन्नपोषधोपवासेन दर्भकुशकम्बलीवस्त्रादिः स संस्तारः शय्या प्रतीता प्रत्युपेक्षणं–गोचरापन्नस्य शय्यादेश्चक्षुषा निरीक्षणं न प्रत्युपेक्षणं अप्रत्युपेक्षणं दुष्टम्–उद्भ्रान्तचेतसा प्रत्युपेक्षणं दुष्प्रत्युपेक्षणं ततश्चाप्रत्युपेक्षितदुष्प्रत्युपेक्षितौ शय्यासंस्तारौ चेति समासः, शय्यैव वा संस्तारः शय्यासंस्तारः, इत्येवमन्यत्राक्षरगमनिका कार्येति, उपलक्षणं च शय्यासंस्ताराद्युपयोगिनः पीठ(फल)कादेरपि । एत्थं पुण सामायारी–कडपोसधो णो अप्पडिलेहिया सज्जं दुरूहति, संथारगं वा दुरुहइ, पोसहसालं वा सेवइ, दब्भवत्थं वा सुद्धवत्थं वा भूमीए संथरति, काइयभूमितो वा आगतो पुणरवि पडिलेहति, अण्णधातियारो, एवं पीढगादिसुवि विभासा । तथा अप्रमार्जितदुष्प्रमार्जितशय्यासंस्तारौ, इह प्रमार्जनं–शय्यादेरासेवनकाले वस्त्रोपान्तादिनेति, दुष्टम्–अविधिना प्रमार्जनं शेषं भावितमेव, एवं उच्चारप्रश्रवणभूमावपि, उच्चारप्रश्रवणं निष्ठ्यूतखेलमलाद्युपलक्षणं, शेषं भावितमेव । तथा पोषधस्य सम्यक्–प्रवचनोक्तेन विधिना निष्प्रकम्पेन चेतसा अननुपालनम्–अनासेवनम् । एत्थं भावना–कतपोसधो

॥८३६॥

१ धर्मध्यानं ध्यायति, यथा साधुगुणानेतानहं मन्दभाग्योऽसमर्थो धारयितुं विभाषा । २ अत्र पुनः सामाचारी–कृतपोषधो नाप्रतिलिख्य शय्यामारोहति संस्तारकं वारोहति पोषधशालां वा सेवते दर्भवस्त्रं वा शुद्धवस्त्रं वा भूमौ संस्तृणाति, कायिकीभूमित आगतो वा पुनरपि प्रतिलिखति, अन्यथाऽतिचारः, एवं पीठकादिष्वपि विभाषा । ३ अत्र भावना कृतपोषधो-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.११]

दीप अनुक्रम [७९]

[१]अथिरचित्तो आहारे ताव सव्वं देसं वा पत्थेति, बिदियदिवसे पारणगस्स वा अप्पणो अट्ठाए आढत्तिं कारेइ, करेइ वा इमं २ वत्ति कहे धणियं वट्टइ, सरीरसक्कारे सरीरं वट्टेति, दाढियाउ केसे वा रोमराइं वा सिंगाराभिप्पायेण संठवेति, दाहे वा सरीरं सिंचति, एवं सव्वाणि सरीरविभूसाकरणाणि(ण)परिहरति बंभचेरे, इहलोए परलोए वा भोगे पत्थेति संवाधेति वा, अथवा सद्दफरिसरसरूवगंधे वा अहिलसति, कइया बंभचेरपोसहो पूरिहिइ, चइत्ता मो बंभचेरेणंति, अव्वावारे सावज्जाणि वावारेति कतमकतं वा चिंतेइ, एवं पंचतियारसुद्धो अणुपालेतव्वोत्ति । उक्तं सातिचारं तृतीयशिक्षापदव्रतं, अधुना चतुर्थमुच्यते, तत्रेदं सूत्रम्—

●अतिहिसंविभागो नाम नायागयाणं कप्पणिज्जाणं अन्नपाणाईणं दव्वाणं देसकालसद्धासक्कारकमजुअं पराए भत्तीए आयाणुग्गहबुद्धीए संजयाणं दाणं, अतिहिसंविभागस्स समणो० इमे पञ्च० तंजहा– सचित्तनिक्खेवणया सचित्तपिहणया कालइक्कमे परववएसे मच्छरिया य १२ ॥ (सूत्रं)

इह भोजनार्थं भोजनकालोपस्थाय्यतिथिरुच्यते, तत्रात्मार्थं निष्पादिताहारस्य गृहिव्रतिनः मुख्यः साधुरेवातिथिस्तस्य

१ ऽस्थिरचित्त आहारे तावत् सर्वं देशं वा प्रार्थयते द्वितीयदिवसे वाऽऽत्मनः पारणकस्यार्थं आदृतिं करोति कुरु वेदमिदं वेति कथायामत्यन्तं वर्त्तते, शरीरसत्कारे शरीरं वर्त्तयति श्मश्रुकेशान् वा रोमराजिं वा शृङ्गाराभिप्रायेण संस्थापयति, निदाघे वा शरीरं सिञ्चति, एवं सर्वाणि शरीरविभूषाकारणानि न परिहरति ब्रह्मचर्ये ऐहलौकिकान् पारलौकिकान् वा भोगान् प्रार्थयते संबाधयति वा, अथवा शब्दस्पर्शरसरूपगन्धान्वाऽभिलष्यति, कदा ब्रह्मचर्यपोषधः पूरयिष्यति त्याजिताः स्मो ब्रह्मचर्येणेति । अव्यापारे सावद्यान् व्यापारयति कृतमकृतं वा चिन्तयति, एवं पञ्चातिचारशुद्धोऽनुपालनीयः ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

अथ अतिथिसंविभाग व्रतस्य वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [सू.१२]

दीप अनुक्रम [८०]

संविभागोऽतिथिसंविभागः, संविभागग्रहणात् पश्चात्कर्मादिदोषपरिहारमाह, नामशब्दः पूर्ववत्, 'न्यायागताना'मिति न्यायः द्विजक्षत्रियविट्शूद्राणां स्ववृत्त्यनुष्ठानं स्वस्ववृत्तिश्च प्रसिद्धैव प्रायो लोकहेर्या तेन तादृशा न्यायेनागतानां–प्राप्तानाम्, अनेनान्यायागतानां प्रतिषेधमाह, कल्पनीयानामुद्गमादिदोषपरिवर्जितानामनेनाकल्पनीयानां निषेधमाह, अन्नपानादीनां द्रव्याणाम्, आदिग्रहणाद् वस्त्रपात्रौषधभेषजादिपरिग्रहः, अनेनापि हिरण्यादिव्यवच्छेदमाह, 'देशकालश्रद्धासत्कार-क्रमयुक्तं' तत्र नानाव्रीहिकोद्रवकङ्गुगोधूमादिनिष्पत्तिभाग् देशः सुभिक्षदुर्भिक्षादिः कालः विशुद्धश्चित्तपरिणामः श्रद्धा अभ्युत्थानासनदानवन्दनानुव्रजनादिः सत्कारः पाकस्य पेयादिपरिपाट्या प्रदानं क्रमः, एभिर्देशादिभिर्युक्तं–समन्वितं, अनेनापि विपक्षव्यवच्छेदमाह, 'परया' प्रधानया भक्त्येति, अनेन फलप्राप्तौ भक्तिकृतमतिशयमाह, आत्मानुग्रहबुद्ध्या न पुनर्यत्यनुग्रहबुद्ध्येति, तथाहि–आत्मपरानुग्रहपरा एव यतयः संयता मूलगुणोत्तरगुणसम्पन्ना साधवस्तेभ्यो दानमिति सूत्राक्षरार्थः। [1]एत्थ सामाचारी–सावगेण पोसधं पारेंतेण णियमा साधूणमदातुं ण पारेयव्वं, अन्नदा पुण अनियमो–दातुं वा पारेति पारितो वा देइत्ति, तम्हा पुव्वं साधूणं दातुं पच्छा पारेतव्वं, कधं ?, जाधे देसकालो ताधे अप्पणो सरीरस्स विभूसं काउं साधुपडिस्सयं गंतुं णिमंतेति, भिक्खं गेण्हधत्ति, साधूण का पडिवत्ती ?, ताधे अण्णो पडलं अण्णो मुहणंतयं

॥८३७॥

१ अत्र सामाचारी–श्रावकेण पोषधं पारयता नियमात् साधुभ्योऽदत्त्वा न पारयितव्यं अन्यदा पुनरनियमः दत्त्वा वा पारयति पारयित्वा वा ददातीति, तस्मात् पूर्वं साधुभ्यो दत्त्वा पारयितव्यं, कथं ?, यदा देशकालस्तदाऽऽत्मनः शरीरस्य विभूषां कृत्वा साधुप्रतिश्रयं गत्वा निमन्त्रयते भिक्षां गृह्णीतेति, साधूनां का प्रतिपत्तिः ?–तदाऽन्यः पटलं अन्यो मुखानन्तकं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.१२]

दीप अनुक्रम [८०]

अण्णो भाणं पडिलेहेति, मा अंतराइयदोसा ठविंतगदोसा य भविस्संति, सो जति पढमाए पोरुसीए णिमंतेति अत्थि णमोक्कारसहिताइतो तो गेज्झति, अधव णत्थि ण गेज्झति, तं वहितव्वयं होति, जति घणं लगेज्जा ताधे गेज्झति संचिक्खाविज्जति, जो वा उग्घाडाए पोरिसिए पारेति पारणइत्तो अण्णो वा तस्स दिज्जति, पच्छा तेण सावगेण समगं गम्मति, संघाडगो वच्चति, एगो ण वट्टति पेसितुं, साधू पुरओ सावगो मग्गतो, घरं णेऊण आसणेण उवणिमंतिज्जति, जति णिविट्ठगा तो लट्ठयं, अध ण णिवेसंति तधावि विणयो पउत्तो, ताधे भत्तं पाणं सयं चेव देति, अथवा भाणं धरेति भज्जा देति, अथवा ठितीओ अच्छति जाव दिण्णं, साधूवि सावसेसं दव्वं गेण्हति, पच्छाकम्मपरिहारणट्ठा, दातूण वंदित्तुं विसज्जेति, विसज्जेत्ता अणुगच्छति, पच्छा सयं भुंजति, जं च किर साधूण ण दिण्णं तं सावगेण ण भोत्तव्वं, जति पुण साधू णत्थि ताधे देसकालवेलाए दिसालोगो कातव्वो, विसुद्धभावेण चिंतियव्वं–जति साधुणो होंता तो णित्थारितो

१ अन्यो भाजनं प्रतिलिखति माऽऽन्तरायिका दोषा भूवन् स्थापनादोषाश्च, स यदि प्रथमायां पौरुष्यां निमन्त्रयते अस्ति नमस्कारसहितस्तदा गृह्यतेऽथ च नास्ति न गृह्यते तद्वोढव्यं भवेत्, यदि घनं लगेत् तदा गृह्यते संरक्ष्यते, यो वोद्घाटपौरुष्यां पारयति पारणवानन्यो वा तस्मै दीयते, पश्चात्तेन श्रावकेण समं गम्यते संघाटको व्रजति एको न वर्त्तते प्रेषितुं, साधुः पुरतः श्रावकः पृष्ठतः, गृहं नीत्वाऽऽसनेन निमन्त्रयति, यदि निविष्टा लष्टं नाथ निविशन्ति तथापि विनयः प्रयुक्तो (भवति), तदा भक्तं पानं वा स्वयमेव ददाति अथवा भाजनं धारयति भार्या ददाति, अथवा स्थित एव तिष्ठति यावद्दत्तं, साधुरपि सावशेषं द्रव्यं गृह्णाति पश्चात्कर्मपरिहरणार्थाय, दत्त्वा वन्दित्वा विसर्जयति विसृज्यानुगच्छति, पश्चात् स्वयं भुङ्क्ते, यच्च किल साधुभ्यो न दत्तं न तच्छ्रावकेण भोक्तव्यं, यदि पुनः साधुर्नास्ति तदा देशकालवेलायां दिगालोकः कर्त्तव्यः, विशुद्धभावेन चिन्तयितव्यं–यदि साधवोऽभविष्यन् तदा निस्तारितोऽ•

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.१२]

दीप अनुक्रम [८०]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥८३८॥

६प्रत्याख्या नाध्य० श्रावकव्रताधि०

हौंतोत्ति विभासा । इदमपि च शिक्षापदव्रतमतिचाररहितमनुपालनीयमिति, अत आह–अतिथिसंविभागस्य–प्रागुनिरूपितशब्दार्थस्य श्रमणोपासकेनामी पञ्चातिचारा ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः, तद्यथा–'सचित्तनिक्षेपणं' सचित्तेषु–व्रीह्यादिषु निक्षेपणमन्नादेरदानबुद्ध्या मातृस्थानतः, एवं 'सचित्तपिधानं' सचित्तेन फलादिना पिधानं–स्थगनमिति समासः, भावना प्राग्वत्,'कालातिक्रम' इति कालस्यातिक्रमः कालातिक्रम इति उचितो यो भिक्षाकालः साधूनां तमतिक्रम्यानागतं वा भुङ्क्तेऽतिक्रान्ते वा, तदा च किं तेन लब्धेनापि कालातिक्रान्तत्वात् तस्य, उक्तं च–"काले दिण्णस्स पधेयणस्स अग्घो ण तीरते काउं । तस्सेव अकालपणामियस्स गेण्हंतया णत्थि ॥ १ ॥" 'परव्यपदेश' इत्यात्मव्यतिरिक्तो योऽन्यः स परस्तस्य व्यपदेश इति समासः, साधोः पोषधोपवासपारणकाले भिक्षायै समुपस्थितस्य प्रकटमन्नादि पश्यतः श्रावकोऽभिधत्ते–परकीयमिदमिति, नास्माकीनमतो न ददामि, किञ्चिद्याचितो वाऽभिधत्ते–विद्यमान एवामुकस्येदमस्ति, तत्र गत्वा मार्गयत यूयमिति, 'मात्सर्यं' इति याचितः कुप्यति सदपि न ददाति, 'परोन्नतिवैमनस्यं च मात्सर्यं'मिति, एतेन तावद् द्रमकेण याचितेन दत्तं किमहं ततोऽप्यून इति मात्सर्याद् ददाति, कषायकलुषितेनैव चित्तेन ददतो मात्सर्यमिति, व्याख्यातं सातिचारं चतुर्थं शिक्षापदव्रतं, अधुना इत्येष श्रमणोपासकधर्म्मः । आह–कानि पुनरणुव्रतादीनामित्वराणि यावत्कथिकानीति ?, अत्रोच्यते—

●इत्थं पुण समणोवासगधम्मे पंचाणुव्वयाइं तिन्नि गुणव्वयाइं आवकहियाइं, चत्तारि सिक्खावयाइं इत्तरियाइं, एयस्स पुणो समणोवासगधम्मस्स मूलवत्थुं सम्मत्तं, तंजहा–तं निसग्गेण वा अभिगमेण वा पंच- ॥८३८॥

१ भविष्यदिति विभाषा । २ काले दत्तस्य प्रहेणकस्यार्घो न शक्यते कर्तुम् । तस्यैवाकालदत्तस्य ग्राहका न सन्ति ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.१३]

दीप अनुक्रम [८१]

अईयारविसुद्धं अणुव्वयगुणव्वयाइं च अभिग्गहा अन्नेऽवि पडिमादओ विसेसकरणजोगा, अपच्छिमा मारणंतिया संलेहणाझूसणाराहणया, इमीए समणोवासएणं इमे पञ्च०, तंजहा–इहलोगासंसप्पओगे परलोगासंसप्पओगे जीवियासंसप्पओगे मरणासंसप्पओगे कामभोगासंसप्पओगे ॥ १३ ॥ (सूत्रं)

अत्र पुनः श्रमणोपासकधर्मे पुनःशब्दोऽवधारणार्थः, अत्रैव न शाक्यादिश्रमणोपासकधर्मे, सम्यक्त्वाभावेनाणुव्रताद्यभावादिति, वक्ष्यति च–‘एत्थ पुण समणोवासगधम्मे मूलवत्थुं संमत्त’मित्यादि, पञ्चाणुव्रतानि प्रतिपादितस्वरूपाणि त्रीणि गुणव्रतानि उक्तलक्षणान्येव ‘यावत्कथिकानी’ति सकृद्गृहीतानि यावज्जीवमपि भावनीयानि, चत्वारीति सङ्ख्या ‘शिक्षापदव्रतानी’ति शिक्षा–अभ्यासस्तस्य पदानि–स्थानानि तान्येव व्रतानि शिक्षापदव्रतानि, ‘इत्वराणी’ति तत्र प्रतिदिवसानुष्ठेये सामायिकदेशावकाशिके पुनः पुनरुच्चार्ये इति भावना, पौषधोपवासातिथिसंविभागौ तु प्रतिनियतदिवसानुष्ठेयौ न प्रतिदिवसाचरणीयाविति । आह–अस्य श्रमणोपासकधर्मस्य किं पुनर्मूलवस्त्विति ?, अत्रोच्यते, सम्यक्त्वं, तथा चाह ग्रन्थकारः–‘एतस्स पुणो समणोवासग०’ अस्य पुनः श्रमणोपासकधर्मस्य, पुनःशब्दोऽवधारणार्थः अस्यैव, शाक्यादिश्रमणोपासकधर्मे सम्यक्त्वाभावात् न मूलवस्तु सम्यक्त्वं, वसन्त्यस्मिन्नणुव्रतादयो गुणास्तद्भावभावित्वेनेति वस्तु मूलभूतं द्वारभूतं च तद् वस्तु च मूलवस्तु, तथा चोक्तम्–“द्वारं मूलं प्रतिष्ठानमाधारो भाजनं निधिः । द्विषट्कस्यास्य धर्मस्य, सम्यक्त्वं परिकीर्त्तितम्॥१॥”सम्यक्त्वं–प्रशमादिलक्षणं, उक्तं च–“प्रशमसंवेगनिर्वेदानुकम्पास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणं सम्यक्त्व”(तत्त्वा० भाष्ये अ०१सू०२)मिति, कथं पुनरिदं भवत्यत आह–‘तन्निसग्गेण०’तत्–वस्तुभूतं सम्यक्त्वं निसर्गेण वाऽधिगमेन वा भवतीति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.१३]
दीप अनुक्रम [८१]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥८३९॥

क्रिया, तत्र निसर्गः—स्वभावः अधिगमस्तु यथावस्थितपदार्थपरिच्छेद इति, आह—मिथ्यात्वमोहनीयकर्मक्षयोपशमादेरिदं भवति कथमुच्यते निसर्गेण वेत्यादि ?, उच्यते, स एव क्षयोपशमादिर्निसर्गाधिगमजन्मेति न दोषः, उक्तं च—“ऊसरदेसं दड्ढिल्लयं च विज्झाइ वणदवो पप्प । इय मिच्छस्स अणुदये उवसमसम्मं लभति जीवो ॥ १ ॥ जीवादीणमधिगमो मिच्छत्तस्स तु खयोवसमभावे । अधिगमसम्मं जीवो पावेइ विसुद्धपरिणामो ॥ २ ॥”त्ति, अलं प्रसङ्गेन, इह भवोदधौ दुष्प्रापां सम्यक्त्वादिभावरत्नावाप्तिं विज्ञायोपलब्धजिनप्रवचनसारेण श्रावकेण नितरामप्रमादपरेणातिचारपरिहारवता भवितव्यमित्यस्यार्थस्योक्तस्यैव विशेषख्यापनायानुक्तशेषस्य चाभिधानायेदमाह ग्रन्थकारः ‘पञ्चातिचारविसुद्ध’मित्यादि सूत्रं, इदं च सम्यक्त्वं प्राग्निरूपितशङ्कादिपञ्चातिचारविशुद्धमनुपालनीयमिति शेषः, तथा अणुव्रतगुणव्रतानि—प्राग्निरूपितस्वरूपाणि दृढमतिचाररहितान्येवानुपालनीयानि, तथाऽभिग्रहाः—कृतलोचघृतप्रदानादयः शुद्धा—भङ्गाद्यतिचाररहिता एवानुपालनीयाः, अन्ये च प्रतिमादयो विशेषकरणयोगाः सम्यक्परिपालनीयाः, तत्र प्रतिमाः—पूर्वोक्ताः ‘दंसणवयसामाइय’ इत्यादिना ग्रन्थेन, आदिशब्दादनित्यादिभावनापरिग्रहः, तथा अपश्चिमा मारणान्तिकी संलेखनाजोषणाऽऽराधना चातिचाररहिता पालनीयेत्यध्याहारः, तत्रैव पश्चिमैवापश्चिमा मरणं—प्राणत्यागलक्षणं, इह यद्यपि प्रतिक्षणमावीचीमरणमस्ति तथाऽपि

६प्रत्याख्यानाध्य० श्रावकव्रताधि० ॥८३९॥

१ ऊषरदेशं दग्धं च विध्यायति वनदवः प्राप्य । एवं मिथ्यात्वस्यानुदये औपशमिकसम्यक्त्वं लभते जीवः ॥ १ ॥ जीवादीनामधिगमो मिथ्यात्वस्य क्षयोपशमभावे । अधिगमसम्यक्त्वं जीवः प्राप्नोति विशुद्धपरिणामः ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[सू.१३]

दीप
अनुक्रम
[८१]

न तद् गृह्यते, किं तर्हि ?, सर्वायुष्कक्षयलक्षणमिति मरणमेवान्तो मरणान्तः तत्र भवा मारणान्तिकी बह्वच् (पूर्वपदात्) इति ठञ् (पा० ४–४–६४) संलिख्यतेऽनया शरीरकषायादीति संलेखना–तपोविशेषलक्षणा तस्याः जोषणं–सेवनं तस्याराधना–अखण्डकालस्य करणमित्यर्थः, चशब्दः समुच्चयार्थः।[1]एत्थ सामायारी–आसेवितगिहिधम्मेण किल सावगेण पच्छा णिक्खमितवं, एवं सावगधम्मो उज्जमितो होति, ण सक्कति ताधे भत्तपच्चक्खाणकाले संथारसमणेण होतवंति विभासा। आह उक्तम्–'अपश्चिमा मारणान्तिकी संलेखनाझोषणाऽऽराधना'ऽतिचाररहिता सम्यक् पालनीयेति वाक्यशेषः, अथ के पुनरस्या अतिचारा इति तानुपदर्शयन्नाह–'इमीए समणोवासएणं०' अस्या–अनन्तरोदितसंलेखनासेवनाराधनायाः श्रमणोपासकेनामी पञ्चातिचारा ज्ञातव्याः न समाचरितव्याः, तद्यथा–इहलोकाशंसाप्रयोगः, इहलोको–मनुष्यलोकस्तस्मिन्नाशंसा–अभिलाषस्तस्याः प्रयोग इति समासः श्रेष्ठी स्याममात्यो वेति, एवं 'परलोकाशंसाप्रयोगः' परलोके–देवलोके, एवं जीविताशंसाप्रयोगः, जीवितं–प्राणधारणं तत्राभिलाषप्रयोगः–यदि बहुकालं जीवेयमिति, इयं च वस्त्रमाल्यपुस्तकवाचनादिपूजादर्शनात् बहुपरिवारदर्शनाच्च, लोकश्लाघाश्रवणाच्चैवं मन्यते–जीवितमेव श्रेयः प्रत्याख्याताशनस्यापि, यत एवंविधा मदुद्देशेनेयं विभूतिर्विद्यत इति, 'मरणाशंसाप्रयोगः' न कश्चित्तं प्रतिपन्नानशनं गवेषयति न सपर्ययाऽऽद्रियते नैव कश्चित् श्लाघते, ततस्तस्यैवंविधश्चित्तपरिणामो जायते–यदि शीघ्रं म्रियेऽहमपुण्यकर्मेति, 'भोगाशंसाप्रयोगः' जन्मान्तरे चक्रवर्त्ती स्याम् वासुदेवो महामण्डलिकः शुभरूपवानित्यादि। उक्तः श्रावकधर्मः, व्याख्यातं सप्रभेदं देशो-

१ अत्र सामाचारी–आसेवितगृहिधर्मेण किल श्रावकेन पश्चान्निष्क्रान्तव्यं, एवं श्रावकधर्मो भवत्युद्यतः, न शक्नोति तदा भक्तप्रत्याख्यानकाले संस्तारश्रमणेन भवितव्यं, विभाषा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.१३]

दीप अनुक्रम [८१]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥८४०॥

त्तरगुणप्रत्याख्यानं, अधुना सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानमुच्यते, तत्रेयं गाथा—'पच्चक्खाणं' गाहा। अथवा देशोत्तरगुणप्रत्याख्यानं श्रावकाणामेव भवतीति तदधिकार एवोक्तं, सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानं तु लेशत उभयसाधारणमपीत्यतस्तदभिधित्सयाऽऽह—

पच्चक्खाणं उत्तरगुणेसु खमणाइयं अणेगविहं। तेण य इहयं पगयं तंपि य इणमो दसविहं तु ॥ १५६३ ॥
अणागयमइक्कंतं कोडियसहिअं निअंटिअं चेव। सागारमणागारं परिमाणकडं निरवसेसं ॥ १५६४ ॥
संकेयं चेव अद्धाए, पच्चक्खाणं तु दसविहं। सयमेवणुपालणियं, दाणुवएसे जह समाही ॥ १५६५ ॥

व्याख्या—प्रत्याख्यानं प्राग्निरूपितशब्दार्थं, 'उत्तरगुणेषु' उत्तरगुणविषयं प्रकरणात् साधूनां तावदिदमिति–क्षपणादि, क्षपणग्रहणाच्चतुर्थादिपरिग्रहः, आदिग्रहणाद्विचित्राभिग्रहपरिग्रहः, 'अनेकविध'मित्यनेकप्रकारं, प्रकारश्च वक्ष्यमाणस्तेनानेकविधेन, चशब्दादुक्तलक्षणेन च, 'अत्रे'ति सामान्येनोत्तरगुणप्रत्याख्याननिरूपणाधिकारे, अथवा चशब्दस्यैवकारार्थत्वात् तेनैव, 'अत्रे'ति सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानप्रक्रमे प्रकृतम्–उपयोगोऽधिकार इति पर्यायस्तदपि चेदं दशविधं तु–मूलापेक्षया दशविधं दशप्रकारकमेवेति गाथार्थः॥१५६३॥ अधुना दशविधमेवोपन्यस्यन्नाह—'अणागतं०'गाथा, अनागतकरणादनागतं, पर्युषणादावाचार्यादिवैयावृत्त्यकरणान्तरायसद्भावादारत एव तत्तपःकरणमित्यर्थः, एवमतिक्रान्तकरणादतिक्रान्तं, भावना प्राग्वत्। 'कोटिसहित'मिति कोटीभ्यां सहितं कोटिसहितं–मिलितोभयप्रत्याख्यानकोटि, चतुर्थादिकरणमेवेत्यर्थः, 'नियन्त्रितं चैव' नितरां यन्त्रितं नियन्त्रितं प्रतिज्ञातदिनादौ ग्लानाद्यन्तरायभावेऽपि नियमात् कर्त्तव्यमिति-हृदयं, 'साकारं' आक्रियन्त इत्याकाराः–प्रत्याख्यानापवादहेतवोऽनाभोगादयः सहाकारैः साकारं, तथाऽविद्यमानाकार- ॥८४०॥

६प्रत्याख्यानाध्य० श्रावकव्रताधि०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

मूल संपादने किञ्चित् स्खलनत्वात् अत्र निर्युक्ति-क्रमे एक अङ्क विस्मृतं दृश्यते (निर्युक्ति क्रम-१५६२ के बदले १५६३ छप गया है)

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८१..]

मनाकारं, 'परिमाणकृत'मिति दत्त्यादिकृतपरिमाणमिति भावना 'निरवशेष'मिति समग्राशनादिविषय इति गाथार्थः ॥ १५६४ ॥ 'सङ्केतं चैवे'ति केतं–चिह्नमङ्गुष्ठादि सह केतेन सङ्केतं सचिह्नमित्यर्थः, 'अद्धा य'त्ति कालाख्या, अद्धामाश्रित्य पौरुष्यादिकालमानमपीत्यर्थः, 'प्रत्याख्यानं तु दशविधं' प्रत्याख्यानशब्दः सर्वत्रानागतादौ सम्बध्यते, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वाद् व्यवहितोपन्यासाद् दशविधमेव, इह चोपाधिभेदात् स्पष्ट एव भेद इति न पौनरुक्त्यमाशङ्कनीयमिति । आह–इदं प्रत्याख्यानं प्राणातिपातादिप्रत्याख्यानवत् किं तावत् स्वयमकरणादिभेदभिन्नमनुपालनीयं आहोश्विदन्यथा ?, अन्यथैवेत्याह–स्वयमेवानुपालनीयं, न पुनरन्यकारणे अनुमतौ वा निषेध इति, आह च–'दाणुवदेसे जध समाधि'त्ति अन्याहारदाने यतिप्रदानोपदेशे च 'यथा समाधिः' यथा समाधानमात्मनोऽप्यपीडया प्रवर्त्तितव्यमिति वाक्यशेषः, उक्तं च–'भाँवितजिणवयणाणं ममत्तरहियाण णत्थि हु विसेसो। अप्पाणंमि परंमि य तो वज्जे पीडमुभओवि॥१॥"त्ति गाथार्थः ॥ १५६५ ॥ साम्प्रतमनन्तरोपन्यस्तदशविधप्रत्याख्यानाद्यभेदावयवार्थाभिधित्सयाऽऽह—

होही पज्जोसवणा मम य तया अंतराइयं हुज्जा । गुरुवेयावच्चेणं तवस्सिगेलन्नयाए वा ॥ १५६६ ॥
सो दाइ तवोकम्मं पडिवज्जे तं अणागए काले । एयं पच्चक्खाणं अणागयं होइ नायव्वं ॥ १५६७ ॥

भविष्यति पर्युषणा मम च तदा अन्तरायं भवेत्, केन हेतुनेत्यत आह–गुरुवैयावृत्त्येन तपस्विग्लानतया वेत्युपलक्षणमिदमिति गाथासमासार्थः ॥ १५६६ ॥ स इदानीं तपःकर्म प्रतिपद्येत तदनागतकाले तत्प्रत्याख्यानमेवम्भूतमनागत-

१ भावितजिनवचनानां ममत्वरहितानां नास्त्येव विशेषः । आत्मनि परस्मिंश्च ततो वर्जयेत् पीडामुभयोरपि ॥ १ ॥

आ० १४१

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दशविध प्रत्याख्यानस्य स्वरुपम् वर्णयते

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[८१..]

करणादनागतं ज्ञातव्यं भवतीति गाथार्थः ॥१५६७॥ इमो पुण एत्थ भावत्थो–अणागतं पच्चक्खाणं, जधा अणागतं तवं करेज्जा, पज्जोसवणागहणं एत्थ विकिट्ठं कीरति, सव्वजहन्नो अट्ठमं जधा पज्जोसवणाए, तथा चातुम्मासिए छट्ठं पक्खिए अब्भत्तट्ठं अण्णेसु य ण्हाणाणुजाणादिसु तहिं ममं अंतराइयं होज्जा, गुरू–आयरिया तेसिं कातव्वं, ते किं ण करेंति?, असहू होज्जा, अथवा अण्णा काइ आणत्तिगा होज्जा कायव्विया गामंतरादि सेहस्स वा आणेयव्वं सरीरवेयावडिया वा, ताधे सो उववासं करेति गुरुवेयावच्चं च ण सक्केति, जो अण्णो दोण्हवि समत्थो सो करेतु, जो वा अण्णो समत्थो उववासस्स सो करेति णत्थि ण वा लभेज्जा न याणेज्ज वा विधिं ताधे सो चेव पुव्वं उववासं कातूणं पच्छा तद्दिवसं भुंजेज्जा, तवसी णाम खमओ तस्स कातव्वं होज्जा, किं तदा ण करेति ?, सो तीरं पत्तो पज्जोसवणा उस्सारिता, असहुत्ते वा सयं पारावितो, ताधे सयं हिंडेतुं समत्थो जाणि अब्भासे तत्थ वच्चउ, णत्थि ण लहति सेसं जधा गुरूणं विभासा, गेलण्णं–जाणति जधा तहिं

---

१ अयं पुनरत्र भावार्थः–अनागतं प्रत्याख्यानं यथाऽनागतं तपः कुर्यात्, पर्युषणाग्रहणमत्र विकृष्टं क्रियते, सर्वजघन्यमष्टमं यथा पर्युषणायां, तथा चतुर्मास्यां षष्ठं पाक्षिकेऽभक्तार्थं, अन्येषु वा स्नानानुयानादिषु तदा ममान्तरायिकं भविष्यति, गुरवः–आचार्यास्तेषां कर्त्तव्यं, ते किं न कुर्वन्तिं ?, असहिष्णवो वा स्युः, अथवा अन्या वा काचिदाज्ञप्तिः कर्त्तव्या भवेत् ग्रामान्तरगमनादिका शैक्षकस्य वाऽऽनेतव्यं शरीरवैयावृत्यं वा, तदा स उपवासं करोति गुरुवैयावृत्यं च न शक्नोति, योऽन्यो द्वयोरपि समर्थः स करोतु, अन्यो वा यः समर्थ उपवासाय स करोति नास्ति न वा लभेत न जानीयाद्वा विधिं तदा स चैवोपवासं पूर्वं कृत्वा पश्चात् तद् (पर्व) दिवसे भुञ्जीत, तपस्वी नाम क्षपकस्तस्य कर्त्तव्यं भवेत्, किं तदा न करोति ?, स तीरं प्राप्तः पर्युषणा उत्सारिता, असहिष्णुत्वाद्वा स्वयं पारितवान्, तदा स्वयं हिण्डितुं समर्थो यानि समीपे तत्र व्रजतु, नास्ति न लभते शेषं यथा गुरूणां विभाषा, ग्लानत्वं–जानाति यथा तत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिवसे असहू होति, विज्जेण वा भासितं अमुगं दिवसं कीरहिति, अथवा सयं चेव सो गंडरोगादीहिं तेहिं दिवसेहिं असहू भवतित्ति, सेसविभासा जथा गुरुम्मि, कारणा कुलगणसंघे आयरियगच्छे वा तथेव विभासा, पच्छा सो अणागतकाले काऊणं पच्छा सो जेमेज्जा पज्जोसवणातिसु, तस्स जा किर णिज्जरा पज्जोसवणादीहि तहेव सा अणागते काले भवति। गतमनागतद्वारम्, अधुनाऽतिक्रान्तद्वारावयवार्थप्रतिपादनायाह—

पज्जोसवणाइ तवं जो खलु न करेइ कारणज्जाए। गुरुवेयावच्चेणं तवस्सिगेलन्नयाए वा ॥ १५६८ ॥
सो दाइ तवोकम्मं पडिवज्जइ तं अइच्छिए काले। एयं पच्चक्खाणं अइकंतं होइ नायव्वं ॥ १५६९ ॥
पट्ठवणओ अ दिवसो पच्चक्खाणस्स निट्ठवणओ अ। जहियं समिंति दुन्निवि तं भन्नइ कोडिसहियं तु ॥ १५७० ॥
मासे २ अ तवो अमुगो अमुगे दिणंमि एवइओ। हट्ठेण गिलाणेण व कायव्वो जाव ऊसासो ॥ १५७१ ॥
एयं पच्चक्खाणं नियंटियं धीरपुरिसपन्नत्तं। जं गिण्हंतऽणगारा अणिस्सि(भि)अप्पा अपडिबद्धा ॥ १५७२ ॥
चउदसपुव्वी जिणकप्पिएसु पढमंमि चेव संघयणे। एयं विच्छिन्नं खलु थेरावि तया करेसी य ॥ १५७३ ॥

पर्युषणायां तपो यः खलु न करोति कारणजाते सति, तदेव दर्शयति गुरुवैयावृत्त्येन तपस्विग्लानतया वेति गाथासमा-

---

१ दिवसेऽसहिष्णुर्भवति, वैद्येन वा भाषितं अमुष्मिन् दिवसे करिष्यते, अथवा स्वयमेव स गण्डरोगादिभिस्तेषु दिवसेषु असहिष्णुर्भावीति, शेषविभाषा यथा गुरौ, कारणात् कुलगणसङ्घेषु आचार्ये गच्छे वा तथैव विभाषा, पश्चात्सोऽनागतकाले कृत्वा पश्चात् स जेमेत् पर्युषणादिषु, तस्य या किल निर्जरा पर्युषणादिभिस्तथैव साऽनागते काले भवति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८१..]

सार्थः ॥ १५६८ ॥ स इदानीं तपःकर्म प्रतिपद्यते तदतिक्रान्ते काले एतत् प्रत्याख्यानं–एवंविधमतिक्रान्तकरणादतिक्रान्तं भवति ज्ञातव्यमिति गाथासमासार्थः ॥ १५६९ ॥ भावत्थो पुण पज्जोसवणाए तवं तेहिं चेव कारणेहिं न करेइ, जो वा न समत्थो उववासस्स गुरुतवस्सिगिलाणकारणेहिं सो अतिक्कंते करेति, तथेव विभासा । व्याख्यातमतिक्रान्तद्वारं, अधुना कोटीसहितद्वारं विवृण्वन्नाह—प्रस्थापकश्च–प्रारम्भकश्च दिवसः प्रत्याख्यानस्य निष्ठापकश्च–समाप्तिदिवसश्च यत्र–प्रत्याख्याने 'समिंति' त्ति मिलतः द्वावपि पर्यन्तौ तद् भण्यते कोटीसहितमिति गाथासमासार्थः ॥ १५७० ॥ भावत्थो पुण जत्थ पच्चक्खाणस्स कोणो कोणो य मिलति, कथं?–गोसे आवस्सए अभत्तट्ठो गहितो अहोरत्तं अच्छिऊण पच्छा पुणरवि अभत्तट्ठं करेति, बितियस्स पट्ठवणा पढमस्स निट्ठवणा, एते दोऽवि कोणा एगट्ठा मिलिता, अट्ठमादिसु दुहतो कोडिसहितं जो चरिमदिवसे तस्सवि एगा कोडी, एवं आयंबिलनिव्वीतियएगासणा एगट्ठाणगाणिवि, अथवा इमो अण्णो विही–अभत्तट्ठं कतं आयंबिलेण पारितं, पुणरवि अभत्तट्ठं करेति आयंबिलं च, एवं एगासणगादीहिवि संजोगो कातव्वो, णिव्वीतिगादिसु सव्वेसु सरिसेसु विसरिसेसु य । गतं कोटिसहितद्वारं, इदानीं नियन्त्रितद्वारं न्यक्षेण निरूपयन्नाह—मासे २

१ भावार्थः पुनः पर्युषणायां तपस्तैरेव कारणैर्न करोति, यो वा न समर्थ उपवासाय गुरुतपस्विग्लानकारणैः सोऽतिक्रान्ते करोति, तथैव विभाषा । २ भावार्थः पुनर्यत्र प्रत्याख्यानस्य कोणः कोणश्च मिलतः, कथं?, प्रत्यूषे आवश्यकेऽभक्तार्थो गृहीतः अहोरात्रं स्थित्वा पश्चात् पुनरपि अभक्तार्थं करोति, द्वितीयस्य प्रस्थापना प्रथमस्य निष्ठापना, एतौ द्वावपि कोणौ एकत्र मिलितौ, अष्टमादिषु द्विधातः कोटीसहितं यश्चरमदिवसः (स) तस्याप्येका कोटी, एवमाचामाम्लनिर्विकृतिकैकासनैकस्थानकान्यपि, अथवाऽयमन्यो विधिः–अभक्तार्थः कृत आचामाम्लेन पारयति, पुनरप्यभक्तार्थं करोति आचामाम्लं च, एवं एकासनादिभिरपि संयोगः कर्त्तव्यः, निर्विकृत्यादिषु सर्वेषु सदृशेषु विसदृशेषु च ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८१..]

च तपः अमुकं अमुके–अमुकदिवसे एतावत् षष्ठादि हृष्टेन–नीरुजेन ग्लानेन वा–अनीरुजेन कर्त्तव्यं यावदुच्छ्वासो यावदायुरिति गाथासमासार्थः ॥ १५७१ ॥ एतत् प्रत्याख्यानमुक्तस्वरूपं नियन्त्रितं धीरपुरुषप्रज्ञप्तं–तीर्थकरगणधरप्ररूपितं यद् गृह्णन्ति–प्रतिपद्यन्ते अनगारा–साधवः 'अनिभृतात्मानः' अनिदाना अप्रतिबद्धाः क्षेत्रादिष्विति गाथासमासार्थः ॥ १५७२ ॥ इदं चाधिकृतप्रत्याख्यानं न सर्वकालमेव क्रियते, किं तर्हि ?, चतुर्दशपूर्विजिनकल्पिकेषु प्रथम एव वज्रऋषभनाराचसंहनने,(अधुना तु)एतद् व्यवछिन्नमेव, आह–तदा पुनः किं सर्व एव स्थविरादयः कृतवन्तः आहोश्विज्जिनकल्पिकादय एवेति?, उच्यते, सर्व एव,तथा चाह–स्थविरा अपि तथा(दा-)चतुर्दशपूर्व्यादिकाले, अपिशब्दादन्ये च कृतवन्त इति गाथासमासार्थः॥१५७३॥ भावत्थो पुण नियंटितं णाम णियमितं, जथा एत्थ कायव्वं, अथवाऽच्छिण्णं जथा एत्थ अवस्सं कायव्वंति, मासे २ अमुगेहिं दिवसेहिं चतुत्थादि छट्ठादि अट्ठमादि एवतिओ छट्ठेण अट्ठमेण वा, हट्ठो ताव करेति चेव, जति गिलाणो हवति तथावि करेति चेव, णवरि ऊसासधरो, एतं च पच्चक्खाणं पढमसंघतणी अपडिबद्धा अणिस्सिता इत्थ य परत्थ य, अवधारणं मम असमत्थस्स अण्णो काहिति, एवं सरीरए अप्पडिबद्धा अणिस्सिता कुव्वंति, एतं पुण चोद्दसपुव्वीसु

१ भावार्थः पुनर्नियन्त्रितं नाम नियमितं यथाऽत्र कर्त्तव्यं, अथवाऽच्छिन्नं यथाऽत्रावश्यं कर्त्तव्यमिति, मासे २ अमुष्मिन् दिवसे चतुर्थादि षष्ठादि अष्टमादि एतावत्, षष्ठेनाष्टमेन वा, हृष्टस्तावत् करोत्येव, यदि ग्लानो भवति तथापि करोत्येव, परं उच्छ्वासधरः, एतच्च प्रत्याख्यानं प्रथमसंहननिनोऽप्रतिबद्धा अनिश्रिताः, अत्र चामुत्र च, अवधारणं ममासमर्थस्यान्यः करिष्यति, एवं शरीरेऽप्रतिबद्धा अनिश्रिताः कुर्वन्ति, एतत् पुनश्चतुर्दशपूर्विभिः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८१..]

पंढमसंघतणेण जिणकप्पेण य समं वोच्छिण्णं, तम्हि पुण काले आयरियपज्जंता थेरा तदा करेंता आसत्ति । व्याख्यातं नियन्त्रितद्वारं, साम्प्रतं साकारद्वारं व्याचिख्यासुराह—

मयहरगागारेहिं अन्नत्थवि कारणंमि जायंमि । जो भत्तपरिच्चायं करेइ सागारकडमेयं ॥ १५७४ ॥

अयं च महानयं च महान् अनयोरतिशयेन महान् महत्तरः, आक्रियन्त इत्याकाराः, प्रभूतैवंविधाकारसत्ताख्यापनार्थं बहुवचनमतो महत्तराकारैर्हेतुभूतैरन्यत्र वा—अन्यस्मिंश्चानाभोगादौ कारणजाते सति भुजिक्रियां करिष्येऽहमित्येवं यो भक्तपरित्यागं करोति सागारकृतमेतदिति गाथार्थः ॥१५७४॥ अवयवत्थो पुण सह आगारेहिं सागारं, आगारा उवरिं सुत्ताणुगमे भण्णिहिंति, तत्थ महत्तरागारेहिं—महल्लपयोयणेहिं, तेण अभत्तट्ठो पच्चक्खातो ताथे आयरिएहिं भण्णति—अमुगं गामं गंतवं, तेण निवेइयं जथा मम अज्ज अब्भत्तट्ठो, जति ताव समत्थो करेतु जातु य, ण तरति अण्णो भत्तट्ठितो अभत्तट्ठिओ वा जो तरति सो वच्चतु, णत्थि अण्णो तस्स वा कज्जस्स असमत्थो ताथे तस्स चेव अभत्तट्ठियस्स गुरू विसज्जयन्ति, एरिसस्स तं जेमंतस्स अणभिलासस्स अभत्तट्ठितणिज्जरा जा सा से भवति गुरुणिओएण, एवं उस्सूरलंभेवि विणस्सति अच्चंतं

॥८४३॥

१ प्रथमसंहननेन जिनकल्पेन च समं व्यवच्छिन्नं, तस्मिन् पुनः काले आचार्या जिनकल्पिकाः स्थविरास्तदा कुर्वन्त आसन् ।२ अवयवार्थः पुनः सहाकारैः साकारं, आकारा उपरि सूत्रानुगमे भणिष्यन्ते, तत्र महत्तराकारैः-महत्प्रयोजनैः, तेनाभक्तार्थः प्रत्याख्यातः तदाऽऽचार्यैर्भण्यते—अमुकं ग्रामं गन्तव्यं, तेन निवेदितं यथा ममाद्याभक्तार्थः, यदि तावत्समर्थः करोतु यातु च, न शक्नोति अन्यो भक्तार्थोऽभक्तार्थो वा यः शक्नोति स व्रजतु, नास्त्यन्यस्तस्य वा कार्यस्य ऽसमर्थः तदा तमेवाभक्तार्थिकं गुरवो विसृजन्ति, ईदृशस्य तं जेमतोऽनभिलाषस्याभक्तार्थनिर्जरा या सा तस्य भवति गुरुनियोगेन, एवमुत्सूरलाभेऽपि विनङ्क्ष्यति अत्यन्तं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[८१..]

विंभासा, जति थोवं ताथे जे णमोक्कारइत्ता पोरुसिइत्ता वा तेसिं विसज्जेज्जा जे ण वा पारणइत्ता जे वा असहू विभासा, एवं गिलाणकज्जेसु अण्णतरे वा कारणे कुलगणसंघकज्जादिविभासा, एवं जो भत्तपरिच्चागं करेति सागारकडमेतंति । गतं साकारद्वारं, इदानीं निराकारद्वारं व्याचिख्यासुराह—

निज्जायकारणंमी मयहरगा नो करंति आगारं । कंतारवित्तिदुब्भिक्खयाइ एयं निरागारं ॥ १५७५ ॥

निश्चयेन यातं–अपगतं कारणं–प्रयोजनं यस्मिन्नसौ निर्यातकारणस्तस्मिन् साधौ महत्तराः–प्रयोजनविशेषास्तत्फलाभावान्न कुर्वन्त्याकारान् कार्याभावादित्यर्थः, क ?–कान्तारवृत्तौ दुर्भिक्षतायां च–दुर्भिक्षभावे चेति भावः, अत्र यत् क्रियते तदेवंभूतं प्रत्याख्यानं निराकारमिति गाथार्थः ॥ १५७५ ॥ भावत्थो पुण णिज्जातकारणस्स तस्स जधा णत्थि एत्थ किंचिवि वित्ति ताहे महत्तरगादि आगारे ण करेति, अणाभोगसहसक्कारे करेज्ज, किं निमित्तं ?, कट्ठं वा अंगुलिं वा मुधे छुहेज्ज अणाभोगेणं सहसा वा, तेण दो आगारा कज्जंति, तं कहिं होज्जा ?, कंतारे जथा सिणपल्लिमादीसु, कंतारेसु वित्ती ण

---

१ विभाषा, यदि स्तोकं तदा ये नमस्कारसहितकाः पौरुषीया वा तेषां विसर्जयेत् ये न वा पारणवन्तो ये वाऽसहिष्णवःविभाषाः, एवं ग्लानकार्येषु अन्यतरस्मिन् वा कार्ये कुलगणसंघकार्यादिविभाषा, एवं यो भक्तपरित्यागं करोति साकारकृतमेतत् । २ भावार्थः पुनर्निर्यातकारणस्य तस्य यथा नास्ति अत्र काचिद्वृत्तिः तदा महत्तरादीनाकारान् न करोति, अनाभोगसहसाकारौ कुर्यात्, किंनिमित्तं ?, काष्ठं वाऽङ्गुलिं वा मुखे क्षिपेत् अनाभोगेन सहसा वा, तेन द्वावाकारौ क्रियेते, तत् क भवेत् ?, कान्तारे यथा शणपल्ल्यादिषु, कान्तारेषु वृत्तिं न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [८१..]

लहति, पडिणीएण वा पडिसिद्धं होज्जा, दुब्भिक्खं वा वट्टइ हिंडंतस्सवि ण लब्भति, अथवा जाणति जथा ण जीवामित्ति ताथे णिरागारं पच्चक्खाति । व्याख्यातमनाकारद्वारम् , अधुना कृतपरिमाणद्वारमधिकृत्याह—

दत्तीहि उ कवलेहि व घरेहिं भिक्खाहिं अहव दव्वेहिं । जो भत्तपरिचायं करेइ परिमाणकडमेयं ॥ १५७६ ॥

दत्तीभिर्वा कवलैर्वा गृहैर्भिक्षाभिरथवा द्रव्यैः--ओदनादिभिराहारायामितमानैर्यो भक्तपरित्यागं करोति 'परिमाणकडमेतं'—ति कृतपरिमाणमेतदिति गाथासमासार्थः ॥ १५७६ ॥ अवेयवत्थो पुण दत्तीहिं अज्ज मए एगा दत्ती दो वा ३–४–५ दत्ती, किं वा दत्तीए परिमाणं?, वच्चगंपि(सित्थगंपि)एक्कसिं छुब्भति एगा दत्ती, डोवलियंपि जतियाओ वारातो पप्फोडेति तावतियाओ ताओ दत्तीओ, एवं कवले एक्केण २ जाव बत्तीसं दोहि ऊणिया कवलेहिं, घरेहिं एगादिएहिं २ ३ ४। भिक्खाओ एगादियाओ २ ३ ४, दवं अमुगं ओदणे खज्जगविही वा आयंबिलं वा अमुगं वा कुसणं एवमादिविभासा । गतं कृतपरिणामद्वारं, अधुना निरवशेषद्वारावयवार्थं अभिधातुकाम आह—

सव्वं असणं सव्वं पाणगं सव्वखज्जभुज्जविहं । वोसिरइ सव्वभावेण एयं भणियं निरवसेसं ॥ १५७७ ॥

---

१ लभते, प्रत्यनीकेन वा प्रतिषिद्धं भवेत्, दुर्भिक्षं वा वर्त्तते हिंडमानेनापि न लभ्यते, अथवा जानाति यथा न जीविष्यामीति तदा निराकारं प्रत्याख्याति । २ अवयवार्थः पुनर्दत्तिभिः अद्य मया एका दत्तिर्द्वे वा ३ ४ ५ दत्तयः, किं वा दत्तेः परिमाणं ?, सिक्थकमप्येकशः क्षिपति एका दत्तिः दर्वीमपि यावतो वारान् प्रस्फोटयति तावत्यस्ता दत्तयः, एवं कवले एकेन यावत् द्वात्रिंशता द्वाभ्यामूना कवलाभ्यां, गृहैरेकादिभिः भिक्षा एकादिकाः २ ३ ४, द्रव्यममुकमोदनः खाद्यकविधिर्वा आचामाम्लं वा अमुकं वा द्विदलं एवमादि विभाषा ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८१..]

सर्वमशनं सर्वं वा पानकं सर्वखाद्यभोज्यं–विविधं खाद्यप्रकारं भोज्यप्रकारं च व्युत्सृजति–परित्यजति सर्वभावेन–सर्वप्रकारेण भणितमेतन्निरवशेषं तीर्थकरगणधरैरिति गाथासमासार्थः ॥ १५७७ ॥ वित्थरत्थो पुण जो भोअणस्स सत्तरविधस्स वोसिरति पाणगस्स अणेगविधस्स खंडपाणमादियस्स खाइमस्स अंबाइयस्स सादिमं अणेगविधं मधुमादि एतं सवं जाव वोसिरति एतं णिरवसेसं। गतं निरवशेषद्वारम् , इदानीं सङ्केतद्वारविस्तरार्थप्रतिपादनायाह—

अंगुट्ठमुट्ठिगंठीघरसेउस्सासथिवुगजोइक्खे। भणियं सकेयमेयं धीरेहिं अणंतनाणीहिं ॥ १५७८ ॥

अङ्गुष्ठश्च मुष्टिश्चेत्यादिद्वन्द्वः अङ्गुष्ठमुष्टिग्रन्थिगृहस्वेदोच्छ्वासस्तिबुकज्योतिष्कान् तान् चिह्नं कृत्वा यत् क्रियते प्रत्याख्यानं तत् भणितम्–उक्तं सङ्केतमेतत्, कैः ?–धीरैः–अनन्तज्ञानिभिरिति गाथासमासार्थः ॥ १५७८ ॥ अवयवत्थो पुण केतं नाम चिंधं, सह केतेन सङ्केतं, सचिह्नमित्यर्थः,'साधू सावगो वा पुण्णेवि पच्चक्खाणे किंचि चिण्हं अभिगिण्हति, जाव एवं तावाधं ण जिमेमित्ति, ताणिमाणि चिह्नानि, अंगुट्ठमुट्ठिगंठिघरसेऊसासथिवुगदीवताणि, तत्थ ताव सावगो पोरुसीपच्चक्खाइतो ताथे छेत्तं गतो, घरे वा ठितो ण ताव जेमेति, ताथे ण किर वट्टति अपच्चक्खाणस्स अच्छितुं, तदा

---

१ विस्तरार्थः पुनर्यो भोजनं सप्तदशविधं व्युत्सृजति पानीयमनेकविधं खण्डापानीयादि खाद्यमाम्रादि स्वाद्यमनेकविधं मध्वादि एतत् सर्वं यावद्व्युत्सृजति एतत् निरवशेषं। २ अवयवार्थः पुनः केतं नाम चिह्नं साधुः श्रावको वा पूर्णेऽपि प्रत्याख्याने किञ्चिच्चिह्नं अभिगृह्णाति यावदेवं तावदहं न जेमामि, तानीमानि चिह्नानि अङ्गुष्ठः मुष्टिर्ग्रन्थिर्गृहं स्वेदबिन्दुरुच्छ्वासाः स्तिबुको दीपः, तत्र तावत् श्रावकः पौरुषीप्रत्याख्यानवान् तदा क्षेत्रं गतः गृहं वा स्थितः न तावत् जेमति, तदा किल न वर्त्ततेऽप्रत्याख्यानेन स्थातुं, तदा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८१..]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥८४५॥

६प्रत्याख्यानाध्य० १० प्रत्याख्यानानि

अंगुट्ठचिंधं करेति, जाव ण मुयामि ताव न जेमेमित्ति, जाव वा गंठिं ण मुयामि, जाव घरं ण पविसामि, जाव सेओ ण णस्सति जाव वा एवतिया उस्सासा पाणियमंचिताए वा जाव एत्तिया थिबुगा उस्साबिंदूथिबुगा वा, जाव एस दीवगो जलति ताव अहं ण भुंजामित्ति, न केवलं भत्ते अण्णेसुवि अभिग्गहविसेसेसु संकेतं भवति, एवं ताव सावयस्स, साधुस्सवि पुण्णे पच्चक्खाणे किं अपच्चक्खाणी अच्छउ? तम्हा तेणवि कातवं सङ्केतमिति । व्याख्यातं सङ्केतद्वारं, साम्प्रतमद्धाद्वारप्रतिपिपादयिषयाह—

अद्धा पच्चक्खाणं जं तं कालप्पमाणछेएणं । पुरिमड्ढपोरिसीए मुहुत्तमासद्धमासेहिं ॥ १५७९ ॥

अद्धा–काले प्रत्याख्यानं यत् कालप्रमाणच्छेदेन भवति, पुरिमार्द्धपौरुषीभ्यां मुहूर्त्तमासार्द्धमासैरिति गाथासङ्क्षेपार्थः ॥ १५७९ ॥ अवयवत्थो पुण अद्धा णाम कालो कालो जस्स परिमाणं तं कालेणावबद्धं कालियपच्चक्खाणं, तंजथा-णमोक्कार पोरिसि पुरिमड्ढएकासणग अद्धमासमासं, चशब्देन दोण्णि दिवसा मासा वा जाव छम्मासित्ति पच्चक्खाणं, एतं अद्धापच्चक्खाणं । गतमद्धाप्रत्याख्यानं, इदानीं उपसंहरन्नाह—[ग्रं० २१५००] ॥८४५॥

१ अङ्गुष्ठचिह्नं करोति यावन्न मुञ्चामि तावन्न जेमामि यावद्वा ग्रन्थिं न मुञ्चामि यावद्वा गृहं न प्रविशामि यावद्वा स्वेदो न नश्यति यावद्वा एतावन्त उच्छ्वासाः पानीयमञ्चिकायां वा यावदेतावन्तः स्तिबुका अवश्यायबिन्दवो वा यावदेष दीपको ज्वलति तावदहं न भुञ्जे, न केवलं भक्तेऽन्येष्वपि अभिग्रहविशेषेषु संकेतं भवति, एवं तावत् श्रावकस्य, साधोरपि पूर्णे प्रत्याख्याने किमप्रत्याख्यानी तिष्ठतु? तस्मात् तेनापि कर्त्तव्यं संकेतमिति । २ अवयवार्थः पुनः अद्धा नाम कालः, कालो यस्य परिमाणं तत् कालेनावबद्धं कालिकं प्रत्याख्यानं, तद्यथा–नमस्कारसहितं पौरुषी पूर्वार्धैकाशनार्धमासमासानि चशब्देन द्वौ दिवसौ मासौ वा यावत् षण्मासाः इति प्रत्याख्यानं, एतदद्धाप्रत्याख्यानं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

भणियं दसविहमेयं पच्चक्खाणं गुरूवएसेणं। कयपच्चक्खाणविहिं इत्तो वुच्छं समासेणं ॥ १५८० ॥
आह जइ जीवघाए पच्चक्खाए न कारए अन्नं। भंगभयाऽसणदाणे धुव कारवणे य नणु दोसे ॥ १५८१ ॥
नो कयपच्चक्खाणो, आयरियाईण दिज्ज असणाई। न य विरईपालणाओ वेयावच्चं पहाणयरं ॥ १५८२ ॥
नो तिविहंतिविहेणं पच्चक्खइ अन्नदाणकारवणं। सुद्धस्स तओ मुणिणो न होइ तब्भंगहेउत्ति ॥ १५८३ ॥
सयमेवणुपालणियं दाणुवएसो य नेह पडिसिद्धो। ता दिज्ज उवइसिज्ज व जहा समाहीइ अन्नेसिं ॥ १५८४ ॥
कयपच्चक्खाणोऽवि य आयरियगिलाणबालवुड्ढाणं। दिज्जासणाइ संते लाभे कयवीरियायारो ॥ १५८५ ॥

भणितं दशविधमेतत् प्रत्याख्यानं गुरूपदेशेन, कृतं प्रत्याख्यानं येन स तथाविधस्तस्य विधिस्तं 'अतः' ऊर्ध्वं वक्ष्ये 'समासेन' सङ्क्षेपेणेति गाथार्थः ॥ १५८० ॥ प्रत्याख्यानाधिकार एवाह परः, किमाह ?–यथा जीवघाते–प्राणातिपाते प्रत्याख्याते सत्यसौ प्रत्याख्याता न कारयत्यन्यमिति–न कारयति जीवघातं अन्यप्राणिनमिति, कुतः ?–भङ्गभयात्–प्रत्याख्यानभङ्गभयादित्यर्थ, भावार्थः–अश्यत इत्यशनम्–ओदनादि तस्य दानम्–अशनदानं तस्मिन्नशनदाने,अशनशब्दः पानाद्युपलक्षणार्थः, ततश्चैतदुक्तं भवति–कृतप्रत्याख्यानस्य सतः अन्यस्मै अशनादिदाने ध्रुवं कारणमिति–अवश्यं भुजिक्रियाकारणं, अशनादिलाभे सति भोक्तुर्भुजिक्रियासद्भावात्, ततः किमिति चेत्, ननु दोषः–प्रत्याख्यानभङ्गदोष इति गाथार्थः ॥ १५८१ ॥ अतः–'नो कयपच्चक्खाणो आयरियाईण दिज्ज असणाई' यतश्चैवमतः न कृतप्रत्याख्यानः पुमानाचार्यादिभ्य आदिशब्दादुपाध्यायतपस्विशैक्षकग्लानवृद्धादिपरिग्रहः दद्यात्, किम् ? –अशनादि, स्यादेतद्–ददतो वैयावृत्य-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [८१..]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥८४६॥

लाभ इत्यत आह—न च विरतिपालनाद् वैय्यावृत्यं प्रधानतरमतः सत्यपि च लाभे किं तेनेति गाथार्थः ॥ १५८२ ॥ एवं विनेयजनहिताय पराभिप्रायमाशङ्क्य गुरुराह—न 'त्रिविधं' करणकारणानुमतिभेदभिन्नं 'त्रिविधेन' मनोवाक्काय-योगत्रयेण 'प्रत्याख्याति' प्रत्याचष्टे प्रक्रान्तमशनादि अतोऽनभ्युपगतोपालम्भश्चोदकमते, यतश्चैवम् अन्यस्मै दानम-शनादेरिति गम्यते, तेन हेतुभूतेन कारणं भुजिक्रियागोचरमन्यदानकरणं तच्छुद्धस्य–आशंसादिदोषरहितस्य ततः–तस्मात् मुनेः–साधोः न भवति तद्भङ्गहेतुः–प्रक्रान्तप्रत्याख्यानभङ्गहेतुः, तथाऽनभ्युपगमादिति गाथार्थः ॥१५८३॥ किंच—स्वयमेव–आत्मनैवानुपालनीयं प्रत्याख्यानमुक्तं निर्युक्तिकारेण, दानोपदेशौ च नेह प्रतिषिद्धौ, तत्रात्मनाऽऽनीय वितरणं दानं दानश्राद्धकादिकुलाख्यानं तूपदेश इति, यस्माद् एवं तस्माद् दद्यादुपदिशेद्वा, यथासमाधिना वा यथासामर्थ्येन 'अन्येभ्यो' बालादिभ्य इति गाथार्थः ॥ १५८४ ॥ अमुमेवार्थं स्पष्टयन्नाह 'कय'इत्यादि, निगदसिद्धा, [१]एत्थ पुण सामायारी–सयं अभुंजंतोवि साधूणं आणेत्ता भत्तपाणं देज्जा, संतं वीरियं ण निगूहितव्वं अप्पणो, संते वीरिए अण्णो णाऽऽणात्रेयव्वो, जथा अण्णो अमुगस्स आणेदु दिंति, तम्हा अप्पणो संते वीरिए आयरियगिलाणबालवुड्ढपाहुणगादीण गच्छस्स वा संणायकुलेहिंतो वा असण्णातएहिं वा लद्धिसंपुण्णो आणेत्ता देज्ज वा दवावेज्ज वा परिचिएसु वा संखडीए वा दवावेज्ज, दाणेत्ति गतं, उवदिसेज्ज

६ प्रत्याख्यानाध्य० १० प्रत्याख्यानानि

॥८४६॥

---

१ अत्र पुनः सामाचारी–स्वयमभुञ्जानोऽपि साधूभ्य आनीय भक्तपाने दद्यात् सद्वीर्यं न निगूहितव्यं आत्मनः, सति वीर्येऽन्यो नाऽऽज्ञापयितव्यः यथाऽन्योऽमुकस्मै आनीय ददातु, तस्मात् आत्मनः सति वीर्ये आचार्यग्लानबालवृद्धप्राघूर्णकादिभ्यो गच्छाय वा सज्ञातीयकुलेभ्यो वाऽसज्ञातीयेभ्यो वा लब्धिसंपूर्ण आनीय दद्यात् दापयेद्वा, परिचितेभ्यो वा सङ्खड्या वा दापयेत् , दानमिति गतं, उपदिशेद्वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८१..]

वा संविग्गअण्णसंभोइयाणं जथा एताणि दाणकुलाणि सड्ढगकुलाणि वा, अतरंतो संभोइयाणवि उवदिसेज्ज ण दोसो, अह पाणगस्स सण्णाभूमिं वा गतेण संखडीभत्तादिगं वा होज्ज ताहे साधूणं अमुगत्थ संखडित्ति एवं उवदिसेज्जा । उवदेसत्ति गतं । जहासमाही णाम दाणे उवदेसे अ जहासामत्थं, जति तरति आणेदुं देति, अह न तरति तो दवावेज्ज वा उवदिसेज्ज वा, जथा जथा साधूणं अप्पणो वा समाधी तथा तथा पयतितव्वं जहासमाधित्ति वक्खाणियं । अमुमेवार्थमुपदर्शयन्नाह भाष्यकारः—

संविग्गअण्णसंभोइयाण देसेज्ज सड्ढगकुलाइं । अतरंतो वा संभोइयाण देज्जा जहसमाही ॥ २४४ ॥ (भा०)

गतार्था, णवरमतरंतस्स अण्णसंभोइयस्सवि दातव्वं । साम्प्रतं प्रत्याख्यानशुद्धिः प्रतिपाद्यते, तथा चाह भाष्यकारः—

सोही पच्चक्खाणस्स छव्विहा समणसमयकेऊहिं । पन्नत्ता तित्थयरेहिं तमहं वुच्छं समासेणं ॥ २४५ ॥ (भा०)

सा पुण सद्दहणा जाणणा य विणयाणुभासणा चेव । अणुपालणा विसोही भावविसोही भवे छट्ठा ॥ १५८६ ॥

शोधनं शुद्धिः, सा प्रत्याख्यानस्य—प्राग्निरूपितशब्दार्थस्य षड्विधा—षट्प्रकारा श्रमणसमयकेतुभिः—साधुसिद्धान्तचिह्न-

१ संविग्नेभ्योऽन्यसांभोगिकेभ्यो यथैतानि दानकुलानि श्राद्धककुलानि वा, अशक्नुवन् सांभोगिकेभ्योऽप्युपदिशेन्न दोषः, अथ पानकस्य संज्ञाभूमिं वा गतेन संखडीभक्तादिकं वा भवेत् तदा साधुभ्योऽमुकत्र संखडीत्येवमुपदिशेत्, उपदेश इति गतं, यथासमाधिनाम दाने उपदेशे च यथासामर्थ्यं, यदि शक्नोति आनीय ददाति अथ न शक्नोति तदा दापयेद्वोपदिशेद्वा, यथा यथा साधूनामात्मनो वा समाधिस्तथा तथा प्रयतितव्यं यथासमाधीति व्याख्यातं ।

२ नवरमशक्नुवतोऽन्यसांभोगिकायापि दातव्यं

आ० १५२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८१..]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥८४७॥

भूतैः प्रज्ञप्ता–प्ररूपिता, कैः ?–तीर्थकरैः–ऋषभादिभिः, तामहं वक्ष्ये, कथं ?–समासेन–सङ्क्षेपेणेति गाथार्थः ॥ २४५ ॥ अधुना षड्विधत्वमुपदर्शयन्नाह—सा पुनः शुद्धिरेवं षड्विधा, तद्यथा श्रद्धानशुद्धिः ज्ञानशुद्धिश्च विनयशुद्धिः अनुभाषणाशुद्धिश्चैव, तथाऽनुपालनाविशुद्धिश्चैव भावशुद्धिर्भवति षष्ठी, पाठान्तरं वा 'सोहीसद्दहणे' त्यादि, तत्र शुद्धिशब्दो द्वारोपलक्षणार्थः, निर्युक्तिगाथा चेयमिति गाथासमासार्थः ॥ १५८६ ॥ अवयवार्थं तु भाष्यकार एव वक्ष्यति, तत्राद्यद्वारावयवार्थप्रतिपादनायाह—

पच्चक्खाणं सव्वन्नुदेसिअं जं जहिं जया काले। तं जो सद्दहइ नरो तं जाणसु सद्दहणसुद्धं ॥ २४६ ॥ (भा०)

पच्चक्खाणं जाणइ कप्पे जं जंमि होइ कायव्वं। मूलगुणे उत्तरगुणे तं जाणसु जाणणासुद्धं ॥ २४७ ॥ (भा०)

प्रत्याख्यानं सर्वज्ञभाषितं–तीर्थकरप्रणीतमित्यर्थः 'य'दिति यत् सप्तविंशतिविधस्यान्यतमं, सप्तविंशतिविधं च पञ्चविधं साधुमूलगुणप्रत्याख्यानं दशविधमुत्तरगुणप्रत्याख्यानं द्वादशविधं श्रावकप्रत्याख्यानं 'यत्र' जिनकल्पे चतुर्यामे पञ्चयामे वा श्रावकधर्मे वा 'यदा' सुभिक्षे दुर्भिक्षे वा पूर्वाह्णे पराह्णे वा काल इति–चरमकाले तत् यः श्रद्धत्ते नरः तत् तदभेदोपचारात् तस्यैव तथापरिणतत्वाज्जानीहि श्रद्धानशुद्धमिति गाथार्थः ॥ २४६ ॥ ज्ञानशुद्धं प्रतिपाद्यते, तत्र—प्रत्याख्यानं जानाति–अवगच्छति कल्पे–जिनकल्पादौ यत् प्रत्याख्यानं यस्मिन् भवति कर्त्तव्यं मूलगुणोत्तरगुणविषयं तज्जानीहि ज्ञानशुद्धमिति गाथार्थः ॥ २४७ ॥ विनयशुद्धमुच्यते, तत्रेयं गाथा—

किइकम्मस्स विसोही पउंजई जो अहीणमइरित्तं। मणवयणकायगुत्तो तं जाणसु विणयओ सुद्धं ॥ २४८ ॥ (भा०)

६ प्रत्याख्यानाध्य० १० प्रत्याख्यानानि

॥८४७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८१..]

अणुभासइ गुरुवयणं अक्खरपयवंजणेहिं परिसुद्धं। पंजलिउडो अभिमुहो तं जाणणु भासणासुद्धं ॥२४९॥ (भा०)
कंतारे दुब्भिक्खे आयंके वा महई समुप्पन्ने। जं पालियं न भग्गं तं जाणणु पालणासुद्धं ॥ २५० ॥ (भा०)
रागेण व दोसेण व परिणामेण व न दूसियं जं तु। तं खलु पच्चक्खाणं भावविसुद्धं मुणेयव्वं ॥ २५१ ॥ (भा०)
एएहिं छहिं ठाणेहिं पच्चक्खाणं न दूसियं जं तु। तं सुद्धं नायव्वं तप्पडिवक्खे असुद्धं तु ॥ २५२ ॥ (भा०)
थंभा कोहा अणाभोगा अणापुच्छा असंतइं। परिणामओ असुद्धो अवाउ जम्हा विउ पमाणं ॥ २५३ ॥ (भा०)

पच्चक्खाणं समत्तं

कृतिकर्मणः–वन्दनकस्येत्यर्थः विशुद्धिं–निरवद्यकरणक्रियां प्रयुङ्क्ते यः सः प्रत्याख्यानकाले अन्यूनातिरिक्तां विशुद्धिं मनोवाक्कायगुप्तः सन् प्रत्याख्यातृपरिणामत्वात् प्रत्याख्यानं जानीहि विनयतो–विनयेन शुद्धमिति गाथार्थः ॥ २४८ ॥ अधुनाऽनुभाषणशुद्धं प्रतिपादयन्नाह—कृतकृतिकर्मा प्रत्याख्यानं कुर्वन् अनुभाषते गुरुवचनं, लघुतरेण शब्देन भणतीत्यर्थः, कथमनुभाषते?–अक्षरपदव्यञ्जनैः परिशुद्धं, अनेनानुभाषणायत्नमाह, णवरं गुरू भणति वोसिरति, इमोवि भणति–वोसिरामो'त्ति, सेसं गुरुभणितसरिसं भाणितव्वं। किंभूतः सन् ?, कृतप्राञ्जलिरभिमुखस्तज्जानीह्यनुभाषणाशुद्धमिति गाथार्थः ॥ २४९ ॥ साम्प्रतमनुपालनाशुद्धमाह—कान्तारे–अरण्ये दुर्भिक्षे–कालविभ्रमे आतङ्के वा–ज्वरादौ महति समुत्पन्ने सति यत् पालितं यन्न भग्नं तज्जानीह्यनुपालनाशुद्धमिति। ऐत्थ उग्गमदोसा सोलस उप्पादणाएवि दोसा सोलस एसणादोसा

१ परं गुरुर्भणति–व्युत्सृजति, अयमपि भणति व्युत्सृजाम इति, शेषं गुरुभणितसदृशं भणितव्यं। २ अत्रोद्गमदोषाः षोडश उत्पादनाया अपि दोषाः षोडश एषणादोषा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८१..]

आवश्यक-हारिभद्रीया

॥८४८॥

दस एते सव्वे बायालीसं दोसा णिच्चपडिसिद्धा, एते कंतारे दुर्भिक्षादिसु ण भज्जंतित्ति गाथार्थः ॥ २५० ॥ इदानीं भावशुद्धमाह—रागेण वा–अभिष्वङ्गलक्षणेन द्वेषेण वा–अप्रीतिलक्षणेन, परिणामेन च–इहलोकाद्याशंसालक्षणेन स्तम्भादिना वा वक्ष्यमाणेन न दूषितं–न कलुषितं यत् तु–यदेव तत् खल्विति–तदेव खलुशब्दस्यावधारणार्थत्वात् प्रत्याख्यानं भावविशुद्धं 'मुणेयव्वं'ति ज्ञातव्यमिति गाथासमासार्थः ॥ अवयवत्थो पुण–रागेण एस पूइज्जदित्ति अहंपि एवं करेमि तो पुज्जिहामि एवं रागेण करेति, दोसेण तहा करेमि जहा लोगो ममहुत्तो पडति तेण एतस्स ण अड्डायति एवं दोसेण, परिणामेण णो इहलोगट्ठताए णो परलोगट्ठयाए नो कित्तिजसवण्णसद्दहेतुं वा अण्णपाणवत्थलोभेण सयणासणवत्थहेतुं वा, जो एवं करेति तं भावसुद्धं ॥२५१॥ एभिर्निरन्तरव्यावर्णितैः षड्भिः स्थानैः श्रद्धानादिभिः प्रत्याख्यानं न दूषितं–न कलुषितं यत् तु–यदेव तत् शुद्धं ज्ञातव्यं । तत्प्रतिपक्षे–अश्रद्धानादौ सति अशुद्धं तु–अशुद्धमेवेति गाथार्थः ॥ २५२ ॥ परिणामेन वा न प्रदूषितमित्युक्तं तत्र परिणामं प्रतिपादयन्नाह—स्तम्भात्–मानात्, क्रोधात्–प्रतीतात्, अनाभोगात्–विस्मृतेः अनापृच्छातः असन्ततेः (त्ततः) परिणामात् अशुद्धः अपायो वा निमित्तं यस्मादेवं तस्मात् प्रत्याख्यानचिन्तायां विद्वा-

६प्रत्याख्याध्य० १० प्रत्याख्यानानि

॥८४८॥

१ दश, एते सर्वे द्विचत्वारिंशत् दोषा नित्यं प्रतिषिद्धाः, एते कान्तारदुर्भिक्षादिषु न भज्यन्ते इति । २ अवयवार्थः पुना रागेणैष पूज्यते इत्यहमपि एवं करोमि ततः पूजयिष्ये एवं रागेण करोति, द्वेषेण तथा करोमि यथा लोको ममायत्तौ पतति तेनैनं नाद्रियते एवं द्वेपेण, परिणामेन नेहलोकार्थाय न परलोकार्थाय न कीर्त्तिवर्णयशःशब्दहेतोर्वा अन्नपानवस्त्रलोभेन शयनासनवस्त्रहेतोर्वा, य एवं करोति तत् भावशुद्धं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८१..]

न् प्रमाणं निश्चयनयदर्शनेनेति गाथार्थः ॥ २५३ ॥ थंभेणं एसो माणिज्जति अहंपि पच्चक्खामि तो माणिज्जामि, कोधेण पडिचोदणाइ अंबाडिओ णेच्छति जेमेतुं कोहेण अब्भत्तट्ठं करेति, अणाभोगेण ण याणति किं मम पच्चक्खाणंति जिमिएण संभरितं भग्गं पच्चक्खाणं, अणापुच्छा णाम अणापुच्छाए चेव भुंजति मा वारिज्जिहामि जहा तुमे अब्भत्तट्ठो पच्चक्खादोत्ति, अहवा जेमेमि तो भणिहामि वीसरितंति, 'असंतति'त्ति णत्थि एत्थ किंचि भोत्तबं वरं पच्चक्खातंति परिणामतोऽशुद्धोत्ति दारं । सो पुबवण्णितो इहलोगजसकित्तिमादि, अहवा एसेव थंभादि अवाउत्ति, अहं पच्चक्खामि, मा णिच्छुभीहामित्ति, अहवा एए ण पच्चक्खाति । एवं ण कप्पति विदू णाम जाणगो तस्स सुद्धं भवति सो अण्णधा ण करेति जम्हा, कम्हा ?, जाणगो, तम्हा विदू पमाणं, जाणंतो सुहं परिहरतित्ति भणितं होति, सो पमाणं, तस्य शुद्धं भवतीत्यर्थः । 'पच्चक्खाणं समत्तं' मूलद्वारगाथायां प्रत्याख्यानमिति द्वारं व्याख्यातं । शेषाणि तु प्रत्याख्यात्रादीनि पञ्च द्वाराणि नामनिष्पन्ननिक्षेपान्तर्गतान्यपि सूत्रानुगमोपरि व्याख्यास्यामः, किमिति?, अत्रोच्यते, येन प्रत्याख्यानं सूत्रानुगमेन परमार्थतः समासिं

---

१ स्तम्भेनैष मान्यते अहमपि प्रत्याख्यामि ततो मानयिष्ये, क्रोधेन प्रतिनोदनया निर्भर्त्सितो नेच्छति जिमितुं क्रोधेनाभक्तार्थं करोति, अनाभोगेन न जानाति किं मम प्रत्याख्यानमिति जिमितेम स्मृतं भग्नं प्रत्याख्यानं, अनापृच्छा नाम अनापृच्छ्यैव भुनक्ति मा वारिषि यथा त्वयाऽभक्तार्थः प्रत्याख्यात इति, अथवा जेमामि ततो भणिष्यामि विस्मृतमिति, असदिति नास्त्यत्र किञ्चिद् भोक्तव्यं वरं प्रत्याख्यातमिति परिणामतोऽशुद्ध इति द्वारं । स पूर्ववर्णित इहलोकयशः–कीर्त्तिवर्णादि, अथवैष एव स्तम्भादिरपाय इति, अहं प्रत्याख्यामि मा निश्चिकाशिषमिति, अथवैते न प्रत्याख्यान्ति, एवं न कल्पते, विदुर्नाम ज्ञायकः तस्य शुद्धं भवति, सोऽन्यथा न करोति यस्मात्, कस्मात् ?, ज्ञायकः, तस्माद्विदुः प्रमाणं, जानानः सुखं परिहरतीति भणितं भवति, स प्रमाणं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[८२]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥८४९॥

६प्रत्याख्यानाध्य० १० प्रत्याख्यानानि

यास्यतीति । अत्रान्तरेऽध्ययनशब्दार्थो निरूपणीयः, स चान्यत्र न्यक्षेण निरूपितत्वान्नेह प्रतन्यते, गतो नामनिष्पन्नो निक्षेपः, साम्प्रतं सूत्रालापकनिष्पन्नस्य निक्षेपस्यावसरः, स च सूत्रे सति भवति, सूत्रं चानुगमे, स च द्विधा–सूत्रानुगमो निर्युक्त्यनुगमश्च, तत्र निर्युक्त्यनुगमस्त्रिविधः, तद्यथा–निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगमः सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगमश्चेति, तत्र निक्षेपनिर्युक्त्यनुगमोऽनुगतो वक्ष्यते च, उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगमस्त्वाभ्यां द्वारगाथाभ्यामवगन्तव्यः, तद्यथा–'उद्देसे णिद्देसे य' इत्यादि, 'किं कतिविध'मित्यादि, सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगमस्तु सूत्रे सति भवति, सूत्रं च सूत्रानुगम इति, स चावसरप्राप्त एव, युगपच्च सूत्रादयो व्रजन्ति, तथा चोक्तं–"सुत्तं सुत्ताणुगमो सुत्तालावयगतो य णिक्खेवो । सुत्तप्फासियनिज्जुत्ति णया य समगं तु वच्चंति ॥ १ ॥" अत्राक्षेपपरिहारौ न्यक्षेण सामायिकाध्ययने निरूपितावेव नेह वितन्येते इत्यलं विस्तरेण । तत्रेदं सूत्रं—

● **सूरे उग्गए णमोक्कारसहितं पच्चक्खाति चउविहंपि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं, अण्णत्थ अणाभोगेणं सहसाकारेणं वोसिरामि ।**

अस्य व्याख्या–तल्लक्षणं–'संहिता च पदं चैव, पदार्थः पदविग्रहः । चालना प्रत्यवस्थानं, व्याख्या तन्त्रस्य षड्विधा ॥ १ ॥' तत्रास्खलितपदोच्चारणं संहिता निर्दिष्टैव, अधुना पदानि–सूर्ये उद्गते नमस्कारसहितं प्रत्याख्याति, चतुर्विधमपि आहारं अशनं पानं खादिमं स्वादिमं, अन्यत्रानाभोगेन सहसाकारेण व्युत्सृजति । अधुना पदार्थ उच्यते–तत्र 'अश् भोजने' ॥८४९॥

१ सूत्रं सूत्रानुगमः सूत्रालापकगतश्च निक्षेपः । सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिर्नयाश्च युगपदेव व्रजन्ति ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

अथ नमुक्कारसहितं आदि प्रत्याख्यानानि कथयते

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८२]

इत्यस्य ल्युडन्तस्य अश्यत इत्यशनं भवति, तथा 'पा पाने' इत्यस्य पीयत इति पानमिति, 'खाद्द भक्षणे'इत्यस्य च वक्त-व्यादिमन्प्रत्ययान्तस्य खाद्यत इति खादिमं भवति, एवं 'स्वद स्वर्द आस्वादने' इत्यस्य च स्वाद्यत इति स्वादिमं अथवा खाद्यं स्वाद्यं च, 'अन्यत्रे'ति परिवर्जनार्थं यथा 'अन्यत्र द्रोणभीष्माभ्यां, सर्वे योधाः पराङ्मुखा' इति, तथा आभोगनमा-भोगः न आभोगोऽनाभोगः, अत्यन्तविस्मृतिरित्यर्थः, तेन, अनाभोगं मुक्त्वेत्यर्थः, तथा सहसाकरणं सहसाकारः–अति-प्रवृत्तियोगादनिवर्त्तनमित्यर्थः, तेन तं मुक्त्वा–व्युत्सृजतीत्यर्थः। एष पदार्थः, पदविग्रहस्तु समासभाक्पदविषय इति क्वचि-देव भवति न सर्वत्र, स च यथासम्भवं प्रदर्शित एव, चालनाप्रत्यवस्थाने च निर्युक्तिकारः स्वयमेव दर्शयिष्यतीति सूत्र-समुदायार्थः ॥ अधुना सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्येदमेव निरूपयन्नाह—

असणं पाणगं चेव, खाइमं साइमं तहा। एसो आहारविही, चउव्विहो होइ नायव्वो ॥ १५८७ ॥

आसुं खुहं समेई, असणं पाणाणुवग्गहे पाणं। खे माइ खाइमंति य, साएइ गुणे तओ साई ॥ १५८८ ॥

अशनं–मण्डकौदनादि, पानं चैव–द्राक्षापानादि, खादिमं–फलादि तथा स्वादिमं–गुडताम्बूलपूगफलादि, एष आहार-विधिश्चतुर्विधो भवति ज्ञातव्य इति गाथार्थः ॥ १५८७ ॥ साम्प्रतं समयपरिभाषया शब्दार्थनिरूपणायाह—आशु–शीघ्रं क्षुधां–बुभुक्षां शमयतीत्यशनं, तथा प्राणानाम्–इन्द्रियादिलक्षणानां उपग्रहे–उपकारे यद् वर्त्तत इति गम्यते तत् पानमिति, खमिति–आकाशं तच्च मुखविवरमेव तस्मिन् मातीति खादिमं, स्वादयति गुणान्-रसादीन् संयमगुणान् वा यतस्ततः स्वादिमं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८२]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥८५०॥

६प्रत्याख्याना‍ध्य० १० प्रत्याख्यानानि

हेतुत्वेन तदेव स्वादयतीत्यर्थः । विचित्रं निरुक्तं पाठात्, भ्रमति च रौति च भ्रमर इत्यादिप्रयोगदर्शनात्, साधुरेवायमन्वर्थ इति गाथार्थः ॥ १५८८ ॥ उक्तः पदार्थः, पदविग्रहस्तु समासभाक्पदविषय इति नोक्तः । अधुना चालनामाह—

सव्वोऽविय आहारो असणं सव्वोऽवि वुच्चई पाणं । सव्वोऽवि खाइमंति य सव्वोऽवि य साइमं होई ॥१५८९॥

यद्यनन्तरोदितपदार्थापेक्षया अशनादीनि ततः सर्वोऽपि चाहारश्चतुर्विधोऽपीत्यर्थः अशनं, सर्वोऽपि चोच्यते पानं सर्वोऽपि च खादिमं सर्व एव स्वादिमं भवति, अन्यथा विशेषात्, तथाहि—यथैवाशनमोदनमण्डकादि क्षुधं शमयति तथैव पानकं द्राक्षाक्षीरपानादि खादिममपि च फलादि स्वादिममपि ताम्बूलपुगफलादि, यथा च पानं प्राणानामुपग्रहे वर्त्तते एवमशनादीन्यपि, तथा चत्वार्यपि खे मान्ति चत्वार्यपि वा स्वादयन्ति आस्वाद्यन्ते वेति न कश्चिद् विशेषः, तस्मादयुक्तमेवं भेद इति गाथार्थः ॥ १५८९ ॥ इयं चालना, प्रत्यवस्थानं तु यद्यपि एतदेवं तथापि [तुल्यार्थत्वप्राप्तावपि] रूढितो नीतितः प्रयोजनं संयमोपकारकमस्ति एवं कल्पनायाः, अन्यथा दोषः, तथा चाह—

जइ असणमेव सव्वं पाणग अविवज्जणंमि सेसाणं । हवइ य सेसविवेगो तेण विहत्ताणि चउरोऽवि ॥ १५९० ॥

यद्यशनमेव सर्वमाहारजातं गृह्यते ततः शेषापरिभोगेऽपि पानकादिवर्जने—उदकादिपरित्यागे शेषाणामाहारभेदानां निवृत्तिर्न कृता भवतीति वाक्यशेषः, ततः का नो हानिरिति चेत्? भवति शेषविवेकः—अस्ति च शेषाहारभेदपरित्यागः, न्यायोपपन्नत्वात्, प्रेक्षापूर्विकारितया त्यागपालनं न्यायः, स चेह सम्भवति, तेन विभक्तानि चत्वार्यपि अशनादीनि, तदेकभावेऽपि तत्तद्भेदपरित्यागे एतदुपपद्यत एवेति चेत्, सत्यमुपपद्यते दुरवसेयं तु भवति, तस्यैव देशस्त्यक्तस्तस्यैव नेति ॥८५०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८२]

'अर्द्धं कुक्कुट्याः पच्यते अर्द्धं प्रसवाय कल्प्यते' इति, अपरिणतानां श्रद्धानं च न जायते, एवं तु सामान्यविशेषभेदनिरूपणायां सुखावसेयं सुखश्रद्धेयं च भवति इति गाथार्थः ॥ १५९० ॥ तथा चाह—

असणं पाणगं चेव, खाइमं साइमं तहा । एवं परूवियंमी, सद्दहिउं जे सुहं होइ ॥ १५९१ ॥

अशनं पानकं चैव खादिमं स्वादिमं तथा, एवं प्ररूपिते–सामान्यविशेषभावेनाख्याते, तथावबोधात् श्रद्धातुं सुखं भवति, सुखेन श्रद्धा प्रवर्त्तते, उपलक्षणार्थत्वाद् दीयते पाल्यते च सुखमिति गाथार्थः ॥ १५९१ ॥ आह–मनसाऽन्यथा संप्रधारिते प्रत्याख्याने त्रिविधस्य प्रत्याख्यानं करोमीति वागन्यथा विनिर्गता चतुर्विधस्येति गुरुणाऽपि तथैव दत्तमत्र कः प्रमाणं ?, उच्यते, शिष्यस्य मनोगतो भाव इति, आह च—

अन्नत्थ निवडिए वंजणंमि जो खलु मणोगओ भावो । तं खलु पच्चक्खाणं न पमाणं वंजणच्छलणा ॥१५९२॥

अन्यत्र निपतिते व्यञ्जने–त्रिविधप्रत्याख्यानचिन्तायां चतुर्विध इत्येवमादौ निपतिते शब्दे यः खलु मनोगतो भावः प्रत्याख्यातुः खलुशब्दो विशेषणे अधिकतरसंयमयोगकरणापहृतचेतसोऽन्यत्र निपतिते न तु तथाविधप्रमादात् यो मनोगतो भावः आद्यः तत् खलु प्रत्याख्यानं प्रमाणं, अनेनापान्तरालगतसूक्ष्मविवक्षान्तरप्रतिषेधमाह, आद्याया एव प्रवर्त्तकत्वात्, व्यवहारदर्शनस्य चाधिकृतत्वाद्, अतः न प्रमाणं व्यञ्जनं–तच्छिष्याचार्ययोर्वचनं, किमिति ?, छलनाऽसौ व्यञ्जनमात्रं, तदन्यथाभावसद्भावादिति गाथार्थः ॥ १५९२ ॥ इदं च प्रत्याख्यानं प्रधाननिर्जराकारणमिति विधिवदनुपालनीयं, तथा चाह—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [८२]

फासियं पालियं चेव, सोहियं तीरियं तहा। किट्टिअमाराहिअं चेव, एरिसयंमी पयइयव्वं ॥ १५९३ ॥

स्पृष्टं–प्रत्याख्यानग्रहणकाले विधिना प्राप्तं पालितं चैव–पुनः पुनरुपयोगप्रतिजागरणेन रक्षितं शोभितं–गुर्वादिप्रदानशेषभोजनासेवनेन तीरितं–पूर्णेऽपि कालावधौ किञ्चित्कालावस्थानेन कीर्त्तितं–भोजनवेलायाममुकं मया प्रत्याख्यातं तत् पूर्णमधुना भोक्ष्य इत्युच्चारणेन आराधितं–तथैव एभिरेव प्रकारैः सम्पूर्णैर्निष्ठां नीतं यस्मादेवंभूतमेव तदाज्ञापालनादप्रमादाच्च महत्कर्मक्षयकारणं तस्माद् ईदृशि प्रयतितव्यमिति एवंभूत एव प्रत्याख्याने यत्नः कार्य इति गाथार्थः ॥ १५९३ ॥ साम्प्रतमनन्तरपारम्पर्येण तत्प्रत्याख्यानगुणानाह—

पचक्खाणंमि कए आसवदाराइं हुंति पिहियाइं। आसववुच्छेएणं तण्हावुच्छेअणं होइ ॥ १५९४ ॥
तण्हावोच्छेदेण य अउलोवसमो भवे मणुस्साणं। अउलोवसमेण पुणो पच्चक्खाणं हवइ सुद्धं ॥ १५९५ ॥
तत्तो चरित्तधम्मो कम्मविवेगो तओ अपुव्वं तु। तत्तो केवलनाणं तओ अ मुक्खो सयासुक्खो ॥ १५९६ ॥

प्रत्याख्याने कृते–सम्यग्निवृत्तौ कृतायां किम् ?–आश्रवद्वाराणि भवन्ति पिहितानि–तद्विषयप्रतिबद्धानि कर्मबन्धद्वाराणि भवन्ति स्थगितानि, तत्रावृत्तेः, आश्रवव्यवच्छेदेन च कर्मबन्धद्वारस्थगनेन च संवरणेनेत्यर्थः, किं ?–तृड्व्यवच्छेदनं भवति–तद्विषयाभिलाषनिवृत्तिर्भवतीति गाथार्थः ॥ १५९४ ॥ तृड्व्यवच्छेदेन च तद्विषयाभिलाषनिवृत्तौ च अतुलः–अनन्यसदृशः उपशमो–मध्यस्थपरिणामो भवति मनुष्याणां–जायते पुरुषाणां, पुरुषप्रणीतः पुरुषप्रधानश्च धर्म इति ख्यापनार्थं मनुष्यग्रहणम्, अन्यथा स्त्रीणामपि भवत्येव, अतुलोपशमेन पुनः–अनन्यसदृशमध्यस्थपरिणामेन पुनः

॥८५१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [८२]

प्रत्याख्यानं–उक्तलक्षणं भवति–शुद्धं जायते निष्कलङ्कमिति गाथार्थः ॥ १५९५ ॥ ततः प्रत्याख्यानाच्छुद्धाच्चारित्रधर्मः स्फुरतीति वाक्यशेषः, कर्मविवेकः–कर्मनिर्जरा ततः–चारित्रधर्मात्, ततश्चेति द्विरावर्त्यते ततश्च–तस्माच्च कर्मविवेकात् 'अपूर्व'मिति क्रमेणापूर्वकरणं भवति, ततः–अपूर्वकरणाच्छ्रेणिक्रमेण केवलज्ञानं, ततश्च–केवलज्ञानाद् भवोपग्राहिकर्मक्षयेण मोक्षः सदासौख्यः–अपवर्गो नित्यसुखो भवति, एवमिदं प्रत्याख्यानं सकलकल्याणैककारणं अतो यत्नेन कर्त्तव्यमिति गाथार्थः ॥ १५९६ ॥ इदं च प्रत्याख्यानं महोपाधेर्भेदाद् द्वादशविधं भवति आकारसमन्वितं वा गृह्यते पाल्यते वा, अत इदमभिधित्सुराह—

नमुक्कारपोरिसीए पुरिमड्ढेगासणेगठाणे य । आयंबिल अभत्तट्ठे चरमे य अभिग्गहे विगई ॥ १५९७ ॥
दो छच्च सत्त अट्ठ सत्तट्ठ य पंच छच्च पाणंमि । चउ पंच अट्ठ नव य पत्तेयं पिंडए नवए ॥ १५९८ ॥
दोच्चेव नमुक्कारे आगारा छच्च पोरिसीए उ । सत्तेव य पुरिमड्ढे एगासणगंमि अट्ठेव ॥ १५९९ ॥
सत्तेगट्ठाणस्स उ अट्ठेवायंबिलंमि आगारा । पंचेव अभत्तट्ठे छप्पाणे चरिमि चत्तारि ॥ १६०० ॥
पंच चउरो अभिग्गहि निव्वीए अट्ठ नव य आगारा । अप्पाउराण पंच उ हवंति सेसेसु चत्तारि ॥ १६०१ ॥

नमस्कार इत्युपलक्षणात् नमस्कारसहिते पौरुष्यां पुरिमार्द्धे एकाशने एकस्थाने च आचाम्ले अभक्तार्थे चरमे च अभिग्रहे विकृतौ, किं ?, यथासङ्ख्यमेते आकाराः, द्वौ षट् च सप्त अष्टौ सप्ताष्टौ पञ्च षट् पाने चतुः पञ्च अष्टौ नव प्रत्येकं पिण्डको नवक इति गाथाद्वयार्थः ॥ १५९७–१५९८ ॥ भावार्थमाह—द्वावेव नमस्कारे आकारौ, इह च नमस्कारग्रहणान्नमस्कार-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८३]

सहितं गृह्यते, तत्र द्वावेवाकारौ, आकारो हि नाम प्रत्याख्यानापवादहेतुः, इह च सूत्रं 'सूरे उग्गए णमोक्कारसहिसं पच्चक्खाइ' इत्यादि सागारं व्याख्यातमेव, षट् चेति पौरुष्यां तु, इह च पौरुषी नाम–प्रत्याख्यानविशेषस्तस्यां षट् आकारा भवन्ति, इह चेदं सूत्रम्—

॥८५२॥ ● पोरुसिं पच्चक्खाति, उग्गते सूरे चउव्विहंपि आहारं असणं ४ अण्णत्थऽणाभोगेणं सहसाकारेणं पच्छन्नकालेणं दिसामोहेणं साधुवयणेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ ।

अनाभोगसहसाकारसंगतिः पूर्ववत्, प्रच्छन्नकालादीनां त्विदं स्वरूपं–[1]पच्छण्णातो दिसा उ रएण रेणुणा पव्वएण वा अण्णएण वा अंतरिते सूरो ण दीसति, पोरुसी पुण्णत्तिकातुं पारितो, पच्छा णातं ताहे ठाइतव्वं ण भग्गं, जति भुंजति तो भग्गं, एवं सव्वेहिवि, दिसामोहेण कस्सइ पुरिसस्स कम्हिवि खेत्ते दिसामोहो भवति, सो पुरिमं पच्छिमं दिसं जाणति, एवं सो दिसामोहेण–अइरुग्गदंपि सूरं दट्ठुं उस्सूरीभूतंति मण्णति णाते ठाति, साधुणो भणंति–उग्घाडपोरुसी ताव सो पजिमितो, पारित्ता मिणति अन्नो वा मिणइ, तेणं से भुञ्जंतस्स कहितं ण पूरितंति, ताहे ठाइदव्वं, समाधी णाम तेण य पोरुसी

॥८५२॥

1 प्रच्छन्ना दिशो रजसा रेणुना पर्वतेन वाऽन्येन वाऽन्तरिते सूर्यो न दृश्यते, पौरुषी पूर्णेतिकृत्वा पारितवान्, पश्चात् ज्ञातं तदा स्थातव्यं, न भग्नं यदि भुङ्क्ते तदा भग्नं, सर्वैरप्येवं, दिग्मोहेन कस्यचित् पुरुषस्य कस्मिन्नपि क्षेत्रे दिग्मोहो भवति, स पूर्वां पश्चिमां दिशं जानाति, एवं स दिग्मोहेन अचिरोद्गतमपि सूर्यं दृष्ट्वा उत्सूर्यीभूतमिति मन्यते ज्ञाते तिष्ठति, साधवो भणन्ति– उद्घाटा पौरुषी तावत् स प्रजिमितः पारयित्वा मिनोति अन्यो वा मिनोति, तेन तस्मै भुञ्जानाय कथितं न पूरितमिति, तदा स्थातव्यं । समाधिर्नाम तेन च पौरुषी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[८४-९२]

पच्चक्खाता, आसुकारितं च दुक्खं जातं अण्णस्स वा, ताहे तस्स पसमणणिमित्तं पाराविज्जति ओसहं वा दिज्जति, एत्थंतरा णाते तहेव विवेगो, सप्तैव च पुरिमार्द्धे–पुरिमार्द्धं प्रथमप्रहरद्वयकालावधिप्रत्याख्यानं गृह्यते तत्र सप्त आकारा भवन्ति, इह च इदं सूत्रं–'सूरे उग्गते'इत्यादि, षडाकारा गतार्थाः, नवरं महत्तराकारः सप्तमः, असावपि सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्याने साकारे कृताधिकारे अत्रैव व्याख्यात इति न प्रतन्यते, एकाशने अष्टावेव, एकाशनं नाम सकृदुपविष्टपुताचालनेन भोजनं, तत्राष्टावाकारा भवन्ति, इह चेदं सूत्रं—

★ ●'एक्कासण'मित्यादि 'अण्णत्थ अणाभोगेणं सहसाकारेणं सागारियागारेणं आउंटणपसारणेणं गुरुअब्भुट्ठाणेणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरति। (सूत्रं)

अणाभोगसहसाकारा तहेव, सागारियं अद्धसमुद्दिट्ठस्स आगतं जति वोलति पडिच्छति, अह थिरं ताहे सज्झायवाघातोत्ति उट्ठेउं अण्णत्थ गंतूणं समुद्दिसति, हत्थं पादं वा सीसं वा(आउंटेज्ज)पसारेज्ज वा ण भज्जति, अब्भुट्ठाणारिहो आयरिओ पाहुणगो वा आगतो अब्भुट्ठेतव्वं तस्स, एवं समुद्दिट्ठस्स पारिट्ठावणिया जति होज्ज कप्पति, महत्तरागारसमाधि तु

---

१ प्रत्याख्याता, आशुकारि च दुःखं जातमन्यस्य वा, तदा तस्य प्रशमनानिमित्तं पार्यते ओषधं वा दीयते, अत्रान्तरे ज्ञाते तथैव विवेकः । अनाभोगसहसाकारौ तथैव, सागारिकोऽर्धसमुद्दिष्टे आगतः यदि व्यतिक्राम्यति प्रतीक्ष्यते अथ स्थिरस्तदा स्वाध्यायव्याघात इति उत्थायान्यत्र गत्वा समुद्दिश्यते, हस्तं पादं वा शीर्षं वा आकुञ्चयेत् प्रसारयेत् वा न भज्यते, अभ्युत्थानार्ह आचार्यः प्राघूर्णको वाऽऽगतोऽभ्युत्थातव्यं तस्य, एवं समुद्दिष्टे पारिष्ठापनिकी यदि भवेत् कल्पते, महत्तराकारसमाधी तु तथैव ।

आ० १९३ Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

★ मू.(८५) एगासणं० मू.(८६) एगट्ठाणं० मू.(८७) आयंबिलं० मू.(८८) सूरे उग्गए अभत्तट्ठं०
मू.(८९) दिवसचरिमं पच्चक्खाइ चउव्विहंपि असणं पाणं खाईमं साइमं०
मू.(९०) भवचरिमं पच्चक्खाइं० मू.(९१) अभिग्गहं पच्चक्खाइं० मू,(९२) निव्विगइयं पच्चक्खाइं०

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८४-९२]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥८५३॥

६प्रत्याख्यानाध्य० आकारार्थः

तहेव'त्ति गाथार्थः ॥ १५९९ ॥ 'सप्तैकस्थानस्य तु' एकस्थानं नाम प्रत्याख्यानं तत्र सप्ताकारा भवन्ति, इह चेदं सूत्रं— 'एगट्ठाण'मित्यादि ऍगट्ठाणगं जहा अंगोवंगं ठवितं तेण तहावट्ठितेणेव समुद्दिसियव्वं, आगारा से सत्त, आउंटणपसारणा णत्थि, सेसं जहा एक्कासणए । अष्टैवाचाम्लस्याकारा, इदं च बहुवक्तव्यमितिकृत्वा भेदेन वक्ष्यामः 'गोण्णं णामं तिविध'-मित्यादिना ग्रन्थेन, असम्मोहार्थं तु गाथैव व्याख्यायते, 'पञ्चाभक्तार्थस्य तु' न भक्तार्थोऽभक्तार्थः, उपवास इत्यर्थः, तस्य पंचाकारा भवन्ति, इह चेदं सूत्रं—'सूरे उग्गते'इत्यादि, तस्स पंच आगारा—अणाभोग० सहसा० पारि० महत्तरा० सव्वसमाधि० जति तिविधस्स पच्चक्खाति तो विकिंचणिया कप्पति, जति चतुव्विधस्स पच्चक्खातं पाणं च णत्थि तदा न कप्पति, तत्थ छ आगारा—लेवाडेण वा अलेवाडेण वा अच्छेण वा बहलेण वा ससित्थेण वा असित्थेण वा वोसिरति, वुत्तत्था एते छप्पि, एतेन षट् पान इत्येतदपि व्याख्यातमेव, 'चरिमे च चत्वार' इत्येतच्चरिमं दुविधं—दिवसचरिमं भवचरिमं वा, दिवसचरिमस्स चत्तारि, अण्णत्थणाभोगेणं सहसाकारेणं महत्तराकारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, भवचरिमं जावज्जीवियं तस्सवि एते चत्तारित्ति गाथार्थः ॥ १६०० ॥ पञ्च चत्वारश्चाभिग्रहे, निर्विकृतौ अष्टौ नव वा आकाराः,

---

१ एकस्थानकं यथा अङ्गोपाङ्गं स्थापितं तेन तथावस्थितेनैव समुद्देष्टव्यं, आकारास्तस्मिन् सप्त, आकुञ्चनप्रसारणं नास्ति, शेषं यथैकाशनके । तस्य पञ्चाकाराः–अनाभोग० सहसा० पारि० महत्तराकार० सर्वसमाधि०, यदि त्रिविधं प्रत्याख्याति तदा पारिष्ठापनिकी कल्पते, यदि चतुर्विधस्य प्रत्याख्यातं पानकं च नास्ति तदा न कल्पते, तत्र षडाकाराः–लेपकृता वा अलेपकृता वा अच्छेन वा बहलेन वा ससिक्थेन वा असिक्थेन वा व्युत्सृजति, उक्तार्थाः एते षडपि, चरमं द्विविधं–दिवसचरमं भवचरमं च, दिवसचरमे चत्वारः अन्यत्रानाभो० सहसा० महत्तरा० सर्वसमाधि०, भवचरमं यावज्जीविकं तस्याप्येते चत्वारः ।

॥८५३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८४-९२]

अप्रावरण इति–अप्रावरणाभिग्रहे पञ्चैवाकारा भवन्ति, शेषेष्वभिग्रहेषु दण्डकप्रमार्जनादिषु चत्वार इति गाथाऽक्षरार्थः १६०१॥ भावार्थस्तु 'अभिग्गहेसु वाउडत्तणं कोइ पच्चक्खाति, तस्स पंच–अणाभोग० सहसागार० (महत्तरा०) चोलपट्टगागार० सव्वसमाहिवत्तियागार० सेसेसु चोलपट्टगागारो णत्थि, निव्विगतीए अट्ठ नव य आगारा इत्युक्तं, तत्थ दस विगतीओ–खीरं दधि णवणीयं घयं तेल्लं गुडो मधुं मज्जं मंसं ओगाहिमगं च, तत्थ पंच खीराणि गावीणं महिसीणं अजाणं एलियाणं उट्टीणं, उट्टीणं दधिं णत्थि, णवणीतं घतंपि, ते दधिणा विणा णत्थित्ति, दधिणवणीतघताणि चत्तारि, तेल्लाणि चत्तारि खर (तिल) अदसिकुसुंभसरिसवाणं, एताओ विगतीओ, सेसाणि तेल्लाणि निव्विगतीतो, लेवाडाणि पुण होन्ति, दो वियडा–कट्ठणिप्फण्णं उच्छुमाईपिट्ठेण य फाणित्ता, दोण्णि गुडा दवगुडो पिंडगुडो य, मधूणि तिण्णि, मच्छियं कोन्तियं भामरं, पोग्गलाणि तिण्णि, जलयरं थलयरं खहयरं, अथवा चम्मं मंसं सोणितं, एयाओ णव विगतीतो, ओगाहिमगं दसमं, तावियाए अद्दहियाए एगं ओगाहिमेगं चलचलेंतं पच्चति सफेणं बितियततियं, सेसाणि अ जोगवाहीणं कप्पति, जति णज्जति अह एगेण चेव

१ अभिग्रहेषु प्रावरणं कोऽपि प्रत्याख्याति, तस्य पञ्च–अनाभोग० सहसा० महत्तरा० चोलपट्टा० सर्वसमाधि०, शेषेषु चोलपट्टकाकारो नास्ति, निर्विकृतौ अष्टौ नव चाकाराः। तत्र विकृतयो दश–क्षीरं दधि नवनीतं घृतं तैलं गुडो मधु मद्यं मांसं अवगाहिमं च, तत्र पञ्च क्षीराणि गवां महिषीणां अजानां एडकानामुष्ट्रीणां, उष्ट्रीणां दधि नास्ति, नवनीतं घृतमपि, ते दध्ना विना (न स्त इति) दधिनवनीतघृतानि चत्वारि, तैलानि चत्वारि तिलातसीकुसुम्भसर्षपाणां, एता विकृतयः, शेषाणि तैलानि निर्विकृतयः, लेपकारीणि पुनर्भवन्ति, द्वे मद्ये–काष्ठनिष्पन्नं इक्ष्वादिपिष्टेन च फाणयित्वा, द्वौ गुडौ–द्रवगुडः पिण्डगुडश्च, मधूनि त्रीणि–माक्षिकं कौन्तिकं भ्रामरं, पुद्गलानि त्रीणि–जलचरजं स्थलचरजं खचरजं च, अथवा चर्म मांसं शोणितं, एता नव विकृतयः, अवगाहिमं दशमं, तापिकायामार्द्रहणे एकमवगाहिमं चलचलत् पच्यते सफेणं द्वितीयं तृतीयं च, शेषाणि च योगवाहिनां कल्पन्ते, यदि ज्ञायते अथैकेनैवा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[८४-९२]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ||८५४||

पूअएण सव्वो चेव तावगो भरितो तो बितियं चेव कप्पति णिव्विगतियपच्चक्खाणाइतस्स, लेवाडं होति, एसा आयरिय- | ६प्रत्याख्या नाध्य० आकारार्थः
परंपरागता सामायारी । अधुना प्रकृतमुच्यते, क्वाष्टौ क्व वा नवाकारा इति ?, तत्र—

नवणीओगाहिमए अद्दवदहि(व)पिसियघयगुले चेव । नव आगारा तेसिं सेसदवाणं च अट्ठेव ॥ १६०२ ॥

'नवणीते ओगाहिमके अद्दवदवे'निगालित इत्यर्थः, पिसिते—मांसे घृते गुडे चैव, अद्रवग्रहणं सर्वत्राभिसम्बन्धनीयं, नव आकारा अमीषां विकृतिविशेषाणां भवन्ति शेषद्रवाणां—विकृतिशेषाणां अष्टावेवाकारा भवन्ति, उत्क्षिप्तविवेको न भवतीति गाथार्थः ॥ १६०२ ॥ इह चेदं सूत्रं—

'णिव्वियतियं पच्चक्खाती'त्यादि अन्नत्थऽणाभोगेणं सहसाकारेणं लेवालेवेणं गिहत्थसंसट्ठेणं उक्खित्तविवेगेणं पडुच्चमक्खिएणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरति । (सूत्रं)

इदं च प्रायो गतार्थमेव, विशेषं तु 'पंचेव य खीराइं' इत्यादिना ग्रन्थेन भाष्यकारोपन्यासक्रमप्रामाण्यादुत्तरत्र वक्ष्यामः, अधुना तदुपन्यस्तमेवाचामाम्लमुच्यते—

गोन्नं नामं तिविहं ओअण कुम्मास सत्तुआ चेव । इक्किक्कंपि य तिविहं जहन्नयं मज्झिमुक्कोसं ॥ १६०३ ॥ ||८५४||

आयामाम्लमिति गोण्णं नाम, आयामः—अवशायनं आम्लं—चतुर्थरसं ताभ्यां निर्वृत्तं आयामाम्लं, इदं चोपाधिभेदात्

१ पूपकेन सर्व एव तापकः पूरितस्तदा द्वितीयमेव कल्पते निर्विकृतिकप्रत्याख्यानिनः, लेपकृत् भवति । एषाऽऽचार्यपरम्परागता सामाचारी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८४-९२]

त्रिविधं भवति, ओदनः कुल्माषाः सक्तवश्चैव, ओदनमधिकृत्य कुल्माषान् सक्तूंश्चेति, एकैकमपि चामीषां त्रिविधं भवति- जघन्यकं मध्यमं उत्कृष्टं चेति। कथमित्यत्राह—

दव्वे रसे गुणे वा जहन्नयं मज्झिमं च उक्कोसं। तस्सेव य पाउग्गं छलणा पंचेव य कुडंगा ॥ १६०४ ॥

द्रव्ये रसे गुणे चैव द्रव्यमधिकृत्य रसमधिकृत्य गुणं चाधिकृत्येत्यर्थः, किं ?—जघन्यं मध्यममुत्कृष्टं चेति, तस्यैवायामाम्लस्य प्रायोग्यं वक्तव्यं, तथा आयामाम्लं प्रत्याख्यातमिति दध्ना भुञ्जानस्यादोषः प्राणातिपातप्रत्याख्याने तदनासेवनवदिति छलना वक्तव्या, पञ्चैव कुडङ्गा–वक्रविशेषा इति। तद्यथा—

लोए वेए समए अन्नाणे खलु तहेव गेलन्ने। एए पंच कुडंगा नायव्वा अंबिलंमि भवे ॥ १६०५ ॥

लोके वेदे समये अज्ञाने खलु तथैव ग्लानत्वे, लोकमङ्गीकृत्य कुडङ्गाः, एवं वेदान् समयान् अज्ञानं ग्लानत्वं च एते पञ्च कुडङ्गा ज्ञातव्याः, आयामाम्ले भवन्ति, आयामाम्लविषय इति गाथासमासार्थः ॥१६०५॥ विस्तरार्थस्तु वृद्धसम्प्रदायसमधिगम्यः, स चायं–'एत्थ आयंबिलं च भवति आयंबिलपाउग्गं च, तत्थोदणे आयम्बिलं आयंबिलपाउग्गं च, आयंबिला सकूरा, जाणि कूरविहाणाणि आयंबिलपाउग्गं, तंदुलकणियाउ कुडंतो पीट्ठं पिहुगा पिट्ठपोवलियाओ रालगा मंडगादि, कुम्मासा पुव्वं पाणिएण कड्ढिज्जंति पच्छा उखलीए पीसंति, ते तिविधा–सण्हा मज्झिमा थूला, एते आयंबिलं, आयं-

१ अत्राचामाम्लं भवति आचामाम्लप्रायोग्यं च, तत्रौदने आचामाम्लमाचामाम्लप्रायोग्यं च, आयामाम्लः सकूराः, यानि कूरविधानानि आचामाम्लप्रायोग्यं, तन्दुलकणिकाः, कुण्डान्तः पिष्टेन पृथुकीकृताः, पृष्टपोलिका रालगा मण्डकाद्याः, कुल्माषाः पूर्वं पानीयेन क्वथ्यन्ते पश्चात् उदूखल्यां पिष्यन्ते, ते त्रिविधाः–श्लक्ष्णा मध्याः स्थूलाः, एते आचामाम्लं, आचा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [८४-९२]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥८५५॥

६प्रत्याख्या नाध्य० आकारार्थः

बिलपाउग्गाणि पुण जे तस्स तुसमीसा कणियाउ कंकडुगा य एवमादि, सत्तुया जवाणं गोधूमाणं विहिआणं वा, पाउग्गं पुण गोधूमभुज्जियापिचुगाला य जाव भुञ्जिज्जा, जे य जंतएण ण तीरंति पिसितुं, तस्सेव णिद्दारो कणिक्कादि वा, एयाणि आयंबिलपाउग्गाणि, तं तिविधंपि आयंबिलं तिविधं–उक्कोसं मज्झिमं जहन्नं, दव्वतो कलमसालिकूरो उक्कोसं जं वा जस्स पत्थं रुच्चति वा, रालगो सामागो वा जहन्नो, सेसा मज्झिमा, जो सो कलमसालीकूरो सो रसं पडुच्च तिविधो उक्कोसं ३, तं चेव तिविधंपि आयंबिलं णिज्जरागुणं पडुच्च तिविधं–उक्कोसो णिज्जरागुणो मज्झिमोजहण्णोत्ति, कलमसालिकूरो दव्वतो उक्कोसं दव्वं चउत्थरसिएण समुद्दिसति, रसओवि उक्कोसं तस्सच्चएणवि आयामेण उक्कोसं रसतो गुणतो जहण्णं थोवा-णिज्जरत्ति भणितं भवति, सो चेव कलमोदणो जदा अण्णेहिं आयामेहिं तदा दव्वतो उक्कोसो रसतो मज्झिमो गुणतोवि मज्झिमो चेव, सो चेव जदा उण्होदएण तदा दव्वतो उक्कोसं रसतो जहण्णं गुणतो मज्झिमं चेव, जेण दव्वतो उक्कोसं न

१ माम्लप्रायोग्याणि पुनर्या तस्य तुषमिश्राः कणिकाः काङ्कटुकाश्च एवमादि, सक्तवो यवानां गोधूमानां व्रीहीणां वा, प्रायोग्यं पुनर्गोधूमभृष्टं निर्गलितं यावद् भुञ्जीत, ये च यन्त्रकेण न शक्यन्ते पेष्टुं, तस्यैव निर्धारः कणिकादिर्वा, एतानि आचाम्लप्रायोग्याणि, तत् त्रिविधमप्याचामाम्लं त्रिविधं–उत्कृष्टं मध्यमं जघन्यं, द्रव्यतः कलमशालिकूर उत्कृष्टं यद्वा यस्मै पथ्यं रोचते वा, रालकः श्यामाको वा जघन्यः, शेषा मध्यमाः, यः स कलमशालिकूरः स रसं प्रतीत्य त्रिविधः उत्कृष्टः ३, तदेव त्रिविधमप्याचामाम्लं निर्जरागुणं प्रतीत्य त्रिविधं–उत्कृष्टो निर्जरागुणो मध्यमो जघन्य इति, कलमशालिकूरो द्रव्यत उत्कृष्टं द्रव्यं चतुर्थरसेन भुज्यते, रसतोऽपि उत्कृष्टं तस्य सत्केनाप्याचामाम्लेन उत्कृष्टं रसतो गुणतो जघन्यं स्तोका निर्जरेति भणितं भवति, स एव कलमौदनो यदाऽन्यैराचामाम्लैस्तदा द्रव्यत उत्कृष्टो रसतो मध्यमो गुणतोऽपि मध्यम एव, स एव यदोष्णोदकेन तदा द्रव्यत उत्कृष्टं रसतो जघन्यं गुणतो मध्यममेव, येन द्रव्यत उत्कृष्टं न

॥८५५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८४-९२]

[1]रसतो, इदाणिं जे मज्झिमा ते चाउलोदणा ते दवतो मज्झिमा आयंबिलेण रसतो उक्कोसा गुणतो मज्झिमा, तहेव च उण्होदएण दवतो मज्झं रसतो जहण्णं गुणतो मज्झं मज्झिमं दवंतिकाऊणं, रालगतणकूरा दवतो जहण्णं आयंबिलेण रसतो उक्कोसं गुणओ मज्झं, ते चेव आयामेण दवओ जहण्णं रसओ मज्झं गुणओ मज्झं, ते चेव उण्होदएण दवओ जहण्णं रसओ जहन्नं गुणओ उक्कोसं बहुणिज्जरत्ति भणितं होति, अहवा उक्कोसे तिण्णि विभासा–उक्कोसउक्कोसं उक्कोसमज्झिमं उक्कोसजहण्णं, कंजियआयामउण्होदएहिं जहण्णा मज्झिमा उक्कोसा णिज्जरा, एवं तिसु विभासितवं । छलणा णाम एगेणायंबिलं पच्चक्खातं, तेण हिंडंतेण सुद्धोदणो गहितो, अण्णाणेण य खीरेण निमित्तं घेत्तूण आगतो आलोएत्तुं पजिमितो, गुरूहिं भणितो–अज्ज तुज्झ आयंबिलं पच्चक्खातं, भणइ–सच्चं, तो किं जेमेसि ?, जेण मए पच्चक्खातं, जहा

---

१ रसतः । इदानीं ये मध्यमास्ते तण्डुलौदनास्ते द्रव्यतो मध्यमा आचामाम्लेन रसत उत्कृष्टा गुणतो मध्यमाः, तथैवोष्णोदकेन द्रव्यतो मध्यमं रसतो जघन्यं गुणतो मध्यमं मध्यमं द्रव्यमितिकृत्वा, रालगतृणकूरा द्रव्यतो जघन्यं आचामाम्लेन रसत उत्कृष्टं गुणतो मध्यं, त एवाचामाम्लेन द्रव्यतो जघन्यं रसतो मध्यं गुणतो मध्यं, त एवोष्णोदकेन द्रव्यतो जघन्यं रसतो जघन्यं गुणत उत्कृष्टं, बहुनिर्जरेति भणितं भवति, अथवा उत्कृष्टे तिस्रो विभाषाः–उत्कृष्टोत्कृष्टं उत्कृष्टमध्यमं उत्कृष्टजघन्यं, काञ्जिकाचामाम्लोष्णोदकैर्जघन्या मध्यमोत्कृष्टा निर्जरा, एवं त्रिषु विभाषितव्यं। छलना नाम एकेनाचामाम्लं प्रत्याख्यातं, तेन हिण्डमानेन शुद्धौदनो गृहीतः अज्ञानेन च क्षीरेण नियमितं गृहीत्वाऽऽगत आलोच्य प्रजिमितः, गुरुभिर्भणितः–अद्य त्वयाऽऽचामाम्लं प्रत्याख्यातं, भणति–सत्यं, तर्हि किं जेमसि ?, येन मया प्रत्याख्यातं, यथा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८४-९२]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥८५६॥

६प्रत्याख्यानाध्य० आकारार्थः

पाणातिपाते पच्चक्खाते ण मारिज्जति एवायंबिलेवि पच्चक्खाते तं ण कीरति, एसा छलणा, परिहारस्तु प्रत्याख्यानं भोजने तन्निवृत्तौ च भवति, भोजने आयामाम्लप्रायोग्यादन्यत् तत् प्रत्याख्याति आयाम्ले च वर्त्तते, तन्निवृत्तौ चतुर्विधमप्याहारं प्रत्याचक्षाणस्य, तथा लोक एवमेव प्रत्याख्यानार्थः दोसुं अत्थेसु वट्टति भोजने तन्निवृत्तौ च, तेण एसच्छलणा णिरत्थया । पंच कुडंगा–लोए वेदे समए अण्णाणे गिलाणे कुडंगोत्ति, एगेणायंबिलस्स पच्चक्खातं, तेण हिंडंतेण संखडी संभाविता, अण्णं वा उक्कोसं लद्धं, आयरियाण दंसेति, भणितं–तुज्झ आयंबिलं पच्चक्खातं, सो भणति–खमासमणा ! अम्हें बहूणि लोइयाणि सत्थाणि परिमिलिताणि, तत्थ य आयंबिलसद्दो णत्थि, पढमो कुडंगो १, अहवा वेदेसु चउसु संगोवंगेसु णत्थि आयंबिलं बिदिओ कुडंगो २, अहवा समए चरगचीरियभिक्खुपंडरंगाणं, तत्थवि णत्थि, ण जाणामि एस तुज्झं कतो आगतो ? तइओ कुडंगो ३, अण्णाणेण भणति–ण जाणामि खमासमणा ! केरिसियं आयंबिलं भवति ?, अहं जाणामि–कुसणेहिवि जिम्मइत्ति तेण गहितं, मिच्छामिदुक्कडं, ण पुणो गच्छामि, चउत्थो कुडंगो गिलाण भणति–

१ प्राणातिपाते प्रत्याख्याते न मार्यते एवमाचामाम्लेऽपि प्रत्याख्याते तन्न क्रियते, एषा छलना, द्वयोरर्थयोर्वर्त्तते तेनैषा छलना निरर्थिका । पञ्च कुडङ्गाः–लोके वेदे समये अज्ञाने ग्लाने कुडङ्ग इति, एकेनाचामाम्लस्य प्रत्याख्यातं, तेन हिण्डमानेन संखडी संभाविता, अन्यद्वोत्कृष्टं लब्धं, आचार्येभ्यो दर्शयते, भणितं–त्वयाचामाम्लं प्रत्याख्यातं, स भणति–क्षमाश्रमण ! अस्माभिर्बहूनि लौकिकानि शास्त्राणि परिमीलितानि, तत्र चाचामाम्लशब्दो नास्ति प्रथमः कुडङ्गः, अथवा वेदेषु चतुर्षु साङ्गोपाङ्गेषु नास्त्याचामाम्लं द्वितीयः कुडङ्गः, अथवा समये चरकचीरिकभिक्षुपाण्डुरङ्गाणां, तत्रापि नास्ति, न जानामि युष्माकं एष कुत आगतः ?, तृतीयः कुडङ्गः, अज्ञानेन भणति–न जानामि क्षमाश्रमणाः ! कीदृशमाचामाम्लं भवति ?, अहं जाने कुसणैरपि जेम्यते इति तेन गृहीतं, मिथ्या मे दुष्कृतं, न पुनर्गमिष्यामि, चतुर्थः कुडङ्गो, ग्लानो भणति–

॥८५६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [८४-९२]

[1]णतरामि आयंबिलं काउं सूलं मे उट्ठति, अण्णं वा उद्दिसति रोगं, ताहे ण तीरति करेत्तुं, एस पंचमो कुडंगो। तस्स अट्ठ आगारा–अण्णत्थणाभोगेणं सहस्सागारेणं लेवालेवेणं गिहत्थसंसट्ठेणं उक्खित्तविवेगेणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरति। अणाभोगसहसकारा तहेव लेवालेवो जति भाणे पुव्वं लेवाडगं गहितं समुद्दिट्ठं संलिहियं जति तेण आणेति ण भज्जति, उक्खित्तविवेगो जति आयंबिले पतति विगतिमाती उक्खिवित्ता विगिंचतु मा णवरि गलतु अण्णं वा आयंबिलस्स अप्पाउग्गं जति उद्धरितं तीरति उद्धरिते ण उवहम्मति, गिहत्थसंसट्ठेवि जति गिहत्थो डोवलियं भाणियं वा लेवाडं कुसणादीहिं तेण ईसित्ति लेवाडं तं भुज्जति, जइ रसो आलिखिज्जति बहुओ ताहे ण कप्पति, पारिट्ठावणितमहत्तरासमाधीओ तहेव। व्याख्यातमतिगम्भीरबुद्धिना भाष्यकारेणोपन्यस्तक्रममायामाम्लम्, अधुना तदुपन्यासप्रामाण्यादेव निर्विकृतिकाधिकारशेषं व्याख्यायते, तत्रेदं गाथाद्वयम्—

पंचेव य खीराइं चत्तारि दहीणि सप्पि नवणीता। चत्तारि य तिल्लाइं दो वियडे फाणिए दुन्नि ॥ १६०६ ॥
महुपुग्गलाइं तिन्नि चलचलओगाहिमं तु जं पक्कं। एएसिं संसट्ठं वुच्छामि अहाणुपुव्वीए ॥ १६०७ ॥

---

१ न शक्नोम्याचामाम्लं कर्तुं शूलं मे उत्तिष्ठते, अन्यं वा रोगं कथयति ततो न शक्यते कर्तुं, एष पञ्चमः कुडङ्गः। तस्याष्टावाकाराः–अन्यत्रानाभोगसहसाकारौ तथैव, लेपालेपो यदि भाजने पूर्वं लेपकृत् गृहीतं समुद्दिष्टं संलिखितं यदि तेनानयति न भज्यते, उत्क्षिप्तविवेको यद्याचामाम्ले पतति विकृत्यादिरुत्क्षिप्य विवेचयतु मा परं गलत्वन्यद्वा आचामाम्लस्याप्रायोग्यं यद्युद्धर्तुं शक्यते उद्धृते नोपहन्यते, गृहस्थसंसृष्टेऽपि यदि गृहस्थेन इङ्गुदीतैलान्वितं भाजनं कृतं व्यञ्जनादिभिर्वा लेपकृतं तेनेषदिति लेपकृत् तद्भुज्यते, यदि रस आलिख्यते बहुस्तदा न कल्पते। पारिष्ठापनिकामहत्तरसमाधयस्तथैव।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[८४-९२]

आवश्यक-हारिभद्रीया

||८५७||

६प्रत्याख्याना ध्य० आकारार्थः

'पंचेव य खीराइं' गाहा 'मधुपोग्गल'त्ति गाथा, इदं विकृतिस्वरूपप्रतिपादकं गाथाद्वयं गतार्थमेव, अधुना एतदाकारा व्याख्यायन्ते–तत्थ अणाभोगसहसक्कारा तहेव, लेवालेवो पुण जधा आयंबिले तहेव दट्ठव्वो, गिहत्थसंसट्ठो बहुवत्तव्वोत्ति गाहाहिं भण्णति, ताओ पुण इमातो–

खीरदहीवियडाणं चत्तारि उ अंगुलाइं संसट्ठं। फाणियतिल्लघयाणं अंगुलमेगं तु संसट्ठं ॥ १६०८ ॥
मुहपुग्गलरसयाणं अद्धंगुलयं तु होइ संसट्ठं। गुलपुग्गलनवणीए अद्दामलयं तु संसट्ठं ॥ १६०९ ॥

गिहत्थसंसट्ठस्स इमा विधी–खीरेण जति कुसणातिओ कूरो लब्भति तस्स जति कुडंगस्स उदणातो चत्तारि अंगुलाणि दुद्धं ताहे णिव्विगतिगस्स कप्पति पंचमं चारब्भ विगती य, एवं दधिस्सवि वियडस्सवि, केसु विसएसु विअडेण मीसिज्जति ओदणो ओगाहिमओ वा, फाणितगुडस्स तेल्लघताण य, एतेहिं कुसणिते जति अंगुलं उवरि अच्छति तो वट्टति, परेण न वट्टति, मधुस्स पोग्गलरसयस्स अद्धंगुलेण संसट्ठं होति, पिंडगुलस्स पुग्गलस्स णवणीतस्स य अद्दामलगमेत्तं

||८५७||

---

१ तत्रानाभोगसहसाकारौ तथैव, लेपालेपः पुनर्यथाऽऽचामाम्ले तथैव द्रष्टव्यः, गृहस्थसंसृष्टो बहुवक्तव्य इति गाथाभिर्भण्यते, ते पुनरिमे– । गृहस्थसंसृष्टस्य पुनरयं विधिः–क्षीरेण यदि कुसणादिकः कूरो लभ्यते तस्मिन् कुडङ्गे यद्योदनात् चत्वारि अंगुलानि दुग्धं तदा निर्विकृतिकस्य कल्पते पञ्चमं चारभ्य विकृतिश्च, एवं दध्नोऽपि सुराया अपि, केषुचिद्विषयेषु विकटेन मिश्यते ओदनोऽवगाहिमं वा, फाणितगुडस्य तैलघृतयोश्च, एताभ्यां कुसणिते यद्यङ्गुलमुपरि तिष्ठति तदा वर्त्तते (कल्पते), परतो न वर्त्तते, मधुनः पुद्गलरसस्य चार्धाङ्गुलेन संसृष्टं भवति, पिण्डगुडस्य पुद्गलस्य नवनीतस्य चार्द्रामलकमात्रं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[८४-९२]

संसट्ठं, जदि बहूणि एतप्पमाणाणि कप्पंति, एगंमि बहुए ण कप्पदित्ति गाथार्थः ॥ १६०८-१६०९ ॥ उक्खित्तविवेगो अहा आयंबिले जं उद्धरितुं तीरति, सेसेसु णत्थि, पडुच्चमक्खियं पुण जति अंगुलीए गहाय मक्खेति तेल्लेण वा घतेण वा ताधे णिव्विगतियस्स कप्पति, अथ धाराए छुब्भति मणागंपि ण कप्पति। इदाणिं पारिट्ठावणियागारो, सो पुण एगासणेगठाणादिसाधारणेत्तिकट्टु विसेसेण परूविज्जति, तन्निरूपणार्थमाह—

आयंबिलमणायंबिल चउत्था बालवुड्ढसहुअसहू । अणहिंडियहिंडियए पाहुणयनिमंतणावलिया ॥ १६१० ॥

'आयंबिलए' गाथा व्याख्या—यद्वाऽत्रान्तरे प्रबुद्ध इव चोदकः पृच्छति—अहो ताव भगवता एगासणगएगट्ठाणगआयंबिलचउत्थछट्ठट्ठमणिव्विगतिएसु पारिट्ठावणियागारो वण्णितो, ण पुण जाणामि केरिसगस्स साधुस्स पारिट्ठावणियं दातवं वा न दातवं वा?, आयरिओ भणइ, 'आयंबिलमणायंबिले' गाथा व्याख्या—पारिट्ठावणियभुंजणे जोग्गा साधू दुविधा—आयंबिलगा अणायंबिलगा य, अणायंबिलिया आयंबिलविरहिया, एक्कासणेकट्ठाणचउत्थछट्ठट्ठमणिव्विगतिय-

---

१ संसृष्टं, यदि बहून्येतत्प्रमाणानि तदा कल्पन्ते, एकस्मिन् बृहति न कल्पते। उत्क्षिप्तविवेको यथाऽऽचामाम्ले यदुद्धर्तुं शक्यते, शेषेषु नास्ति। प्रतीत्यम्रक्षितं पुनर्यद्यङ्गुल्या गृहीत्वा म्रक्षयति तैलेन वा घृतेन वा तदा निर्विकृतिकस्य कल्पते, अथ धारया क्षिपति मनागपि न कल्पते। इदानीं पारिष्ठापनिकाकारः, स पुनरेकासनैकस्थानादिसाधारण इतिकृत्वा विशेषेण प्ररूप्यते। अहो तावद् भगवता एकाशनैकस्थानाचाम्लचतुर्थषष्ठाष्टमनिर्विकृतिकेषु पारिष्ठापनिकाकारो वर्णितो, न पुनर्जानामि कीदृशस्य साधोः पारिष्ठापनिकं दातव्यं वा न दातव्यं वा ?, आचार्यो भणति—पारिष्ठापनिकभोजने योग्याः साधवो द्विविधाः-आचामाम्लका अनाचामाम्लकाश्च, अनाचामाम्लका आचामाम्लविरहिताः, एकासनैकस्थानचतुर्थषष्ठाष्टमनिर्विकृति-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८४-९२]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया ॥८५८॥

६प्रत्याख्या नाध्य० आकारार्थः

पॅज्जवसाणा, दसमभत्तियादीणं मंडलीए उद्धरितं पारिट्ठावणियं ण कप्पति दातुं, तेसिं पेज्जं उण्हयं वा दिज्जति, अहि-ट्ठिया य तेसिं देवतावि होज्ज, एगो आयंबिलगो एगो चउत्थभत्तितो होज्ज कस्स दातवं ?, चउत्थभत्तियस्स, सो दुविहो– बालो वुड्ढो य, बालस्स दातवं, बालो दुविहो–सहू असहू य, असहुस्स दातवं, असहू दुविहो–हिंडंतो अहिंडंतओ य, हिंडयस्स दातवं, हिंडंतओ दुविधो–वत्थव्वगो पाहुणगो य, पाहुणगस्स दातवं, एवं चउत्थभत्तो बालोऽसहू हिंडंतो पाहुणगो पारिट्ठावणियं भुंजाविज्जति, तस्स असति बालो असहू हिंडंतो वत्थव्वो २ तस्स असति बालो असहू अहिंडंतो पाहुणगो ३ तस्स असति बालो असहू अहिंडंतो वत्थव्वो, एवमेतेण करणोवाएण चतुहिवि पदेहिं सोलस आवलियाभंगा विभासितव्वा, तत्थ पढमभंगिअस्स दातवं, एतस्स असति बितियस्स, तस्सासति तदियस्स, एवं जाव चरिमस्स दातवं, पउरपारिट्ठावणियाए वा सवेसि दातवं, एवं आयंबिलियस्स छट्ठभत्तियस्स सोलसभंगा विभासा, एवं आयंबिलियस्स

---

१ कावसानाः, दशमप्रभृतिभ्यो मण्डल्यामुद्धृतं पारिष्ठापनिकं न कल्पते दातुं, तेभ्यः पेयमुष्णं वा दीयते, अधिष्ठिता च तेषां देवता भवेत् । एक आचाम्लक एकश्चतुर्थभक्तिको भवेत् कस्मै दातव्यं ?, चतुर्थभक्ताय, स द्विविधो–बालो वृद्धश्च, बालाय दातव्यं, बालो द्विविधः–सहिष्णुरसहिष्णुश्च, असहिष्णवे दातव्यं, असहिष्णुर्द्विविधः–हिण्डमानोऽहिण्डमानश्च, हिण्डमानाय दातव्यं, हिण्डमानो द्विविधः–वास्तव्यः प्राघूर्णकश्च, प्राघूर्णकाय दातव्यं, एवं चतुर्थभक्तो बालोऽसहो हिण्डमानः प्राघूर्णकः पारिष्ठापनीयं भोज्यते, तस्मिन्नसति बालोऽसहो हिण्डमानो वास्तव्यः, तस्मिन्नसति बालोऽसहोऽहिण्डमानः प्राघूर्णकः तस्मिन्नसति बालोऽसहोऽहिण्डमानो वास्तव्यः, एवमेतेन करणोपायेन चतुर्भिः पदैः षोडशावलिकाभङ्गा विभाषितव्याः, तत्र प्रथमभङ्गिकाय दातव्यं, एतस्मिन्नसति द्वितीयस्मै, तस्मिन्नसति तृतीयस्मै, एवं यावच्चरमाय दातव्यं, प्रचुरपारिष्ठापनिकायां वा सर्वेभ्यो दातव्यं, एवमाचामाम्लषष्ठभक्तिकयोः षोडश भङ्गाः विभाषा, एवमाचामाम्ल–

॥८५८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८४-९२]

[1]अट्ठमभत्तियस्स सोलस भंगा, एवं आयंबिलियस्स निवितियस्स सोलस भंगा, णवरं आयंबिलियस्स दातवं, एवं आयंबिलियस्स एक्कासणियस्स सोलस भंगा, एवं आयंबिलियस्स एगट्ठाणियस्स सोलस भंगा, एवमेते आयंबिलियउक्खेवगसंजोगेसु सव्वग्गेण छण्णवति आवलियाभंगा भवन्ति, आयंबिलउक्खेवो गतो, एगो चउत्थभत्तितो एगो छट्ठभत्तितो, एत्थवि सोलस, नवरं छट्ठभत्तियस्स दातवं, एवं चउत्थभत्तियस्स सोलस भंगा, एगो एक्कासणितो एगो एगट्ठाणिओ एगट्ठाणियस्स दातवं, एगो एक्कासणितो एगो णिव्वीतिओ, एक्कासणियस्स दातवं, एत्थवि सोलस, एगो एगट्ठाणिओ एगो णिव्वीतिओ एगट्ठाणियस्स दातवं, एत्थवि सोलसत्ति गाथार्थः ॥ १६१० ॥ तं पुण पारिट्ठावणितं जहाविधीए गहितं विधिभुत्तसेसं च तो तेसिं दिज्जइ, तत्र—

विहिगहियं विहिभुत्तं उव्वरियं जं भवे असणमाई । तं गुरुणाऽणुन्नायं कप्पइ आयंबिलाईणं ॥ १६११ ॥

(विहिगहिअं विहिभुत्तं)तह गुरुहिं(जं भवे)अणुन्नायं। ताहे वंदणपुव्वं भुंजइ से संदिसावेउं(पाठान्तरम्)॥१६११॥

---

१ काष्टमभक्तिकयोः षोडश भङ्गाः, एवमाचामाम्लनिर्विकृतिकयोः षोडश भङ्गाः, नवरमाचामाम्लकाय दातव्यं, एवमाचामाम्लैकाशनयोः षोडश भंगा, एवमाचामाम्लैकस्थानकयोः षोडश भङ्गाः, एवमेते आचामाम्लोत्क्षेपकसंयोगेन सर्वाग्रेण षण्णवतिरावलिकाभङ्गा भवन्ति, आचामाम्लोत्क्षेपो गतः, एकश्चतुर्थभक्तिक एकः षष्ठभक्तिकः, अत्रापि षोडश, नवरं षष्ठभक्तिकाय दातव्यं, एवं चतुर्थभक्तिकस्य षोडश भङ्गाः, एक एकाशनिक एक एकस्थानिकः एकस्थानिकाय दातव्यं, एक एकाशनिक एको निर्विकृतिक एकाशनिकाय दातव्यं, अत्रापि षोडश, एक एकस्थानिक एको निर्विकृतिकः एकस्थानिकाय दातव्यं, अत्रापि षोडश भङ्गाः । तत् पुनः पारिष्ठापनिकं यथाविधि गृहीतं विधिभुक्तशेषं च तदा तेभ्यो दीयते ।

आ० १४४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[८४-९२]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥८५९॥ | ६प्रत्याख्याना़ध्य०

'विहिंगहियं विहिभुत्तं' गाहा व्याख्या—विधिगहितं णाम अलुद्धेण उग्गमितं, पच्छा मंडलीए कडपदरगसीहखइदेण वा विधीए भुत्तं, एवंविधं पारिट्ठावणियं, जाहे गुरू भणति–अज्जो इमं पारिट्ठावणियं इच्छाकारेण भुञ्जाहित्ति, ताहे सो कप्पति वंदणं दाउं संदिसावेत्ति भोत्तुं, एत्थ चउभंगविभासा—

चउरो य हुंति भंगा पढमे भंगंमि होइ आवलिया । इत्तो अ तइयभंगो आवलिया होइ नायव्वा ॥१६१२॥

'चउरो य होंति भंगा' गाहा व्याख्या—विधिगहितं विधिभुक्तं विधिगहितं अविधिभुक्तं अविधिगहीतं विहिभुत्तं अविधिगहितं अविधिभुक्तं, तत्थ पढमभंगो, साधू भिक्खं हिंडति, तेण य अलुद्धेण बाहिं संजोअणदोसे विप्पजढेण ओहारितं भत्तपाणं पच्छा मंडलीए पतरगच्छेदातिसुविधीए समुद्दिट्ठं, एवंविधं पुव्ववण्णियाण आवलियाणं कप्पते समुद्दिसिउं, इदाणिं बितियभंगो तधेव विहीगहितं भुत्तं पुण कागसियालादिदोसदुट्ठं, एवं अविधिए भुत्तं, एत्थ जति उव्वरति तं

१ विधिगृहीतं नामालुब्धेनोद्गमितं, पश्चात् मण्डल्यां कटप्रतरकसिंहखादितेन विधिना भुक्तं एवंविधं पारिष्ठापनिकं, यदा गुरुर्भणति–आर्य ! इदं पारिष्ठापनिकं इच्छाकारेण भुङ्क्ष्वेति, तदा स कल्पते वन्दनं दत्वा संदिशेति भोक्तुं अत्र चत्वारो भङ्गाः, विभाषा, विधिगृहीतं विधिभुक्तं विधिगृहीतमविधिभुक्तं अविधिगृहीतं विधिभुक्तं अविधिगृहीतमविधिभुक्तं, तत्र प्रथमो भङ्गः, साधुर्भिक्षां हिण्डते, तेन चालुब्धेन बहिः संयोजनादोषविप्रहीनेनावहृतं भक्तपानं पश्चात् मण्डल्यां प्रतरकच्छेदादिसुविधिना समुद्दिष्टं, एवंविधं पूर्ववर्णितानामावलिकानां कल्पते समुद्देष्टुं, इदानीं द्वितीयभङ्गः तथैव विधिगृहीतं भुक्तं पुनः काकशृगालादिदोषदुष्टं, एवमविधिना भुक्तं, अत्र यदुद्धरति तत् ॥८५९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

छड्डिज्जति, ण कप्पति, छद्दिमादीदोसा तम्मि, एरिसं जो देति जो य भुंजति दोण्हवि विवेगो कीरति, अपुणकारए वा उवट्ठिताणं पंचकल्लाणयं दिज्जति, इदाणिं तइयभंगो, तत्थ अविधिगहितं–वीसुं वीसुं उक्कोसगाणि दव्वाणि भायणि पच्छा कच्छपुडगंपिव पडिसुद्धे विरेएति, एतेसिं भोत्तव्वंति आगतो, पच्छा मंडलिगराइणिएण समरसं कातुं मंडलिए विधीए समुद्दिट्ठं, एवंविधे जं उवरितं तं पारिट्ठावणियागारं आवलियाणं विधिभुत्तंतिकाउं कप्पति, चउत्थभंगो आवलियाण ण कप्पेति भुत्तुं, ते चेव पुव्वभणिता दोसा, एवमेतं भावपच्चक्खाणं भणितमिति गाथार्थः ॥ १६१२॥ व्याख्यातं मूलगाथोपन्यस्तं प्रत्याख्यानमधुना प्रत्याख्यातोच्यते, तथा चाह—

पच्चक्खाएण कया पच्चक्खाविंतएवि सूआए (उ)। उभयमवि जाणगेअर चउभंगे गोणिदिट्ठंतो ॥ १६१३ ॥

'पच्चक्खाएण' गाहा व्याख्या—प्रत्याख्याता–गुरुस्तेन प्रत्याख्यात्रा कृता प्रत्याख्यापयितर्यपि शिष्ये सूचा–उल्लिङ्गना, न हि प्रत्याख्यानं प्रायो गुरुशिष्यावन्तरेण भवति, अण्णे तु–'पच्चक्खाणेण कय'त्ति पठन्ति, तत् पुनरयुक्तं, प्रत्या-

---

१ त्यज्यते, न कल्पते, छर्द्यादयो दोषास्तस्मिन्, ईदृशं यो ददाति यश्च भुङ्क्ते द्वयोरपि विवेकः क्रियते, अपुनःकरणतया वोत्थितयोः पञ्चकल्याणकं दीयते, इदानीं तृतीयभङ्गः, तत्राविधिगृहीतं–विष्वग् विष्वग् उत्कृष्टानि द्रव्याणि भाजने पश्चात्कक्षापुटमिव प्रतिशुद्धे विरेचयति, एतानि भोक्तव्यानि इत्यागतः, पश्चात् माण्डलिकरात्निकेन समरसं कृत्वा मण्डल्यां विधिना समुद्दिष्टं, एवंविधे यदुद्धरति तत् पारिष्ठापनिकाकारमावलिकानां विधिभुक्तमितिकृत्वा कल्पते, चतुर्थो भङ्ग आवलिकानां न कल्पते भोक्तुं, त एव पूर्वभणिता दोषाः, एवमेतत् भावप्रत्याख्यानं भणितम्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८४-९२]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥८६०॥ | ६प्रत्याख्यानाध्य०

ख्यातुर्निर्युक्तिकारेण साक्षादुपन्यस्तत्वात् सूचाऽनुपपत्तेः, प्रत्याख्यापयितुरपि तदनन्तरङ्गत्वादिति, अत्र च ज्ञातर्यज्ञातरि च चत्वारो भेदा भवन्ति, तत्र चतुर्भङ्गे गोणिदृष्टान्त इति गाथाक्षरार्थः ॥ १६१३ ॥ भावार्थं तु स्वयमेवाह—

मूलगुणउत्तरगुणे सव्वे देसे य तहय सुद्धीए। पच्चक्खाणविहिन्नू पच्चक्खाया गुरू होइ ॥ १६१४ ॥

'मूलगुण' गाहा व्याख्या—मूलगुणेषूत्तरगुणेषु च एवं सर्वोत्तरगुणेषु देशोत्तरगुणेषु च, तथा च शुद्धौ–षड्विधायां श्रद्धानादिलक्षणायां प्रत्याख्यानविधिज्ञः, अस्मिन् विषये प्रत्याख्यानविधिमाश्रित्येत्यर्थः, प्रत्याख्यातीति प्रत्याख्याता गुरुः–आचार्यो भवतीति गाथार्थः ॥ १६१४ ॥

किइकम्माइविहिन्नू उवओगपरो अ असढभावो अ। संविग्गथिरपइन्नो पच्चक्खाविंतओ भणिओ ॥ १६१५ ॥

'किइकम्मा'गाहा व्याख्या—कृतिकर्मादिविधिज्ञः–वन्दनाकारादिप्रकारज्ञ इत्यर्थः, उपयोगपरश्च प्रत्याख्यान एव चोपयोगप्रधानश्च अशठभावश्च–शुद्धचित्तश्च संविग्नो–मोक्षार्थी स्थिरप्रतिज्ञः–न भाषितमन्यथा करोति, प्रत्याख्यापयतीति प्रत्याख्यापयिता–शिष्यः एवंभूतो भणितः तीर्थकरगणधरैरिति गाथार्थः ॥ १६१५ ॥

इत्थं पुण चउभंगो जाणगइअरंमि गोणिनाएणं। सुद्धासुद्धा पढमंतिमा उ सेसेसु अ विभासा ॥ १६१६ ॥ ॥८६०॥

'इत्थं पुण'गाथा व्याख्या—एत्थ पुण पच्चक्खायंतस्स पच्चक्खावेंतस्स य चउभंगो–जाणतो जाणगस्स पच्चक्खाति शुद्धं

१ अत्र पुनः प्रत्याख्यातुः प्रत्याख्यापयितुश्च चतुर्भङ्गी–ज्ञो ज्ञस्य सकाशात् प्रत्याख्याति शुद्धं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[८४-९२]

पच्चक्खाणं, जम्हा दोवि जाणंति किमपि पच्चक्खाणं णमोक्कारसहितं पोरुसिमादियं वा, जाणगो अयाणगस्स जाणावेउं पच्चक्खा(वे)ति, जहा णमोक्कारसहितादीणं अमुगं ते पच्चक्खातंति सुद्धं अन्नहा ण सुद्धं, अयाणगो जाणगस्स पच्चक्खाति ण सुद्धं, पभुसंदिट्ठा(ई)सु विभासा, अयाणगो अयाणगस्स पच्चक्खाति, असुद्धमेव, एत्थं दिट्ठंतो गावीतो, जति गावीण पमाणं सामिओवि जाणति, गोवालोवि जाणति, दोण्हंपि जाणगाणं भूतीमोल्लं सुहं सामीओ देति इतरो गेण्हति, एवं लोइयो चउभंगो, एवं जाणगो जाणगेण पच्चक्खावेति सुद्धं, जाणगो अजाणगेण केणइ कारणेण पच्चक्खावेन्तो सुद्धो णिक्कारणे ण सुद्धति, अयाणगो जाणयं पच्चक्खावेति सुद्धो, अयाणओ अयाणए पच्चक्खावेति ण सुद्धोत्ति गाथार्थः ॥ १६१६ ॥

मूलद्वारगाथायामुक्तः प्रत्याख्याता, साम्प्रतं प्रत्याख्यातव्यमुक्तमप्यध्ययने द्वाराशून्यार्थमाह—

दव्वे भावे य दुहा पच्चक्खाइव्वयं हवइ दुविहं । दव्वंमि अ असणाई अन्नाणाई य भावंमि ॥ १६१७ ॥

'दव्वे भावे'गाहा व्याख्या—द्रव्यतो भावतश्च द्विधा प्रत्याख्यातव्यं तु विज्ञेयं, द्रव्यप्रत्याख्यातव्यं अशनादि, अज्ञा-

१ प्रत्याख्यानं, यस्माद्द्वावपि जानीतः किमपि प्रत्याख्यानं नमस्कारसहितं पौरुष्यादिकं वा, ज्ञोऽज्ञं ज्ञापयित्वा प्रत्याख्यापयति, यथा नमस्कारसहितादिष्वमुकं त्वया प्रत्याख्यातमिति शुद्धमन्यथा न शुद्धं, अज्ञो ज्ञस्य पार्श्वे प्रत्याख्याति न शुद्धं, प्रभुसंदिष्टादिषु विभाषा, अज्ञोऽज्ञस्य प्रत्याख्याति, अशुद्धमेव, अत्र दृष्टान्तो गावः, यदि गवां प्रमाणं स्वाम्यपि जानाति गोपालोऽपि जानाति, द्वयोरपि जानानयोर्भृतिमूल्यं सुखं स्वामी ददाति इतरो गृह्णाति, एवं लौकिकी चतुर्भङ्गी, एवं ज्ञो ज्ञं प्रत्याख्यापयति शुद्धं, ज्ञोऽज्ञेन केनचित्कारणेन प्रत्याख्यापयन् शुद्धः निष्कारणे न शुद्ध्यति, अज्ञो ज्ञं प्रत्याख्यापयति शुद्धः अज्ञोऽज्ञं प्रत्याख्यापयति न शुद्धः ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८४-९२]

नादि तु भावे–भावप्रत्याख्यातव्यमिति गाथार्थः ॥ १६१७ ॥ मूलद्वारगाथायां गतं तृतीयं द्वारं, ईदाणिं परिसा, सा य पुव्विं वण्णिता सामाइयणिज्जुत्तीए सेलधणकुडगादी, इत्थ पुण सविसेसं भण्णति–परिसा दुविधा, उवट्ठिता अणुवट्ठिता य, उवट्ठिताए कहेतव्वं, अणुवट्ठिताए ण कहेतव्वं, जा सा उवट्ठिता सा दुविधा–सम्मोवट्ठिता मिच्छोवट्ठिता य, मिच्छोवट्ठिता जहा अज्जगोविंदा तारिसाए ण वट्टति कहेतुं, सम्मोवट्ठिता दुविधा–भाविता अभाविता य, अभाविताए ण वट्टति कहेतुं, भाविता दुविधा–विणीता अविणीता य, अविणीताए ण वट्टति, विणीताए कहेतव्वं, विणीता दुविधा–वक्खित्ता अवक्खित्ता य, वक्खित्ता जा सुणेति कम्मं च किंचि करेति खिज्जति वा अण्णं वा वावारं करेति, अवक्खित्ता ण अण्णं किंचि करेति केवलं सुणति, अवक्खित्ताए कहेयव्वं, अवक्खित्ता दुविधा–उवउत्ता अणुवउत्ता य, अणुवउत्ता जा सुणेति अण्णमण्णं वा चिंतेति, उवउत्ता जा निच्चिन्ता, तम्हा उवउत्ताए कहेतव्वं । तथा चाह—

---

१ इदानीं पर्षत्, सा च पूर्वं वर्णिता सामायिकनिर्युक्तौ शैलधनकुटादिका, अत्र पुनः सविशेषं भण्यते–पर्षद् द्विविधा–उपस्थिता अनुपस्थिता च, उपस्थितायै कथयितव्यं अनुपस्थितायै न कथयितव्यं, या सोपस्थिता सा द्विविधा–सम्यगुपस्थिता मिथ्योपस्थिता च, मिथ्योपस्थिता यथा आर्यगोविन्दाः, तादृश्यै न युज्यते कथयितुं, सम्यगुपस्थिता द्विविधा–भाविता अभाविता च, अभावितायै न युज्यते कथयितुं, भाविता द्विविधा–विनीता अविनीता च, अविनीतायै न युज्यते कथयितुं, विनीतायै कथयितव्यं, विनीता द्विविधा–व्याक्षिप्ता अव्याक्षिप्ता च, व्याक्षिप्ता या शृणोति कर्म च किञ्चित् करोति खिद्यते वा अन्यं वा व्यापारं करोति, अव्याक्षिप्ता नान्यत् किञ्चित् करोति केवलं शृणोति, अव्याक्षिप्तायै कथयितव्यं, अव्याक्षिप्ता द्विविधा–उपयुक्ता अनुपयुक्ता च, अनुपयुक्ता या शृणोति अन्यदन्यद्वा चिन्तयति, उपयुक्ता या निश्चिन्ता (सोपयुक्ता), तस्मात् उपयुक्तायै कथयितव्यं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८४-९२]

सोउं उवट्ठियाए विणीयवक्खित्ततदुवउत्ताए । एवंविहपरिसाए पच्चक्खाणं कहेयव्वं ॥ १६१८ ॥ द्वारम् ॥

'सोउं उवट्ठिताए' गाहा व्याख्या—गतार्था, एवमेसा उवट्ठिता सम्मोवट्ठिता भाविता विणीयाऽवक्खित्ता उवयुत्ता य, पढमपरिसा जोग्गा कहणाए, सेसा उ तेवट्ठी परिसाओ अजोग्गाओ, अज्जोगाण इमा पढमा—उवट्ठिता सम्मोवट्ठिता भाविता विणीया अवक्खित्ता अणुवउत्ता, एसा पढमा अजोग्गा, एवं तेवट्ठिंपि भाणितव्वा,—'उवठियसम्मोवट्ठियभावितविणया य होइ वक्खित्ता । उवउत्तिगा य जोग्गा सेस अजोगातो तेवट्ठि ॥ १ ॥' एतं पच्चक्खाणं पढमपरिसाए कहेज्जति, तव्वतिरित्ताए ण कहेतव्वं, ण केवलं पच्चक्खाणं सव्वमवि आवस्सयं सव्वमवि सुयणाणंति । मूलद्वारगाथायां परिषदिति गतमधुना कथनविधिरुच्यते, तत्रायं वृद्धवादः—काए विधीए कहितव्वं ?, पढमं मूलगुणा कहेंति पाणातिपातवेरमणाति, ततो साधुधम्मे कधिते पच्छा असढस्स सावगधम्मो, इहरा कहिज्जति सत्तिट्ठोवि सावयधम्मं पढमं सोतुं तत्थेव

---

१ एवमेषा उपस्थिता सम्यगुपस्थिता भाविता विनीताऽव्याक्षिप्ता उपयुक्ता च प्रथमा पर्षद् योग्या कथनायै, शेषा अयोग्याः त्रिषष्टिः पर्षदः, अयोग्यानामियं प्रथमा—उपस्थिता सम्यगुपस्थिता भाविता विनीता अव्याक्षिप्ता अनुपयुक्ता, एषा प्रथमा अयोग्या, एवं त्रिषष्टिरपि भणितव्याः,—उपस्थिता सम्यगुपस्थिता भाविता विनीता च भवत्यव्याक्षिप्ता उपयुक्ता च योग्या शेषा अयोग्यास्त्रिषष्टिः ॥ १ ॥ एतत् प्रत्याख्यानं प्रथमायै पर्षदे कथ्यते, तद्व्यतिरिक्तायै न कथयितव्यं, न केवलं प्रत्याख्यानं सर्वमप्यावश्यकं सर्वमपि श्रुतज्ञानमिति । केन विधिना कथयितव्यं ?, प्रथमं मूलगुणाः कथ्यंते प्राणातिपातविरमणादयः, ततः साधुधर्मे कथिते पश्चात् अशठाय श्रावकधर्मः, इतरथा कथ्यमाने सत्त्ववानपि श्रावकधर्मं प्रथमं श्रुत्वा तत्रैव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [८४-९२]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

॥८६२॥

विंत्तीं करेइ, [उत्तरेत्ति] उत्तरगुणेसुवि छम्मासियं आदि काउं जं जस्स जोग्गं पच्चक्खाणं तं तस्स असढेण कहेतव्वं। अथवाऽयं कथनविधिः—

आणागिज्झो अत्थो आणाए चेव सो कहेयव्वो। दिट्ठंतिउ दिट्ठंता कहणविहि विराहणा इअरा ॥१६१९॥ द्वारम् ॥

'आणागिज्झो अत्थो'गाहा व्याख्या—आज्ञा–आगमस्तद्ग्राह्यः–तद्विनिश्चेयोऽर्थः, अनागतातिक्रान्तप्रत्याख्यानादिः आज्ञयैव–आगमेनैवासौ कथयितव्यो, न दृष्टान्तेन, तथा दार्ष्टान्तिकः–दृष्टान्तपरिच्छेद्यः प्राणातिपाताद्यनिवृत्तानामेते दोषा भवन्तीत्येवमादिर्दृष्टान्तात्–दृष्टान्तेन कथयितव्यः, कथनविधिः–एषः कथनप्रकारः प्रत्याख्याने, यद्वा सामान्येनैवाज्ञाग्राह्योऽर्थः–सौधर्मादिः आज्ञयैवासौ कथयितव्यो न दृष्टान्तेन, तत्र तस्य वस्तुतोऽसत्त्वात्, तथा दार्ष्टान्तिकः–उत्पादादिमानात्मा वस्तुत्वाद् घटवदित्येवमादिर्दृष्टान्तात् कथयितव्यः, एषः कथनविधिः, विराधना इतरथा–विपर्ययोऽन्यथा कथनविधेः अप्रतिपत्तिहेतुत्वाद् अधिकतरसम्मोहादिति गाथार्थः ॥ १६१९ ॥ मूलद्वारगाथोपन्यस्त उक्तः कथनविधिः, साम्प्रतं फलमाह—

पच्चक्खाणस्स फलं इहपरलोए अ होइ दुविहं तु। इहलोइ धम्मिलाई दामन्नगमाई परलोए ॥ १६२० ॥

'पच्चक्खाणस्स'गाहा व्याख्या—प्रत्याख्यानस्य–उक्तलक्षणस्य फलं–कार्यं इहलोके परलोके च भवति द्विविधं–द्विप्रकारं, तुशब्दः स्वगतानेकभेदप्रदर्शनार्थः, तथा चाह–इहलोके धम्मिलादय उदाहरणं दामन्नकादयः परलोके इति

६प्रत्याख्यानाध्य०

॥८६२॥

१ वृत्तिं करोति, उत्तरेति उत्तरगुणेष्वपि षाण्मासिकमादौ कृत्वा यद्यस्य योग्यं प्रत्याख्यानं तत्तस्मै अशठेन कथयितव्यं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[८४-९२]

गाथाऽक्षरार्थः । कथानकं तु धम्मिलोदाहरणं धम्मिल्लहिंडितो णायव्वं, आदिसद्दातो आमोसधिमादीया घेप्पंति । दामण्णगोदाहरणं तु–रायपुरे णगरे एगो कुलपुत्तो जातीतो, तस्स जिणदासो मित्तो, तेण सो साधुसगासं णीतो, तेण मच्छमंसपच्चक्खाणं गहितं, दुब्भिक्खे मच्छाहारो लोगो जातो, इतरोवि सालेहिं महिलाए खिंसिज्जमाणो गतो, उदिण्णे मच्छे दट्ठुं पुणरावत्ती जाता, एवं तिण्णि दिवसे तिण्णि वारं गहिता मुक्का य, अणसणं कातुं रायगिहे णगरे मणियारसेट्ठिपुत्तो दामण्णगो णाम जातो, अट्ठवरिसस्स कुलं मारीए उच्छिण्णं, तत्थेव सागरवोदसत्थवाहस्स गिहे चिट्ठइ, तत्थ य गिहे भिक्खट्ठं साधुणो पइट्ठा, साधुणा संघाडइल्लस्स कहितं, एतस्स गिहस्स एस दारगो अधिपती भविस्सति, सुतं सत्थवाहेण, पच्छा सत्थवाहेण पच्छन्नं चंडालाण अप्पितो, तेहिं दूरं णेतुं अंगुलिं छेत्तुं भेसितो णिव्विसओ कतो, णासंतो तस्सेव गोसंधिएण गहितो पुत्तोत्ति, जोव्वणत्थो जातो, अण्णता सागरपोतो तत्थ गतो तं दट्ठूण उवाएण परियणं पुच्छति–कस्स

---

१ धम्मिल्लहिण्डितो ज्ञातव्यं, आदिशब्दात् आमर्शौषध्याद्या गृह्यन्ते, दामन्नकोदाहरणं तु राजपुरे नगरे एकः कुलपुत्रो जात्यः, तस्य जिनदासो मित्रं, तेन स साधुसकाशं नीतः, तेन मत्स्यमांसप्रत्याख्यानं गृहीतं, दुर्भिक्षे मत्स्याहारो लोको जातः, इतरोऽपि श्यालमहिलाभ्यां निन्द्यमानो गतः, पीडितान् मत्स्यान् दृष्ट्वा पुनरावृत्तिर्जाता, एवं त्रीन् दिवसान् त्रीन् वारान् गृहीता मुक्ताश्च, अनशनं कृत्वा राजगृहे नगरे मणिकारश्रेष्ठिपुत्रो दामन्नको नाम जातः, अष्टवर्षस्य मार्या कुलमुत्सन्नं, तत्रैव सागरपोतसार्थवाहस्य गृहे तिष्ठति, तत्र च गृहे भिक्षार्थं साधवः प्रविष्टाः, साधुना संघाटकीयाय कथितं–एतस्य गृहस्यैष दारकोऽधिपतिर्भावी, श्रुतं सार्थवाहेन, पश्चात् सार्थवाहेन प्रच्छन्नं चाण्डालेभ्योऽर्पितः, तैर्दूरं नीत्वाऽङ्गुलिं छित्वा भापितः निर्विषयः कृतः, नश्यन् तस्यैव गोसंधिकेन (गोष्ठाधिपतिना) गृहीतः पुत्र इति, यौवनस्थो जातः, अन्यदा सागरपोतस्तत्र गतः तं दृष्ट्वोपायेन परिजनं पृच्छति–कस्यैषः ?,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८४-९२]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥८६३॥

६प्रत्याख्याना ध्य०

एस ?, कंथितं अणाधोत्ति इहागतो, इमो सोत्ति, ता लेहं दाउं घरं पावेहित्ति विसज्जितो, गतो, रायगिहस्स बाहिपरिसरे देवउले सुवति, सागरपोतधूता विसा णाम कण्णा तीए अच्चणियवावडाए दिट्ठो, पितुमुद्दमुद्दितं लेहं दट्ठुं वाएति–एतस्स दारगस्स असोइयमक्खितपादस्स विसं दातवं, अणुस्सारफुसणं, कण्णगदाणं, पुणोवि मुद्देति, णगरं पविठ्ठो, विसाऽणेण विवाहिता, आगतो सागरपोतो, मातिघरअच्चणियविसज्जणं, सागरपुत्तमरणं सोतुं सागरपोतो हितयफुट्टणेण मतो, रण्णा दामण्णगो घरसामी कतो, भोगसमिद्धी जाता, अण्णया पद्यण्हे मंगलिएहिं पुरतो से उग्गीयं–‘अणुपुंखमावयंतावि अणत्था तस्स बहुगुणा होंति । सुहदुक्खकच्छपुडतो जस्स कतंतो वहइ पक्खं ॥ १ ॥’ सोतुं सतसहस्सं मंगलियाण देति, एवं तिण्णि वारा तिण्णि सतसहस्साणि, रण्णा सुतं, पुच्छितेण सबं रण्णो सिठ्ठं, तुठ्ठेण रण्णा सेट्ठी ठावितो, बोधिलाभो, पुणो धम्माणुट्ठाणं देवलोगगमणं, एवमादि परलोए । अहवा सुद्धेण पच्चक्खाणेण देवलोगगमणं पुणो बोधिलाभो सुकुल-

॥८६३॥

१ कथितमनाथ इति इहागतः, अयं स इति, ततो लेखं दत्त्वा गृहं प्रापयेति विसृष्टो गतः, राजगृहस्य बहिः परिसरे देवकुले सुप्तः, सागरपोतदुहिता विषानाम्नी कन्या, तयाऽर्चनिकाव्यापृतया दृष्टः, पितृमुद्रामुद्रितं लेखं दृष्ट्वा वाचयति, एतस्मै दारकाय अधौताम्रक्षितपादाय विषं दातव्यं, अनुस्वारस्फेटनं कन्यादानं, पुनरपि मुद्रयति, नगरं प्रविष्टः, विषाऽनेन विवाहिता, आगतः सागरपोतः, मातृगृहार्चनिकायै विसर्जनं, सागरपुत्रमरणं श्रुत्वा सागरपोतः हृदयस्फोटनेन मृतः, राज्ञा दामन्नको गृहस्वामी कृतः,भोगसमृद्धिर्जाता, अन्यदा च पर्वाहनि माङ्गलिकैः पुरतस्तस्योद्गीतं–श्रेण्या आपतन्तोऽप्यनर्थास्तस्य बहुगुणा भवन्ति । सुखदुःखकक्षपुटको यस्य कृतान्तो वहति पक्षं ॥ १ ॥ श्रुत्वा शतसहस्रं माङ्गलिकाय ददाति, एवं त्रीन् वारान् त्रीणि शतसहस्राणि, राज्ञा श्रुतं, पृष्टेन सर्वं शिष्टं राज्ञे, तुष्टेन राज्ञा श्रेष्ठी स्थापितः, बोधिलाभः, पुनर्धर्मानुष्ठानं देवलोकगमनं, एवमादि परलोके । अथवा शुद्धेन प्रत्याख्यानेन देवलोकगमनं पुनर्बोधिलाभः सुकुल–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[८४-९२]

पैच्चायाती सोक्खपरंपरेण सिद्धिगमणं, केसिंचि पुणो तेणेव भवग्गहणेण सिद्धिगमणं भवतीति । अत एव प्रधानफलोपदर्शनेनोपसंहरन्नाह—

पच्चक्खाणमिणं सेविऊण भावेण जिणवरुद्दिट्ठं । पत्ता अणंतजीवा सासयसुक्खं लहुं मुक्खं ॥ १६२१ ॥

'पच्चक्खाणमिणं' गाहा व्याख्या—प्रत्याख्यानमिदं—अनन्तरोक्तं आसेव्य भावेन अन्तःकरणेन जिनवरोद्दिष्टं—तीर्थकरकथितं, प्राप्ता अनन्तजीवाः, शाश्वतसौख्यं शीघ्रं मोक्षम्.॥ आह—इदं फलं गुणनिरूपणायां 'पच्चक्खाणम्मि कते' इत्यादिना दर्शितमेव पुनः किमर्थमिति ?, उच्यते, तत्र वस्तुतः प्रत्याख्यानस्वरूपद्वारेणोक्तं, इह तु लोकनीतित इति न दोषः, यद्वा इत एव द्वारादवतार्य स्वरूपकथनत एव प्रवृत्तिहेतुत्वात् तत्रोक्तं इत्यनपराध एवेत्यलं विस्तरेण । उक्तोऽनुगमः साम्प्रतं नयाः, ते च नैगमसङ्ग्रहव्यवहारऋजुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूतभेदभिन्नाः खल्वोघतः सप्त भवन्ति, स्वरूपं चैतेषामधस्तात् सामायिकाध्ययने न्यक्षेण प्रदर्शितमेवेति नेह प्रतन्यते, इह पुनः स्थानाशून्यार्थं एते ज्ञानक्रियान्तरभावद्वारेण समासतः प्रोच्यन्ते, ज्ञाननयः क्रियानयश्च, तत्र ज्ञाननयदर्शनमिदं—ज्ञानमेव प्रधानमैहिकामुष्मिकफलप्राप्तिकारणं, युक्तियुक्तत्वात्, तथा चाह—

नायंमि गिण्हियव्वे अगिण्हियव्वंमि चेव अत्थंमि । जइयव्वमेव इइ जो उवएसो सो नओ नाम ॥ १६२२ ॥

१ प्रत्यायातिः सौख्यपरम्परकेण सिद्धिगमनं, केषाञ्चित् पुनस्तेनैव भवग्रहणेन सिद्धिगमनं भवतीति ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८४-९२]

आवश्यक-हारिभद्रीया ॥८६४॥

६प्रत्याख्यानाध्य०

सव्वेसिंपि नयाणं बहुविहवत्तव्वयं निसामित्ता । तं सव्वनयविसुद्धं जं चरणगुणट्ठिओ साहू ॥ १६२३ ॥

॥ इति पच्चक्खाणनिज्जुत्ती समत्ता । श्रीभद्रबाहुस्वामिविरचितं श्रीमदावश्यकसूत्रं सम्पूर्णम् ॥

'णातम्मि गेण्हितव्वे' गाहा व्याख्या—ज्ञाते-सम्यक्परिच्छिन्ने 'गेण्हितव्वे'त्ति ग्रहीतव्ये उपादेये 'अगिण्हितव्वंमि'त्ति अग्रहीतव्ये अनुपादेये, हेय इत्यर्थः, चशब्दः खलूभयोर्ग्रहीतव्याग्रहीतव्ययोर्ज्ञातत्वानुकर्षणार्थः, उपेक्षणीयसमुच्चयार्थो वा, एवकारस्त्ववधारणार्थः, तस्यैव च व्यवहितः प्रयोगो द्रष्टव्यः, ज्ञात एव ग्रहीतव्ये अग्रहीतव्ये तथोपेक्षणीये च ज्ञात एव नाज्ञाते 'अत्थंमि'त्ति अर्थ ऐहिकामुष्मिके, तत्रैहिको ग्रहीतव्यः स्रक्चन्दनाङ्गनादिः अग्रहीतव्यो विषशस्त्रकण्टकादिः उपेक्षणीयस्तृणादिः आमुष्मिको ग्रहीतव्यः सम्यग्दर्शनादिरग्रहीतव्यो मिथ्यात्वादिरुपेक्षणीयो विपक्षाभ्युदयादिरिति, तस्मिन्नर्थे यतितव्यमेव इति–ऐहिकामुष्मिकफलप्राप्त्यर्थिना सत्त्वेन यतितव्यमेव, प्रवृत्त्यादिलक्षणः प्रयत्नः कार्य इत्यर्थः । इत्थं चैतदङ्गीकर्त्तव्यं, सम्यग्ज्ञाने वर्त्तमानस्य फलाविसंवाददर्शनात्, तथा चान्यैरप्युक्तम्–"विज्ञप्तिः फलदा पुंसां, न क्रिया फलदा मता । मिथ्याज्ञानात् प्रवृत्तस्य, फलासंवाददर्शनात् ॥१॥" तथाऽऽमुष्मिकफलप्राप्त्यर्थिना हि ज्ञान एव यतितव्यं, तथाऽऽगमोऽप्येवमेव व्यवस्थितः, यत उक्तं–"पढमं णाणं ततो दया, एवं चिट्ठति सव्वसंजते । अण्णाणी किं काहिति किं वा णाहिति छेयपावयं ? ॥ १ ॥" इतश्चैतदेवमङ्गीकर्तव्यं–यस्मात् तीर्थकरगणधरैरगीतार्थानां केवलानां विहारक्रि- ॥८६४॥

१ प्रथमं ज्ञानं ततो दया एवं तिष्ठति सर्वसंयतः । अज्ञानी किं करिष्यति किं वा ज्ञास्यति छेकं पापकं वा ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत
सूत्रांक
[सू.]

दीप
अनुक्रम
[८४-९२]

याऽपि निषिद्धा, तथा चागमः–“गीतत्थो य विहारो बिदितो गीतत्थमीसितो भणितो । एत्तो ततियविहारो णाणुण्णातो जिणवरेहिं ॥ १ ॥” न यस्मादन्धेनान्धः समाकृष्यमाणः सम्यक्पन्थानं प्रतिपद्यत इत्यभिप्रायः । एवं तावत् क्षायोपशमिकं ज्ञानमधिकृत्योक्तं, क्षायिकमप्यङ्गीकृत्य विशिष्टफलसाधकत्वं तस्यैव विज्ञेयं, यस्मादर्हतोऽपि भवाम्भोधेस्तटस्थस्य दीक्षाप्रतिपन्नस्य उत्कृष्टतपश्चरणवतोऽपि न तावदपवर्गप्राप्तिः सञ्जायते [यतो] यावज्जीवाद्यखिलवस्तुपरिच्छेदरूपं केवलज्ञानं नोत्पन्नमिति, तस्मात् ज्ञानमेव प्रधानमैहिकामुष्मिकफलप्राप्तिकारणमिति स्थितं ‘इति जो उवदेसो सो णओ णाम’त्ति इति–एवं उक्तेन न्यायेन य उपदेशः ज्ञानप्राधान्यख्यापनपरः स नयो नाम ज्ञाननय इत्यर्थः । अयं च नामादौ षड्विधप्रत्याख्याने ज्ञानरूपमेव प्रत्याख्यानमिच्छति, ज्ञानात्मकत्वादस्य, क्रियारूपं तु तत्कार्यत्वात् तदायतत्त्वान्नेच्छति, गुणभूतं चेच्छतीति गाथार्थः । उक्तो ज्ञाननयोऽधुना क्रियानयावसरः, तद्दर्शनं चेदं–क्रियैव प्रधानं ऐहिकामुष्मिकफलप्राप्तिकारणं, युक्तियुक्तत्वात्, तथा चायमप्युक्तलक्षणमेव स्वपक्षसिद्धये गाथामाह–‘णायम्मि गेण्हितव्वे’ इत्यादि, अस्याः क्रियानयदर्शनानुसारेण व्याख्या–ज्ञाते ग्रहीतव्ये अग्रहीतव्ये चैवमर्थ ऐहिकामुष्मिकफलप्राप्त्यर्थिना यतितव्यमेव, न यस्मात् प्रवृत्त्यादिलक्षणप्रयत्नव्यतिरेकेण ज्ञानवतोऽप्यभिलषितार्थावाप्तिर्दृश्यते, तथा चान्यैरप्युक्तं–“क्रियैव फलदा पुंसां, न ज्ञानं फलदं मतम् । यतः स्त्रीभक्ष्यभोगज्ञो, न ज्ञानात् सुखितो भवेत् ॥ १ ॥” तथाऽऽमुष्मिकफलप्राप्त्यर्थिनाऽपि

१ गीतार्थश्च विहारो द्वितीयो गीतार्थनिश्रितो भणितः । इतस्तृतीयविहारो नानुज्ञातो जिनवरैः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.]

दीप अनुक्रम [८४-९२]

आवश्यक-हारिभ-द्रीया

||८६५||

क्रियैव कर्त्तव्या, तथा मुनीन्द्रवचनमप्येवं व्यवस्थितं, यत उक्तम्–"चेइयकुलगणसंघे आयरियाणं च पवयण सुए य । सव्वे-सुवि तेण कयं तवसंजममुज्जमंतेणं ॥ १ ॥" इतश्चैतदेवमङ्गीकर्तव्यम्–यस्मात् तीर्थकरगणधरैः क्रियाविकलानां ज्ञानमपि विफलमेवोक्तं, तथा चागमः–"सुबहुंपि सुयमहीयं किं काही चरणविप्पहीणस्स ? । अंधस्स जह पलित्ता दीवसयसहस्सकोडीवि ॥ १ ॥" दृशिक्रियाविकलत्वात् तस्येत्यभिप्रायः । एवं तावत् क्षायोपशमिकं चारित्रमङ्गीकृत्योक्तं, चारित्रं क्रियेत्यनर्थान्तरं, क्षायिकमप्यङ्गीकृत्य प्रकृष्टफलसाधकत्वं तस्यैव विज्ञेयं, यस्मादर्हतोऽपि भगवतः समुपन्नकेवलज्ञानस्यापि न तावत् मुक्त्यवाप्तिः सञ्जायते यावदखिलकर्मेन्धनानलभूता ह्रस्वपञ्चाक्षरोद्गिरणमात्रकालावस्थायिनी सर्वसंवररूपा चारित्रक्रिया नावाप्तेति, तस्मात् क्रियैव प्रधानमैहिकामुष्मिकफलप्राप्तिकारणमिति य उपदेशः–क्रियाप्राधान्यख्यापनपरः स नयो नाम क्रियानय इत्यर्थः । अयं च नामादौ षड्विधे प्रत्याख्याने क्रियारूपमेव प्रत्याख्यानमिच्छति, तदात्मकत्वादस्य, ज्ञानं तु तदर्थमुपादीयमानत्वादप्रधानत्वान्नेच्छति गुणभूतं चेच्छतीति गाथार्थः । उक्तः क्रियानयः, इत्थं ज्ञानक्रियानयस्वरूपं श्रुत्त्वाऽविदिततदभिप्रायो विनेयः संशयापन्नः सन्नाह–किमत्र तत्त्वं ?, पक्षद्वयेऽपि युक्तिसम्भवाद्, आचार्यः पुनराह–'सव्वेसिं'गाहा, अथवा ज्ञानक्रियानयमतं प्रत्येकमभिधायाधुना स्थितपक्षमुपदर्शयन्नाह–'सव्वेसिंपि'गाहा व्याख्या–'सर्वेषा'मिति मूलनयानां अपिशब्दात् तद्भेदानां च नयानां–द्रव्यास्तिकादीनां बहुविधवक्तव्यतां–सामान्यमेव विशेषा

६प्रत्याख्याना-ध्य०

||८६५||

१ चैत्यकुलगणसङ्घे आचार्येषु च प्रवचने श्रुते च । सर्वेष्वपि तेन कृतं तपःसंयमयोरुद्यच्छता ॥ १ ॥ २ सुबह्वपि श्रुतमधीतं किं करिष्यति चरणविप्रहीणस्य । अन्धस्य यथा प्रदीप्ता दीपशतसहस्रकोट्यपि ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [सू.] दीप अनुक्रम [८४-९२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[४०] मूलसूत्र-[०१] आवश्यक मूलं एवं हरिभद्रसूरि-रचिता वृत्ति:

एव उभयमेवानपेक्षं इत्यादिरूपां अथवा नामादीनां नयानां कः कं साधुमिच्छतीत्यादिरूपां निशम्य–श्रुत्वा तत सर्वनयविशुद्धं–सर्वनयसम्मतं वचनं यच्चरणगुणस्थितः साधुः, यस्मात् सर्वे नया एव भावनिक्षेपमिच्छन्तीति गाथार्थः ॥ १६२३ ॥ इति शिष्यहितायां प्रत्याख्यानविवरणं समाप्तमिति । व्याख्यायाध्ययनमिदं यदवाप्तमिह शुभं मया पुण्यम् । शुद्धं प्रत्याख्यानं लभतां भव्यो जनस्तेन ॥ १ ॥ समाप्ता चेयं शिष्यहितानामावश्यकटीका ॥ कृतिः सिताम्बराचार्यजिनभटनिगदानुसारिणो विद्याधरकुलतिलकाचार्यजिनदत्तशिष्यस्य धर्मतो जाइणीमहत्तरासूनोरल्पमतेराचार्यहरिभद्रस्य ।

यदिहोत्सूत्रमज्ञानाद्, व्याख्यातं तद् बहुश्रुतैः । क्षन्तव्यं कस्य सम्मोहः, छद्मस्थस्य न जायते ? ॥ १ ॥
यदर्जितं विरच(मंच)यता सुबोध्यां,पुण्यं मयाऽऽवश्यकशास्त्रटीकाम् ।भवे भवे तेन ममैवमेवं,भूयाज्जिनोक्तानुमते प्रयासः ॥२॥
अन्यच्च सन्त्यज्य समस्तसत्त्वा, मात्सर्यदुःखं भवबीजभूतम् । सुखात्मकं मुक्तिपदावहं च, सर्वत्र माध्यस्थमवाप्नुवन्तु ॥ ३ ॥

समाप्ता चेयमावश्यकटीका । द्वाविंशतिः सहस्राणि, प्रत्येकाक्षरगणनया(संख्यया) । अनुष्टुप्छन्दसा मानमस्या उद्देशतः कृतम् ॥ १ ॥ अंकतोऽपि ग्रन्थाग्रं २२०००

Jain Education International

*** अत्र अध्ययनं -६- 'प्रत्याख्यानं' परिसमाप्तं

भाग-३१[आगम-40/4], निर्युक्ति:- (१२७३.अपूर्ण से १६२३)
+ (अध्ययन ४.अपूर्ण से ६ पूर्ण)

www.jainelibrary.org

भाग 31	**'आवश्यक'-मूलसूत्र [१/४] मूलं एवं मलयगिरिसूरिजी रचिता टीका परिसमाप्ता:** मूल संशोधकः सम्पादकश्च पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब किंचित् वैशिष्ट्य समर्पितेन सह पुन: संकलनकर्ता मुनि दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
01	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १,२		३१४
02	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- ३ से ९, श्रुतस्कन्ध- २		५८६
03	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १ से १३		४९८
04	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन १४ से १६, श्रुतस्कन्ध-२		३९२
05	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ स्थान- १ से ४		५९४
06	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ स्थान- ५ से १० संपूर्ण		४९४
07	आगम ०४ समवाय मूलं एवं वृत्ति.		३३८
08	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ शतक- १ से ६		५९२
09	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ शतक- ७ से ११		५५२
10	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ शतक- १२ से २०		५१४
11	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ शतक- २१ से ४१ संपूर्ण		३८४
12	आगम ०६ ज्ञाताधर्मकथा मूलं एवं वृत्ति.		५२२
13	आगम-७,८,९,१०उपासकदशा, अंतकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण मूलं एवं वृत्ति.		५३८
14	आगम-११,१२, विपाक, उववाई मूलं एवं वृत्ति.		३८४
15	आगम १३ राजप्रश्नीय मूलं एवं वृत्ति.		३१४
16	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १ से १३८		४८०
17	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १३९ से प्रतिपत्ती-१० संपूर्ण		४८८
18	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. पद- १ से ५		४२६
19	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. पद- ६ से २२		५१४
20	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. पद- २३ से ३६ संपूर्ण		३३६
21	आगम १६ सूर्यप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१०

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
22	आगम १७ चन्द्रप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१४
23	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- १ एवं २.		३७६
24	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ३ एवं ४.		४२६
25	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ५ से ७.		३४४
26	आगम १९-३२ निरयावलिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा, चतु:शरण, आतुरपरत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तंदुलवैचारिक, संस्तारक, गच्छाचार, गणिविदया, देवेन्द्रस्तव मूलं एवं छाया		३१२
27	आगम ३३ थी ३९ मरणसमाधि मूलं एवं छाया, निशीथ, ब्रुहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध, जीतकल्प/पंचकल्प, महानिशीथ मूलं एव		३३०
28	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, निर्युक्ति- १ से ५२१		४६६
29	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, निर्युक्ति- ५२२ से ९५१		४४२
30	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ निर्युक्ति- ९५२ से १२७३ अपूर्ण, [अध्ययन- १ से ४ अपूर्ण]		४६४
31	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ निर्युक्ति- १२७३ अपूर्ण से १६२३, [अध्ययन- ४ अपूर्ण से ६ संपूर्ण]		४२६
32	आगम ४१/१ ओघनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		४७२
33	आगम ४१/२ पिंडनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		३७६
34	आगम ४२ दशवैकालिक मूलं एवं वृत्ति.		५९०
35	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, अध्ययन- १ से ५		५२२
36	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, अध्ययन- ६ से २१		४८२
37	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-३, अध्ययन- २२ से ३६		४६६
38	आगम ४४ नन्दिसूत्र मूलं एवं वृत्ति.		५२८
39	आगम ४५ अनुयोगद्वार् मूलं एवं वृत्ति.		५६०
40	कल्प[बारसा]सूत्र... चतु:शरण, तन्दुलवैचारिक, गच्छाचार मूलं एवं वृत्ति.		३९४

आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता

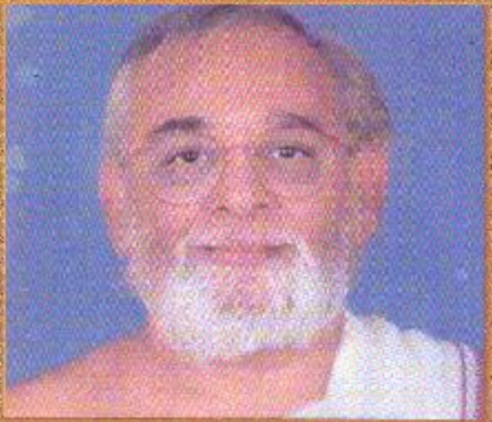

आगम दिवाकर **मुनिश्री दीपरत्नसागरजी**

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका

मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

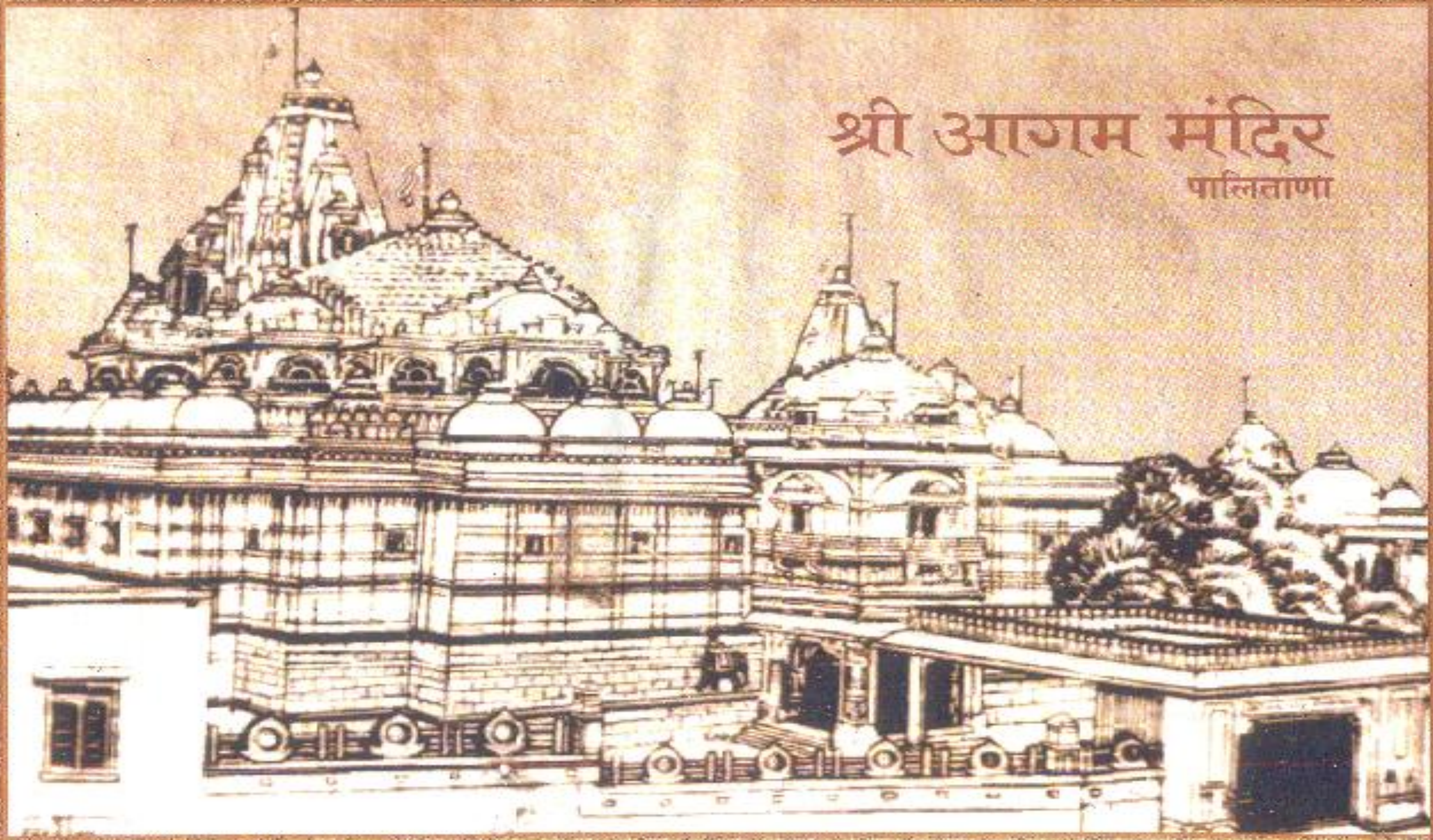

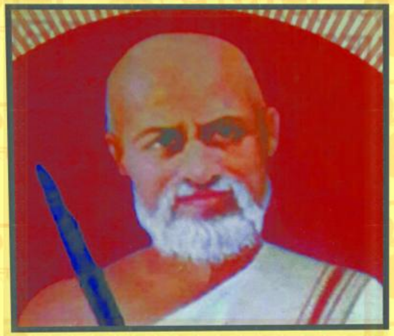

मूल संशोधक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

आगम ४०

“आवश्यक” मूलं एवं वृत्तिः [४]

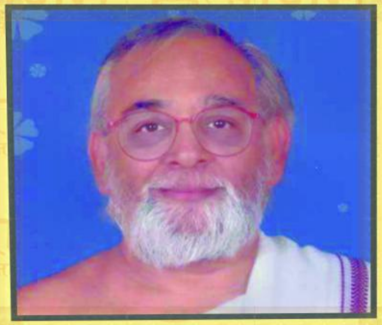

अभिनव-संकलनकर्ता

आगम दिवाकर **मुनिश्री दीपरत्नसागरजी**

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]